जम्मू - कश्मीर के

हिन्दी साहित्य का इतिहास

डॉ. अशोक जेरथ

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

R. L. Bhat
Jammu

11-05-2002

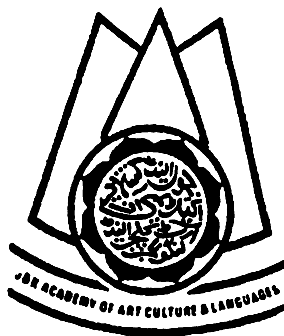
जम्मू-कश्मीर के हिन्दी साहित्य का इतिहास

डॉ0 अशोक जेरथ

जे0 एण्ड के0
कैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ जम्मू

जम्मू–कश्मीर के हिन्दी साहित्य का इतिहास

लेखक – डॉ0 अशोक जेरथ



प्रथम संस्करणः 2002
प्रकाशक : जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़ जम्मू
मुद्रक : जे. के.ऑफसेट प्रिंटर्ज, जामा मस्जिद, दिल्ली–6
मूल्ल : 100/–रुपये

History of Hindi literature of Jammu and Kashmir by - Dr. Ashok Jerath

प्रकाशकीय

राज्य अकैडमी 1965 ई0 से हिन्दी पत्रिका 'शीराज़ा हिन्दी' का प्रकाशन सुनिश्चित किए हुए है। इस पत्रिका के माध्यम से राज्य के हिन्दी लेखकों को एक ऐसा मंच प्रदान किया गया है जिससे समूचे हिन्दी साहित्य में उनकी एक विशिष्ट पहचान बनी है। अकैडमी ने राज्य के वरिष्ठ रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अलग से पुस्तकों का प्रकाशन करके हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का स्थायी प्रतिबिम्ब होता है। मानव की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरुप में भी परिवर्तन अनिवार्य है। अतः इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ इनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।

अकैडमी द्वारा हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करवाने की नीति के अंतर्गत "जम्मू-कश्मीर का स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य - एक विवेचन" शीर्षक से ग्रन्थ भी प्रकाश में आ चुका है।

अपनी इसी कार्य योजना के अंतर्गत राज्य के समूचे साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य के मूल्यांकन का चिरप्रतीक्षित ऐतिहासिक दस्तावेज़ प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

डॉ0 अशोक जेरथ इस प्रदेश के वरिष्ठ रचनाकार हैं और स्वयं कई संस्थाओं के संचालक भी रहे हैं जिनका हिन्दी के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान रहा है। हमें आशा है कि उनके इस श्रमसाध्य कार्य से सुधि पाठक अवश्य लाभान्वित होंगे।

बलवंत ठाकुर

सचिव

अपनी ओर से

किसी भी भाषा का इतिहास लेखन अपने आप में बहुत सी दिक्कतें और जोखिम लिए है–मसलन किस विधा में कौन सी कृति की चर्चा की जाए और कौन कौन से कृतिकार की रचनाओं को चर्चा का विषय बनाया जाए, कोई मापदण्ड तो हो और यदि मापदण्ड बन भी जाय तो क्या सभी रचनाकारों की कृतियां उपलब्ध हो सकेंगी ? आदि कुछ प्रश्न थे जो इन पंक्तियों के लेखक को कचोटते रहे हैं। बहुत प्रयास करने पर भी शायद कुछ छूट गया हो। हर विधा पर बार–बार विचार किया गया है–बार बार लिखकर जोड़ा–तोड़ा गया है और प्रयत्न रहा है कि पूरी ईमानदारी के साथ केवल कृतियों को सारख कर ही चर्चा की जाए ।

एक क्रमिक विकास सामने था पर ब्योरे और लिखित मसौदे लगभग नदारद थे। प्रयत्न कर ,टुकड़े,टुकड़े एकत्रित कर उन्हें जोड़ा गया है। इस जुड़ाव ने बहुत सा समय खा लिया है पर मैं आश्वस्त हूँ कि जो कुछ सामने उभरकर आया है वह एक दिशा देने में सहायक अवश्य होगा।

एक बात स्पष्ट थी कि रचनाकार जिसकी एक भी कृति प्रकाशित हुई हो उसकी चर्चा अवश्य हो। फिर अध्ययन के दौरान बहुत से ऐसे भी रचनाकार सामने आए जिनकी रचनाएं पत्रिकाओं में तो खूब प्रकाशित हुई हैं पर उनकी किसी कृति का पता नहीं, प्रकाशित हुई है या नहीं। उन रचनाकारों की भी चर्चा की गई है।

एक बात बड़ी दिलचस्प लगी कि साठ के दशक के बाद कविता, कहानी और निबन्ध विधा पर खूब कार्य हुआ है पर उपन्यास साहित्य लगभग नदारद है। जो उपन्यास उपलब्ध हैं वे राष्ट्रीय स्तर पर रचे गए उपन्यास साहित्य के सामने नहीं ठहरते। आलोचना में इधर आठवें दशक के बाद रुझान बढ़ा है। लेखक जो कभी अपनी कृतियों को समीक्षार्थ भेजने के लिए कतराते थे अब आगे आने लगे हैं। प्रसन्नता की

बात यह है कि हिन्दी साहित्य की पहचान इधर खूब हुई है। खूब लिखा गया है और लिखा जा रहा है इससे भी ऊपर आज बहुत से नाम ऐसे हैं जिनकी रचनाओं की चर्चा राष्ट्रीय स्तर पर होने लगी है और वह भी हिन्दी रचनाओं के रूप में। सारे कार्य को पांच अध्यायों में बांटा गया है,विधाओं और कालखण्ड के हिसाब से। मुख्यतः स्वतंत्रता से पहले और बाद में हुए कार्य की व्याख्या की गई है। इस प्रदेश में हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास इस सदी के आरम्भ तक काव्य विधा में ही मिलता है अतः इसे इसी शीर्षक के अन्तर्गत लिया गया है। प्रयास रहा है कि साहित्य की सभी विधाओं पर किये गये अधि िकारपूर्ण कार्य का उल्लेख हो।

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए बहुत से विद्वानों रचनाकारों और सहयोगियों का योगदान मुझे मिला है उनका अतिशय आभारी हूँ । मेरा आभार अकादमी के अधिकारियों के प्रति भी है जिन्होंने मुझे यह कार्य वहन करने का अवसर प्रदान किया। अंत में, सुध ी पाठकों का मैं अति आभारी हूंगा जो मुझे इस कार्य पर अपनी राय दे सकें। यह कार्य 1994 तक प्रकाशित रचनाओं पर आधारित है।

अशोक जेरथ

26.1.2002

जम्मू-कश्मीर के हिन्दी साहित्य का इतिहास

जम्मू–कश्मीर में हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास

जम्मू–कश्मीर अहिन्दी भाषी क्षेत्र के तौर पर जाना जाता है। पूरा राज्य तीन सुनिश्चित क्षेत्रों में बंटा है जिनकी अपनी अपनी पहचान है। ये क्षेत्र हैं जम्मू ,कश्मीर और लद्‌दाख। इन तीनों क्षेत्रों की अपनी संस्कृति है, अपनी भाषा है। जम्मू के लोगों की मातृ भाषा डोगरी है तो कश्मीर में कश्मीरी भाषा भाषी लोग रहते हैं। लद्‌दाख की भाषा लद्‌दाखी है। हां प्रैाढ़ लोग कश्मीर और जम्मू में उर्दू लिखना पढ़ना जानते हैं। अधिकांश लोग उर्दू में साहित्य रचना भी करते हैं और राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यहां के अनेक साहित्यकारों ने उर्दू साहित्य में अपना नाम कमाया है। इसके बावजूद हिन्दी पढ़ने वालों तथा हिन्दी रचनाकारों ने सदा से ही अपना विशिष्ठ स्थान बनाए रखा है। यह एक सुखद आश्चर्य ही कहा जाएगा कि यहां सदियों पहले से हिन्दी में काव्य रचना होती रही है। कश्मीर की धरती देवभूमि के रुप में जानी जाती है। संस्कृत के अनेक आचार्यों ने यहीं अपने महान ग्रथों को रचा और विश्व भर में इन ग्रथों की चर्चा विभिन्न भाषाओं के साहित्य के माध्यम से हुई है। प्रकृति ने इस धरती को अनेक सुरम्य दृश्यों से सजाया है जिसकी सुरभि को समेटने विद्‌वान ,पर्यटक तथा अनुसंधित्सु सदियों से इस प्रदेश की यात्रा करते चले आ रहे हैं, जो सांस्कृतिक आदान प्रदान के माध्यम रहे हैं। सिंकन्दर बुतशिकन के समय (1290 ई0) अनेक कश्मीरी परिवार कश्मीर छोड़कर भारत के दूसरे प्रांतों में बस गए पर जैन–उल–आवद्‌दीन , जिसे प्यार से अक्सर बड़शाह कहा जाता था, के समय श्री भट्‌ट (1320–1370) ई0 के प्रयासों से वे दुबारा कश्मीर लैाट आये। लगभग तीस वर्षों की अवधि में उन्होने बिहार /उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों की भाषा और संस्कृति को अंगीकार कर लिया था। उस संस्कृति को वे अपने साथ कश्मीर लेते आए। इन विद्वानों के साथ हिन्दी क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वान और वैष्णव आन्दोलन के प्रमुख संत रामानन्द जी भी कश्मीर आए जिन्होंने कश्मीर के हिन्दुओं के साहित्य और धर्म की पुनर्स्थापना की ।

जम्मू कश्मीर में हिन्दी साहित्य का विकास

लिखित हिन्दी काव्य हमें 17वीं शताब्दी के आसपास ही मिलता है। प्रसिद्ध रहस्यवादी कवियित्री रूपाभवानी (1625–1719 ई॰) का लेखन इस ओर संकेत करता है।

इनकी रचनाओं में अनेक हिन्दी कविताओं को ढूंढा जा सकता है। इनकी हिन्दी रचनाओ का एक स्वरूप देखिएः

संतोष समाद् एक आसन पर
मैं यूं लगाया प्रेयम का पथ।
दृढ़ किया बालवाशों आंखिओं का
ज्योति स्वरूप क्यों करूं मेरे से तेरे का

रूपा भवानी द्वारा रचित इन पंक्तियों की भाषा यद्यपि हिन्दी है तथापि इसमें क्षेत्रीय स्पर्ष मिलता है पर निम्नलिखित पंक्तियों में खड़ी–बोली का विशुद्व स्वरूप हमें मिलता है :

अपने घर आया आप सांई
जो कुछ मैं था अब नाहीं
यह बोध आया गुरु की बड़ाई
जिन गुरु ने दिया मन का तत्व बताई।

ऐसी मान्यता है कि वाराणासी आदि स्थानों में काफी देर रहने के कारण इनकी भाषा में यह निखार आया। 18वीं शताब्दी के एक हिन्दी महाकाव्य की पाण्डुलिपि राज्य के अनुसन्धान तथा प्रकाशन विभाग में पड़ी है जिसे श्री लाल जाडू नामक किसी कवि ने रचा है । इस महाकाव्य में दोहा, सोरठा आदि हिन्दी के प्रचलित छन्दों का प्रयोग हुआ है।

एक अपरिचित आकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन,1971 पृ० 14–15

रूपाभवानी के उदय होने से लगभग पचास वर्ष पहले सन् 1572 ई० में कश्मीर सुल्तान नाजुक शाह के राज्यकाल में, बीस वर्ष की अथक साधना के बाद, एक महान कवि वल्लभ देव ने तुलसी कृत रामायण नाम से राम चरित मानस का हिन्दी में रूपान्तर सम्पन्न किया था।

परमानन्द : भक्ति कालीन आन्दोलन के एक प्रमुख कवि परमानन्द का समय सन् 1791 से 1885 ई० माना जाता है। कश्मीर के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल, मार्त्तण्ड, में इनका जन्म हुआ था उस समय कश्मीर पर अफगान नरेश, तैमूर शाह, का शासन था। इनकी प्रसिद्व कृति राधास्वयंवर में ब्रज,खड़ी बोली,पंजाबी और कश्मीरी का अद्भुत मिश्रण मिलता है। इस मिली जुली खिचड़ी भाषा को उन्होंने भाषा की संज्ञा दी है। परमानन्द कश्मीरी और हिन्दी दोनों भाषाओं में कविता करते थे।

परमानन्द की कविता का एक स्वरूप देखेंः

भज गोविन्द नाम भज गोविन्द नाम
और क्या काम श्याम भज गोविन्द नाम

इस बानी का स्वाद पावे सतगुरु का प्रसाद
सतगुरु का प्रसाद पावे कोई होवे साध

अधिकांश कविताएं तुकबन्धी पर स्थिर हैं, कविता का शिल्प तकनिक की दृष्टि से बहुत पुष्ट नहीं है पर उस समय ऐसी कविता करना भी अभावों में जीना था।

वस्तुतः परमानन्द गायक थे और उन्होंने कश्मीरी में रचित काव्य राधा स्वयंवर में ही कहीं कहीं हिन्दी में भी पद रचे हैं जिनकी कुल संख्या 14 है। इन पदों में कहीं कहीं पर सूरदास की काव्य शैली मुखरित हुई है :

गैंयां कडों प्रभू न्यारी अरे
असी क्यूँ राखूं बछ त्वाडे अरे
न नन्द मेहरा का चाकर हम
न तुम से कुछ प्यारे अरे।

उपर्युक्त पद में 'कडों' 'असी' 'त्वाडे' आदि शब्द पंजाबी के हैं।

परमानन्द के शिष्य **लक्ष्मण जू बुलबुल** ने भी हिन्दी कश्मीरी मिश्रित भाषा में कुछ पद रचे हैं:–

गोविन्द नामा श्याम कलेवर निष्कामा
राय सुदामा गोपियन हिन्द विश्रामा

मनवटी द्वारा रचित किन्ही पदों में आश्चर्य जनक स्तर पर हिन्दी की शुद्धता हमें मिलती है:

कर दया तू है दयालू दे तू आंखें ज्ञान की
तम से गम में थम गया हूँ चाह मुझे निर्वाण की
माया का विलास सारा तुम ने जो उत्पन्न किया
मै उसी में सो गया हू तुम जगाओ कर दया

कश्मीरी के साथ–साथ मनवटी हिन्दी में भी कविताएं रच रहे थे। ठाकुर जू मनवटी (सन् 1850–1923ई०) हिन्दी कश्मीरी मिश्रित भाषा में काव्य रचना करते रहे हैं। इनकी एक कृति **'अमृत सागर'** प्रकाश में आई है। इनकी भाषा का एक उदाहरण देखें:

मन तुम बिन तड़पत है हे कृष्ण मुरारी ,श्री राम राम राम राम राम जी
झूमर जैसा मैं घूमता ग़म पाता हू बहुत भ्रम से मुझे ग़म न छूटे फिर भ्रमसे

ठाकुर जू मनवटी के शिष्य, **हलधर जू** ने भी कश्मीरी मिश्रित हिन्दी कविताएं लिखी हैं।

मास्टर जिन्दा कौल (सन् 1880–1966ई०) कश्मीरी भाषा के प्रतिष्ठित कवि रहे हैं। 1941 में इन्होंने अपनी पांच हिन्दी कविताएं 'पत्र पुष्प 'शीर्षक से प्रकाशित की थीं।

इनकी एक रचना की कुछ पंक्तियां देखें:

स्वामिन सर्वेश्वर सर्वाश्रय सर्वाकार प्रणाम
भगवान विश्वात्मन विश्वंभर,विश्वाधार प्रणाम।

इस रचना में समासयुक्त भाषा एवं अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुया है।

पंडित नीलकंठ शर्माः— कश्मीर के रचनाकारों में पं0 नीलकंठ शर्मा एक चर्चित नाम है। इनका जन्म शादीपुर क्षेत्र के डबवाकुरा गांव में सन् 1881 में हुआ। मूलतः कश्मीरी के कवि थे पर इनके द्वारा रचित रामायण में अनेक रचनायें हिन्दी की शामिल हैं।

जय जय प्रभु विभु दीन दयाला ,
जय जय राम रवरारी।
जय परिपूरण पीताम्बर–धर
अक्षर कष्ट निवारी।
सर्वाधारा निर–आकारा
त्रिभुवन सारा प्यारा।
तू है सबमें व्यापक निर्मल
तू है सबसे न्यारा।
कर्त्ता धर्ता हर्ता भर्ता
भक्तन के हितकारी।

एक अन्य उदाहरण देखें :—

हे रघुनन्दन जय रघुनन्दन
जय जय त्रिभुवन सार।
....
....
नीलकंठ है दास तुम्हारा
त्रास निवारो जी,
दिखलाओ अपना सुन्दर मुख
दुःख संहारो जी।
तू है सरजन हार
जय जय त्रिभुवन सार

भक्ति रस से ओत प्रोत एक और स्वर हिन्दी और कश्मीरी कविता धरा पर उभरा।

यह स्वर था **श्री कृष्ण जू राज़दान** का जिनका काल सन् 1850 ई॰से सन् 1925 ई॰ तक का लिया जाता है। इनकी हिन्दी मिश्रित कश्मीरी कविता या कश्मीरी मिश्रित हिन्दी कविता का अद्‌भुत स्वरूप हमें मिलता है

परमशक्ति वर'वुन परमेश्वर है
पूज्य शंकर है त्रिभुवन सार।
ब्रह्म रूप असवुन क्षीर सागर है,
विष्णु रूप धारवुन नगि अवतार।

उपर्युक्त पंक्तियों में वर, वुन, असवुन, धारवुन आदि कश्मीरी शब्द हैं। इनकी एक और हिन्दी कविता देखें:—

राधा कृष्ण रामा श्यामा, अरे नन्द लाला अरे निष्कामा।
त्रिजगत पाला दीन दयाला अरे नन्द लाला बंसरी वाला।।

कृष्ण जू राज़दान की रचनाओं पर एक कृति 'कृष्ण जू राज़दान' जम्मू कश्मीर कलचरल अकादमी द्वारा प्रकाशित की गई जिसे श्री एस0 एन0 वीर ने संपादित किया है। इस कृति में अनेक कृष्ण भजन, राम भजन और शिव भजन हिन्दी में संकलित हैं। पृष्ठ 464 पर गोपियों का सवांद देखें :—

घिरते हैं हम रात दिन यह कर्मों का है फेर
कृष्ण चन्द्र जब मिले तब कब रहे अंधेर
अब वह सूरज मुख दिखाए आता है पैग़ाम
श्री कृष्ण मथुरा गया है, हम से लिया आराम।

गोपियों और श्री कृष्ण के सत्य रूप की ओर संकेत करते कवि लिखता है:

वृत्तियां हैं गोपियां तुम आत्मरूपी हो मोहन
आओ खाओ भाव का दूध और दही सजरा मखन
तुम हो मन और प्राण में ले मेरा अन्तः करण
कृष्ण तेरे घ्यान में बन गया बस्ती को बन *पृ0 467*

इन भजनों के माध्यम से कवि ने सूक्तियों को उकेरा है

देह भ्रम रूपी शेर को है मद से आंखें लाल
उसको पकड़ो खीचों बांधो मारो उतारो खाल
उस सिंह आसन के ऊपर अपना आसन डाल
गोपी नाथ माखन चोर मदन मोहन लाल। *पृ0 470*

कृष्ण जू राज़दान शिव भक्त भी थे :—

माया का वार्ता सब समझाओ जब कुछ नहीं तब क्यों है राग द्वेष
शिव, निर्वाण सागर में डुबाओ, शिव, दिखाओ शांति स्वरूप

काल के मुख से मत घबराओ, कृष्ण को हटाओ संकट क्लेश
'शक्तिपात' से अपने साथ ले जाओ , शिव दिखलाओ शांति स्वरूप पृ0 425

अपनी रचनाओं में श्री कृष्ण जू ने श्री राम की महिमा का भी बखान किया है।

भीलनी का झूठा राम जी ने खाया उत्तम पाया प्रेम से...........
राजधानी छोड़कर बन में आया सच मानकर बाप की आज्ञा
ऐसा सतोगुण देवतों ने गाया, उत्तम पाया प्रेम से..........
कृष्ण ने द्वैत भाव मन से हटाया, राम को जाना परम आत्मा
राम का नाम ज्ञान योग में लाया, उत्तम पाया प्रेम से.........
राम राम करके आसन बिछाया, चित में लाया राम का नाम
राम का नाम शिव शंकर को भाया , उत्तम पाया प्रेम से.........

राम की महिमा का बखान इन पंक्तियों में देखें :--

अयोध्या में चलो देखो अजब क्या तमाशा है
जिन व इन्सान, रीछों, बदरों का खूब चर्चा है............
अभी आये हैं लंका जीत कर और देखकर दशरथ
प्यारे राम जी के सबको दर्शन की तमन्ना है
अयोघ्या में...........
बिलाशक मालिके कुल शक्ले इन्सान बनके आया है
नहीं इन्सान नहीं है नूर यह नूरे तजल्ला है.........
बगल गीरी को आए है तीनो मादरां अपने
शत्रुघन और भरत, कैकेयी, सुमित्रा, कौशल्या है.........

इन रचनाओं को पढ़कर एक बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि शिल्प में अभी बहुत गुंजायश बाकी है चूंकि यह दौर हिन्दी कविता का प्रारम्भिक दौर था अतः शिल्प के प्रतिमान स्थापित होने अभी बाकी थे। कृष्ण जू राज़दान की एक कृति 'शिव लग्न' को एशियाटिक सोसाईटी कलकता ने 1913 में प्रकाशित किया था।

पंडित दीनानाथ नादिम : 1916 में जन्में नादिम कश्मीरी के सशक्त हस्ताक्षर रहे हैं, युग द्रष्टा। कश्मीरी भाषा में रचना करने से पहले नादिम उर्दू में लिखते थे:

अंगारे कांगडी में हैं दिल के दाग़ रोशन
कुर्ते की खिड़कियों में ग़म के चिराग़ रोशन।

थोड़े से शब्दों में अपनी बात कह जाने के धनी इस रचनाकार ने 1940 के आस पास हिन्दी कविता में भी अपना अक्स बैठाया। यद्यपि नादिम द्वारा रचित कुछेक रचनायें ही हिन्दी में रची गईं पर निश्चय ही इन रचनाओं का अपना महत्व रहा है 'कलिंग से राजघाट तक' और 'अजन्ता' नामक इनकी दो कवितायें विशेष तौर पर चर्चित हुईं:

यह देखो रात हो गई , प्रकृति लाल रक्तपात की रुमाल मुख पै डाल के निढाल सो गई ,
थिरक थिरक के बिजलियों ने , आधियों ने , भूमि कंप ने कंलिग के ललाट पर कथा लिखीः–

विजय की हार की कथा..........

....

....

वह देखो राजघाट पर चमकती दीप की शिखा
वह देखो अपने, रक्त से किसी महान व्यक्ति ने
पताका की जड़ों को सींचकर रखा
वह देखो रामधुन के मर्म स्वर हिल्लोरें खा रहे

....

....

रामधुन के मर्म स्वर बढ़े हैं , बढ रहे हैं।

'कलिंग से राजघाट तक , ज्योति श्रीनगर ,1951 ई0'

पंडित नारायण जी खार : मटन निवासी पंडित नारायण जी हिन्दी और कश्मीरी में एक साथ लिखते रहे हैं । इनकी एक मात्र कृति 'नारायण प्रकाश ' सन् 1939 ई0 में प्रकाश में आई। इसमें भजन , कश्मीरी पद्य रचनायें तथा मटन व अमरनाथ यात्रा सम्बंध में गद्य में जानकारी आदि संकलित है! पुस्तक में संकलित रचनाओं में अधिकतर पद्य रचनायें है। जो हिन्दी में रची गई हैं। 'नरसिंह अवतार' शीर्षक से रची गई कविता 177 चरणों में सम्पन्न होती है और प्रत्येक चरण में छः पंक्तियां हैं :

दुष्ट दलन की मन में ठान
नरवर प्रकटे श्री भगवान
हिरण्य कश्यप और हिरण्याक्ष ने,
जब जब अत्याचार किया।
सत् के सिर पर तम खंजर का
निज हाथों से वार किया।
थे वो पापी मूढ़ महान।
नरवर प्रकटे श्री भगवान।।

इनकी अनेक रचनायें छन्द युक्त हैं। एक दोहा देखें :

प्रकृति की शोभा निखर, होता सुख अपार।
कश्मीर में है भरा ,शोभा का भण्डार।।

एक अन्य रचना का स्वरूप इस प्रकार है:

हिमगिरि मुकुट है मातु भारतवर्ष का जग जानता ,
सुरपति तलक अति पूज्य वह स्थल सद से मानता ,
उसके निकट उत्तम वहां के बड़े बड़े कुछ ग्राम हैं
ऋषिओं और मुनियों के बड़े प्राचीन वे शुभ धाम हैं

दुर्गा प्रसाद काचरू : सन् 1908 में श्रीनगर में जन्मे श्री दुर्गा प्रसाद काचरू कश्मीर में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिए कटिबद्ध रहे हैं। श्री पृथ्वी नाथ पुष्प के सहयोग से ' चन्द्रोदय ' नामक हिन्दी पत्रिका का संपादन 1939 में किया और बाद में हिन्दी के प्रचार एवं लेखन में भी रुचि लेते रहे। इनकी कुछेक हिन्दी रचनाओं में कश्मीर की कवियित्री 'ललद्यद' पर प्रबन्ध , कश्मीरी कविता पर एक लेख माला (ज्योति पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । दुर्गा प्रसाद काचरू द्वारा रचित कविता संग्रह 'अश्रुकण ' इनकी असमय मृत्यु के कारण अधूरा ही रहा, सम्पूर्ण रूप से मुद्रित नहीं हो सका। दुर्गा प्रसाद काचरू की कविताओं में छायावादी युग की छाया व्याप्त है:

प्रकृति का साक्षात विनय
दूर गीत की सुमधुर लय
शीतलता का वर संचय
दीन कीच का भाग्योदय
संस्कृति का रसपूत ह्रदय।

इन्होंने सरल और सहज भाषा में गीत भी रचे हैं:

लाल लाल फूल हों
आम्रों की मंजरी
केलों के झुरमुट में
घूमती हो परी।
दर्शकों के प्यासे राग
कोई बजाए बांसुरी
घास हो हरी हरी
टहलती हो सुन्दरी

तवी नदी पर लिखी गई इनकी रचना का काव्य सौष्ठव देखें :

इस ग्रीष्म देश की प्रेम कहानी
कह कह गुज़री तेरी जवानी
कितना बह गया तब से पानी
कितनी मनोहर तेरी रानी।
तव्वी तू कुछ कर हमसे बात

रात कैसे बीती हुआ कैसे प्रात
कौन कौन कहां था तुम्हारे साथ
कितनों के लिए लाई है सौगात

कश्मीर में हिन्दी ,328

सन्धिकालीन इस बेला में यद्यपि हिन्दी लेखन अंगडाई लेने लगा था तथापि दुर्गा प्रसाद काचरू की रचनाओं में हमें शिल्प के प्रौढ़ होने की बात पता चलती है।

जीवन लाल प्रेम : लाहैार में 1918 ई0 में जन्में श्री जीवन लाल विभाजन के बाद दिल्ली चले आए। आप के पिता श्री पंडित टीका लाल जी शास्त्री संस्कृत एवं हिन्दी के प्रकांड विद्वान थे। प्रेम जी स्वयं भी हिन्दी पत्रकारिता के साथ काफी लम्बे अरसे तक जुड़े रहे। कुछ अरसे तक अज्ञेय जी के साथ भी कार्य करते रहे। गद्य एवं पद्य दोनों ही साहित्य रूपों पर इन्हें अबूर था और कला समीक्षक के तौर पर भी जाने जाते रहे हैं। इनकी रचनाओं में 'गुरु गोविन्द सिंह की जीवनी,' 'पतझड़' 'बसंत बहार', 'तारावली,' 'अनन्ता' आदि चर्चित रही हैं। इनकी रचनाओं की शैली का एक रूप देखें:

न जाने यह संकेत कैसे है'
मैं जानता हूं ,पर नहीं जानता,
आत्म विस्मृति में ठहरा हुआ हूं स्तब्ध
सोचना भी क्या है,
मीठी हवाओं से/सुनहरे बादलों
आकाशगामी बगुलों/और भीतर आह्लाद से
अवकाश ही कहां है
चराचर के अगम विस्तार से *अनन्ता 1991 से*

एक अन्य उदाहरण देखें :

सुनहला आकाश छूट गया /अब यह सब झूठ नया
हमारे विश्वास कुरेदकर घर में बैठा है
और हम चतुर्दिक देखते हैं कि हम अजनबी हैं
अपने ही घर में *– घर, 1980 से।*

घनश्याम सेठी : 1934 ई0 श्रीनगर में जन्में श्री घनश्याम सेठी यद्यपि व्यवसाय में लगे हैं तथापि लेखन में अत्यधिक रुचि रखते रहे हैं। कहानी, यात्रा संस्मरण, लेख आदि गद्य रचनायें ज्ञानोदय आदि में प्रकाशित । 'नगरी नगरी फिरा मुसाफिर' में घनश्याम जी की विदेश यात्राओं के संस्मरण संकलित हैं। भाषा सरल एवं सरस है। आकाशवाणी श्रीनगर के साथ जुड़े रहे हैं !

जानकी नाथ कौल'कमल' :–संस्कृत हिन्दी एवं अंग्रेज़ी के विद्वान 'कमल वेदान्त , दर्शन एवं कश्मीर शैव दर्शन के अध्येता रहे हैं। कश्मीरी, हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजी में कविता और लेख लिखते रहे हैं। वे जीवन पर्यन्त उसी प्रकार कर्मठ सक्रिय रहे हैं। इनका एक मात्र हिन्दी कविताओं का संग्रह 'विक्षिप्त वीणा' 1980 में प्रकाशित हुआ जिसमें 47 कवितायें संकलित हैं इस संग्रह में प्रथम रचना का स्वरूप इस प्रकार है :

अनुपम यह तम्बूर
हे विराट! हाथों में तेरे
बजता जग सन्तूर।
ज्ञान–कर्म के दो हाथों से
बाहर–भीतर के श्वासों में
स्थावर जंगम भाव रूप में
चलता है भरपूर, अनुपम यह तम्बूर।

'मैं ' शीर्षक कविता का एक अंश देखें:–

मैं उस बीणा की झंकार हूं
जिसके तार सहसा टूट पड़े हों
मैं उस रोदन का गीत हूं
जो एक अबला के व्यथित हृदय से फूट पड़ा हो।
....
....
मैं उस श्रमिक के माथे पर,/स्वेदकण हूं जो प्रातः और
सांय को उदरपूर्ति की/चिंता को वर्तमान के
श्रम को भूल बैठा हो।

उपर्युक्त रचनाकारों के इलावा 1925 में कश्मीर में जन्मी सुश्री प्रभा देवी ईश्वर शैव आश्रम के साथ सम्बधित रही हैं और दो एक हिन्दी कविता के संकलन टैक्सट बुक्स के तौर पर प्रकाशित किए हैं। प्रो0 काशी नाथ धर हिन्दी आंदोलन के साथ जुड़ा एक नाम है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ संबधित रहे हैं। कश्यप पत्रिका के सम्पादन और प्रकाशन के साथ भी जुड़े रहे हैं। इन्हों ने 'प्रवाहिनी' नाम से आधुनिक हिन्दी कविताओं के दो संकलन भी सम्पादित किए है जो टेक्सट बुक के रूप में हैं। हिन्दी में निबन्ध लेखन एवं हिन्दी रचनाओं के संकलन एवं सम्पादन के साथ डा0 जिया लाल हण्डू भी जुड़े रहे हैं।

जम्मू में हिन्दी काव्य की सरिता आरम्भ से ही वेग में वही है। अठाहरवीं शताब्दी तो मानों इस धारा का उत्थान काल था जब अनेक कवि ब्रज भाषा में, काव्य रचना में, संलग्न थे खेद है कि मात्र एक दो छुटपट लेखों के इस ओर कोई ठोस कार्य अभी नहीं

हुआ है।

कवि दत्तः ऐसे प्रथम रचनाकार मिलते हैं जिनकी अधिकांश रचनाएं सौभाग्य से ,आज भी उपलब्ध हैं। .1772 ई0 में जन्मे भड़्डू निवासी कवि दत्त महाराज ब्रजराज देव के दरबारी कवि थे। इनकी तीन कृतियां उपलब्ध हैं महाभारत के द्रोण पर्व का ब्रजछन्दों में भावानुवाद जो 'वीर विलास' के नाम से सम्पूर्ण हुया , 'ब्रजराज पंचाशिका', और 'बारहमासा'। जम्मू कश्मीर कल्चरल आकादमी द्वारा ये तीनों रचनाएं 'कवि दत्त ग्रंथावली 'के नाम से प्रकाशित की गई हैं। इन तीन कृतियों के अलावा कवि द्वारा रचित दस और ग्रथों का जिक्र होता रहा है जिनमें 'भूप वियोग ' ,'रघुचंद्रिका' , 'ऋतु वर्णन' आदि हैं । दत्त कवि द्वारा रचित 'कमल नेत्र स्तोत्र' तो इतना चर्चित हुआ कि आज भी देव स्थानों और घरों में आरती के समय इसका पाठ किया जाता है।

वीर विलास की कुछेक पंक्तियां देखें:–

चरण कमल गुरुदेव के विमल की ज्ञान
निसि दिन दत्त हियैं बसैं करत दुरित की हान।
तिही प्रसाद कविता करौं अपनी मत अनुसार।
शब्द अर्थ चूके तहां कोविद लेहु सम्हार।

ये पंक्तियां आरम्भिक गुरु वन्दना की हैं जो कि उन दिनों खण्ड काव्य आदि में आवश्यक समझी जाती थीं। ऐसा सुनने में आया है कि कवि का बेटा और भतीजा भी हिन्दी रचनाएं रचते थे पर उनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है ।

पं0नीलकण्ठः– महाराजा रणवीर सिंह के दरबार में हिन्दी के एक प्रतिष्ठित कवि प0 नीलकण्ठ सुशोभित थे। इनका जन्म शामाचक सुना जाता है पर श्री राम नाथ शास्त्री की खोज अनुसार यह जम्मू के मुहल्ला मस्तगढ़ के रहने वाले थे। इनका काल सन् 1850 से 1890 ई0 माना गया है। इनकी रचनाओं में "वंशावली" –जिसमें डोगरा राजवंश का महाभारत काल से महाराजा रणवीर सिंह के काल तक का इतिहास हिन्दी में मिलता है। कवि की दूसरी रचना "कीर्तिविलास" है जो सन् 1886 में विद्याविलास प्रेस से प्रकाशित हुई थी। इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा रणवीर सिंह के गुणों का बखान किया है। आरम्भ में देवी देवताओं, विशेषकर स्थानीय देव, भैड़ देवता, कालिका,वैष्णो देवी आदि की अर्चना की गई है:–

वरणों रघुकुल ....सेवक वरदाई
त्रिकुटा श्री परमेश्वरी भैड़ कालिका माई
नीलकण्ठ कवि ज्यौं कहैंश्री रघुनाथ सहाई
मिल पाचों रक्षक भए केवल रघुकुल माहिं

इसके अतिरिक्त 'रणवीर रत्न माला' , 'रणवीर भाषा प्रकाश' ,'सार संग्रह' ,'त्रिकुटा

रहस्य' आदि इनकी अनेक रचनाओं की चर्चा होती आई है।

पं0 नीलकण्ठ की रचनाओं की विशेषता यह है कि इनसे हमें इनका लेखन समय और प्रकाशन समय का पता चलता है। श्री रणवीर प्रकाश का प्रारम्भ देखें:–

उन्नसौ पच्चीस शुभ ,संवत विक्रमजात।
श्रृतु वर्षा सावन सुदी ,गुरुवार तिथि सात
तादिन पुनि उद्यम कियो ,वैद्य शास्त्र हित जान ।

उनकी रचनाएं अक्सर मंगलाचरण से आरम्भ होती हैं:

गोपति गौरी गिरपति ,गुरु गणपति गीर्देव।
नमो चरण युग ध्यान धर,वर पाउं यह सेव।
प्रथम भवानी शारदा पूजौं विष्णु महेश।
बदौं विघ्न निवार जो, गौरी पुत्र गणेश।।

श्री रणवीर प्रकाश, जो कि एक वैद्यक ग्रंथ है, के समापन में कवि ने अपना कुल परिचय भी दिया है:

जम्बू पुर बासी भए, विद्वज्जन सिरमौर ।
कमल नैन पण्डित महां, जासम दूज न और ।।
तिन्ह के देवीदत्त सुत ,जिनको श्री भवनाथ।
नीलकण्ठ तिन्ह को भ्यो, सो नित नावत माथ।
पढ़यौ न शास्त्र कोई, सत्संगत उर धार।
आज्ञा श्री महाराज की पायो भाषा सार ।।

अंन्तिम पंक्ति में कवि का संकेत औपचारिक शिक्षा न पाने की ओर है लेकिन कवि की रचनाओं में भाषागत और तकनीक की दृष्टि से भी प्रौढ़ता झलकती है विभिन्न छन्दों का सटीक प्रयोग और लय तथा तुक का सटीक निर्वाह किया गया है। दोहा ,कवित्त, छप्पय ,कुण्डली आदि छन्दों का प्रयोग बहुतायत में हुआ है कहीं कहीं पर अनुप्रास और उपमा अंलकारों का प्रयोग बहुत सुन्दरता के साथ किया गया है–

नीति जस जग धार के कीनों चित् विचार
भू को भार उतारने उतरे अब संसार

–कीर्तिविलास

पं0 छन्नू लाल : पण्डित छन्नू लाल का जन्म 1808 ई0 में उधमपुर में हुआ था इन्होंने कान्चनाचार्य के लिए 'धनंजय विजय' नाटक का ब्रज पद्यों में अनुवाद किया है। इसे विद्याविलास प्रेस से प्रकाशित किया गया था। अनुवाद का रूप देखें :

भोर भए कमला जू के आंगण भैरन के घनघोर परे हैं
मंगल गायन गावत हैं तहां ताल मृदंग विहोत धरे हैं

पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्रः— जम्मू से लगभग चालीस किलोमीटर दूर साम्बा नामक स्थान पर पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्र का जन्म 1860 ई0 में हुआ था। इनका अधिकांश जीवन बिहार, बंगाल और काशी में ही बीता। यह हरिश्चन्द्र द्ववारा संपादित पत्रिका'कवि वचन सुधा', से संबन्धित रहे हैं। इनके अलावा पटना के 'बिहार बन्धु' तथा अपने अनेक साहित्यिक और समाचार पत्र निकालते रहे है '—भारतमित्र','सार सुधा निधि', 'उचित वक्ता' आदि। मिश्र जी ने बीस के करीब पुस्तकें लिखी हैं जिनमें काव्य ग्रंथ भी हैं। इनकी अनेक कविताएं इनके पत्रों में छपती रही हैं।

पं0 गांगेय नरोतम शास्त्री : शास्त्री जी का जन्म सन् 1900 ई0 में हुआ। इनके पितामह पुरमंडल के पास नगरोटा नामक गावं के थे जहां अभी भी पारिवारिक संस्कारों को मनाने ये आते हैं। शास्त्री जी मूल रूप से कवि थे और बीस वर्ष की आयु में ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हो गए थे पर कुछ वर्षों के बाद ही पद छोड़ कर असहयोग आन्दोलन में भाग लेने लगे थे। इनकी 36 पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें पद्य और गद्य दोनों विधाओं पर कार्य मिलता है। शास्त्री जी अपनी माता जी से अत्यधिक स्नेह रखते थे अतः अपनी पुस्तक 'मालिनी मन्दिर' उन्होने अपनी मां को ही समर्पित की है—

स्पन्दित करें तुम्हारा अंचल मां मेरे प्राणों के गीत
इन श्वासों को इन श्वासों ने कभी किया था पुनीत।

"करुणा तरंगिनी" पुस्तक के शीर्षक के बारे में उन्होंने दो पंक्तियां कहीं हैं:

निरख निरख ऐसी अस्थिरता आयी उन्मनरंगिणी।
सहृदय ममता की आंखों से निकली करुण तरंगिणी।।

सरल,सहज और ग्रहनीय भाषा का रूप देखें "घायल कोकिला"में :

दिन बीत गए गिनते कितने, नहीं आई यहां बहार फिर से।
यह बाग सूना हुया सो हुया, पनपा,न पला, न सजा चिर से।।

वस्तुतः बाग को देश का प्रतीक मानकर कवि ने तत्कालीन दशा का वर्णन इस कविता में किया है। बहुत कम लोग जानते हैं कि उनकी कविताओं में श्रृंगार भी बहा है:

मोहक भाव भरी, कान्ति सुधा सरसी
तत्क्षण तृप्ति करी मूर्ति देखी जिनकी
आई सुधि उनकी।

उपर्युक्त वे रचनाकार हैं जो प्रकाश में आ चुके है परन्तु एक काफिला उन कवियों का भी है जिन्हें अभी तक हिन्दी जगत नहीं जानता। अनेक हिन्दी काव्यों की पाण्डुलिपियां

श्री रणवीर संस्कृत शोध पुस्तकालय, रघुनाथ मंदिर जम्मू में दबी पड़ी हैं ।डा0 गंगादत्त विनोद के अनुसार 19 वीं शताब्दी में ठाकुर मीहरा सिंह द्वारा रचित हिन्दी कविता 'भक्ति विनोद' श्रीनगर के राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है।

19वी शताब्दी में न्याय सिद्धान्त का पद्यानुवाद गंडा सिंह ने किया था जो महाराजा रणवीर सिंह के समकालीन थे। डिमाई आकार में 468 पन्नों की यह पाण्डुलिपि चमकीले मटियाले कागज पर काली स्याई से लिखी गई है। यह वजीरावाद के रहने वाले थे और जम्मू आकर बस गए थे।

इसी प्रकार 'वैराग्य शतकम्' का पद्यानुवाद हरदयाल नामक किसी कवि ने किया था सन् 1877 ई0 में। दोहा कवित्त, सवैया, सोरठा आदि छन्दों को बहुत सुन्दर ढंग से इस रचना में बुना गया है।

एक पाण्डुलिपि 'सुधन्या कथा' हिन्दी पद्य में सन् 1884 में रची गई लेकिन इसके रचनाकार का कोई पता नहीं लगता। इसी प्रकार 'आदि ग्रन्थ,' 'नवरत्न माला', 'रत्न परीक्षा,' 'सारगीता', 'उचाटनविधि', 'नारायन लीला' 'रघुवंश' ,'राम अर्चन', 'चंद्रिका', 'त्रिशंकु की व्याख्या' 'गर्व गीता' आदि बीसियों ग्रंथ एवं पाण्डुलिपियां श्री रणवीर संस्कृत शोध पुस्तकालय में संग्रहित हैं जिनके रचनाकारों का कोई पता नहीं। इन सभी पद्य रचनाओं का रचना काल 18वीं और 19वीं सदी का है। ये पाण्डुलिपियां ज्यादातर ब्रज भाषा में ही लिखी गई हैं !

1940के आसपास जम्मू में बहुत से साहित्यकार रचना करने लगे थे। अक्सर उन दिनों की कविताओं में छायावादी प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी साहित्य मंडल,जी. जी. एम. सांईस कालेज, उन दिनों प्रिंस आव वेल्स़ कालेज, की साहित्य परिषद आदि साहित्यिक संस्थायें इन्हें प्रोत्साहित कर रहीं थीं दूसरी ओर उषा भारती, दीपक, वसुधा आदि विशुद्ध साहित्यिक पत्रिकाओं के माध्यम से इन्हें एक सशक्त मंच मिला था अपनी अभिव्यक्ति के लिए अतः बहुत से छात्र और छात्रायें इनके संर्पक में आकर कविता लिखने लगे थे। आरम्भ में तो तुकबन्धी ही सामने आई

सौ नियामत शुक्र गुजारी, यह.........आखीर हमारी है
यह गाय जोकि हमारी है, सूरत में कैसी प्यारी है
सूरत में कैसी लारी है, मिस्की ग़रीब बेचारी है।

भारती के मई 1941 के अंक में प्रकाशित यह रचना श्रीमती श्यामा कौल द्वारा रचित है। इसी प्रकार इसी अंक में प्रकाशित सुश्री कुन्ती ओसवाल द्वारा रचित कविता की कुछ पंक्तियां देखें:

जीवन है बस धूप, या समझो स्वप्नों की माया

जिसने इतना जाल फैलाया, जब लग काल न हर ले
कुछ शुभ काम तू करले।

उषा, भारती, दीपक और वसुधा में उन दिनों कुछ अच्छी कवितायें भी प्रकाशित हुई पर अधिकांश कविताओं में छायावादी स्वर मुखरित हो रहा था:

किस अनन्त की स्वरधारा में बहा जा रहा दिशा विभोर
अन्धकार में सुन पड़ता है किस अनादि का गर्जन घोर
सुप्त जगत् की आंखों में परस्वप्नों का कौन बुन रहा जाल
कौन गा रहा लय में लय हो झूम झूम दे देकर ताल

यह कविता भारती के मई 1946 अंक में प्रकाशित हुई थी 'अव्यापक व्यापकता' के शीर्षक से और रचनाकार थे श्री प्रभात बी0ए0। इस कविता में छायावादी स्वर पकड़ा जा सकता है।

उषा के मई 1946 के अंक में यह स्वर अपने वेग से बहा है। प्रस्तुत हैं श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा द्वारा रचित गीत की कुछ पंक्तियां जो उषा के उक्त अंक में पृ0 182 पर छपी हैं:

रात के गहरे अन्धेरे में उड़ा जो, उस विहग को मिल गई प्रातःकिरण भी
ताप से मिल आर्द्रता बन मेघ जाती, पैठता जो सिंधु पाता रत्न थाती
भावना ऊंची लिए सागर लहर भी, उछल रही है क्षितिज की सीमा डुबाती।

इसी प्रकार उषा के दिस0 1943 के अंक में एम0के0 मल्होत्रा की एक कविता, इसी रंग में डूबी, पृ0 32 पर प्रकाशित हुई :

किस उम्र , रूप को ले नदियां, जातीं हैं प्रियतम को पाने
दःुख से भर करतीं हैं रोदन, फिर सुख में आ गातीं गाने।

इसी स्वर का एक और रूप देखें:

अरी कली–भली क्यों रोती है, क्यों अश्रुहार पिरोती है।
क्यों डरी हुई है– इतना तू, क्यों सिसक सिसक कर रोती है

....

रोती हूं– इससे, कुछ गाना था मुझको, पर व्यर्थ गाना न आया
रोना ही आया मुझको।

यह कविता 'कली' के शीर्षक से श्री 'विचित्र' ने लिखी थी। और वसुधा के प्रवेशांक नवम्बर 1932 में पृ0108 पर प्रकाशित हुई थी।,

इसी अंक के पृ0 12 पर श्री केदार नाथ मिश्र की एक कविता प्रकाशित हुई थी। 'प्रात विंहगम्' शीर्षक से:

उषा का प्रथम स्वर्ण संगीत, निशा के पंखों में सुनसान,
छिपा था जो बन स्वप्न पुनीत, तुम्हें कैसे मिल गया अजान।

वसुधा के इसी अंक में राम जीवन शर्मा की इसी स्वर के साथ स्वर मिलाती एक कविता 'मेरा घर' नाम से प्रकाशित हुई है :

बिना किसी मतलब के स्वागत सरिता का करता सागर
जहां गोद में बैठाकर
लता सुन्दरी प्रियतम तरु से, नेह निभाती जीवन भर
जहां आस्था का न असर।

ये वे नाम हैं जिनकी एक दो रचनाएं उन दिनों इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं थी। एक 'विचित्र' जी को छोड़कर, जिनकी रचनायें बाद में भी सुनने को कवि सम्मेलनों में मिलती रहीं, विशेषकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उस विशद आयोजन में जो 1933 ई0 में दीवान मन्दिर के परिसर में आयोजित किया गया, बाकी के अन्य कवि और कवियित्रियां या तो लिखना छोड़ बैठे या कहीं बाहर चले गए, इन प्रकाशित रचनाओं को छोड़कर उनकी किसी रचना की चर्चा नहीं मिलती। लेकिन कुछ नाम ऐसे हैं जो निरन्तर लिखते रहे यह बात अलग है कि इनमें से कुछ डोगरी की ओर उन्मुख हो गए।

1940 के आसपास लिखने वालों में एक नाम पं0 हरदत्त का भी आता है जिन्होंने हिन्दी भाषा और इसके साहित्य की सेवा के लिए अपनी जयदाद तक बेच डाली ताकि 'दीपक' प्रज्वलित हो सके और हिन्दी की दीर्घाओं में बैठा अंधकार छट सके। इस हिन्दी पत्र का पहला अंक सन् 1939 ई0 में प्रकाशित हुआ था। पं0 हर दत्त शर्मा एक अच्छे लेखक और कवि के साथ साथ हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे। दीपक के प्रवेशांक में इनकी एक कविता प्रकाशित हुई है 'प्रभु से' शीर्षक से पृ0 4 पर–

प्रभो, भारत की यह किशती किनारे पर लगा देना
इसे जड़ योग सागर की तरंगो से बचा लेना।
चढ़ी पश्चिम से आंधी है, प्रलय बादल गरजते हैं।
कड़कती है कलह की दामिनी धीरज बन्धा देना।

1933 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से तीन दिवसीय हिन्दी लेखक सम्मेलन दीवान मंदिर जम्मू में आयोजित किया गया था जिसमें इनका पूरा सहयोग आयोजकों को मिला पर इन्होनें किसी कारण वश उक्त सम्मेलण के कवि सम्मेलन में भाग नहीं लेना चाहा था तो कुछ कवियों ने व्यंग्य से इन पर छींटाकशी की कि ये ठहर ही कहां पाएगें हमारे सामने । ओम गोस्वामी द्वारा लिखे गए एक लेख के अनुसार इन्होनें वहां कविता पढ़ी जो बहुत सराही गई। कविता में उक्त सम्मेलन की चर्चा की गई है:

श्री रमाकान्त जू के नितांत परिश्रम से आज दैव यह सुदिन दिखायो है।

हिन्दी संसार हू कि मरु–भूमि में भी हिन्दी साहित्य अंकुर जनायो है।

भारती और उषा में भी इनकी कुछ कवितायें प्रकाशित हुई थीं । हिन्दी पर लिखी हुई इनकी एक कविता आन्दोलन की पीठिका अध्याय में देखें। पं0 हरदत्त शर्मा द्वारा 'सत्संग गंगा'एक संग्रह भी प्रकाशित किया गया था जिसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में 26 हिन्दी रचनाएं हैं और दूसरे भाग में 15 इसी तरह एक और संकलन 'भगवत्पदी' के नाम से प्रकाशित हुआ।

प्रारम्भिक दौर की हिन्दी कविता का विश्लेषण करने पर एक बात साफ हो जाती है कि एक दो रचनाओं को छोड़ कर साहित्यिक उपलब्धि न के बराबर है। विषय के संदर्भ में इन रचनाओं को तीन प्रमुख धाराओं में बांटा जा सकता हैः

ईश भक्ति को समर्पित रचनाएं जिनमें अपने इष्ट देवताओं या दूसरे देवताओं का बखान मिलता है या फिर अध्यात्मवाद की ओर उन्मुख रचनाकार की अधकचरी रचनाएं दिखाई देतीं हैं। कश्मीर में रची गई प्रारम्भिक हिन्दी रचनाएं उदाहरण स्वरूप लीं जा सकतीं हैं।

दूसरी तरह की वे काव्य रचनाएं थीं जो केवल अपने प्रश्रयदाता की प्रशस्तियों पर आधारित थीं। ये रचनाकार या तो दरबारी कवि थे या अपने काल के राजाओं के चाटुकार। अतः उन्हीं का यशोगान गाने और उनकी प्रशस्तियां लिखने में ये कवि माहिर थे यही कारण है कि ग्रंथ कोई भी लिखा जाता पर उसका नाम तत्कालीन राजा की संज्ञा से जुड़ा होता चाहे वे भड्डू के कवि दत्त हों या जम्मू के कवि पं0 नीलकण्ठ । इन दोनों कवियों की रचनाओं को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

तीसरी कोटि में वे कवि आते हैं जो मात्र तुकबन्धी कर रहे थे। अक्सर तीर्थस्थानों पर जब यात्री पहुंचते थे तो पंडित लोग, बाद में जिसे पण्डे कहा जाने लगा, अपने यजमानों के स्वागत हेतु शब्दों की टेड़ी मेढी पंक्तियों को तुक में बान्ध कर स्वागत किया करते थे अतः इनकी भाषा में अनेक तरह के शब्द आ जाया करते थे–कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी आदि। अक्सर अपने यजमान की भाषा के कुछ शब्दों को सप्रयास वे उस तुक में बान्ध देते थे, यजमान को खुश रखने के लिए।इसी प्रकार उन्हें ईश भक्ति के रस में डुबाने के लिए भी मिली जुली भाषाओं में रचनाएं करते थे पर इन रचनाओं में मात्र तुकबन्धी ही हमें मिलती है पद काव्य सौष्ठव नहीं। कहीं कहीं कुछ प्रयास आगे जाकर अवश्य किए गए हैं पर वे इतने कम हैं कि उनकी गिनती न के बराबर है।

वस्तुतः इन कवियों की रचनाओं के जरिए परम्परा स्थापित होनी चाहिए थी पर

मजे की बात तो यह है कि इन रचनाओं में किहीं पर भी तत्कालीन चेतना का स्वर हमें नहीं मिलता, समसमायिक स्थितियों का ब्योरा नहीं मिलता, जनसाधारण की आवाज़ सुनाई नहीं देती। इस ओर प्रो0 सुभाष भारद्वाज ने भी संकेत किए हैं:

"उन सबकी रचनाओं में समसामयिक चिंतन और सृजन के कोई उल्लेखनीय चिन्ह हमें दिखाई नहीं पड़ते, लेकिन चालीस के दशक में हिन्दी कविता करवट लेने लगी थी और शायद जम्मू कश्मीर में यही दशक हिन्दी कविता के इतिहास का आधार भी बना।"

–शीरज़ा, जून 1982

हिन्दी के प्रचार और प्रसार में संलग्न संस्थाओं का योगदान

हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिए जम्मू और कश्मीर के दो प्रमुख नगरों, जम्मू और श्रीनगर में अनेक संस्थाएँ कार्यरत रहीं हैं जिन्होंने हिन्दी भाषा अथवा उसके साहित्य के प्रचार एवं प्रसार के लिए कार्य किया। ये संस्थायें दो तरह की थीं– एक तो वे जिनका मुख्य उद्देश्य ही हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए कार्य करना था और इसी एकसूत्री कार्यक्रम को लेकर से संस्थायें चलीं भी। दूसरे स्थान पर वे संस्थायें आतीं हैं जिनका मुख्य उद्देश्य कुछ और था–धर्म प्रचार या समाज सेवा लेकिन परोक्ष में इन संस्थाओं ने भी हिन्दी प्रचार और प्रसार में अपना योगदान दिया।

आजादी से पहले जम्मू में आर्य समाज, सनातम धर्म सभा तथा ब्राह्मण सभा मुख्य रूप से तीन ऐसी संस्थायें थीं जिन्होंने समय समय पर हिन्दी के आन्दोलन में अपना योगदान दिया। आर्य समाज की भूमिका इस ओर सराहनीय रही। आर्य समाज की ही एक शाखा चालीस के आसपास 'बाला समाज' के रूप में उभरकर सामने आई जिसमें आर्य कन्या पाठशाला की लड़कियों ने खूब बढ़चढ़ कर साहित्यक गोष्ठियों और हिन्दी आन्दोलन में भाग लिया। बाला समाज की सदस्याओं के लिए एक अनुशासन की रेखा निर्धारित कर दी गई थी कि वे समाज सुधार और देश प्रेम की ही रचनाएँ लिखेंगी। इस संस्था की मासिक गोष्ठियां आर्य समाज, पुरानी मंडी हाल, में होतीं रहीं हैं। बाद में यही महिलायें हिन्दी साहित्य मंडल से भी जुड़ीं। इसका विवरण आगे दिया गया है। सनातन धर्म सभा और ब्राह्मण सभा की जितनी भी कार्यवाही होती थी वह सब हिन्दी में ही की जाती। इस संस्थाओं की विवरणिकायें भी हिन्दी में ही प्रकाशित की जातीं थी ।

हिन्दी लेखन, प्रचार और प्रसार के लिए कटिबद्ध तीन संस्थाएँ उन दिनों जम्मू में कार्यरत थीं।ये संस्थायें थीं हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी प्रचारिणी सभा, जम्मू और

हिन्दी साहित्य मंडल।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ,अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पंजाब शाखा, उन दिनों जम्मू में भी सक्रिय थी और इसी शाखा के सह मंत्री श्री संतराम 'विचित्र' के प्रोत्साहन से श्री बंसी लाल सूरी ने 'वसुद्या' पत्रिका का प्रकाशन जम्मू से आरम्भ किया। श्री विचित्र इसके पहले क्रान्ति, हिन्दी मिलाप आदि हिन्दी समाचार पत्रों में कार्य कर चुके थे अतः इस क्षेत्र में उनका पर्याप्त अनुभव था। इस संस्था के साथ जुड़ा दूसरा व्यक्तित्व पं0 हरमुकुन्द शास्त्री जी का था। शास्त्री जी अनन्य हिन्दी प्रेमी थे और हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए वे सदा कटिबद्ध रहते। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ साथ नागरी प्रचारिणी सभा ,काशी के साथ भी जुड़े हुए थे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ एक और नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है वह है पं0 रमाकान्त शास्त्री भारद्वाज का जिनके सहयोग और परिश्रम से 1933 में दीवान मन्दिर जम्मू के परिसर में एक वृहद् हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हिन्दी सम्मेलन की पंजाब शाखा के सहयोग से सम्भव हो सका। इस कार्यक्रम के दो उद्देश्य थे एक यह कि जन साधारण को सरकार द्वारा हिन्दी के लिए सौतेले व्यवहार के बारे में अवगत करवाना और हिन्दी के लेखकों को कवियों को समाज में प्रतिष्ठापित करना। इस अवसर पर 'वसुधा' के प्रवेशांक को भी विमोचित किया गया। हिन्दी सहित्य सम्मेलन की इस शाखा से जम्मू के लगभग सभी हिन्दी प्रेमी और साहित्यकार जुड़े हुए थे।

दूसरी मुख्य संस्था जो उन दिनों हिन्दी आन्दोलन में अपनी मुख्य भूमिका निभा रही थी वह थी हिन्दी प्रचारिणी सभा जो राजनैतिक हलकों में हिन्दी के वजूद के लिए संघर्ष कर रही थी। इस संस्था का संगठन 1936 में किया गया जबकि हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए स्थितियां बहुत गंभीर थीं। एक ओर तो सरकारी तौर पर इसे मान्यता प्राप्त नहीं थी तो दूसरी ओर सामाजिक दीर्घाओं में भी इसे हेय दृष्टि से देखा जाता। इसे जनाना भाषा की संज्ञा दी जाती ओर केवल लड़कियों के पढ़ने तक ही इसे सीमित कर दिया गया था। ऐसी स्थिति में इस संस्था को दोतरफा लड़ाई लड़नी थी– एक तो सरकारी हल्कों में राजनैतिक स्तर पर इसकी मान्यता तथा शिक्षा विभाग में अन्य विषयों के माध्यम के रूप में स्थापित करने की लड़ाई और सामाजिक दीर्घाओं में इसे स्थापित करने का संघर्ष । इसके प्रथम प्रधान लाला गुरदास राम थे और मंत्री श्री बंसी लाल सूरी। अन्य सक्रिय सदस्यों में श्री धर्मचंद प्रशांत, सुश्री शांता भारती, पं0 रमाकान्त शास्त्री भारद्वाज, पं0 भाग मल्ल शर्मा, पं0 हरदत्त आदि हिन्दी प्रेमी इस कार्य में अपना पूरा सहयोग दे रहे थे। इस आंदोलन ने इतना प्रखर रूप धारण कर लिया कि देवनागरी लिपि को इतिहास, भूगोल आदि पुस्तकों के लिए सरकार को अपनी स्वीकृती देनी पड़ी लेकिन नेशनल कांफ्रेस के सदस्य यह कदापि नहीं चाहते थे चुनाचे उन्होंने एसेंबली से

इस्तीफा दे दिया जिसके फलस्वरूप जम्मू से नेशनल कान्फ्रेस के सदस्यों ने, विरोध में, नेशनल कान्फ्रेस पार्टी से ही इस्तीफा दे दिया।इनमें प्रमुख थे श्री बंसी लाल सूरी जिन्हें शेख साहब की मंत्री परिषद में मंत्री बनाए जाने के संकेत मिल चुके थे लेकिन व्यक्तिगत लाभ को उन्होंने हिन्दी के लिए न्यौछावर कर दिया। इसकी चर्चा उन दिनों अनेक पत्र और पत्रिकाओं में हुई जिनमें चांद और गुलाब मुख्य हैं। इस आंदोलन को लेकर दीपक और भारती नामक पत्र और पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुया। 'दीपक' 1939 में और 'भारती' 1940 में प्रकाशित होना शुरू हुई। इसके पहले 'वसुधा' प्रकाशितृ होना शुरू हो चुकी थी। तत्कालीन रियासत के प्रधान मंत्री श्री आयंगर, जो मद्रासी थे, ने इस आंदोलन को सहानुभूतिपूर्व लिया और शिक्षा प्रणाली में कई सुधारों के निर्देश शिक्षा विभाग को दिए। शिक्षा निर्देशक श्री सैद्दान ने 'वर्धा स्कीम' के अंतर्गत स्थानीय शिक्षा विभाग की भाषा पर पालिसी में अनेक सुधार किए जिनकी चर्चा उन दिनों प्रिंस आफ वेल्स कालेज, वर्तमान जी.जी.एम. कालेज, के 'कनवोकेशन' के भाषण में उन्होंने की। यह संस्था 1947 तक सजीव रही बाद में विभाजन की विभीषिका की ताक न लगा सकी।

1942 में हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि और प्रसार के लिए इस प्रदेश की शीर्षस्थ संस्था हिन्दी साहित्य मंडल के रूप में स्थापित हुई। हिन्दी साहित्य मंडल की स्थापना में सर्वश्री राम नाथ शास्त्री, धर्मचंद प्रशांत, श्याम लाल शर्मा, नारायण मिश्र एवं जी.एन. कौशिक का सक्रिय योगदान रहा। श्री बंसी लाल सूरी, दीनू भाई पंत तथा महिलाओं में सुश्री शंकुतला सेठ,श्रीमती राज भल्ला, सुशीला तुली, श्रीमती कृष्णा गुप्ता, श्रीमती शांति गुप्ता, प्रो0 शक्ति शर्मा आदि का भी योगदान इस संस्था के प्रसार के लिए भुलाया नहीं जा सकता। इस संस्था का अपना एक स्मृद्ध पुस्तकालय था जिसमें इसके सदस्यों द्वारा भेंट दी गई 1500 के करीब पुस्तकें थीं। सहित्यिक गोष्ठियों के इलावा कवि सम्मेलनों और लेखक शिवरों का भी आयोजन किया जाता था। गोष्ठियों में अक्सर कविता लिखने के लिए विषय दिया जाता था, शीर्षक दिया जाता था, जिसे केन्द्र मानकर कवि अपनी रचना लिखते और अगली गोष्ठी में उन पर जमकर बहस होती। मंडल की अन्य गतिविध्ियों में हिन्दी की रत्न, भूषण और प्रभाकर की निःशुल्क कक्षाओं का आयोजन करना था। इन कक्षाओं का आयोजन डी0ए0वी0 स्कूल जम्मू में किया जाता और संयोजक थे श्री जीवानन्द शास्त्री। मंडल के प्रथम प्रधान थे श्री तेज राम खजूरिया। 1946 के अंत तक यह संस्था सक्रिय रही पर बाद में प्रादेशिक भाषाओं के मोह ने बहुत से रचनाकारों को सद्यानिर्मित डोगरी संस्था की ओर उन्मुख किया। इस प्रकार यह संस्था विभाजन से पहले ही अपनी नियति को पंहुची। लगभग अठारह वर्ष तक यह संस्था सुप्त पड़ी रही जब एक बार फिर से इसके उत्थान की बात सोची गई चुनाचे श्री धर्म चंद प्रशांत के सतत् प्रयासों से एक बार फिर इसने करवट ली और 1962 में प्रो0 राम नाथ शास्त्री प्रधान

और प्रो0 सुभाष भारद्वाज इसके मंत्री नियुक्त हुए और सहमंत्री के तौर पर वेदराही कार्य करने लगे। वाद में श्री धर्मचंद प्रशांत उपप्रधान चुने गए और मंत्री का पद संभाला श्री देवरत्न शास्त्री ने। इस तरह इसकी ठंडी मीठी गतिविधियां चलती रहीं।

मंडल की सबसे बड़ी सार्थकता इसमें थी कि संस्था के साथ साहित्यकारों का एक कारवां जुड़ा था और देश के प्रकाण्ड विद्वान इसकी गोष्ठियों में भाग लेने में गौरव पाते थे। इसी संस्था की एक शाखा महिला मंडल भी थी जिसमें प्रतिष्ठित लेखिकायें और छात्राएं भी भाग लेतीं थी। अनेक सदस्याएं बाद में प्रतिष्ठित कवियित्रियों के रूप में स्थापित हुईं। सुश्री शकुंतला सेठ, श्रीमती कृष्णा गुप्ता, श्रीमती शांति गुप्ता उदाहरण स्वरूप ली जा सकतीं हैं।

उपर्युक्त संस्थाओं के इलावा कुछ सरकारी संस्थानों का इस क्षेत्र में योगदान भुलाया नहीं जा सकता। रणवीर संस्कृत शोध पुस्तकालय, रघुनाथ मंदिर, जम्मू महाराजा रणवीर सिंह द्वारा स्थापित किया गया था और प्रारम्भ में इसका कार्यक्षेत्र संस्कृत की दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संग्रहण और पुनः लेखन था पर बाद में बहुत सी पाण्डुलिपियों को हिन्दी में रूपान्तरित करके इन पर टीकाएं लिखी गईं। शुरु शुरु में इस संस्थान का कार्यलय समाधियां नामक स्थान पर था पर बाद में इसे श्री रघुनाथ मंदिर के परिसर में स्थानांतरित कर दिया गया। वर्तमान में जम्मू कश्मीर धमार्थ इस संस्थान का संचालन कर रहा है। इस पुस्तकालय में हजारों दुर्लभ ग्रंथ संग्रहित हैं। और सैंकड़ों पाण्डुलिपियां, ग्रंथ और उनकी टीकाएं हिन्दी में संयोजित हैं। इनकी सूची इतनी बड़ी है कि यहां नहीं दी जा सकती इसके साथ ही संस्थान की ओर से अनेक पुस्तकों का हिन्दी में प्रकाशन भी हुआ है। ज्योतिष, वैधक, खगोलशास्त्र, तंत्र विद्या और धार्मिक ग्रंथ तथा पाण्डुलिपियां इन विषयों पर संग्रहित हैं। महाराजा रणवीर सिंह के समय तथा उनके बाद भी जम्मू कश्मीर के प्रकान्ड विद्वानों का एक कारवां इस ज्ञान के असीमित भण्डार के संग्रहण एवं टीका करने में संलग्न था।

कश्मीर में भी विभिन्न संस्थानों द्वारा दुर्लभ पाण्डुलिपियों और ग्रंथो का संग्रहण एवं उनकी टीका करने का कार्य होता रहा है। इस क्षेत्र में अनेक स्वयंसेवी संस्थायें कार्यरत रहीं है

श्रीराम शैव त्रिक आश्रमः अपनी तरह का कश्मीर में अकेला ही संस्थान रहा है जहां अध्यात्मक स्तर पर शैव मत के अनुयाइयों का मिलना होता रहा है। इस आश्रम की स्थापना 1894 में स्वामी रामजी महाराज द्वारा फतेहकदल में की गई। इस आश्रम का खर्चा सदस्यों द्वारा और अनुदान द्वारा पूरा होता था। इस आश्रम द्वारा लगभग दस संस्कृत ग्रंथों की टीका और उनका हिन्दी अनुवाद करके उन्हें प्रकाशित किया गया। इसी

प्रकार **ईश्वर शैव आश्रम, स्वामी विद्‌याधर शैव आश्रम, श्री अलकेश्वरी साहिबा ट्रस्ट** आदि ऐसे संस्थान स्वतंत्रता से पहले कश्मीर में कार्यरत रहे हैं जो प्रत्यक्ष तौर पर तो धार्मिक और अध्यात्मक प्रसार और शिक्षा आदि में संलग्न थे लेकिन इन सस्थानों का यह मुख्य उद्‌देश्य होने के बावजूद उक्त संप्रदाय के दर्शन पर लिखी गईं सस्कृत पुस्तकों की टीका और अनुवाद कर इन्होंने हिन्दी के लिए परोक्ष रूप में कार्य किया है। इसी प्रकार **आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, जीवन सुधार सभा** आदि संस्थाओं का कार्य भी हिन्दी में ही किया जाता रहा है। इन संस्थाओं का स्थापना काल सन् 1900 ई0 से सन् 1920 तक माना जा सकता है। श्रीनगर में कुछ और भी संस्थाएँ इस ओर कार्यरत थीं जो अपने उद्‌देश्य के साथ साथ हिन्दी के प्रचार में भी संलग्न थीं। **महावीर दल** 1942 में स्थापित हुआ जो युवाओं के उत्थान के साथ साथ 'महावीर' पत्रिका के माध्यम से हिन्दी के प्रचार और प्रसार में भी लगा हुआ था। खेद की बात है कि आज इसका एक भी अंक उपलब्ध नहीं है।

1936 के आसपास श्रीनगर में कुछ उत्साही हिन्दी प्रमियों ने **'हिन्दी परिषद'** नामक संस्था स्थापित की। इस संस्था के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में सर्वश्री पृथ्वी नाथ पुष्प, पं0 दुर्गा प्रसाद काचरू, नंद लाल चौधरी, कैलास नाथ कौल, शाम सुन्दर भान आदि थे। इसके प्रथम प्रधान थे श्री अमर नाथ काक। इस संस्था द्वारा एक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन का निश्चय किया गया जिसका प्रथम अंक 'चंद्रोदय' के नाम से सन् 1939 में सामने आया। इस अंक का पूरा ब्योरा अन्यत्र दिया जा रहा है। इस अंक के सम्पादक थे श्री पृथ्वी नाथ पुष्प और श्री दीना नाथ 'दीन'। इस पत्र के कुछेक अंक ही निकल पाए।

हिन्दी पाठन और शिक्षा के लिए **हिन्दी प्रचारिणी सभा,** श्रीनगर की स्थापना 1940 के आस पास मानी जाती है। इसका मुख्य उद्‌देश्य था हिन्दी भाषा का प्रचार और प्रसार। अक्सर इसके सदस्य हिन्दी न जानने वालों को हिन्दी सीखने के लिए प्रोत्साहित करते और समय निकालकर उन्हें हिन्दी लिखना पढ़ना सिखाते । इस संस्था के साथ सर्वश्री श्रीधर कौल, अमर नाथ वैश्नवी और एम0एल0ए0 अक्सर जुड़े थे पर यह संस्था दस वर्ष तक ठण्डा मीठा चलते हुए बाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ मिलकर कार्य करने लगी।

श्रीनगर में एक और सस्था **'समाज सुधार समिति'** कार्यरत थी जिसकी हिन्दी के क्षेत्र में एकमात्र उपलब्धि 'ज्योति' का प्रकाशन थी। इसी प्रकार **हिन्दी संस्कृत साहित्य मंडल** हिन्दी की गतिविधियों के लिए कार्यरत था जिसके साथ अनेक हिन्दी और संस्कृत के विद्वान जुड़े हुए थे।

इनमें से कई संस्थाएं धीरे धीरे अन्धेरे में डूब गई पर ऐसी भी कुछेक संस्थाएं हैं जिन्होंने अपने अस्तित्व को घोर कठिनाइयों में भी बचाए रखा।

हिन्दी आंदोलन की पीठिकाः

जम्मू कश्मीर में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए जम्मू में अनेक आन्दोलन हुए। प्रारम्भ व मध्य काल में रियासत की सरकारी भाषा संस्कृत रही है पर बाद में अनेक उथल–पुथल के कारण यह पर्शियन में बदल गई। पर डोगरा काल में, विशेषतया महाराजा रणवीर सिंह के राज्यकाल के समय, अदालती कार्यवाही डोगरी में होती रही साथ ही फारसी लिपि का भी उपयोग होता रहा। बीच में कैसे केवल फारसी लिपि में ही अदालती कार्यवाही होने लगी कोई पता नहीं जहां तक कि पाठ्य पुस्तकें केवल फारसी लिपि में ही उपलब्ध होने लगीं। ऐसी स्थिति होने पर जम्मू में आम धारणा ने घर कर लिया कि हमें गुलाम बनाया जा रहा है। मजे की बात जो यह है कि जनमानस के श्रद्धायुक्त ईश्वरीय प्रतीकों के साथ उर्दू के 'जनाब' और 'जनाबा' के शब्दों ने अनेक कठिनाइयाँ पैदा कर दीं। मसलन श्रीराम और श्री कृष्ण को जनाब राम और जनाब कृष्ण की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा चूंकिं उर्दू में 'श्री' नाम का कोई शब्द नहीं था। ये शब्द हिन्दू मानसिकता के समाज को अप्रिय लगे अतः देवनागरी लिपि को अपनाने के लिए जोर दिया जाने लगा। अक्सर यह धारणा समाज में फैलाई जा रही थी कि हिन्दी लड़कियों की भाषा है। दूसरी ओर एक और गलतफहमी राजनैतिक धरातल पर उभर रही थी कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है और हिन्दी हिन्दुओं की। यह विवाद महाराजा हरिसिंह के राज्यकाल में स्पष्ट तौर पर उभरकर सामने आया जब वर्धा शिक्षा प्रणाली की पच्चीस वर्षीय 'सबको शिक्षा' की योजना तैयार हो रही थी उस समय जम्मू कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर एन0 गोपालास्वामी आंयगर ने जम्मू कश्मीर प्रदेश को सर्वप्रथम श्रेय देने के लिए इस प्रणाली को लागू करना चाहा अतः उन्होंने डा0 जाकिर हुसैन, जो कि उस समय जामिया मिलिया के सर्वेसर्वा थे, और वर्धा शिक्षा कमेटी के प्रधान भी थे, को कश्मीर में आने का निमंत्रण भेजा। उन्होंने डा0 जाकिर हुसैन को रियासत के शिक्षा निर्देशक या परामर्शदाता की पदवी को स्वीकार करने की प्रार्थना की जिसे डा0 जाकिर हुसैन ने व्यस्त होने के कारण अस्वीकार कर दिया अलबत्ता उन्होंने श्री के.जी. सैद्दान, जो कि वर्धा शिक्षा कमेटी के सचिव थे को प्रेरित किया कि वे जम्मू–कश्मीर शिक्षा विभाग के निदेशक पद को ग्रहण करें और साथ ही अपनी सेवाओं को उक्त शिक्षा विभाग में एक सदस्य की हैसीयत से अर्पित करने का विश्वास दिलाया चुनाचे जम्मू कश्मीर सरकार ने श्री के.जी.सैद्दान के संयोजन में एक कमेटी स्थापित की जिसके सदस्यों में डा0 ज़ाकिर हुसैन, रेवरेंड एरिक टिन्डेल बिसको, काजी मुहम्मद इशाक, श्री आर.सी. मेंहदीरत्ता और श्री एम.एल.किलम थे। इस कमेटी ने 1939 में अपनी रिपोर्ट पेश की।

इस रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए सरकार ने एक आदेश जारी किया :

"शिक्षा का माध्यम सहज होना चाहिए, सहज उर्दू। लेकिन लिखने और पढ़ने के लिए देवनागरी अथवा फारसी लिपि का प्रयोग किया जाना चाहिए। पुस्तकों का मसौदा सहज होना चाहिए प्रत्येक विषय में, लेकिन यह मसौदा दोनों लिपियों अर्थात उर्दू और देवनागरी में हो। विद्यार्थियों को पूर्ण स्वतंत्रता हो कि वे देवनागरी अथवा उर्दू में लिखे अथवा पढ़ें। अध्यापक जो स्कूलों में कार्यरत हैं, एक निश्चित विद्यार्थी संख्या को शिक्षा देने के लिए, उन्हें चाहिए कि वे दोनों लिपियों– देवनागरी और फारसी को जानें। स्कूलों में उपस्थित विद्यार्थियों में कम से कम 15 प्रतिशत इस शिक्षा के लिए होने चाहिए। जो अध्यापक दोनों लिपियों को नहीं जानते उन्हें एक वर्ष की अवधि में न केवल उन्हें सीखना होगा अपितु अपने कार्य से अधिकारियों को संतुष्ट करना होगा। भविष्य में कोई भी अध यापक इस दिशा में तब तक कार्यरत नहीं होगा जब तक वह दोनों भाषाओं को नहीं जानता हो। उसे इन लिपियों में लिखना और पढ़ना आता हो"।

विवादः नेशनल कान्फ्रेस के सदस्यों को वर्धा स्कीम का यह निर्णय बड़ा कटु लगा अतः उन्होंने इसका विरोध करना शुरू किया। परिणाम स्वरूप प्रदेश की विधान सभा में इस विषय पर खूब गर्मा–गर्म बहस हुई। सरकार ने वर्धा शिक्षा प्रणाली के सन्दर्भ से इसे उचित ठहराते हुए इसकी अनिवार्यता पर जोर दिया। इस प्रणाली के अंतर्गत डा0 जाकिर हुसैन की देख रेख में पुस्तकों का प्रकाशन शुरु किया गया।

इस आदेश को वापिस लेने से सरकार के इन्कार पर नेशनल कान्फ्रेंस के आठ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया जिसे स्वीकार कर लिया गया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप नेशनल कान्फ्रेंस के आधार सदस्य श्री प्रेमनाथ वज़ाज ने नेशनल कांफ्रैंस से इस्तीफा दे दिया और उन्हीं के अनुरूप जम्मू प्रदेश के नेशनल कान्फ्रेंस के प्रधान श्री बंसी लाल सूरी ने भी इस संस्था से कन्नी काट ली। यह एक बहुत बड़ी घटना थी कि धर्मनिरपेक्ष कहलाने वाली यह रातनैतिक संस्था दो हिस्सों में बट गई। मुस्लिम सदस्यों ने वर्धा शिक्षा प्रणाली के विरोध में विधान सभा से इस्तीफा दे दिया तो हिन्दू सदस्यों ने इस संस्था से ही कन्नी काट ली क्योंकि यह संस्था हिन्दी विरोधी थी।

इस घटना का जम्मू के बुद्धिजीवी वर्ग पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा। तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं में इस विषय पर सम्पादकीय छापे गए और कई अखबारों तथा पत्रिकाओं ने इस विषय पर विशेषांक निकाले। जम्मू से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'भारती' तो इस आंन्दोलन का आधार थी। मई 1941 के अंक में भारती का सम्पादकीय इस ओर संकेत करता हैः– "कश्मीर गवर्नमेंट ने जब से स्कूलों में देवनागरी लिपि को उर्दू के समान दर्जा दिया है तब से हमारे मुस्लमान भाई इस आर्डर का लगातार विरोध कर रहे हैं और

गर्वनमेंट कश्मीर को यह आर्डर वापिस लेने के लिए जोर दे रहे हैं। हालांकि इस प्रश्न पर काफी वाद–विवाद हो चुका है।" 'कश्मीर टाइम्ज' में 3 मई 1941 में छपे एक लेख में पं0 बलदेव प्रसाद शर्मा ने देवनागरी लिपि को लेकर काफी रोशनी डाली थी। वस्तुतः यह लेख उर्दू –देवनागरी के विवाद को दूर करने का आधार तलाश रहा था। 1941 में हुए प्रजा सभा के एक अधिवेशन में तो चौ. हमीद–उल्ला, जोकि प्रजा सभा के सदस्य थे, ने इस लिपि सम्बन्धी आर्डर का विरोध करते हुए अपने भाषण में यहां तक कह दिया था कि "गवर्नमेंट को इस बात का हक हासिल न था कि माहरान तालीम की राय के खिलाफ ऐसे हकाम जारी करती। इसलिए गवर्नमेंट को अपनी गलती स्वीकार करते हुए, यह आर्डर वापिस ले लेना चाहिए, वरना इससे जो हालात पैदा होंगे उस की जिम्मेदार गवर्नमेंट होगी।" चौधरी हमीद उल्ला के इस भाषण का स्टीक उत्तर पंडित अमरनाथ काक, जो कि कश्मीर असेम्बली में हिन्दी प्रेसीडेंट थे, ने बहुत नम्रता और शान्ति के साथ दिया। उन्होंने चौदरी साहब के हर सवाल का भी बहुत दयानतदारी और ईमानदारी से उत्तर दिया कि इन सदस्यों को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था पर फिरकापरस्ती पर आमादा कुछ सदस्य विरोध करते रहे। हिन्दी प्रचार एवं प्रसार में लगे हुए हिन्दी प्रेमियों के लिए सुखद बात तो यह थी कि जम्मू से निकलने वाले अंग्रेजी और उर्दू पत्र देवनागरी के प्रति अपनी आस्था रखे हुए थे। उन दिनों प्रकाशित होने वाले चर्चित साप्ताहिक उर्दू पत्र 'चांद' ने अपने 29 अप्रैल 1941 के शुमारे में लिखा :

"जब हम अंग्रेजी गैरमुल्क की जवान और लिपि के अपनाने से अंग्रेजो के नजदीक आने में अपना फख़्र महसूस करते हैं तो अपने मुल्क की एक ज़वान और लिपि को सीखने से क्यों एतराज़ करें।"

इसी प्रकार हिन्दी को रियासत की भाषा बनाए जाने के लिए भारती में मई 1941 पृ.28 पर पं0 हरिश्चन्द्र विद्यार्थी का एक लेख प्रकाशित किया गया जिसमें विद्वान लेखक ने जम्मू कश्मीर में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों के विश्लेषण से हिन्दी को यथोचित स्थान दिए जाने की बात कही गई थी।

शंकर शर्मा पिपासु द्वारा कृत उनके काव्य संकलन 'दो चान्द' की भूमिका लिखते हुए प्रो0 रामनाथ शास्त्री ने भी इस आंन्दोलन की ओर संकेत किए हैं:–

"जम्मू में भी हिन्दी के लिए दो मुहाजों पर संघर्ष चल रहा था। एक संघर्ष था हिन्दी को रियासत की शिक्षा व्यवस्था में तथा प्रशासन में उस का उचित स्थान दिलाना। उस समय रियासत में सामन्ती शासन था और प्रशासन में अंग्रेजों के साथ साथ उर्दू को सरकारी भाषा की मान्यता प्राप्त थी। सरकारी अधिकारियों के पास तथा कचहरियों आदि में हिन्दी में लिखे प्रार्थना–पत्र तक भी स्वीकार नहीं किए जाते थे। स्कूलों में हिन्दी एक

स्वतन्त्र विषय के रूप में तो पढ़ी पढ़ाई जाती थी लेकिन इतिहास गणित आदि के लिए उसे माध्यम नहीं माना गया था। इन दोनों स्तरों पर हिन्दी को भी उसका उचित स्थान दिया जाए उस के लिए एक हल्का सा आन्दोलन चल रहा था। 'भारती' नाम का हिन्दी मासिक पत्र इस आन्दोलन का मुख पत्र समझा जाता था।"

यद्यपि प्रो0 राम नाथ शास्त्री ने सहज रूप से ही इस आंदोलन को लिया है और 'हल्का सा' की संज्ञा दी है पर यह समझा जा सकता है कि जिस आंन्दोलन के कारण नेशनल कान्फ्रेंस में दरार पड़ गई थी और जम्मू के मुख्य पत्र–पत्रिकाओं में जिसके बारे में चर्चा हुई वह आन्दोलन हल्का सा नहीं कहा जा सकता। इस आंदोलन के साथ पूरा बाला समाज जुड़ा था जिसमे सुश्री शान्ता भारती, सुश्री सुशीला तुली, श्रीमती राज भल्ला, श्रीमती कृष्णा गुप्ता आदि कार्यरत थीं। श्री बंसी लाल सूरी, श्री धर्मचंद प्रशांत, पं0 बलदेव प्रसाद, पं0 भागमल्ल, पं0 रमाकान्त शास्त्री, पं0 हरदत्त शर्मा और स्वयं प्रो0 रामनाथ शास्त्री भी इस आंदोलन के साथ जुड़े थे।

इस आंदोलन की पीठिका में सन् 1933 में जम्मू में आयोजित पंजाब प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन समारोह की भूमिका निश्चित ही आन्दोलन का आधार बनी थी। इस आंन्दोलन के आयोजन में स्व0 बंसी लाल सूरी और स्व0 पं0 रमाकान्त शास्त्री का मुख्य हाथ था। यहीं पर दीवान मंन्दिर के प्राङण में स्व0 बंसी लाल सूरी द्वारा सम्पादित 'वसुधा' का प्रथम अंक का विमोचन भी किया गया और विद्वतजनों को यह पत्रिका निःशुल्क दी गई। 'वसुधा' के प्रथम अंक के सम्पादकीय में भी हिन्दी को उचित स्थान दिलाए जाने की मांग को लेकर उठे आंन्दोलन के संकेत मिलते हैं–

"दुःख से कहना पड़ता है कि कुछेक मुसलमान भाईयों को हिन्दी की उन्नति फूटी आंख नहीं भाई और उन्होंने इस प्रश्न को साम्प्रदायिकता का जामा पहना दिया है। यदि पंजाब के मुसलमान, यू.पी. के कतिपय हिन्दी प्रेमी मुसलमान महानुभावों का अनुकरण करें तो निश्चय ही हिन्दी उन्नति कर सकती है।"

भारती के अंक 4 अर्थात मई 1941 के अंक में पं0 हरदत्त शर्मा द्वारा रचित कविता की पंक्तियां भी इस ओर संकेत करती हैं–

सभी लोग जाने यह अकबर के जमाने,
शाही फरमान पर हिन्दी लिखी जाती थी,
कवि रसखान और रहीम खान खाना की
सुलेखनी प्रेम से हिन्दी के गीत गाती थी।
उर्दू व फारसी थी हिन्दुओं की प्यारी और–
हिन्दी इसलाम मे समान मान पाती थी।

इस प्रकार की रचनाओं को अकसर उस समय प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में देखा जा सकता है। हिन्दी उर्दू की इस तल्खी को जम्मू कश्मीर राज्य के शिक्षा विभाग में कार्यरत निदेशक श्री सैद्दान साहब ने बड़ी शिद्दत के साथ महसूस किया विशेषकर देवनागरी लिपि को लेकर मुसलमानों के एक वर्ग द्वारा उठाए गए एतराज को इंगित करते हुए, उन्होंने 'प्रिंस आफ वेल्ज कालेज' की कन्वोकेशन को, सभापति होने के नाते, मुखातिब होते हुए एक ऐतिहासिक भाषण दिया था जिसके अंश उद्धृत किए जा रहे हैं:"

........................भाषा के विषय में दो तीन बातें इस कदर साफ और सच्ची हैं कि अगर लोग इनको समझ लें तो बहुत से झगड़े मिट जाएं– पहली बात तो यह है कि भाषा का अपना कोई धर्म नहीं होता। मिस्र में लाखों ईसाई अरबी बोलते हैं। लेकिन वे इसे मुसलमानों की नहीं अपनी भाषा समझते हैं। अलवानिया और चीन में लाखों मुसलमान वहां की जवान बोलते हैं परन्तु वह यह नहीं समझते कि यह केवल चीनियों की जुबान है, हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है, ये निर्मूल बाते हैं। जुबान उस पुरूष की होती है जो उसे बोले और ईश्वर का शुक्र है कि जुबान की कहानी में पूंजीवाद का सिक्का नहीं चलता। जिस जुबान में उत्तरी भारत के करोड़ों हिन्दू मुसलमान प्रतिदिन बातचीत करें उसको सिर्फ हिन्दुओं की या मुसलमानों की ज़बान करार देना कोमी मेलजोल के रास्ते में रूकावट डालना है।" यह भाषण 1941 की कन्वोकेशन में दिया गया और अपने आप में पूरी व्याख्या करता है। काफी सीमा तक यह आंन्दालेन अपने ध्येय में सफल रहा परन्तु बाद में, देवनागरी लिपि में जो पुस्तकें सामने आईं वे केवल उर्दू में लिखी गई पुस्तकों का लिप्यन्तरण मात्र थीं। यही कारण था कि एक और विवाद उठ खड़ा हुआ। उर्दू में लिखे गए सम्मान सूचक शब्द ज्यों के त्यों हिन्दी में लिखे जाते थे मसलन 'जनाबा सीता' या 'जनाब राम' को देवनगरी में ज्यों का त्यों लिखा गया था परिणाम लगभग शून्य ही रहे जब तक कि एन.सी.आर.टी. की पुस्तकों का प्रचलन, बहुत बाद में, शुरू नहीं किया गया। हिन्दी आंदोलन की बात को सम्पन्न करने से पहले हिन्दी देवनागरी के लिए स्वीकृत अनेक पुस्तकों एंव आदेशों को कार्यान्वित करने की बात आवश्यक हो जाती है। इस ओर जम्मू कश्मीर राज्य के अंतिम डोगरा महाराजा, हरिसिंह का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने आम पब्लिक के नुमायदों की जमात को कोई उर्दू अथवा अंग्रेजी की संज्ञा न देकर 'प्रजा परिषद' की संज्ञा से अभिहित किया। और एक आदेशानुसार राज्य के कार्य करने और महाराजा को सहयोग देने के लिए मंत्रीमंडल, मंत्री तथा प्रधानमंत्री की संज्ञाओं को हिन्दी में बदलकर हिन्दी प्रेम का परिचय दिया।

आदेश इस तरह है:–

5 अक्तूबर,1934, श्री युत् महामहिम महाराजा हरिसिंह के आदेश क्रमांक 99 के

अनुसारः

भविष्य में निम्नलिखित पदों को इस तरह पुकारा जाएगा :

अग्जेटिव कौंसिल—   अमात्य मंडल

पराईम मिनिस्टर —   प्रधान अमात्य

मिनिस्टर   —   अमात्य

इन का प्रयोग उक्त पद के दावेदार के आगे अथवा पीछे लगेगा।

हस्ताक्षर
महाराजा हरिसिंह

इस ओर श्री भागमल्ल द्वारा प्रकाशित 'दीपक' पत्र के प्रथम अंक के सम्पादकीय में भी संकेत दिए गए है : "हमारे महाराजा बहादुर श्री महाराजा हरिसिंह जी ने हिन्दी प्रेम का परिचय देते हुए अपने राज्यभिषेक के मंगल अवसर पर एक हिन्दी मुराश्रला नवीस की नियुक्ति की इनके शासनकाल में स्कूल पाठशालाओं में भी हिन्दी का विशेष आदर हो रहा है।"

हिन्दी और देवनागरी की जब बात अपने चरम पर थी तो "उषा" के माध्यम से भी इस समस्या को लेकर कुछेक राष्ट्रीय स्तर के लेखकों के लेख प्रकाशित किए गए। इसी सन्दर्भ में दिसम्बर, 1943 के अंक में पृष्ठ 37 पर तत्कालीन प्रसिद्ध एवं चर्चित विद्वान श्री संतराम बी.ए. का लेख 'राष्ट्र भाषा का प्रश्न' प्रकाशित है। इस लेख में विद्वान लेखक ने हिन्दी को अनिवार्य तौर पर राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने की बात कही है। श्री सन्त राम के अनुसार हिन्दी को इसलिए पछाड़ा जा रहा है कि कुछेक फिरकों को खुश किया जा सके बावजूद इसके कि हिन्दी की बोलियां और उपबोलियां भारत वर्ष में, विशेषकर उत्तर भारत में , किसी न किसी रूप में बोली जाती हैं। उन्होंने तो मात्र देवनागरी लिपि को अंगिकार करने तक की प्रकृति पर आक्षेप किए हैं कि केवल लिपि को अपनाने से भाषा को नहीं अपनाया जा सकता भाषा को तो उसकी आत्मा के साथ ही अपनाया जा सकता है।

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी पत्रकारिता

संधिकाल बेला और हिन्दी कविता:

यद्यपि कविता लेखन इस प्रदेश में बहुत पहले ही अपने सोपान स्थापित कर चुका था पर कविता वस्तुतः भक्ति संगीत, प्रश्रयदाताओं की प्रशस्तियां गानें और तुकबंदी तक ही सीमित थी। प्रयास से भी इन स्थितियों से कवि निकल नहीं पाया था। चालीस के दशक में कवियों का एक कारवाँ तैयार हो चुका था जो परम्परा और आधुनिकता की दहलीज पर खड़ा था। सौन्दर्योन्मुखी, नितान्त वैयक्तिक और प्रेयसी के मखमूरी जिस्म की गरिमा को सहलाते ये कवि एक ओर तो छायावादी मानसिकता सें ग्रस्त थे और दूसरी ओर प्रगतिशीलता के स्वरों को भी पकड़ने का प्रयास कर रहे थे। प्रकृति, व्यक्ति के प्रति आतुरता और सौन्दर्य के प्रति झुकाव के साथ साथ इन कवियों के स्वर में कहीं कहीं प्रगतिशीलता के आयामों को पकड़ने का भी आग्रह था। सुश्री पुरूषार्थवती, दीनूभाई पंत, श्रीमती शान्ति गुप्ता, श्रीमती कृष्णा गुप्ता, सुश्री सुशीला तुल्ली, श्रीमती राज भल्ला, सुश्री माकन, सुश्री शकुन्तला सेठ, श्रीमती सत्यवती मल्लिक, श्री दुर्गा प्रसाद काचरू, श्री पृथ्वी नाथ पुष्प, बंसी लाल सूरी, शंकर शर्मा पिपासु, रामकृष्ण शास्त्री 'अव्यय' ,चन्द्रकान्त जोशी, डा0 गंगा दत्त विनोद, दुर्गा दत्त शास्त्री, जानकी नाथ कौल 'कमल', मनसाराम शर्मा 'चंचल', डा0 अयूब प्रेमी आदि कवियों की रचनायें इस ओर संकेत करती हैं। यद्यपि कुछेक कवि साठ के दशक तक भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अपना वर्चस्व बनाए रहे किन्तु उनकी रचनाओं का आधार सन्धिकालीन मानसिकता ही रहा । यद्यपि अधिकतर छायावादी स्वर ही इस काल की कविताओं में मुखरित हुआ है तथापि कहीं कहीं पर तत्कालीन सामाजिक दीर्घाओं में व्याप्त कुण्ठा का स्वर भी सुनाई देता है, समसामयिक स्थितियां उभरी हैं। सुश्री पुरूषार्थवती इन सामयिक स्थितियों को अपने शब्दों में इस प्रकार बुनती हैः

उस अदृष्ट की आशा में
कितनी रातें बीती हैं,
इच्छा और प्रतीक्षा, मिटकर
भी हारी जीती हैं।

यद्यपि इस स्वर के ही समानान्तर एक और स्वर जम्मू में भी मुखरित हो रहा था पर इस स्वर में प्रगतिवादी चेतना को ढूंढा जा सकता है:

पथ पर दीप जलाने वाले
जिन को दीप दिखाया तूने, जीवन ढंग सिखाया तूने
कितनी मंजिल पार कर चुके, तेरे पीछे आने वाले।

अचरज घना अंधेरा देखो, भूला हुआ सवेरा देखो
फूटी फूटी किस्मत देखो, दीपक तले अंधेरा देखो
एक ब्रह्म के इधर उपासक, एक खुदा के वे परवाने
भटक रहे हैं खुद ही देखो, भूले पंथ सुझाने वाले

"दीपावली" शीर्षक से श्री दीनूभाई पंत जी की यह कविता 1944 में लिखी गई थी जिसमें तत्कालीन स्थितियों पर कवि का दर्द भरा स्वर मुखरित हुआ है। दीनू भाई पंत प्रगतिवादी धारा से जुड़ा एक ऐसा स्वर उन दिनों जम्मू के साहित्यिक क्षेत्र में उभरा था जिसमें तत्कालीन परिवेश में सामंतवादी प्रवृत्तियों से जुड़े राजे – रजवाड़ों के अनेक रूप हमारे सामने प्रकट होने लगे। शोषण से पिसती जनता की वेदनामयी तस्वीर इस कवि की बाद की रचनाओं में चित्रित हुई दीनूभाई पंत बाद में डोगरी भाषा में लिखने लगे पर जो कवि की चेतना का स्वर इनकी पहली रचनाओं में मिलता है वह आगे चलकर मद्यम होता दिखाई देता है।

इस सन्धीबेला में एक दूसरा स्वर भी उभर रहा था जिसमें छायावादी संकेत अभी भी विद्‌यमान थे।

मेरे पथ के शूल सखी हैं
आज मुझे फूलों से कोमल
मेरे उर के शत शत क्रंदन
आज बने हैं मीठे गायन

यह आशावादी स्वर चालीस के दशक के आसपास उज्जवल भविष्य की ओर संकेत कर रहा था। सुश्री शंकुतला सेठ हिन्दी साहित्य मंडल की महिला शाखा की कर्मठ कार्याकर्त्री थीं और इसकी गोष्ठिओं में खूब बढ़चढ़ कर भाग ले रहीं थीं। इसके साथ ही 1943 में उन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा एक साहित्यिक पत्रिका निकाल कर की।"उषा" नाम से प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में देश के शीर्षस्थ हिन्दी रचनाकार छपने में गौरव पाते थे। यह पत्रिका 1946 के अंत तक छपती रही पर विभाजन की विभीषिका ने इस पर भी अपनी छाया छोड़ी थी परिणाम स्वरूप इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया। ब्योरा अन्यत्र देखें।

इसी स्वर से स्वर मिलातीं श्रीमती शान्ति गुप्ता उन दिनों उभरती हुई कवियित्री थीं जो मंडल की गोष्ठिओं में खूब भढ़चढ़ कर भाग ले रहीं थीं। अपनी एक कविता "मधुर कितना था वह संसार"में व्यक्त में अव्यक्त ढूंढती हुई कह उठतीं हैं:

मधुर कितना था वह संसार
नहीं पीड़ा का जिसमें लेश,
अपरिचित थी तुमसे हे देव
न पाया था नीरव संदेश
कहां से, अनजाने चुप–चाप
चले आए अंतर पट खोल,
लिए सब सुख संसार समेट
वेदना दी बदले में तोल।

इनका एक 'उर्मिला' नाम से कविता संग्रह भी उन दिनों प्रकाशित हुआ था जो बहुत सराहा गया।

श्रीमती कृष्णा गुप्ता, सुश्री सुशीला तुली, श्रीमती राज भल्ला,सुश्री शंकुतला माकन आदि महिलाएं उमंग के साथ हिन्दी कविता लिखने में संलग्न थीं और साथ ही हिन्दी के प्रचार और प्रसार में भी।

इस प्रकार हम देखतें हैं कि हिन्दी कविता का जो स्वरूप बाद में हमारे सामने आया उसमें इन कवियों और कवियित्रियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

सुश्री शंकुतला सेठ : हिन्दी साहित्य सेवा, इसके प्रचार एवं प्रसार तथा हिन्दी पत्रकारिता के लिए जिन इनेगिने साहित्यकारों का नाम सम्मान से लिया जाता है इनमें अन्यतम हैं सुश्री शंकुतला सेठ। सुश्री शंकुतला सेठ ने अपने शैशवकाल से ही हिन्दी साहित्य की सेवा का व्रत ले लिया था। 1941–42 में इन्होंने विद्यापीठ महिला विद्यालय आरम्भ किया जिसमें छात्राओं को राष्ट्र प्रेम के साथ साथ साहित्य के प्रति भी उन्मुख किया। उन दिनों जम्मू में हिन्दी साहित्य मंडल की गतिविधियां बहुत तेज़ थीं– इन गतिविधियों में इन्होंने बढ़चढ़ कर भाग लिया और बाद में हिन्दी साहित्य मण्डल का महिला विभाग स्थापित कर उसमें सक्रिय योगदान दिया। इनके साथ इस प्रयास में सुश्री सुशीलातुल्ली, श्रीमती राज भल्ला, श्रीमती मदन कुमारी, सुश्री शंकुतला माकन, श्रीमती कृष्णा गुप्ता, सुश्री क्षमा पारिमू, श्रीमती शक्ति शर्मा आदि भी शामिल थीं। आर्यसमाज पुरानी मण्डी में गोष्ठियां की जातीं। कविता लिखने की प्रेरणा इन्हें मण्डल से ही मिली। वहां इन्हें कोई शीर्षक दिया जाता था जिस पर इनको कविता लिखनी होती थी और ये

सब कविताएं अगली गोष्ठी में पढ़ी जातीं। इनकी प्रथम कविता के लिए भी शीर्षक 'याचक' हिन्दी साहित्य मंडल की ही देन था। 1942 के आसपास यह रचना लिखी गई शीर्षक था 'मैं क्या मांगू' जो दिए गए शीर्षक 'याचक' के अनुरूप था। इस कविता की पहली कुछेक पंक्तियां देखें:–

पग आगे आगे बढ़ता है। बढ़ती ही जाती निर्जनता।
मेरे कानों में रोती है। मेरे ही डर की निर्ममता।
मैं शून्य खोजने को जाती। हाथों में लेकर बुझा दीप।
है वर्तमान ओझल मुझ से। भावी के गाए कौन गीत।

यह रचना उनके प्रथम काव्य संग्रह 'सरसिज' में जनवरी 1986 में प्रकाशित होकर सामने आई 'सरसिज' संग्रह में गेयात्मक रचनाएं हैं। 80 पृष्ठीय इस संग्रह में कुल 39 काव्य रचनाएं संकलित हैं।

सुश्री शंकुतला सेठ का दूसरा संग्रह बाल गीतों के रूप में सामने आया शीर्षक था 'संगीत कथायें'। यह सग्रंह 1986 में छपा जिसमें 68 पृष्ठों में प्रदेश और देश के महान व्यक्तियों पर पद्य रचनाएं लिखी गईं। बाबा जितमल, हब्बाखातून, वीर शिवा जी, महाराणा प्रताप आदि इन पृष्ठों पर मुखरित हुए। इन रचनाओं का मंचन किया गया, सहगान के रूप में गाया गया और बाद में पुस्ताकार में इन्हें प्रकाशित किया गया। इसी वर्ष यानि कि 1986 में इनका तीसरा संग्रह 'सुनलो बच्चो' लोक कथाओं और पंचतन्त्र की कथाओं के काव्यात्मक रूपान्तर के रूप में सामने आया। इस संग्रह के दो भाग थे– पहले भाग में इन कथाओं पर काव्यात्मक रचनाओं के साथ साथ बच्चों के लिए तस्वीरें भी बनाई गईं थीं और दूसरे भाग में 'जम्मू कश्मीर,' तथा 'मेरी मां' शीर्षक से कविताएं भी संकलित की गई। इन सभी काव्यात्मक कथाओं का मंचन भी किया गया जिसमें विद्यापीठ की छात्राओं ने भाग लिया।

इसी वर्ष अर्थात, 86 में ही भजनों की एक पुस्तिका 'ज्योतिकण' शीर्षक से प्रकाशित की गई। छोटे आकार की इस पुस्तिका में 30 भजन संकलित हैं। कुल पृष्ठ 38 हैं। अप्रेल,1992 में इनका पांचवा संग्रह 'समयधारा' के शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यह संग्रह परम्परागत गेय कविताओं, गीतों और छन्द रहित स्वछन्द कविताओं का मिलाजुला संग्रह है। नई कविता के आग्रह से अब कवियित्री अपने आपको वंचित नहीं कर पाई स्वछन्द रचनाओं में 'जिजीविषा' एक अच्छी रचना कही जा सकती है–

जीने की इच्छा, कितनी छलिया है!
मृत्यु को पुकारती आवाज़
घास के ढेर से दबी/ चिनगी की चमक सी,
कहीं गहरी अनजानी/ परत के नीचे से
कंपा जाती है।

यह संग्रह बाकी संग्रहों में रचना की दृष्टि से और 'गेटअप' की दृष्टि से उत्तम संग्रह कहा जा सकता है।116 पृष्ठीय इस संग्रह में इनकी 72 रचनाएं संकलित हैं जिनमें से 28 छंदमुक्त रचनाएं है।'अपनी बात' में कवियित्री ने इस ओर संकेत किए है–"मैने अपनी प्रस्तुत कृति में भावाभिव्यक्ति के लिए दोनों शैलियों को अपनाया है।"

वस्तुतः सुश्री शंकुतला सेठ के गीतों में महादेवी वर्मा की वेदना और विम्ब विधान झलकता है। शायद इसी लिए पूर्व शिक्षा निदेशक श्री जी.पी.सिंह ने इस ओर संकेत किए हैं– 'अतिश्योक्ति नहीं होगी यदि श्रीमती शंकुन्तला सेठ को जम्मू की महादेवी की संज्ञा दी जाए'।

शकुंतला सेठ कृत बाल कविताओं के संग्रह 'सुन लो बच्चो' की समीक्षा करते हुए प्रो0 पृथ्वी नाथ 'पुष्प' ने लिखा है : 'सरल, सुगम, सुवाच्य भाषा का ऐसा प्रसंगानुकूल प्रयोग किस बच्चे को अपनी ओर नहीं खींचेगा'

सत्य ही जहां इनके संग्रहों 'सरसिज' 'ज्योतिकण' और 'समय धाराएं' में भावप्रवण और संवेदनात्मक स्थितियों को उभारते शब्द चयन और भावाव्यक्ति का प्रयोग हुआ है वहीं पर संगीतात्मक लय, प्रवाह और ओज के साथ–साथ सुगम, सरल भाषा का प्रयोग बाल कविताओं में हुआ है यही कवियित्री की सबसे बड़ी सफलता है।

यद्यपि ये संग्रह स्वतंत्रता के बाद प्रकाशित किए गए पर अधिकतर रचनाएं स्वतंत्रापूर्व लिखी गईं थीं।

श्रीमती कृष्णा गुप्ताः बाला समाज और बाद में अनुशीलन समिति की सक्रिय सदस्या के रूप में कृष्णा गुप्ता का नाम चर्चित है। स्वाधीनता की उपलब्धि के साथ साथ देश को विघटन का सामना भी करना पड़ा। इस दुःखद घटना को आज भी अनेक वर्षों बाद हम भुलाने में असमर्थ हैं। ऐसी दुःखद स्थितियों में भी साहित्य की मशाल जलाए रखने वालों में से एक नाम श्रीमती कृष्णा गुप्ता का भी आता है। अनुशीलन समिति के माध्यम से रामायण, गीता तथा पुराणों की कथाओं, उपकथाओं का दलित वर्ग के बीच बैठकर पाठ करना और उन्हें समझाना इस समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं का सर्वोपरि कार्य रहा है।

श्रीमती कृष्णा का पदार्पण काव्य के क्षेत्र में 1943 के आसपास हुआ जबकि जम्मू से उषा और भारती पत्रिकाएं प्रकाशित हो रहीं थीं। लेकिन प्रथम कविता 'योजना' पत्रिका में 1956 में प्रकाशित हुई। इस हलकी फुलकी कविता का शीर्षक था 'पीटने की कला'। तदन्तर 'सुकवि विनोद', इन्दौर से निकलने वाली पत्रिका, 'उषा,' 'शीराज़ा,' 'घोषवती' आदि में प्रकाशित होती रहीं। इनका प्रथम कविता संग्रह अक्तूबर 1982 में 'उच्छवास' नाम से प्रकाशित हो कर सामने आया। इस संग्रह की अधिकतर रचनायें उनके आध

यात्मिक पक्ष को उजागर करती हैं।

मैं नचिकेता पूछ रहा/ कहो यमराज मृत्यु है क्या
वृच्चिक दंश यातना क्या सच/ केंचुल सा तन त्याग है क्या *पृ0 29*

कुछ और पंक्तियां देखे:–

जन्म और मृत्यु के भीतर का जीवन सब है साकार
मृत्यु और जन्म का अन्तर/ समय तो रहता है निराकार। *पृ0 31*

इनकी अनेक कविताओं में महादेवी वर्मा की रचनाओं का प्रभाव झलकता है।

तुम अकेले ही जलो, दीपक/ न सोचो बात मधुबन की
इन बन्धे हाथों से कैसे /मैं सजाऊँ पांत उपवन की।।

इन कविताओं में मानवीकरण अंलकार का खूब प्रयोग मिलता है–

निशा तम लटों का झुलाती है पलना
किरण चल ठुमक –हुम सिखाती है चलना।
कोई ओस–कण पी कली फूटती है,
उसी रूप की मुगधता रश्मि मैं हूँ।

अपनी कृतियों के बारे में कवियित्री ने बहुत विनम्र भाव से लिखा है–"अंन्तर भावनाओं की प्रस्तुति का लोभ ही मुझे इस द्वार तक ले आया है अन्यथा एक साधारण गृहणी के नाते किन्हीं ऊंचाइयों को छू लेने की सामर्थ्य कहां।"

श्रीमती राज भल्ला : इस प्रदेश में हिन्दी के प्रचार प्रसार और स्वतन्त्रता से पहले जिन महिलाओं का योगदान रहा है उनमें एक नाम है सुश्री राज तुल्ली का जो अपनी कर्मठता से जानी जाती हैं। जम्मू, कश्मीर और पुंछ में हिन्दी प्रचार और प्रसार में इनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। जम्मू में 15.8.1930 में जन्मी राज तुल्ली का लालन पालन एक सुंस्कृत परिवार में हुआ जिसके फलस्वरूप युवावस्था में सुश्री राज अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थानों से जुड़ी । हिन्दी साहित्य मण्डल की महिला शाखा के साथ इनका सम्पर्क काफी देर तक रहा इसके साथ साथ ही अनुशीलण समाज के साथ भी इनका सम्पर्क रहा है। सुश्री शकुन्तला सेठ, सुश्री शंकुतला माकण, सुश्री कृष्णा कपूर, सुश्री कृष्णा गुप्ता आदि महिलाओं का एक सशक्त समूह था जो हिन्दी लेखन के साथ साथ समाज सेवा में भी संलग्न था। सुश्री राज तुल्ली की शादी 1950 में प्रो.कृष्णलाल भल्ला के साथ हुई जिससे सुश्री राज तुल्ली श्रीमती राज भल्ला बन गई।

श्रीमती राज भल्ला कहानी और कविताएं लिखती हैं– इनकी कहानियों की एक पुस्तिका 'ये तस्वीरें' नाम से 1978 में स्थानीय कल्चरल अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुई थी। कविताओं का संग्रह 'सुरभि' नाम से 1990 में प्रकाशित होकर सामने

आया। इस संग्रह में 55 कविताएं संकलित हैं। छन्दोबद्ध रचनाओं का यह संग्रह छायावादी मानसिकता को उजागर करता है। बीच बीच में कुछ कविताएं वर्तमान के यथार्थ को भी पकड़ती दीखती हैं:

बचत पर हुई एक मींटिग पति पत्नी के बीच
एक दूसरे पर आरोंपों की बौछार,

....

गैस जलती रह गई/चुल्हा ठंडा पड़ गया

यानि–इस बार भी घाटे की/अर्थ व्यवस्था पास हो गई। ....*पृ0.10*

कहीं कहीं पर राजनैतिक हलकों पर भी कटाक्ष या फिर सीधी सपाट भाषा में आक्रोश रचनाओं को मांझता दीखता है:

स्वयं थके हैं बोल बोल कर
ले रहे हैं कुत्तों से अब काम
भौंक भौंक कर जिन्हें जिताते
जीत के करते उन्हीं सा काम । ......*पृ0 94*

राजनीति के रंग में सभी रंगे जा रहे हैं क्योंकि वे जानतें हैं कि सहज और बिना किसी मेहनत से कमाई राजनीति से ही सम्भव है

चढ़ आया है राजनीति का
रंग साधु संत फकीर पर
महंतों के झगड़े चल रहे
हैं जनता की जागीर पर ...पृ0 31

'सुरभि' की कविताओं में प्रकृति की सुरभि फैली है–

यह तारों का लुकना छिपना
मेरे जीवन की गाथा है/कुछ मेल नहीं मेरा इससे
पर जुड़ा प्यार का नाता है ...*पृ0 3*

महादेवी वर्मा की वेदना इनकी कविताओं में भी उभर आई है

हिमकणों की मंद वायु ने /उभारा दिल का छाला,
वेदनाओ, तुम न जाओ /मरन से है तुमको पाला।.....*पृ0 7*

एक अन्य रचना में भी इसी स्वर को देखें :

सुन चुकी हूं मैं युगों से/मिलन मरघट में है तेरा।
चषक भी रीते पड़े/ देखूं सजे रथराज तेरा। .....*पृ0 6*

सीधी सपाट भाषा में कहां कहीं पर प्रतीक उभरते हैं जो टूटती हुई बात को संभाल

लेते हैं। लय और छंद भी अनेक रचनाओं में टूटते हुए दीखते हैं। रचनाओं की भाषा अति साधारण है और शब्दों के चयन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। थोड़ा प्रयास कथ्य और शिल्प में और चाहिए था।

कश्मीर में चालीस के दशक में अनेक कवि रचना रत थे। श्रीमती सत्यवती मल्लिक इस क्षेत्र में एक ऐसा नाम है जिसकी रचनाएं अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होना शुरू हो चुकीं थीं। हिन्दी कहानी में तो निःसन्देह इनका नाम चर्चित हुआ ही कविता में भी इनका समान रूप से दखल था। इनकी प्रथम कविता 'अंतर में जो क्रीड़ा करते' तत्कालीन प्रसिद्ध पत्रिका हंस में 1938 में प्रकाशित हुई थी। इन्हीं द्वारा रचित कविता 'जाने दो, मुझे जाने दो' जो 1939 में प्रकाशित हुई थी की कुछेक पंक्तियां देखें:

जब भी दूर अति दूर चली जाती हूँ
एकान्त शून्य की खोज में
ढूँढता फिरता न जाने/ क्या मेरा अस्थिर, विकल मन।

इन्ही की एक और कविता "हब्बाखातून की जीवन संध्या" की कुछ पक्तियां देखें:

ओह! यह पत्तझर की शाम,
रूपहले सुनहरे रंगों ने/लिया लहरें को थाम
उधर केसर की क्यारियों के नीले पीले अक्स से
झलक उठे यह ऊँचे ऊँचे पर्वत/और झिलमिला उठा आसमान।

उस समय छायावादी स्वर हिन्दी कविता में खूब मुखरित हो रहा था लेकिन उस स्वर से इतर श्रीमती सत्यवती के स्वर में विकासोन्मुख प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होतीं हैं। छन्द मुक्त कविता का अभी प्रचलन न के बराबर था लेकिन इनकी रचनाओं में हमें वह रूप मिलता है। वैयक्तिक संवेदना के साथ साथ प्राकृतिक सौंदर्य से भी कवियित्री का मन भावप्रवण है।

चालीस के दशक के आसपास कश्मीर में एक और कवि स्वर मुखारित हुआ। यह स्वर था **श्री दुर्गा प्रसाद काचरू** का। इनकी कविताएं 'अश्रुकण' नामक संग्रह में संकलित हैं। श्री दुर्गाप्रसाद कश्मीर में हिन्दी आन्दोलन के साथ जुड़े थे और कश्मीर में प्रकाशित होने वाला प्रथम हिन्दी साप्ताहिक इन्हीं की देखरेख में निकला था। इनकी कविताओं में छायावादी स्वर मुखरित है। प्राकृतिक छटा, अव्यापक में व्यापकता और मानवीकरण अलंकार से अलंकृत रचनाएं इनकी शैली की विशेषताएं हैं। प्रस्तुत है इनकी एक कविता 'पंकज' की कुछ पंक्तियां:

जल के अरमानों का सार/जलदेवी का चित्रित प्यार
मंद समीरण का सुविकार/हृतन्त्री का कोमल तार

सरवर के हिय का तू हार।

कमल के फूल का शब्दचित्र बहुत सुन्दर ढंग से इन पंक्तियों में मिलता है।

इस स्वर से स्वर मिलाता पर अपने शैशवकाल में ही प्रौढ़ता महसूस करवाने वाला एक स्वर था श्रीमती पुरुषार्थवती का जो हिन्दी की कविता के साथ ही जीवित रहीं और अल्पायु में ही इहलीला समाप्त कर चली गई। तब इनकी आयु 19 वर्ष की थी। यह श्रीमती सत्यवती की छोटी बहन थीं। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'अन्तर्वेदना' नाम से प्रकाशित हुया। इन रचनाओं में भावुक स्थितियां अन्तर तक पैठ पा लेतीं हैं और शिल्प की दृष्टि से यदि इनका आकलन किया जाए तो हम पाएंगे कि इतनी सुन्दर रचनाएं करने में समर्थ कोई किशोरावस्था की लड़की थी –विश्वास नहीं होता। इनकी कविताओं में प्रौढ़ कवि का स्वर, शिशु सी भावविह्वलता, प्राकृतिक सौंदर्य की महक और छायावादी कोमलता और रहस्यामकता व्याप्त है विशेषकर दृश्य में अदृश्य की खोज इनकी कविता की विशेषता है:

सदा दृगजल से रोता विश्व/हृदय तुम देते अपना चीर,
कहां पाओगे प्रेम अनन्त/बहाकर अपना मानस नीर
खींचकर स्वर लहरी के बीच/वेदना के सूने उद्‌गार
निरन्तर देते हो संदेश/ नहीं पाते हो फिर भी पार।

विश्व का मानवीय प्रतीक चुनकर झरने को विश्व के दृगजल की संज्ञा दी गई है। और पराकाष्ठा देखो कि निरन्तर वेदना के सूने उद्‌गारों से संदेश देते रहने पर भी 'पार' नहीं पाते कैसी बिडम्बना है।

इन्हीं की एक और कविता 'लक्ष्यहीन राही' भी सुन्दर रचना है। इसमें लय, संगीतात्मकता, उचित शब्दों का चयन, गंभीर सोच, सटीक अलंकृत भाषा और प्राकृतिक सौंदर्य की लालिमा व्याप्त है:

सांझ हुई अब लौट चले हैं पक्षीगण मतवाले,
अरुणदीप्त पश्चिम ने मद के छलका डाले प्याले।

कविता की ये पंक्तियां निश्चय ही महादेवी वर्मा की कविताओं की ओर संकेत करतीं हैं। अगर हिन्दी पाठक के सामने बिना कवियित्री का नाम दिए ये पंक्तियां रख दें तो निश्चय ही उसके मन में महादेवी का विचार आएगा।

प्रसिद्ध बंगला कवि जीवनानन्द दास द्वारा लिखित 'बनलता शेन' एक बहुचर्चित कविता रही है। इस कविता का स्वर भी उपर्युक्त कविता में ढूंढा जा सकता है। बंगला कविता की अंतिम पंक्तियों का सारांश यह है कि संध्या के समय जब सभी पक्षी घर लौट

आते हैं नदियां नाले अपना लेन देन बंद कर देते हैं तो थका हारा पथिक अपने स्नेह को सींचने घर पहुंचता है।

यह कवियित्री के बहुआयामी लेखकीय व्यक्तित्व की ही विशेषता है जिससे सुधि पाठक ऐसा महसूस करते हैं। दुःख की बात है कि इनकी मृत्यु 1930 ई0 में 19 वर्ष की अल्पायु में ही हो गई और अपेक्षित साहित्य की कामना ही रह गई।

प्रो0 पृथ्वी नाथ पुष्प इस प्रदेश के कुछ इने गिने विद्वानों में लिए जा सकतें हैं जिनकी विद्वता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

पृथ्वी नाथ पुष्पः 1917 में कश्मीर में जन्मे श्री पुष्प इस प्रदेश के गिनेचुने विद्वानों में से एक हैं। अध्यापक के तौर पर कार्यक्षेत्र में उतरे और अंत तक निरन्तर लेखन से जुड़े रहे। अपने प्राध्यापन काल में इन्होंने कालेज में बहुत से छात्रों को साहित्य की ओर उन्मुख होने के लिए प्रेरित किया। सांईस कालेज, उन दिनों प्रिंस आव वेल्स कालेज, जम्मू में इनके सहयोग से साहित्य परिषद काफी समय तक चलती रही जिसमें से होकर जम्मू के अनेक साहित्यकार प्रेरणा पा सके। जम्मू के प्रसिद्ध हिन्दी कवि स्व0 चन्द्रकांत जोशी ने इस ओर संकेत किए हैं जिन्हें प्रो0सत्य पाल शास्त्री ने प्रो0 चन्द्रकांत जोशी की रचनाप्रक्रिया लिखते हुए उद्धृत किया है (शीराज़ा पूर्णांक 41) प्रो0 पृथ्वी नाथ 'पुष्प' कश्मीर की संस्कृति, साहित्य और इतिहास के अनुभवी विद्वान माने जाते हैं। हिन्दी और संस्कृत साहित्य पर अनेक विद्वतापूर्ण लेख इनके पाण्डित्य की ओर संकेत करते हैं। पुष्प जी हिन्दी में कविता भी करते रहें हैं। कश्मीर में हिन्दी पत्रिकारिता का बिगुल इन्होंने ही 'चन्द्रोदय' साप्ताहिक के प्रकाशन के साथ बजाया था। इनकी प्रथम कविता 'दो दृश्य' 1937 में प्रताप में छपी थी। इन्हीं द्वारा सम्पादित 'चन्द्रोदय' के प्रवेशांक में इनकी कविता 'दीवाली की रात' प्रकाशित हुई थी। कृपया पत्रकारिता वाले अध्याय में देखें। फरवरी 1943 में लिखी गई इनकी एक कविता 'नव जीवन' 1961 में प्रकाशित अकादमी के एक काव्य संकलन "पद्याजंलि" में संकलित है:

वसुधा के मुरझाए मुंह पर
माधव नव आभा ले आया
पतझर से पथराई आंखों में
सोया चेतन अंगडाया
खलिहानों की सूखी ऐंठी
चमड़ी की उल्झी झुरियों में
नवजीवन की हरियाली ने
यौवन को साकार दिखाया

इन पंक्तियों में सुन्दर प्राकृतिक वर्णन और उसकी अभिव्यक्ति के लिए समुचित अंलकार और चयनित शब्द कवि की विशद दृष्टि की ओर संकेत करते हैं।

यह सन्धीकाल वेला थी जब लोग आज़ादी का बड़ी आतुरता से इन्तजार कर रहे थे और उसी की लय में काव्य रचना हो रही थी। पुष्प जी की एक रचना इस ओर संकेत करती है:

नवनिर्माणों की वेला है, सुबह कहां रे शाम कहां
आजादी की सजग डगर पर, नींद कहां आराम कहां।

बंसीलाल सूरीः—हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के लिए इस अहिन्दी भाषी क्षेत्र में जिन लोगों ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया उनमें से स्व0 श्री बंसी लाल सूरी का नाम सर्वोपरि लिया जाता है। 1913 में लाला शिवराम सूरी के यहाँ इनका जन्म हुआ और रणवीर हाई स्कूल और प्रिंस आव वेल्स कालेज, वर्तमान जी0जी0एम0 कालेज, में शिक्षा ग्रहण करने के बाद उच्चशिक्षा के लिए लाहोर चले गए। तत्पश्चात उधमपुर में प्रथम बार वकालत आरम्भ की पर उन्हें उधमपुर तक ही बान्धा नहीं जा सकता था अतः तीन चार वर्ष के बाद ही वह जम्मू लौट आए और राजनीति में सक्रिय हो गए। उन दिनों नेशनल कान्फ्रेस एक सक्रिय राजनैतिक पार्टी थी जहां उन्हें उचित स्थान मिला पर बाद में हिन्दी की अवमानना देखते हुए उन्होंने नेशनल कान्फ्रेंस से भी इस्तीफा दे दिया। ऐसा समझा जाता था कि नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार में जम्मू से अगर किसी को प्रतिनिधित्व मिलेगा तो वह थे श्री बंसीलाल सूरी पर हिन्दी के प्रति अनन्य प्रेम ने श्री बंसीलाल सूरी को उस समय की स्थितियां देखते हुए त्यागपत्र देना पड़ा।

श्री बंसी लाल सूरी का अनेक हिन्दी आंदोलनों में सक्रिय योगदान रहा है। इसकी चर्चा आप बाद में इन्हीं पृष्ठों में पाएगें। आइए उनकी साहित्यिक उपलब्धियों की चर्चा करें। बंसी लाल सूरी यह बात बड़ी अच्छी तरह जानते थे कि इस विरोधात्मक माहोल में हिन्दी का त्राण तब तक संभव नहीं जब तक कि कोई सशक्त संगठन न तैयार हो। उन दिनों हिन्दी प्रचारिणी सभा की पंजाब शाखा बहुत अहम् रोल अदा कर रही थी अतः उसकी एक शाखा जम्मू में भी खोली गई और इस संस्था के साथ अनेक हिन्दी प्रेमी जुड़ते गए जिनका विवरण अन्यत्र दिया गया है। इसी संस्था के सहयोग से हिन्दी की प्रथम साहित्यिक पत्रिका 'वसुधा' वजूद में आई। इस पत्रिका के प्रवेशांक की चर्चा अन्यत्र की गई है। इस पत्रिका में देश और इस प्रदेश के चर्चित साहित्यकारों की रचनाएं छपती रही हैं। साहित्यकार इसमें छपने के लिए आतुर रहते थे। पर यह पत्रिका आर्थिक कठिनाइयों के कारण बहुत देर नहीं निकल सकी। बाद में इन्होंने 'वीर अर्जुन' नामक पत्र चलाया ताकि इसके द्वारा घर घर में स्वतंत्रता का संदेश पहुंचाया जाये। पर व्यवस्था

को यह मंजूर नहीं था अतः इसे बंद करने का आदेश दिया गया परन्तु चोरी छिपे यह फिर भी चलता रहा और घर घर में पंहुचता रहा। हिन्दी साहित्य मंडल, हिन्दी प्रचारिणी सभा और अनेक दूसरी संस्थाएं इस बात की गवाह हैं कि यह व्यक्ति कभी डिगा नहीं सतत् अपने उद्देश्य के प्रति सजग रहा।

बंसी लाल सूरी हिन्दी साहित्य के विद्वान और एक अच्छे कवि थे इनके द्वारा रचित रचनाओं को आधार मानकर जम्मू कश्मीर अकादमी द्वारा 'सहस्रमुखी' नामक एक ग्रंथ का भी प्रकाशन किया गया है जिसमें इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर ढेर सी सूचनाएँ मिलती हैं। इनकी रचनाएँ छायावादी काव्य का प्रभाव लिए हैं। श्रृंगार रस प्रधान कविताएं भी स्थूल में सूक्ष्म को तलाशती दीखतीं हैं। अध्यात्मक रस भी इनकी रचनाओं में रचा बसा है। प्रस्तुत है उनकी एक आध्यात्मक रचनाः

में देव वाहन अमर पक्षी गरुड़ हूँ
मैं जल थल अंतरिक्ष यान हूँ
मैं असीमता की सीमाओं के कोण–कोण से परिचित हूँ
मेरे वाहक स्वामी का संकल्प मेरे पंख हैं।
जिनपर अपने मालिक को मैं अनगिनत ग्रंहों उपग्रंहों की
उड़ाने करवाता हूँ/चंद्रलोक तक जाने के लिए भी
मुझे अपने पर्यटनों के लिए/मानव के अनुरूप
किसी अनुसंधान /अथवा प्रयोग क्रिया की आवश्यकता नहीं।

बंसी लाल सूरी द्वारा रचित सैंकड़ों कविताएं और लेख अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और ढेरों चिन्तन के क्षण उनकी पत्रिका वसुधा से पकड़े जा सकते हैं। वह हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के विद्वान थे। डोगरी में भी सूरी साहब की कुछ रचनाएं प्रकाशित हुई हैं।

बंसी लाल सूरी मितभाषी, मिलनसार, हिन्दी के अनन्य प्रेमी और प्रगतिशील साहित्यकार थे। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उद्देश्यपरक था। वह जीवन पर्यन्त हिन्दी के लिए लड़ते रहे और अन्ततः हिन्दी दिवस अर्थात 14 सितम्बर को ही 1970 में स्वर्ग सिधार गए। आज भी उनके द्वारा स्थापित हिन्दी साहित्य मंडल अपने पूरे वेग से कार्य कर रहा है जो उनके प्रति एक श्रद्धांजलि है।

शंकर शर्मा पिपासु : हिन्दी लेखन में जिन महत्वपूर्ण लेखकों का नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाएगा उनमें एक नाम पिपासु का आता है। 'पिपासु' ने नितांत अभाव में जीते हुए भी किसी प्रलोभन को आड़े नहीं आने दिया न ही वे प्रादेशिक भाषाओं के आकर्षण में ही बहे। 1940 के आसपास शंकर शर्मा 'पिपासु',

ने अपना लेखन शुरू किया और निरन्तर हिन्दी कविता के प्रति प्रतिबद्ध रहे। आकलन उनके जीवन में नहीं हो सका पर उनके जाने के बाद कल्चरल अकादमी ने उनके कृतित्व पर एक पुस्तक प्रकाशित कर उन्हें सम्मानित किया है। शंकर शर्मा पिपासु की अनेक कविताएं स्थानीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हुई पर विशेष रूप से उनके दो कविता संग्रह 'सीमा का पंछी' और 'दो चांद' उनकी काव्य प्रतिभा की ओर संकेत करते हैं। पहले हम अगस्त 1965 में प्रकाशित उनके प्रथम कविता संग्रह 'दो चांद' को लेते हैं। यह संग्रह कल्चरल अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुआ। इसमें उनकी 52 कविताएं प्रकाशित हैं। इस पुस्तक के 'दो शब्द' में प्रो. रामनाथ शास्त्री ने लिखा है–"मंडल के वातावरण में बालासमाज के कारण जिस आदर्शवाद और आचार अनुशासन पर जोर दिया जाता था पिपासु का कविमन कभी भी उसका नियंत्रण मान कर नहीं चला।उनकी रचनाओं में अतृप्त, असन्तुष्ट और कभी कभी निराश प्यार के स्वर मुखरित हुए थे उन्हें उस वातावरण में कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था।" संग्रहीत रचनाएं न केवल छायावादी प्रभाव ही लिए हैं अपितु छायावादी स्वर को ही मुखरित करती दिखती हैं। कविताओं में प्रणय, निश्चल प्रेम और स्वच्छन्द वातावरण में स्वच्छन्द रूप से विचरण की कवि की लालसा की अभिव्यक्ति हुई है:

मैं प्रेमी हूं कर लेने दो दो पल तो सजनी प्यार मुझे

यह स्वछन्द विचरण हर जगह, हर रचना में व्याप्त है:

दोनों ओर उधार यौवन, मैं यौवन का सागर बन जाऊं।
वे नदियों सी उमड़ चलें, मैं मधुर मिलन की प्यास बुझाऊं

एक अन्य रचना की पंक्तियां देखें:–

प्रियतम की गलियों में भूला
पर न किसी से राह पूछता, मैं फिरता हूं फूला फूला।।

दूसरा स्वर विषाद का है जो इन कविताओं में खूब बहा है, निराशा, पीड़ा और दुःखद स्थितियाँ कहीं कहीं पर विरोध के स्वर में भी बदल जाती हैं:

फिर मरने से क्यों डरता है
फिर पाने में है क्या देरी
देखो तो यह मेरे मन में
बजती है कैसी रण भेरी।

विवशता और निराशा से उभरने वाला अकेलापन और अवशता इन पंक्तियों में बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की जा सकती है:

कौन यहां है मेरा
बीत न पाई जीवन–यामिनी, टूट गया सुख सपना मेरा

अभी अभी तो सोया था मैं, मिलन–स्वप्न में खोया था मैं।

'वेदना के गीत गाऊं' में कवि की पीड़ा प्रिया के पाने पर मुखरित हो उठती है:

गेह–डर सुध भूलकर अरमान भोले जो पले हैं
प्राण मेरे स्नेह बन कर देह दीपक में जले हैं,

इसी स्वर में एक अन्य गीत देखिए:

वे प्यार के पल अब याद न कर
जब टूट गया मन का प्याला, जब उजड़ गई है मधुशाला।

पिपासु की रचनाओं का शिल्प बड़ा सीधा सादा बिना किसी विशेष लीपा–पोती के सहज गीतात्मकता लिए हुए है। लय और ताल का विशेष ध्यान रखा गया है ताकि गेयता का वर्चस्व रहे। अधिकतर रचनायें गीत विधा के अन्तर्गत ली जा सकती हैं– कोमल, सरस शब्दों का चयन प्रकृति का एक छत्र साम्राज्य, अनुभूतिपूर्ण वातास को उलीचते क्षणों को बीनता कवि स्वछन्द हो उठता है।

ओस कणों से नयन जलद से
क्यों गिर गिर जाते हो आंसू

कवि अपने परिवेश से बिल्कुल कटा हो ऐसी बात नहीं। 'पूंजीपति का पश्चाताप' में कवि दलित वर्ग की ओर उन्मुख होना चाहता है:

दूर दूर तब रहा सदा मैं/उन भिखमंगों की टोली से
जो अधनंगे रोज़ धूप में/मांगा करते थे झोली से

देश पर चीनी हमले पर कवि का आक्रोश भरा स्वर उमड़ पड़ता है:

शील नहीं है जिसमें वह क्या समझे पंच–शील की बात
इसीलिए तो करता द्रोही मित्र हिन्द सीमा पर घात,

कवि संन्धिकाल वेला का रचनाकार था और छायावादोत्तर प्रवृत्तियों को साथ लेकर चल ही रहा था पर आधुनिकता की पहचान के भी करीब हो रहा था।

शंकर शर्मा पिपासु आज हमारे बीच में नहीं हैं पर उनकी कवि गोष्ठियों में गूंजते स्वर की अनुंगूज आज भी सुनाई देती है। शीराज़ा, हमारा साहित्य, मधुरिमा, योजना आदि में इनकी अनेक कविताएं प्रकाशित हुई हैं। आकाशवाणी के जम्मू केन्द्र से इनकी कविताओं का प्रसारण होता रहा है।

सम्पन्न करने से पहले शंकर शर्मा 'पिपासु' के दूसरे संग्रह 'सीमा का पंछी' पर दो बातें करनी आवश्यक हो जाती हैं। 'दो चांद' का कवि जहां प्रणय और यौवन के प्रति आसक्त और सौन्दर्यन्मुखी रहा है वहीं पर 'सीमा का पंछी' के रचनाकार ने यथार्थ के ठोस धरातल को पहचानना शुरू कर दिया था।

मुझको न तुम प्यार दो
पर जी सकूं जिसके सहारे प्रिय मुझे आधार दो

ये पंक्तियां इस ओर संकेत करती हैं। प्रो. सुभाष भारद्वाज ने भी इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर लिखते हुए संकेत दिए हैः 'सीमा का पंछी' की कविताओं का रचनाकाल 1955 से 1967 के बीच आंका जा सकता है। यहां तक पहुंचते पहुंचते दो चांद वाला यौवनोन्मत, चंचल और उच्छृंखल कवि प्रौढ़ावस्था को पार कर आया है। इस कारण से वह अपने चिंतन और अभिव्यक्ति में काफी नियंत्रित हो चुका नजर आता है।

राम कृष्ण शास्त्री "अव्यय":– जम्मू कश्मीर के जिन इने गिने विद्वानों ने प्रतिभा के बल पर नितान्त अकेले में अपना स्थान बनाया है इनमें एक नाम सम्मानपूर्वक राम कृष्ण शास्त्री 'अव्यय' का लिया जाता है। संस्कृत के प्रकांड विद्वान शास्त्री जी ने अभाव में भी प्रयत्न कर अनेक पाण्डुलिपियों का अध्ययन कर अनेक पुस्तकों को रचा है। हिन्दी में अपनी परम्परागत शैली में कविता की रचना वे पचास के दशक से करते रहे हैं। योजना, मधुरिमा, आदि पत्रिकाओं में इनकी रचनाओं को उच्च स्थान दिया गया है। इनकी रचनाओं में समासयुक्त शब्दों की भरमार मिलती है। पर कहीं कहीं चलित भाषा का सीधा–सादा प्रयोग भी हुआ हैः

आओ, मिलकर कहें सहर्ष
मंगलमय ही नूतन वर्ष
मिटें विवाद –विवाद विश्व में
मानवता का हो उत्कर्ष। ....*योजना, जन0 1988*

इसी प्रकार इनकी एक और रचना देखें:

जम्मू और कश्मीर पर्वत–राजधानी है
कहानी देश वीरों की यहां सदियों पुरानी है..........*योजना, नव0 85*

और कश्मीर पर उसके सौन्दर्य को व्याख्यायित करती कविता देखें:–

कश्यप का कमनीय देश काश्मीर महान्
नित–नूतन चिर–सुन्दर सुखमय स्वर्ग समा ....*योजना, अगस्त, 87।*

शायद नई कविता से कवि बहुत दूर पड़ गया था अतः इनकी रचनाओं की चर्चा नहीं हुई। अभाव में जीता कवि अभाव में ही दम तोड़ गया। पर विद्वान लेखक का शोध कार्य उनका हिन्दी को सशक्त योगदान है।

पचास के दशक में हिन्दी कवियों में मुख्यता छायावादी स्वर के प्रति ही रुझान रहा है। सर्वश्री शंकर शर्मा पिपासु, स्व0 दुर्गा दत्त शास्त्री, स्व0 चन्द्रकान्त जोशी, जानकी नाथ कौल 'कमल,' डा0 गंगा दत्त विनोद, मनसा राम शर्मा चंचल, श्याम दत्त पराग

आदि कवि इस धारा में लिए जा सकते हैं।

चन्द्रकांत जोशी : छायावादी स्वर को बान्धते हुए स्व0 प्रो0 चन्द्रकान्त जोशी की कविताएं आकाशवाणी के कार्यक्रमों, जम्मू कश्मीर अकादमी द्वारा आयोजित कवि सम्मेलनों और स्थानीय साहित्यिक मंचों पर से गूंजती रही हैं। शीराज़ा, हमारा साहित्य, योजना आदि पत्रिकाओं के इलावा कल्चरल अकादमी के अन्य प्रकाशनों में भी इनकी रचानएं प्रकाशित होतीं रहीं हैं।

इनका जन्म 1928 ई0 में जम्मू में हुआ। लेखन छात्रकाल से ही शुरू हो चुका था और प्रथम रचना सौलह वर्ष की आयु में 'भारत भिखमंगों की दुनिया' विश्व बन्धु लाहौर में 1944 में प्रकाशित हुई। कवि का एक कविता संकलन 'दुःख सुख' प्रकाश में आ चुका है। अपने छात्रकाल के दौरान इनकीं रचनाओं की गूंज कालेज के परिसर में सुनाई देती थी।

इनकी रचनाओं में वैयक्तिक संवेदनाएं बही हैं और खूब बहीं हैं। जम्मू कश्मीर अकादमी द्वारा प्रकाशित पद्यांजलि में संकलित इनके गीत की पंक्तियां इस ओर संकेत करती है:

उन नीड़ घरौंदों की खातिर जिनमें नन्हा नन्हा जीवन,
उन नूतन जोंड़ों की खातिर मचल रहा जिनका यौवन,
... मुझे जीना है। ..*पृ0 71*

चंद्रकांत जोशी की रचनाओं में स्वप्नों का मुखरित संसार है और कल्पनाओं की उड़ान में मखमूरी, रेशमी जिस्म और उनमें उतराता, मंडराता मन उलझा है:

हिचकियों से सिसकियों से श्वास मानों रुक गया था
बाल उलझे बिखरते थे, माथ उसका झुक गया था
धड़कते वक्ष रह रह, पीत मुख–मंडल बना था
आंख में आंसू नहीं थे, हो गया था खून पानी. ....*शीराज़ा सित0 1973*

धीरे धीरे इनके कथ्य ने करवट ली अब मखमूरी सफर में कहीं कहीं खुरदरे पड़ाव भी रचनाकार के सामने उभर रहे थे:

फिर पतझर के पीले पत्ते/ गिर गिर जाते मधु के छत्ते
सूने सूने जीवन के क्षण/ आंधी, झंझा, ओले, पानी

धीरे धीरे वैयक्तिक कुण्ठाएं और सौंदर्योनुभूतियां कवि को क्षणिक लगने लगतीं हैं कवि अब समुदाय की /परहित की बात करने लगा था:

स्वार्थ मरण है परहित जीवन/ यौवन/ का श्रृंगार क्षणिक है
पापकर्म का कर्त्ता भागी /और किसी को फल न तनिक है।

.*शीराज़ा, मार्च 1972*

प्रो0 चंद्रकांत जोशी आज हमारे बीच नहीं है पर उनकी कविताओं की गूंज कभी कभी सुनाई दे जाती है, आकाशवाणी के कायक्रमों के माध्यम से।

डा0 गंगा दत्त विनोद : हिन्दी और संस्कृत के विद्वान गंगा दत्त विनोद द्वारा दर्जनों ग्रंथों की रचना हो चुकी है। 1920 में जम्मू के एक गांव अम्ब गरोटा में इनका जन्म एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ। शिक्षा के बाद अध्ययन कार्य में जुट गए और बाद में आचार्य के पद से सेवा निवृत हुए। बाद में कुल्लू में संस्कृत कालेज के प्रिंसीपल के तौर पर भी कार्यरत रहे।

कवि विनोद यद्यपि प्रकृति की महिमा में विश्वास नहीं रखता, इनके वक्तव्य के अनुसार, लेकिन फिर भी इनकी रचनाओं में प्रकृति अपना साम्राज्य फैलाए बैठी है:

प्राची के अरुणांचल में/ फूट पड़ा तब अरुणोदय
धरती दुल्हन ने श्रृंगार किया/ अभिसार किया नभ प्रियतम से

मधुरिमा, प्रतिभा पुष्प 3

अपने वक्तव्य में कवि ने कहा है:

"प्रकृति रमणीयता के गीतों में, नारी तन की मघुरिमा से स्पन्दित मानस में वीचि–विलास के कम्पन के स्थान पर दैवी सौंदर्य की सूक्ष्म अनुभूतियां हैं।"

चीड़ो में ठहरी बयार पृ0 9

'स्वतंत्र भारत' कविता में कवि का ओजपूर्ण स्वर उभरा है:

हिमगिरि अचल उन्नत भासमान / गंगा यमुना सतलुज चनाब

मधुरिमा, प्रतिभा पुष्प 3

कवि की भाषा में समासयुक्त शब्दों का आ जाना स्वभाविक है क्योंकि मूलतः कवि संस्कृत का अध्येयता रहा है। इनके प्रकाशित ग्रंथों में "उल्लोल" नामक कविता संग्रह भी है। मघुरिमा के कई अंकों के यह संचालक भी रहे हैं।

दुर्गा दत्त शास्त्री: 1920 में जन्मे श्री दुर्गा दत्त शास्त्री भी छायावादी युग के प्रभावों से युक्त कविताएं लिखते रहे हैं। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'देश–वन्दना' प्रकाशित हो चुका है और कुछेक कहानियां भी स्थानीय पत्रिकाओं और संग्रहों में संकलित की गई हैं। आकाशवाणी के कायक्रमों में भी इनकी कुछेक रचनाएं प्रसारित हुई हैं। अक्सर इनकी रचनाओं में देश प्रेम की झलक हमें मिलती है। इस ओर अपने वक्तव्य में इन्होंने संकेत भी किए हैं:

"राष्ट्रीय कविताएं विद्यार्थी जीवन में पढ़ी, गुनगुनाई। इच्छा हुई कि मैं भी कुछ अर्घ्य

देश के प्रति चढाऊं । कुछ स्वर प्रेममय भी थे पर उन में अमर्यादित श्रृंगार नहीं था। सम्भव है उनमें रहस्यवाद एवं छायावाद की झलक भी दिखाई देती रही हो।

—चीडों में ठहरी बयार , पृ0 4

यह सत्य है कि इनकी कविताओं में छायावादी स्वर की झलक ही नहीं अपितु उसका प्रभाव भी झलकता है:

तार टूटी बीन सा, तुम बिन व्यर्थ मैं/ लुट गई जिसकी बहारें ठूंठ वो हूं हर कदम की धूल हूं मैं तुझ को खोकर/ जिसकी मंजिल ही नहीं मैं राह वो हूं

वही. पृ05

जानकी नाथ कौल 'कमल': जून 1914 में जन्मे जानकी नाथ कौल का कार्यक्षेत्र अध्यापन रहा है। इनकी रचनाएं अनेक स्थानीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकीं हैं। कुछेक कश्मीरी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है। मूलतः इनकी कविताओं का स्वर छायावादी रहा है और विषय आध्यात्मक या फिर ईश्वर प्रेम। शिव के यह अनन्य भक्त रहें है। अतः इसी ओर इनका वक्तव्य भी संकेत करता है:

"सीमित स्वत्व से उठकर जब भावुक मन असीम में अपने आप को खो बैठता है तब साधारण जीवन की झांकी ही बदल जाती है।"

..........चीडों में ठहरी बयार, पृ011

इनकी रचना "अनुपम यह तम्बूर " भी इसकी ओर संकेत करती है। प्रस्तुत है इस कविता की कुछेक पंक्तियां

ज्ञान–कर्म के दो हाथोंसे/बाहर भीतर के श्वासों से
स्थाविर जंगम भाव रूप में /चलता है भरपूर/ अनुपम यह तम्बूर

वही पृ012

इनकी कविताओं का एक संग्रह 'विक्षिप्त वीणा' प्रकाश में आ चुका है और कुछ कविताएं अकादमी के संग्रहों में भी छपी हैं।

श्याम दत्त पराग : रियासी में 27.4.1928 में जन्में श्री श्याम दत्त पराग वर्षों अकाशवाणी में समाचार वाचक के रूप में कार्यरत रहे हैं। बहुत छोटे होते थे तो सुनते थे कि पुरानी मंडी जम्मू के मंदिर में कुछ साहित्यकार जमा होकर कविताएं सुनाया करते हैं। बाद में श्री सुतीक्षण कुमार आनन्दम् से पता चला कि ये गोष्ठियां श्री श्याम दत्त के प्रयासों से होतीं थीं।

श्याम दत्त पराग बच्चों के लिए बाल गीत लिखते रहे हैं। इनके लिखे गए बालगीतों के दो संग्रह 'मधुर मधुर बालगीत' और 'पराग बालगीत' प्रकाशित भी हुए हैं।

इनकी अनेक रचनाएं आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से भी प्रसारित हो चुकी हैं।

पराग की रचनाएं स्थूल से सूक्ष्म तक पहुंचना चाहती हैं और कहीं कहीं पर इनमें रहस्यवाद की भी झलक मिलती है जो छायावादी काव्य का एक अभिन्न अंग रही है:

कभी लता कुन्जों में भूले/कभी बिम्ब फल फूल सुहाए।।
कभी धरणि से नील गगन तक। आशा के सोपान लगाए।।
कभी जगत के सर्वनाश का। प्रलयंकारी चित्र बनाया।।
मैं तुझको पहचान न पाया।

मधुरिमा, पुष्प 3 पृ016

छायावादी स्वर का प्राकृतिक रूप पराग की रचनाओं में बिखरा पड़ा है:

मस्ती छाई मंद पवन पर, तरुणाई है वन उपवन पर,
चातक का पी पी स्वर सुनकर, नयनों में निंदिया उड़ जाए
बिन साजन सावन नहीं भाए।

...चीडों में ठहरी बयार, पृ0 15..........

पराग ने छन्दमुक्त कविता भी की है जो छन्दोबद्ध रचनाओं से कहीं ज्यादा मुखरित है:

मानसरोवर के राजहंस /उड़ो अपने पंखों को बल दो।
व्योम की मधु /लालिमा का चुम्बन करो।

मधुरिमा ,पुष्प 3 पृ0 38

मनसाराम शर्मा 'चंचल:' –1928 में गुड़ा मुण्डेया , हीरानगर में जन्में मनसाराम चंचल हिन्दी और उर्दू पर समान अधिकार रखते हैं। अठारह वर्ष की आयु में ही पत्रिकारिता के साथ संलग्न। 1946 में लाहौर से प्रकाशित 'मिलाप' में प्रूफ रीडर के तौर पर कार्य करने के पश्चात 1949 में मिलाप में ही उपसंपादक के तौर पर कार्यरत रहे। तब यह समाचार पत्र जालन्धर से प्रकाशित होने लगा था। बाद में 1961 में योजना के सम्पादक के तौर पर कार्यरत। 'डुग्गर समाचार' और 'फुलवाड़ी' का भी वर्षो सम्पादन किया। 1983 में 'योजना' और 'जम्मू कश्मीर सामाचार' के सम्पादक के रूप में ही कार्यकाल से अवकाश। अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध। भारत दर्शन, पंजाब जीवन और साहित्य, महापुरुष ,महामानव गांन्धी आदि गद्य में रचित पुस्तकों के अतिरिक्त 'अश्रुमाल', 'सुशमा' और 'बालगीत' नामक कविता संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

मनसा राम 'चंचल' मूलतः श्रृंगार रस के कवि हैं। इनकी रंचनाओं में भाव प्रवण क्षणों की अभिव्यक्ति हुई है, मांसलता बही है और सौंदर्य के सोपानों को तलाशते इनके शब्द पाठकों को वैयक्तिक अनुभूतियों की ओर अग्रसर करते दीखते हैं:

सुना है कि अब तुम युवा हो चुकी हो।
मुझे तुमको देखे बरस हो गए हैं/सुना है अधर अब सरस हो गए हैं।
तुम्हारे हृदय में क्या झंझा मचलते? तुम्हे रात दिन क्या अकेले न खलते

..................सुषमा, पृ0 28

इसी संग्रह की एक अन्य रचना देखें:

तुम कहो इसे मैं क्या समझूं/तुम कभी विहस उन्मत हास
यों मुझे रिझाती हो दिखती तुम/ कभी उपेक्षारहित एक अरमान बनी उर में रिसती।

वही—पृ0 35

और मांसलता का एक रूप देखें:

ये आंखें नीलम सी सुन्दर, ये होंठ रसीले कितने हैं।
ये उभरे वक्षस मादक हैं, ये ज्योतित मुक्ता गीले हैं।......*वही पृ0 50*

कवि यौवन का रसिया है और प्रकृति का दीवाना भी। 'कश्मीर सुषमा' में कवि अपने आसपास के सौंदर्य पर भी मुग्ध है:

गहन जंगल में दयारों की सुषमा /यहां हंस रही चांद तारों की सुशमा
यहां बिछ रही है यह केसर की चादर/यहां छनकती जवानी की झांझर

चंचल की भाषा सहज और सुगम है पर कहीं कहीं समास युक्त शब्दों की भी भरमार रहती है। अधिकतर छन्दोबद्ध रचनाएं ही चंचल ने लिखीं हैं पर बीच बीच में छन्दमुक्त रचनाएं भी करते रहें है। पर इन का विषय बदल जाता है। तब कवि वैयक्तिक ऐश्वर्य से नीचे उतर कर यथार्थ की भूमि को पकड़ता प्रतीत होता है:

इक आवाज आ रही है/ रोने की खेतों से/ लहलहाते खेतों से
शस्यश्यामला धरती से/ जहां खून पसीना इक कर दिया कृषक ने .....

.वही, पृ014

यह बड़ी हैरानी की बात है कि छंद में लिखते हुए कवि श्रृंगारिक हो जाता है, यौवन और सौंदर्य के पीछे भागता है पर छंद से मुक्त होकर उसे यथार्थ का धरातल नज़र आने लगता है। इनका एक और संग्रह प्रेस में है जिसकी हमें प्रतीक्षा है।

डा. अयूब प्रेमी : 1935 में ऐटा में जन्में डा. अयूब प्रेमी अब इसी प्रदेश के होकर रह गए हैं। एम.ए.हिन्दी एवं संस्कृत में करने के बाद कश्मीर विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग में रीडर के पद पर सुशोभित । तीन कविता संग्रह 'दर्पण बन गया इतिहास', 'यह अवस्था यह अंधेरा' और 'पीले चांद के शहर में' प्रकाशित और छुटपुट रचनाएं शीराज़ा, वितस्ता, नीलजा आदि में प्रकाशित। आकाशवाणी के श्रीनगर, जम्मू और जालन्धर केन्द्रों से प्रसारण।

डा. अयूब 'प्रेमी' की आरम्भिक कविताएं ठीक उनके समकालीन कवियों की भांति छायावादी स्वर लिए हुए हैं प्रकृति के काल्पनिक पंखों पर परवाज़, मखमली स्वप्नों का सफर और कहीं कहीं पर महादेवी की वेदना के स्वर की धार इनकी रचनाओं में मुखरित होती दीखती है पर धीरे धीरे कवि करवट लेता है, प्रगतिवादी स्वर रचनाओं में जोर पकड़ने लगता है

अधूरे सन्दर्भों के अन्तर्विरोध में
कभी पैर छोटा है/और जूता बड़ा है
कभी जूता छोटा है। और पैर बड़ा है

...........*वितस्ता के नये चरण*

मजबूरी, बेबसी, बेकसी के आलम इन की कविता में सातवे दशक के बाद छाया होने लगे थे:

कभी कभी खिड़कियों से प्रक्षेपित
रोशनी के खण्ड /बाहर की ओर झुकते हैं
तो वर्तमान दोनों हाथों से/ कोट का कालर थामकर
घबरा कर भागने लगता है/टाई दम साधे
कमीज से चिपक जाती है ....*वितस्ता के नये चरण*

यह सही है कि 'प्रतिबद्ध' होने का लेबल अपने साथ कवि ने चस्पां नहीं किया। शायद इसीलिए रचनाकार इस ओर कटाक्ष करता दीखता है:

कुछ मतवादों का पुलिंदा लिए भाग रहे हैं
कुछ विचार अनुभवों और इच्छाओं के मलवे के नीचे
दबे पकड़ लिए गए हैं। ....*शीश महल का मुर्दा।*

लेकिन फिर भी प्रगतिवादी स्वर में उभरता आक्रोश, चरमराते मूल्यों के प्रति अनास्था, व्यवस्था के दुमुखे कारिन्दों के विरोध में आवाज़ और महानगरीय परिवेश में बहते शोर को काटता सन्नाटा इनकी रचनाओं का मुख्य स्वर रहा है। बेबसी का स्वर देखें :

बड़े जतन से ओढ़ी/खामोशी की चादर को
एक दर्दभरा अनगाया गीत/चर्र से चीर देता है।

.........*सन्दर्भों के अंतर्विरोध में*

बीते समय के संरक्षण के लिए व्यवस्था जी जान से लगी है—कब्रों की हिफाजत के लिए पुलिस का पहरा होगा :

उनके कफन पर श्रद्धा के फूल देश भक्ति के तराने महकेगें।

लेकिन वर्तमान के प्रति यही व्यवस्था उदासीन है:
और इधर अखबारों में छपकर रह गई है–
भाई के सामने बहन की नंगी लाश।
भाई के जिस्म में ठोंक दी गई है लोहे की कील।

.........*सुलगते जहन की संवेदना और कफन चोर*

डा. आयूब प्रेमी की काव्य रचनाओं में गद्यात्मकता देखी जा सकती है। अक्सर बड़े बड़े शब्दों को बीन कर गद्यात्मक कविताएं रची गई हैं। कहीं कहीं पर अर्धछन्द और तुक के मोह को कवि त्याग नहीं पाया है। अनेक रचनाओं में स्पष्ट बेमानी झलकती है।

मुर्दे ,कफन, कंकाल, कब्रिस्तान, कर्फ्यु, नंगी लाश, कफन चोर आदि शब्दों का प्रयोग इन कविताओं में बहुत हुआ है। लगता है कवि मृत्युगंन्ध से 'ओबसेस्ड' है। समाचार पत्र, अखबार, पुलिन्दें आदि शब्दों का प्रयोग भी अनेक स्थानों पर प्रतीकों के तौर पर किया गया है।

'सत्य का नया सूरज' 'सरों पर अचानक उग आए सींग' आदि बिम्बों के माध्यम से कवि अपनी बात को कहने में समर्थ है। गुब्बारे का प्रयोग इन पंक्तियों में बहुत सटीक हुआ है:

पिटा हुआ जीवन/गुब्बारे की तरह
आवेग में ऊपर उठा/ और अपने ही आकाश में
फूट कर बिखर गया।

लाल जबड़ों का खुलना, शीशे की दीवारों का झन– झनाकर टूट जाना आदि बिम्बों के माध्यम से अपनी बात कवि ने कही है।

एक बात बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की जाती है कि जिस धरती से कवि जुड़ा है उसकी गन्ध इनकी रचनाओं में नहीं मिलती। धरती, पहाड़ ,नदिया ,झीलें, फूल ,झरने आदि सब बेकार हैं। अक्सर प्रकृति से भाग कर सायास प्रगतिशील चोखटा पहनने के प्रयास में शायद हम भूल जाते हैं कि इधर इन्हीं प्रतीकों द्वारा बहुत सुन्दर रचनाएं लिखी गई हैं जो हमें अपने परिवेश से जोड़ती भी हैं और अपने परिवेश से कट जाने के दर्द को भी लिए हुए हैं। योजना मार्च 1979 में प्रकाशित इनकी एक रचना 'हेमन्ती संध्या' में अवश्य चिनारों की गलियों, झील, हिलटॉप रेस्तरां आदि का जिक्र आया है पर अंत में मृत्यु गंध कवि की मानसिकता पर हॉवी हो आई है:

हेमन्ती संन्ध्या में /सांसो को सिहराये प्राणों पै लहरायें।
नंगी नंगी हिलती हुई चिनारों की डालियां।

झील की नीली दर्पणी सतह पर
मन को न भरमायें/ तन को न बींध जायें
भूरे–भूरे बादलों के टुकड़े ....पृ024

स्वतन्त्रतापूर्व हिन्दी कहानी:

यद्यपि आज़ादी से पहले कहानी लेखन के क्षेत्र में कोई विशेष कार्य नहीं हुआ तथापि इक्के दुक्के प्रयास इस ओर संकेत करते हैं कि कविता लेखन के साथ साथ कुछ लोग कहानी लेखन में भी जुड़े हुए थे। इस ओर हुए प्रयासों में अक्सर इस प्रदेश से बाहर के कहानीकार वसुधा, उषा और भारती में प्रकाशित होते रहे हैं। एक नाम है उषा देवी मित्रा का जिनकी अनेक रचनाएं उषा में प्रकाशित हुई हैं। इन कहानियों में विशेषकर 'तुषार की नानी' चर्चा का विषय रही है। इस कहानी में एक बुढ़िया का ख़ाका बहुत सुन्दर ढंग से खींचा गया है और मानवीय अनुभूतियों के धरातल पर इस कहानी को बान्धा गया है।

जम्मू में प्रकाशित होने वाली प्रभाकर बहनों की कहानियां भी चर्चित कहानियों में गिनी जा सकती हैं। कु0 करूणा प्रभाकर द्वारा रचित 'नीली शहजादी', उषा के फरवरी 1944 के अंक में पृ0131 पर प्रकाशित की गई, ऐसी कहानी है जिसका धरातल लोक कथात्मक है। जबकी इनकी बहन कु0 सुदर्शन प्रभाकर की कहानी 'सेवा पथ का अंतिम बलिदान' सामाजिक धरातल पर मानवीय मनोभूमि को मुखरित करती कहानी है। यह कहानी उषा के मई 1946 के अंक में छाया हुई थी। ये दोनो बहनें जम्मू की हीं थीं पर उषा के प्रकाशन के बंद होने के साथ साथ ही इनकी रचनाएं भी प्रकाशित होनी बंद हो गई बाद में इनका कहीं कुछ पता नहीं चला।

आजादी से पहले और बाद में भी अपने लेखन को निरन्तरता देने वालों में एक नाम है श्री धर्म चन्द्र प्रशान्त का। प्रशान्त जहां हिन्दी आन्दोलन के साथ जुड़े हुए थे वहीं पर निबंध और कहानी विधा में निरन्तर लिख रहे थे। इनकी कहानियां अनेक स्थानीय पत्रों– पत्रिकाओं के साथ साथ देश की अन्य पत्रिकाओं में भी छप रहीं थीं। प्रशांत जी की एक कहानी 'रहमत' पत्रोत्तर रूप में भारती के अक्तूबर 1945 के अंक के पृ0 43 पर प्रकाशित हुई है। यही कहानी बाद में कल्चर अकादमी द्वारा 1961 में प्रकाशित गद्याजंलि में 'मालिन' नाम से दुबारा प्रकाशित की गई। 'रहमत' में मुख्य भूमिका एक भंगन की है तो मालिन में मुख्य भूमिका एक फूल बेचने वाली की है पर बाकी घटनाएं वही हैं कि मुख्य पात्रा लेखक के साथ बहुत खुली है और खूब खुलकर बातचीत करती है कि एक रोज़ लेखक का मित्र घर पर आता है और उसके व्यवहार से आसक्त होकर उसे छेड़ बैठता है तो उसकी इतनी दुर्गति होती है कि वह मुहं दिखाने के योग्य नहीं रहता।

7 मार्च 1945 में गुलाब पत्रिका का एक कहानी अंक प्रकाशित हुआ इसमें पांच कहानियां प्रकाशित की गई। इन कहानियों के कहानीकार स्थानीय है या बाहर के यह जानना कठिन है क्योंकि बाद में इन कहानीकारों की कहीं चर्चा नहीं मिलती। या तो इसके बाद इन्होंने लिखना बंद कर दिया या विभाजन के बाद कहीं बाहर चले गए और साहित्यिक क्षेत्र से सन्यास ले लिया हो या हो सकता है ये कहानीकार बाहर के ही हों हां एक बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि इस अकं की अंतिम कहानी 'माफी' निश्चय ही किसी बाहर के रचनाकार की है। रचनाकार का नाम है, कु0 तंकम्मा वर्गीज़।

इस अंक की पांचों कहानियां शिल्प का अधकचरापन लिए हुए हैं। किशोरावस्था की भावुकता और चमत्कार कहानी के पटल को कमजोर बना देते हैं। पहली कहानी 'दर्द भरा दिल' अनहोनी घटनाओं पर आधारित है। मुख्य पात्र कालेज की एक बैठक में एक लेख 'स्त्रियां ही गुलामी की जड़ है' पढ़ता है जिसे सुनकर एक छात्रा शामली बहुत परेशान हो जाती है और उसी चिंता में बीमार पड़ जाती है। मुख्यपात्र को जब इसका पता चलता है तो वह उसके यहां आकर माफी मांगता है पर वह सदमें में स्वर्ग सिधार जाती है पर मरते हुए अपने छोटे भाई को उसके सहारे छोड़ जाती है जिसे लेकर वह घर आता है पर घर में उस बालक को लेकर कलह शुरू हो जाती है अतः वह बालक को लेकर वन की ओर चला जाता है जहां भूख से उसकी मृत्यु हो जाती है। बड़ी हास्यस्पद स्थितियां हैं कि एक लेख को सुनकर किसी को इतना सदमा पहुंचना और फिर उसी अजनबी को, मरते समय, भाई को सौंपना और घर से लड़कर वनों की ओर चले जाना आदि अत्यिधिक आदर्शोन्मुख तथा भावुक लगता है तथा भाषा में अनगढ़ता और संवादों में ढीलापन कहानी कहानी नहीं बनने देते। इस रचना के रचनाकार थे श्री दत्त गुप्ता।

'लहर की मृत्यु' में मुख्यपात्र अचानक गाड़ी में किसी सुन्दर स्त्री से मिलता है जो उससे इतनी प्रभावित होती है कि उसे अपने घर ले जाकर सेवा करती है बाद में उसकी नौकरी भी लगवाती है। वह वहां से स्थानान्तरण हो जाता है जहां से वह कभी नहीं लौटता कि एक दिन अचानक उसे एक तार मिलता है कि उक्त महिला बहुत बीमार है जब वह उसके पास पंहुचता है तो वह दम तोड़ चुकी होती है । घर वाले उसे एक पत्र देते हैं जिसमें उक्त महिला ने उससे प्रेम जताया होता है।

अजीब स्थितियां अजीब लोग और अजीब कथानक का समावेश इस कहानी में मिलता है। एक विधवा स्त्री का अचानक एक पुरूष का अपने यहां ले आना और उसकी सेवा करना और उसपर तुर्रा यह कि उसे नौकरी भी दिलाने का कार्य एक अबला नारी करती है। उसके चले जाने पर कोई पत्रव्यवहार नहीं होता जबकि अजनबी से इतना मोह पहले दर्शाया गया है। इस कहानी के लेखक थे श्री जगदीश चन्द्र थापर। तीसरी

कहानी एक शीर्षकहीन कहानी है लेखिका हैं कु0 शान्ति उपाध्याय। कहानी पत्रोत्तर शैली मे लिखी गई है। 'मैं' नाम का पात्र पत्रों के माध्यम से अपने मन की व्यथा अपनी प्रेमिका 'प्रतिभा' को लिखता है और पत्रों के माध्यम से ही उन के मन की बात कहानी में खुलती है। प्रतिभा और मुख्य पात्र का चरित्र भी इन पत्रों के माध्यम से ही पाठकों तक पहुंचता है। इस कहानी के होने में संभावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता। यदि अति भावुक स्थितियों और भाषणबाजी को निकाल दिया जाता तो निश्चय की कहानी का स्वरूप निखर सकता था।

श्रीमती पुष्पलता माधवी द्वारा रचित कहानी 'चीखें' एक अजनबी भिखमंगीं की व्यथा कथा है जो अचानक एक गांव में दिखने लगी थी उस पर कभी कभी पागलपन का भी दौरा पड़ता था। गांव के अनेक लोग उस पर वासनात्मक दृष्टि भी रखते थे अतः गांव के बड़े लोगों ने सोचा कि उसका इस गांव से चले जाना ही बेहतर है पर उसे वहां से चले जाने के लिए न ही कोई प्रेरित कर सका और न ही उसके साथ जोर जबर ही किया जा सका कि अचानक दो अजनबी गांव में आते हैं और रात्रि के वक्त उसे उठाकर चले जाते हैं और कहानी सम्पन्न हो जाती है।

कहानी का आरम्भ बहुत सशक्त दिखता है और जब कहानी गति पकड़ रही होती है कि अचानक दो अजनबियों के आगमन के साथ ही इसका पटाक्षेप कर दिया गया। अनहोना अंत लगता है।

इस अंक की अंतिम कहानी कु0 तंकम्मा वर्गीज द्वारा रचित 'माफी' अनेक भावुक स्थितियों का मजमूया मात्र है जिसमें भावुक क्षणों में मिलन बिछुड़न और बाद में फिर मिलन की फिलमी दास्तां है।

इस अंक की कहानियां 'कहानी' की दीर्घा में ली भी जा सकतीं हैं कि नहीं इसमें शक की काफी गुंजायश है। कहानियां कमजोर धरातल और बिना किसी ठोस कथ्य पर आधारित हैं जिनमें तत्कालीन समाज का कोई अक्स हमें नहीं मिलता मात्र अपने मानसिक ऐश्वर्य और काल्पनिक तुष्टि के लिए लिखी गईं ये रचनाएं अधूरी कहानियां ही कही जाएंगी। वस्तुतः उन दिनों कहानी विधा अभी करवट ले रही थी।

इन सभी कहानिकारों में श्री धर्मचंद प्रशांत को छोड़कर आज कोई भी कहानीकार हमारे सामने नहीं है। अगर हम ऐसा कहें कि पचास के आसपास तथा बाद में, इन कहानीकारों की कोई रचना नहीं मिलती तो गलत न होगा। इसके अनेक कारण हो सकते हैं–विभाजन की विभीषिका, 1947 से लेकर लगभग 1955 तक किसी मंच का जम्मू में न होना, चूंकि हिन्दी साहित्य मंडल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा जैसे संगठन 1947 से पहले ही चुक गए थे और वसुधा, उषा, भारती, जैसी साहित्यिक

पत्रिकाएं भी छपना बंद हो चुकी थीं, आदि कारण रहे होगें कि इन नए रचनाकारों को मार्गदर्शन नहीं मिला परिणाम स्वरूप ये भीड़ में खो गए।

निबंध:

हिन्दी साहित्य की विधाओं में कविता और निबंन्ध ही दो ऐसी विधाएं रही हैं जो चर्चित भी थीं और मुखरित भी। जिस प्रकार राजनैतिक उथल पुथल ने हिन्दी कविता को प्रभावित किया है उसी प्रकार से, उन्हीं स्थितियों में, निबन्ध भी प्रभावित हुआ है। महाराजा रणवीर सिंह के राज्यकाल में अनेक संस्कृत की पाण्डुलिपियों की टीका हिन्दी तथा स्थानीय भाषाओं में की गई । ऐसे कई ग्रंथ पाण्डुलिपियों तथा पुस्तकाकार में श्री रणवीर संस्कृत शोध पुस्तकालय रघुनाथ मंदिर में संग्रहित हैं । यही निबन्ध और लेख परम्परा बाद में निरन्तरता लेकर उभरी। स्वतंत्रतापूर्व जनसाधारण और हिन्दी प्रेमियों के सन्मुख दो तीन मुद्दे थे–स्वतत्रंता संग्राम की पृष्ठभूमि, देश और विश्व भर में होने/घटने वाली राजनैतिक घटनाएं , जम्मू कश्मीर में हिन्दी भाषा और देवनागरी को लेकर पनप रहा संघर्ष और तीसरा मुख्य मुद्दा था स्त्री शिक्षा और समाज सुधार का।

1930 के आसपास उपर्युक्त विषयों को लेकर लेख,टिप्पणियां तथा पत्र–पत्रिकाओं में सम्पादकीय आदि लिखे जा रहे थे। यद्यपि इस ओर छुटपुट प्रयास पहले भी होते रहे हैं लेकिन निरन्तरता लेकर हिन्दी की यह विधा इसी काल में मुखरित हुई । उन दिनों देश की आज़ादी की लड़ाई बहुत जोर शोर के साथ लड़ी जा रही थी जिससे यह प्रदेश भी प्रभावित था। देश के साथ साथ अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हो रही उथलपुथल को भी यहां के रचनाकारों ने अपना मुद्दा बनाया। इन रचनाओं को स्थान मिला स्थानीय पत्र–पत्रिकाओं में । रणवीर, दीपक, वसुधा, भारती, उषा, आदि पत्र–पत्रिकाएं कुल देश की पत्रकारिता के साथ साथ चल रहीं थी अतः ओजपूर्ण वाणी के लिए इनसे बड़ा और कौन सा माध्यम हो सकता था!

भारती के नवंबर 1945 के अंक में श्रीहरि का एक लेख सामयिक विषय 'प्रगतिवाद और प्रगतिपंथ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसमें प्रगतिवाद का विश्लेषण कर उस पर प्रगतिपंथ को वरीयता दी गई थी। इस प्रदेश के रचनाकारों के साथ साथ देश के अनेक बुद्धिजीवियों के लेखों को भी प्रकाशित किया जाता रहा है अतः इस संदर्भ में उनका जिक्र गलत न होगा। उषा दिसम्बर 43 के अंक में प्रो0 जगन्नाथ मिश्र कृत 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र', प्रभाकर माचवे कृत 'सोवियत समाज के चार प्रश्न' तथा उषा मई 46 के अंक में प्रो0 हमायुं कबीर कृत 'मुस्लिम समुदाय और पाकिस्तान,' आचार्य नरेन्द्र देव कृत 'नई व्यवस्था में एशिया का स्थान' तथा श्री सहदेव चक्रवर्ती विद्यांलकार कृत 'भारत वर्ष और समाजवाद' तथा भारती के नम्वबर 45 अंक में सामयिक विचारधारा के अंतर्गत 'आजाद

हिंद सेना और जावा स्वतन्त्रता आंदोलन' आदि लेख इस ओर संकेत करते हैं।

नवबंर 1945 के भारती के अंक में 'हैदराबाद का भीतरी चित्र' लेख प्रकाशित हुआ जो समसामयिक विषय पर एक चर्चित लेख था। ऐसा लगता है कि यह लेख सम्पादकीय विचार थे जिन्हें एक 'हैदराबादी' के नाम से प्रकाशित किया गया था। इस लेख में साम्प्रदायिक समस्या, भाषा की दृष्टि से हैदराबाद का बटवारा, नागरिक स्वंतत्रता का हनन्, राष्ट्रीय मुसलमान, राजनीति और निज़ाम आदि विषयों को लिया गया था जो उन दिनों अति चर्चित थे। वैसे भी हैदराबाद की रियासत के भारत गणराज्य में मिलन की अनेक अटकलें लगाई जा रहीं थीं और निजाम की पैंतरेवाजी का राजनैतिक क्षेत्रों में विश्लेषन किया जा रहा था।

दूसरा प्रबल मुद्दा प्रदेश की शिक्षा प्रणाली में हिन्दी और देवनागरी लिपि के लिए उन दिनों चल रहा आंन्दोलन था जिसे राजनैतिक हलकों में बड़ी गम्भीरता के साथ लिया जा रहा था जहां तक कि महाराजा हरिसिंह के राज्य काल की विधान सभा में नेशनल कान्फ्रेंस के अनेक सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया था– हिन्दी और देवनगरी के विरोध में जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जम्मू में अनेक नेशनल कांफ्रेस के सदस्यों ने अपनी पार्टी से ही यह कहकर इस्तिफा दे दिया था कि ऐसी पार्टी जो धर्म निरपेक्ष होने का दम भरती है पर हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा कहकर नकारती है से हमारा कोई सम्बध नहीं। इन हिन्दी प्रेमियों में प्रमुख थे श्री बंसी लाल सूरी। इस आंन्दोलन की चर्चा लगभग सभी स्थानीय पत्रों और पत्रिकाओं में हुई। भारती ने हिन्दी विशेषांक निकाला और अपने दूसरे अंकों में इस मुद्दे पर अनेक लेख छापे और सम्पादकीय लिखे। नवंबर 45 अंक में अपनी बात कहते हुए सम्पादक वर्ग ने कश्मीर की हिन्दी समस्या पर खूब खुलकर बात की। इसी प्रकार मई 41 के अंक में 'कश्मीर की लिपि समस्या,' 'कट्टरपंथियों से दो बातें' आदि लेख इस पत्रिका में प्रकाशित हुए। 1932 में प्रकाशित वसुधा के प्रवेशांक में जंग बहादुर सिंह का एक प्रबुदध्‌ लेख 'भाषाओं में लेनदेन' लेखक की व्यापक दृष्टि और उनके भाषा अध्ययन की ओर संकेत करता है। भारती के नवंबर 45 के अंक में अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के सभापति प्रबुद्ध विद्वान श्री के0एम0 मुंशी का भाषण एक लेख के रूप में पृ029 पर प्रकाशित है। इस लेख में उन्होंने हिन्दी भाषा के विकास का ऐतिहासिक पक्ष देते हुए खड़ी बोली के रूप में उसे स्थापित किया है। इसी अंक में, पृ0 16 पर। डा0 राम चरण सिंह महेंद्रू का एक व्यवहारिक लेख 'यह तो आप कर ही सकते हैं' प्रकाशित है जिसमें उन्होंने हिन्दी के उपयोग का अपने दैनिक जीवन में महत्व दर्शाया हैः "हिन्दी आपसे कोई बहुत बड़ी मांग नहीं करती। उसकी आकांक्षा केवल यही है कि आप उदारतापूर्वक इसे अपने निजी जीवन में उपयुक्त स्थान दीजिए"। इसी अंक में पंजाब प्रांत हिन्दी सम्मेलन के प्रधान पं0 ठाकुर दत्त का भाषण एक लेख के रूप में

प्रकाशित हुआ है जिसमें हिन्दी के उपयोग की अनिवार्यता पर उन्होंने जोर दिया है।

उषा के दिसम्बर 43 के अंक में संत राम बी0 ए0 का एक लेख 'राष्ट्रभाषा का प्रश्न पर जोर देते हुए लेखक ने इसे ही राष्ट्रीय भाषा बनाने के लिए तर्क दिए हैं। इनके इलावा इन पत्र पत्रिकाओं में 'चलचित्रों के लिए उपयुक्त भाषा' के लिए तर्क दिए हैं। भारती, नवं 45 में 'क्या हिन्दी रियासत की भाषा हो सकती है' आदि लेख इस मुद्दे पर लिखे गए हैं।

उन दिनों तीसरा मुद्दा नारी उत्थान को लेकर सामने आया। इस विषय पर अनेक लेख एवं निबधं लिखे गए। दीपक के प्रवेशांक 15.1.39 में पं. हरदत्त शर्मा का एक लेख प्रकाशित है 'स्त्रियां देश के भविष्य को उज्जवल बना सकती है'। इसी अंक में आर्य कन्या पाठशाला, जम्मू क़ी मुख्याध्यपिका श्रीमती विद्यावती का लेख 'क्या भारतीय नारी का आदर्श स्थिर रह सकता है' और इन्हीं का एक और लेख लगभग इसी विषय पर 'हम अधिक चाहती हैं' भारती के मई 41 के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'समाज में स्त्रियों का स्थान' लेख वसुधा के प्रवेशांक नवंबर 1932 में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक थे श्री देवदत्त शर्मा 'प्रभात'। 'नारी, एक शब्द चित्र' श्री आशोक कृत यह लेख पृ0 47 पर भारती अक्तूबर 45, ज्ञानेन्द्र कुमारी सुशमा कृत 'स्त्री शिक्षा' उषा दिस0 43 के पृष्ठ 94 पर प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार बच्चों के कालम में विश्व की श्रेष्ठ नारियों पर लेख एवं रेखाचित्र प्रकाशित किए गए हैं– मसलन फ्लोरेंस नाईटिंगेल पर लघु लेख भारती 1945 के अक्तूबर अंक में प्रकाशित है।

इसके इलावा ललित निबन्ध तथा साहित्यिक एवं गवेषाणात्मक निबन्ध भी इस प्रदेश में हिन्दी में लिखे गए। उषा के दिस0 1943 के अंक में श्री रामावतार विद्यालंकार द्वारा पृ0 45 पर 'अहम्' विषय पर एक विश्लेषणात्मक ललित निबंध प्रकाशित किया गया।इसकी कुछेक प़ंक्तियां देंखें:

"मनुष्य मांस की चादर ओढ़कर आत्मविस्मृति में डूब जाता है। यह विषय रस के कटु घूंटों से खिन्न अपने मधुर अविनासी आत्मरूप की ओर मुंह फेर लेता है............ ...जब मनुष्य अहं के शुद्ध निर्मल अविनाशी रूप को देखता है तब उसे अपने भीतर डुबकी लगानी पढ़ती है"। इसी प्रकार पं0 रूद्रमणि बी0 ए0 जम्मू कृत 'सन्मार्ग' ललित निबन्धों की कोटि में लिया जा सकता है। यह निबन्ध दीपक के प्रवेशांक के पृ0 9 पर प्रकाशित किया गया है । निबन्ध की कुछ पंक्तियां देंखें: "जिस तरह तृण और वृक्ष, पत्र, वायु के विषैले तत्त्वों को खींचकर जीवन दायक आक्सीजन देते हैं वैसे ही सच्चरित्र मनुष्य अपने अस्तित्व मात्र से संसार के कुवृत्ति रूपी विष को शमन करके उदात्त भावों का संचार करता है। इन दोनों निबन्धों को या तो हम आचार्य राम शुक्ल के भावात्मक निबन्धों का स्वरूप कह सकतें है या उनके निबन्धों से प्रभावित निबन्ध, पर यह सत्य है

कि इनका स्वरूप आचार्य के ललित निबन्धों से मिलता है।

वसुधा के प्रवेशांक नवबंर 1932 में प्रकाशित श्री रमाकान्त शास्त्री कृत 'रंगीला संसार' भी एक उच्च कोटि का निबन्ध कहा जा सकता है। इस निबन्ध में शास्त्री जी ने रंगों के संसार पर रोशनी डाली है। रंगों का हमारे शरीर, मन और मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका संक्षिप्त विश्लेषण इस निबन्ध में हमें मिलता है–"चारों ओर हरी हरी मृदु वृक्ष, लताएं, लाल, नीले, पीले असंख्य रंगों के कमनीय फूल न केवल हमारे मन की प्रसन्नता, बल्कि कई दिशाओं में हमारे स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।प्रातःकाल सूर्य का रंग मानव हृदय में कैसा उन्मादक असर पैदा करता है। उसी प्रकार सायंकाल मनोहर रंगों का कैसा प्यारा दृश्य होता है।"

इनके इलावा साहित्यिक, अन्वेषणात्मक लेख भी इस दौर में लिखे गए। पं0 रामचन्द्र तिवारी कृत 'कविता का जीवन में स्थान' (उषा, दिस043) शान्तिप्रिय द्विवेदी द्वारा रचित 'हिन्दी कविता की पटभूमि' (वही) आदि कितने ही लेख इन पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। यद्यपि ये लेखक प्रदेश से बाहर के थे तथापि इन लेखकों ने स्थानीय पत्रिकाओं में छपकर यहां की लेखनी को प्रभावित किया है। इन के इलावा कु0 राज बिहारी कृत 'आज की कहानी' और उषा की सम्पादिका का वक्तव्य कि 'आज का साहित्य किस ओर' तत्कालीन साहित्यकारों की सतत् चेतना की ओर संकेत करता है।

उपर्युक्त विवेचन से हम आसानी से निष्कर्ष निकाल सकतें हैं कि हिन्दी लेखकों का एक कारवां तीस के दशक से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति और बाद में भी इस ओर कार्यरत रहा। ये लोग अपने आसपास के प्रति अति जागरूक और चिन्तनशील थे। जिन लेखकों की रचनाओं को बार बार पढ़ने का अवसर प्रदान हुआ है वे थे–सर्वश्री रमाकांत शास्त्री, देवदत्त शर्मा 'प्रभात,' बंसी लाल सूरी, पं0 हरदत्त शर्मा, पं0 हरिश्चन्द्र 'विद्यार्थी,' पं0 रूद्रमणि बी0 ए0, सुश्री विद्यावती, सुश्री शान्ता भारती, सुश्री शकुंतला सेठ आदि।

नाटक:

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह नाटक लेखन भी इस प्रदेश में बहुत बाद में शुरू हुया। जम्मू के अनेक गावों में स्वतंत्रता से पहले रामलीला के मंचन का प्रचलन था जिसमें उस गांव एवं आसपास के लोग भाग लेते थे और जन साधारण के लिए यह केवल नाटक नहीं था। उनकी श्रद्धा से भीगा यह मंच था जिस पर एक विशेष पखवाडे में हर रोज वे संध्या होने की अपेक्षा में पहले से ही मंच के आस पास मंडराने लगते। चरित्र अपना अभिनय बहुत श्रद्धा से निभाते और उन दिनों खानपान का विशेष ध्यान रखा जाता। यह सभी कुछ बहुत अनुशासन में होता आया है। आज भी बसोहली, गढी और दीवान मंदिर के मंचों पर खेली जाने वाली रामलीला का अपना विशेष स्थान है।

लेकिन इन नाटकीय प्रक्रियाओं की भाषा उर्दू हुआ करती थी और वह भी ठेठ पर्शियन उर्दू । अक्सर सम्वाद काव्यात्मक होते। वस्तुतः पुस्तकाकार में इस रामलीला का आलेख उपलब्ध था और मौलिक प्रयास इस ओर न के बराबर हुए हैं। हां दृश्यों के बीच की अवधि को पाटने के लिए, ताकि दूसरे दृश्य के लिए मंच आदि सज जाए, डोगरी में प्रहसन प्रस्तुत किए जाते थे। वस्तुतः ये मौलिक प्रयास मुख्य मंचन से कहीं ज्यादा दिलचस्प और चर्चित होते। कहीं कहीं पर हिन्दी अथवा हिन्दोस्तानी में भी मौलिक प्रयास किए गए पर ये प्रयास बहुत कम थे। हां कभी कभी देश के दूसरे स्थानों से यहां रास मंडलियां रासलीला रचने के लिए आतीं और जम्मू के नागरिकों के लिए यह एक बहुत महत्वपूर्ण अवसर होता जब बृज भाषा में अभिनीत कृष्णलीला को देखने के लिए सारा नगर उमड़ आता था।

1930 के आसपास हिन्दी नाटक लेखन के क्षेत्र में धीरे धीरे लेखक आने लगे थे। इस सिलसिले में जो पहला प्रकाशित नाटक मिलता है वह है श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री कृत 'पार्वती परिणय' जो वसुधा के प्रवेशांक ,नवंबर, 1932 में पृ013 पर प्रकाशित हुआ था। कथ्य पौराणिक कथा पर आधारित है जिसमें शिवजी के कण्ठ से राम की महिमा सुनकर सती पार्वती श्री राम की परीक्षा लेने की बात मन में ठान लेती है और शिव जी के साथ पंचवटी पंहुच जाती है। शिव जी उसे समझाते हैं कि वह श्री राम की परीक्षा न ले परन्तु पार्वती श्री राम को समझना चाहती हैं और एक रोज शिवजी को सोता छोड़कर वह सीता का रूप धारण कर पंचवटी की ओर चल पड़ती हैं। श्री राम उन्हें तुरन्त पहचान लेते हैं और लक्ष्मण के साथ उनके सामने नतमस्तक हो जाते हैं तो सती उन्हें आर्शीवाद देते हुए लौट आती है। बाद में बहुत पश्चाताप से भर उठती हैं कि नाहक उन्होंने श्रीराम पर संदेह किया था।

नाटक एक अंक में दो दृश्यों के साथ सम्पन्न होता है। कुल पांच पात्र हैं। ऋषि अगस्त्य, शिवजी, पार्वती, श्रीराम और लक्ष्मण। भाषा में प्रवाह है और सम्वाद पात्रों के उपयुक्त हैं। राम और लक्ष्मण के सम्वाद छोटे छोटे हैं और बीच बीच में दृश्य मंचन के लिए संकेत दिए गए हैं। लेखक वातावरण को रूप देने में समर्थ है जो इस बात की ओर संकेत है कि वह या तो नाटकों के मंचन के साथ जुड़ा रहा होगा या निरन्तर नाटक लिख रहा होगा।

इस नाटक के प्रकाशन के वर्षों बाद मई 1941 के भारती अंक में जम्मू की ही कु0 प्रकाशवती भूषण द्वारा 'वीर रमणी' नामक एक दो अंकीय नाटक प्रकाशित किया गया जो ऐतिहासिक कथानक लिए हुए था। कथानक बहुत रोमांचक है। राजा दुर्गा सिंह के राज्य पर कोई नवाब भारी सेना लेकर आक्रमण कर देता है और सारे राज्य की घेराबन्दी कर ली जाती है। राजा दुर्गा सिंह की रानी युद्ध में जाने के लिए आतुर है

पर राजा अपने मंत्री और सेनापति को यह कार्य सौंपता है। राजा की सेना कम है सैनिक बड़ी बहादुरी से लड़ते हैं। चारों ओर घमासान युद्ध चल रहा है कि राजा अपने दुर्ग के परकोटे से क्या देखता है कि एक वीर रमणी दुश्मन की सेना से लड़ते हुए नवाब के हाथी तक पंहुच जाती है और पलों में ही हाथी को मार गिराती है और नवाब को जंजीरों में जकड़ लिया जाता है। अन्तराल के बाद एक अन्य दृश्य में रानी युद्ध के वस्त्रों में लैस नवाब को राजा के कदमों पर फैंक देती है। राजा सुखद आश्चर्य से भर उठता है और रानी की भूरि भूरि प्रशंसा करता है और रानी से कहता है कि यह तुम्हारा शिकार है इसका भविष्य भी रानी के कथन पर ही निर्भर करता है। नवाब गिड़गिड़ाने लगता है और अपने प्राणों की भिक्षा मांगते हुए प्रण करता है कि भविष्य में वह कभी भी इस राज्य की ओर देखेगा नहीं।

इस एंकाकी में कुल चार पात्र हैं– राजा, नवाब, रानी और मंत्री तथा दो दृश्यों में यह एकांकी सम्पन्न होता है। भाषा सरल एवं प्रवहमान है और सम्वाद ऐतिहासिक नाटकों के उपयुक्त हैं और परिवेश को खोलने में सहायक होते हैं।

स्थानीय लेखकों के इलावा मदन मोहन 'राकेश' के भी कई नाटक इन पत्र–पत्रिकाओं में छपे हैं। उषा के दिसम्बर 1943 के अंक में एक एंकाकी प्रकाशित है। यह कहना कठिन है कि इन नाटकों का मंचन कभी हुआ कि नहीं। मदन मोहन राकेश बाद में मोहन राकेश हो गया और नाटक के क्षेत्र में खूब चर्चित हुआ जिसने आधुनिक नाटक धारा को बाद में खूब प्रशस्त किया।

स्वतंत्रता से पूर्व हिन्दी में प्रकाशित तीन और नाटक सामने आए हैं इनमें से दो के रचनाकार हैं श्री धर्म चन्द प्रशान्त और तीसरे नाटक के नाटककार हैं श्री वीर वीरेश्वर।

पहले हम वीर वीरेश्वर कृत 'देशभक्त हेराल्ड' नाटक लेते हैं जो उषा के अंक अक्तूबर 1944 में पृ0 375 पर प्रकाशित हुआ है। यह एकांकी द्विवतीय युद्ध की विभीषिका को इंगित करता हुआ उन महान देशभक्तों को स्थापित करता है जो अति कठिन परिस्थितियों में भी नहीं घबराए अपितु अपने पूरे जीवन के साथ अपनी आजादी और निजी अस्तित्व के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। कथानक दो पोलिश पात्रों को केन्द्र में लेकर चलता है। युवक नाजी सैनिकों द्वारा ग्रिफ्तार कर लिया जाता है तो उसकी प्रेमिका उसे छुड़ाने में कटिबद्ध हो जाती है। उसे अनेक यातनाएं झेलनी पड़ती हैं लेकिन वह यह जानने में सफल हो जाती है कि उसके प्रेमी को कहां कैद में रखा गया है। फिर शुरू होता है उसका संघर्ष, उसे छुड़वाने के लिए, पर उसकी कीमत बहुत बड़ी है, उन्हें अपने राष्ट्र के प्रति विमुख होना पड़ेगा जो उन्हें कदापि स्वीकार नहीं। अन्ततः

बीमार पोलिश युवक जब छूटता है तो बहुत देर हो चुकी होती है और वह अपनी बीमारी की ताक न पाकर अपनी प्रेमिका की बाहों में अपनी इहलीला यह कहकर समाप्त कर डालता है कि वह देश की अस्मिता को दाव पर नहीं लगा सकता था और वह भी इन्हीं आदर्शों पर जिए। संवाद सटीक हैं और द्वितीय युद्ध की अनेक स्थितियों को उभारनें में सहायक हैं। पूरा नाटक पांच दृश्यों में समाप्त है।

उषा के 1942 के एक अंक में सुश्री शकुंतला सेठ द्वारा रचित एक एकांकी 'कंलक' मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखा गया व्यक्ति की कुण्ठाओं को उभारने में सफल हुआ है। मुख्यपात्रा शान्तिनिकेतन की तरह एक विद्‌यालय खोलती है और लड़कियों के सर्वांगीन विकास में लग जाती है पर उसके हर कदम पर उसका विरोध होता है। अगर वह किसी पुरुष की सहायता चाहती है तो उस पर छींटे कसे जाते हैं और अगर किसी समाज सुधारक को बुलाना चाहती है तो लोग उंगली उठाने लगते हैं। वह कुण्ठित हो जाती है कि यह सब आरोप किसलिए इसी उहापोह में नाटक चुक जाता है। नाटक में यद्‌यपि स्थितियां उभरी हैं तथापि इसके शीर्षक को यह सार्थक नहीं करतीं।

उषा के जुलाई 1944 के अंक में प्रकाशित श्री प्रशान्त कृत एकांकी 'हंसी सुभद्रा' पौराणिक कथा पर आधारित है जब अर्जुन और श्रीकृष्ण युद्‌धरत होते हैं तो सुभद्रा बीच बचाव कर उन्हें अलग करती है और अंन्त में सुखद घटनायें उन्हें जोड़ देतीं हैं। प्रशान्त जी का ही लिखा हुआ दूसरा नाटक 'दो नोट' उषा के फरवरी 1946 के अंक में प्रकाशित हुआ जिसमें एक ओर तो अत्यंत अभाव में जीते एक परिवार की दास्तां है तो दूसरी ओर मुख्य पात्र ऐश्वर्य में जीने के लिए उद्‌यत है।

प्रशांत जी की भाषा इन नाटकों के संवाद में सुघढ़ता को लिए हुए है और नाटकों के संवादों में प्रवाह है विशेषकर सुभद्रा वाले नाटक में संवादों में बड़ी नपी तुली शिष्ट भाषा का प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार जम्मू में, हिन्दी में, नाटक लिखने वालों में यही दो चार नाम आते है जिन्होंने स्वतंत्रता से पहले इस ओर प्रयास किए–वे हैं सर्वश्री जगदीश शास्त्री, वीर वीरेश्वर, धर्मचंद्र प्रशांत, सुश्री शंकुतला सेठ, सुश्री प्रकाशवती भूषण आदि।

उपर्युक्त नाटकों का कभी मंचन हुआ हो इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती।

कश्मीर में भी शुरू में पारसी थियेटर का ही बोलबाला था। वस्तुतः महाराजा हरिसिंह के सिंहासनारूढ़ होने पर बंबई से एक पार्टी जम्मू और कश्मीर में नाटक करने के लिए बुलाई गई थी जिसने दोनो नगरों–जम्मू और श्रीनगर में पारसी शैली पर नाटकों

का मंचन किया था जिसके फलस्वरूप यहां के नाटककारों ने भी इस ओर प्रयास करने शुरू कर दिए। शुरू में जो भी नाटक खेले गए या तो रूपान्तरित थे या पौराणिक कथाओं पर आधारित थे। बाद में आगा हशर कश्मीरी द्वारा लिखे गए उर्दू भाषा में अनेक नाटक मंचित हुए। इन नाटकों में 'यहुदी की बेटी' बहुत चर्चित हुआ। इसी नाम से बाद में आगा साहब ने एक फिलम भी बनाई थी जो लाहौर में निर्मित होकर सामने आई।वस्तुतः कश्मीर में उन दिनों स्थानीय भाषा में लोक नाटक 'भांड पाथर' का देहाती इलाकों में बहुत रिवाज था। आज भी कहीं कहीं पर ये लोक नाटक देखने को मिल जाते हैं। हिन्दी में कभी उस समय मौलिक लेखन इस क्षेत्र में हुआ हो इसके कोई प्रमाण नहीं मिलते। मंच से जुड़े श्री एम0एल0 क्यमू के अनुसार हिन्दी में स्वतंत्रता के बाद भी कोई खास प्रयास इस ओर नहीं हुए। आज़ादी से पहले जो दो चार नाटक लिखे गए वे उर्दू में थे। हां कश्मीरी भाषा में प्रहसन और छोटे मोटे नाटकों का प्रचलन शुरू हो चुका था। कश्मीर में रंगमंच का आगाज़ यद्यपि 'कश्मीरी फोक थिएटर' से माना जाता है जो सदियों से गावों कस्बों आदि में खेला जाता रहा है। इसका मुख्य रूप हमें भांड पाथर में मिलता है पर आधुनिक थिएटर 'पारसी थिएटर' से शुरू हुआ माना जाता है। 1924 के आसपास विभिन्न रास मंडलियों का यहां आना हुआ था इनमें सावनमल्ल की रास मंडली विशेष तौर पर चर्चित हुई। ये मंडलियां विभिन्न स्वांग मंच पर रचतीं और नकलों के माध्यम से विषय को आगे बढ़ाया जाता था। पारसी थिएटर को ही आधार मानकर कश्मीर में 'अमेच्योर ड्रामेटिक कलब' की स्थापना 1924 में हुई और पहला नाटक 'सुदामा चरित' खेला गया। इसे आगा हश्र कश्मीरी ने लिखा था। इस क्लब की सरपरस्ती स्वयं महाराजा प्रताप सिंह कर रहे थे और उनके बाद महाराजा हरि सिंह इस क्लब के सरपस्त बने। इस क्लब के साथ बड़ी बड़ी हस्तियां जुड़ी हुई थीं । मसलन इस क्लब के प्रधान श्री अमर नाथ पूर्बी थे जो उस समय कस्टम के विभाग में आई0 जी0पी0 थे, निदेशक थे कैप्टन राम कृष्ण, स्टेज मैनेजर श्री चेत राम चोपड़ा और संगीत निदेशक थे मास्टर झण्डे खान। अक्सर इस क्लब द्वारा आग़ा हश्र कश्मीरी द्वारा लिखे नाटक मंचित किए जाते रहे हैं। मुख्य नाटकों में खूबसूरत बला, अछूत की लड़की शारदा, महाभारत, बावफा कातिल ,वीर अभिमन्यु, दानवीर कर्ण आदि खूब सराहे गए। यह क्लब 1937 तक अपने कार्यक्रम देता रहा और दर्शकों की भीड़ इन नाटकों को देखने उमड़ आती थी। धीरे धीरे दूसरे लेखक भी अब उभरने लगे थे। इसके साथ साथ अनेक नए क्लब भी अब मैदान में आ चुके थे जिनमें से 'सरस्वती ड्रामेटिक क्लब','फ्रेंड ड्रामेटिक क्लब', 'कश्मीर थिएटर,' 'हिमालय थिएटर,' 'नेशनल थिएटरीकल ग्रुप' आदि प्रमुख थे। इन्न क्लबों द्वारा पं0 नारायण प्रसाद बेताब द्वारा रचित 'कृष्ण सुदामा' और 'पत्नी प्रताप' आदि नाटक खेले गए।

'कश्मीर हमारा' नाटक तो खूब चर्चित हुआ। इसे 'द्रावियार क्लब' ने सैनिकों के लिए कई स्थानों पर खेला। यह नाटक सुदामा कौल द्वारा लिखा गया था। दूसरे चर्चित नाटकों में 'समाज की भूल' और 'चित्र' लिए जा सकते हैं इन दोनों नाटकों के लेखक थे श्री त्रिलोकी नाथ वैशनवी 'रफीक' और इन्हें उक्त क्लबों ने 1945/46 में खेला। एक और नाटक बहुत चर्चित हुआ, विशेषकर छात्रों और छात्राओं में, यह था सुदामा कौल द्ववारा रचित 'शंकर पार्वती'। सुदामा कौल स्वयं भी नाटकों में अभिनय करते रहे हैं इन्होने 14 वर्षों तक नारी पात्र का रोल किया था। इन नाटकों में आश्चर्यजनक 'ट्रिक सीन' दिए जाते थे मसलन शिव लिंग का बीच में टूटना और भगवान शिव का उसमें से प्रकट होना आदि। इन आश्चर्यजनक दृश्यों को मास्टर काशी नाथ सुनियोजित करते थे।

जम्मू में उन दिनों एक नाटककार का नाम आता है जिसके कई नाटक कश्मीर में खेले गए यह थे श्री नूर इलाही जो दन दिनों वजीरे वजारत के ओहदे पर कार्य कर रहे थे। इनकी दो नाटकों की पुस्तकें भी बाद में प्रकाशित हुईं 'तख्ते ताउस' और 'महाबली'। जम्मू में एक प्रसिद्ध प्रकाशन घर था ,राज महल प्रकाशन। पहली पुस्तक वहीं पर प्रकाशित की गई और दूसरी पुस्तक उर्दू बुक स्टाल लाहौर से छाया हुई थी। इन दोनों पुस्तकों की भाषा उर्दू थी ,सरल उर्दू जिसे उन दिनों हिन्दुस्तानी की संज्ञा दी जाती थी।

इस लेख को सम्पन्न करने से पहल आग़ा हश्र कशमीरी द्वारा लिखे हुए एक नाटक 'यहुदी की बेटी' का ज़िक्र करना बहुत ज़रूरी हो जाता है क्योंकि इस नाटक को अनेक क्लबों द्वारा खेला गया कि बाद में आग़ा हश्र कश्मीरी ने लाहोर में जाकर इस पर एक फिल्म भी बनाई थी। यह फिल्म भी अच्छी खासी चर्चित फिल्मों में से एक थी। इस फिल्म के बाद तो आग़ा साहब लाहोर में ही फिल्म संसार में ऐसे रच बस गए कि थियेटर की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया लेकिन कश्मीर के रंगमंच के लिए उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। यह बात अलग है कि वे स्वयं कश्मीरी नहीं थे। कभी उनके पुरखे कश्मीर में रहते रहें होंगे पर उनका कश्मीर में प्रवास बहुत कम रहा है।

इस प्रकार कश्मीर में रंगमंच की नीवं लगभग 1924 में पड़ी थी। स्वतंत्रता के बाद अनेक रंगकर्मी इस क्षेत्र से जुड़े और रंगमंच को अनेक नए आयाम दिए। इनकी चर्चा हम आगे कर रहे हैं।

पत्रकारिता :

अहिन्दी भाषी क्षेत्र होते हुए भी जम्मू कश्मीर से अनेक हिन्दी पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित होती रही हैं। स्वतत्रतां से पूर्व हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए जम्मू

में एक शक्तिशाली आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। जिसमें यहां के बुदिजीवियों, हिन्दी प्रेमियों और राजनितिज्ञों ने बढ़चढ़ कर भाग लिया था और तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री आयंगर महोदय को मजबूर कर दिया कि पाठ्यक्रम में पर्शियन लिपि के साथ साथ देवनागरी को भी अपनाया जाए। इस व्यापक आंदोलन का ब्योरा अन्यत्र दिया गया है। यहां इसका संदर्भ इसलिए आवश्यक हो जाता है कि इस आन्दोलन ने अनेक हिन्दी रचनाकारें, आन्दोलनकर्त्ताओं और विद्वानों को हिन्दी पत्रकारिता की ओर उन्मुख किया था। जब यह आंदोलन अपने उरूज पर था तो श्री आयंगर महोदय ने आंदोलनकर्त्ताओं से सीधा प्रश्न किया था कि क्या बात है कि यहां हिन्दी में एक भी समाचार पत्र और पत्रिका प्रकाशित नहीं होती जबकि उर्दू और अंग्रेजी में तो पत्र– पत्रिकाएं निकल रही हैं। यह एक ऐसी चुनौती थी कि आंदोलनकर्त्ताओं को इस ओर ध्यान देना पड़ा चुनाचे दीपक, भारती और उषा के नाम से एक साप्ताहिक पत्र और दो मासिक पत्रिकाएं उभरकर सामने आईं। भारती और उषा तो राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं के रूप में स्थापित हुईं और देश के स्थापित साहित्यकार इन पत्रिकाओं में प्रकाशित होने में अपना गौरव महसूस करते थे। लेकिन इन पत्रिकाओं से बहुत पहले का भी इतिहास हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में हमें मिलता है।

पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि जम्मू कश्मीर में हिन्दी पत्रकारिता की नींव साप्ताहिक समाचार पत्र 'विद्याविलास' के प्रकाशन के साथ रखी गई। सन् 1867 ई0 में महाराजा रणवीर सिंह के राज्यकाल में विद्याविलास प्रेस स्थापित की गई इसी प्रेस में, इसी नाम से यह सप्ताहिक पत्र पं0 वेकंटराम शास्त्री के संपादन में प्रकाशित होने लगा। यह द्विभाषीय समाचार पत्र था जिसके 12 पन्नों में से छः पन्ने हिन्दी को समर्पित थे। वस्तुतः हिन्दी और उर्दू अलग अलग पन्नों पर न छपकर एक ही पन्ने पर दो कलमों में छापे जाते थे । एक कालम में उर्दू में मसौदा प्रकाशित किया जाता था और दूसरे कालम में उसी मसौदे का हिन्दी रूपान्तरण देवनागरी में दिया जाता था। वस्तुतः यह समाचार पत्र कम सूचना पत्र अधिक था। इस पत्र में कोई भी विवादास्पद टिप्पणी नहीं दी जाती थी अपितु अधिकतर प्रशासनीय सूचनाएं ही होती थीं। इस समाचार पत्र का वार्षिक चन्दा 12 रु0 था पर कार्यालयों में बिना किसी चंदे के इसे बांट दिया जाता था।

विद्याविलास की ही तरह एक और पाक्षिक समाचार पत्र राज्य के शिक्षा विभाग की ओर से प्रकाशित किया जाता रहा है। इस द्विभाषीय पाक्षिक पत्र का नाम था 'धर्म दर्पण' । यह आठ पन्नों की पत्रिका थी और उर्दू तथा हिन्दी भाषा में एक साथ छपती थी। यह पत्रिका भी विद्या विलास में ही प्रकाशित होती रही है। इसके छपने और साजसज्जा में रामदित्ता का नाम प्रमुख तौर पर लिया जाता है। ये दोनों पत्र महाराजा रणवीर सिंह

के राज्यकाल में निकले थे और उन्हीं के साथ बंद भी हो गए। चूंकि महराजा रणवीर सिंह इन पत्रों के संरक्षक थे अतः इन पत्रों को सभी सरकारी महकमें लेते थे। महाराजा की मृत्यु हो जाने पर इनका संरक्षण खत्म हो गया था अतः दोनों पत्र 1885 में बंद हो गए। इन दोनों पत्रों के बंद हो जाने पर जम्मू में मानो दशकों तक पत्रिकारिता की प्रक्रिया को जंग लग गया। लगभग चालीस वर्ष के व्यवधान के बाद जून 1924 में एक उर्दू साप्ताहिक रणवीर के नाम से प्रकाशित हुग्रा। वस्तुतः महाराजा रणवीर सिंह के उत्तराधिकारी महाराजा प्रताप सिंह को न ही पत्रिकारिता में रुची थी और न ही वे यह चाहते थे कि कोई दूसरा व्यक्ति इस में रुची रखे। कई लोगों के इस ओर प्रयास निष्फल गए पर श्री मुल्ख राज सराफ अपने प्रयास में लगे रहे और अन्ततः सफल हुए। शुरू शुरू में रणवीर पत्र उर्दू में निकलता था पर कालान्तर में इसका एक पृष्ठ देवनागरी में भी छपने लगा। इसके सोलह पन्ने होते थे जिनमें समाचारों के इलावा टिप्पणियां ,साहित्यिक और सांस्कृतिक लेख भी समोए होते। उर्दू के भाग का सम्पादन स्वयं श्री मुल्ख राज सराफ करते थे पर इसके हिन्दी भाग का सम्पादन श्री वेद भसीन और श्री वेद गुप्ता करते थे। अनेक अभावों के बावजूद रणवीर ने कई सोपान तय किए पर आर्थिक अभाव और संरक्षण न होने के कारण इस पत्र की भी नियति वही हुई जैसी पैहले के दो पत्रों की हुई थी।

तीस के दशक के बाद जम्मू में अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियां जोर पकड़ने लगीं थीं। शिक्षा विभाग की ओर से हिन्दी की उपेक्षा यहां के बुदि्धजीवी वर्ग को बुरी तरह अखरने लगी थी। हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए कटिबद्ध युवा प्रतिभाओं का एक कारवां तैयार हो चुका था चुनाचे इस कारवां के निर्देशन के लिए हिन्दी मच की आवश्यकता पड़ी।जम्मू के युवा वकील श्री बंसीलाल सूरी इस मंच की तलाश में अग्रदूत बनकर सामने आए। उन दिनों यहां हिन्दी प्रचार के लिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पंजाब शाखा कार्यरत थी। इस शाखा के सहायक मंत्री श्री संत राम 'विचित्र' के सहयोग से बंसी लाल सूरी ने 'वसुधा' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इस पत्रिका का प्रथम अंक नवम्बर 1932 ई0 में प्रकाश में आया। यह अंक सौ पन्नों का एक समृद्ध अंक था और इसमें विशुदध साहित्यिक रचनाओं के साथ साथ अनेक साहित्यिक पहलू भी उभरकर सामने आए विशेषकर हिन्दी आंन्दोलन का ब्योरा भी इस अंक में दिया गया था। वसुधा के इस अंक की छपाई और सज्जा देखते हुए इस पत्रिका को किसी भी राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका के स्मने रखकर तुलना की जा सकती है। यही कारण था कि प्रतिष्ठित रचनाकार और विद्वान इस में प्रकाशित होने पर अपने को गौरवान्वित महसूस करते थे। इसीलिए इस पत्रिका के साथ पंजाब साहित्य सम्मेलन के मंत्री पं0 भीमसेन विद्यालंकार, आचार्य दीवान चंद शर्मा, जो कि डी0ए0वी0 कालेज लाहौर के प्रधानाचार्य थे, और दूसरे अनेक विद्वान जुड़े थे।

'वसुधा' का पहला अंक अच्छी सज्जा लिए हुए था। इस अंक में सम्वत् और सन् दोनों की तिथियां मिलती हैं:

'जम्मू कार्तिक 1989 तदनुसार नवम्बर 1932'। वसुधा शीर्षक बेलबूटों से सज्जित था। और उसके नीचे इसका कर्म वाक्य लिखा था:

"उदारचरितस्नान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्" यह वाक्य अति कलात्मक लिखावट में था। पर अति दु:ख की बात है कि इस पत्रिका के कुल चार अंक ही प्रकाशित हो पाए। पाठक वर्ग की ओर से कोई विशेष सहयोग नहीं मिला जिसके परिणाम स्वरूप अपने शैशव काल में ही यह पत्रिका दम तोड़ गई।

वसुधा के बंद हो जाने का दु:ख हिन्दी विद्वानों को बहुत सालता रहा था कि लगभग छः वर्ष बाद हिन्दी का आंन्दोलन जब गति पकड़ रहा था तो एक डेलीगेशन को तत्कालीन प्रधानमंत्री सर एन. गोपालस्वामी आयंगर ने ताना कसते हुए कहा था कि आप हिन्दी की तो बात करते हैं लेकिन एक भी पत्र या पत्रिका इसमें नहीं छपती इसका मतलब यह है कि आम लोग आपके साथ नहीं है तो बात हिन्दी के इस डेलीगेशन के सदस्यों को चुभ गई। इसके एक सदस्य पं0 हरदत्त शास्त्री भी थे। उन्होंने उसी रोज़ यह फैसला कर लिया कि हिन्दी का एक पत्र अवश्य प्रकाशित होना चाहिए जिसके माध्यम से न केवल समाचार जनसाधारण तक पंहुचाए जांएगें अपितु हिन्दी आन्दोलन की स्थिति भी लोगों को स्पष्ट की जाएगी। पर देवनागरी में पढ़ने वालों की कमी थी अतः यह निश्चित किया गया कि इसे द्विभाषी समाचार पत्र के तौर पर स्थापित किया जाए। अतः यह साप्ताहिक पत्र अंग्रेजी और हिन्दी में एक साथ प्रकाशित होने लगा। पत्र सुचारू रूप से चल सके इसके लिए पं0 हरदत्त ने अपनी जयदाद बेचकर एक छापाखाना शुरू किया और लाहौर से प्रकाशन में निपुण पं0 भागमल्ल शर्मा को जम्मू बुलाकर इसके सम्पादन का भार सौंपा। चूंकि पं0 हरदत्त स्वयं सरकारी कर्मचारी थे अतः स्वयं सम्पादन नहीं कर सकते थे। इस साप्ताहिक पत्र का नाम 'दीपक' रखा गया। दीपक का प्रवेशांक 25 जन0 1939 को निकला। यह पत्र हिन्दी में छपता था, केवल एक पृष्ठ अंग्रेजी में छपता था। इस पत्र को और भी सरुचिपूर्ण बनाने के लिए उत्तर प्रदेश के एक विद्वान श्री रमा शंकर शुक्ल की सेवायें ली गई। श्री शुक्ल एक अच्छे पत्रकार के साथ साथ हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक भी थे। दीपक का प्रकाशन निरन्तर तीन वर्षों तक होता रहा अन्ततः इसका भी वही हाल हुआ जो बाकी पत्रों का हुआ था। पर इस पत्र ने हिन्दी आंन्दोलन को एक सशक्त मंच प्रदान किया। अक्सर इसी के माध्यम से सूचनाएं पाठकों तक पंहुचती थीं और चर्चा का विषय बनतीं थीं।

दीपक के प्रवेशांक की छायानुकृति देखें–ऊपर एक वाक्य लिखा है– रियासत भर का एकमात्र हिन्दी अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र बांई ओर शुल्क दिया है– वार्षिक 4 रु0, छः

माही 2 रु0 और एक अंक का शुल्क है चार आने। दांई ओर लिखा है कि धनवानों से 20/रु0 और निर्धनों को मुफत। नीचे सम्पादक भागमल का नाम छपा है। और सम्पादक के नीचे एक कालम में दोनो कोणों में वर्ष एक और अंक छपा है। बीच में दिन और प्रकाशन की तिथि छपी है–

"जम्मू–बुधवार 12 माघ 1995 तदनुसार 25 जनवरी 1939"

जम्मू से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'भारती' इस दिशा में एक अभूतपूर्व कदम है। इसका प्रवेशांक 1941 में छपकर सामने आया। उस समय उत्तरी भारत में प्रकाशित होने वाली हिन्दी पत्रिकाओं में इस पत्रिका का स्थान बहुत ऊंचा माना जाता था। इस पत्रिका की संचालिका और सम्पादिका थी सुश्री शांता भारती जो उन दिनों हिन्दी के प्रचार और प्रसार में खूब भढ़चढ़ कर भाग ले रही थी रचनाकार इसमें छपने के लिए लालायित रहते थे। इस पत्रिका को उचित प्रकार से चलाने के लिए सुश्री शान्ता भारती ने एक छापाखाना भी खोल लिया था जिसका नाम भी भारती प्रेस रखा गया। यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी जिसमें कथा साहित्य, काव्य, लेख, संस्मरण, टिप्पणियां आदि तो प्रकाशित होतीं ही थीं इनके साथ हिन्दी आंदोलन की कार्यवाही भी प्रकाशित की जाती

इस पत्रिका का मुख पृष्ठ बड़े शब्दों से 'भारती' लिखावट लिए हुए होता था जिसे कलात्मक ढंग से छापा जाता था। ऊपर एक वाक्य प्रकाशित होता–

"रियासत जम्मू वा काश्मीर के शिक्षा विभाग में स्वीकृत"

शीर्षक के दाईं ओर सम्पादिका का नाम दिया जाता था और नीचे अंग्रजी के बड़े अक्षरों में 'द भारती जम्मू' प्रकाशित होता था।

इसके साथ एक कालम में दोनों ओर संवत् और ई0 में तिथियां दी जातीं थीं।

यह पत्रिका विभाजन से पहले तक छपती रही पर विभाजन के अनेक प्रहारों को सहती अंत में दम तोड़ गई। इस क्षेत्र में सबसे प्रभावशाली और निरन्तरता को लिए हुए जो पत्रिका 1943 में छपना शुरू हुई उसका नाम था 'उषा'। उषा एक मासिक विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी जिसका सम्पादन किया सुश्री शंकुतला सेठ ने और सहायक थे श्री अयोध्या नाथ 'वीर' और सुश्री सुशीला तुली। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य था पांच रु0 और एक अंक का मूल्य था आठ आने। इस पत्रिका के माध्यम से अनेक स्थानीय रचनाकारों का कारवां तैयार होकर सामने आया। स्थानीय रचनाकारों के अतिरिक्त देश के प्रतिष्ठित रचनाकार इस पत्रिका में प्रकाशित होकर गर्व महसूस करते थे। इसमें प्रकाशित होने वालों में से सर्वश्री प्रभाकर माचवे, मोहन राकेश, आचार्य नरेन्द्र देव, प्रो0 हुमायुं कबीर, शांति प्रिय द्विवेदी, विद्यालंकार आदि अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों और

साहित्यकारों के नाम गिनाए जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए उषा का मई 1946 में प्रकाशित होने वाला अंक लिया जा सकता है:

इस अंक में पांच काव्य रचनाएं, दो कहानियां, नौ लेख, विवेचन और स्थाई स्तम्भ सम्पादित हैं। मुख्य लेख प्रो0हुमायुं कबीर का है जिसमें विद्वान लेखक ने पाकिस्तान के बन जाने से उठने वाली उन विडम्बनाओं की ओर संकेत किए हैं जो कटे हुए एक वर्ग के लिए कितनी दुःखदाई होंगी। आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा लिखित नयी व्यवस्था में एशिया का स्थान परिवर्तित होते हुए राजनैतिक माहौल की ओर संकेत करता है। अन्य लेखों में श्री सहदेव चक्रवर्ती द्वारा रचित भारत वर्ष और समाजवाद, नारी जीवन का लक्ष्य आदि लेख प्रकाशित हैं।

. इसी अंक में अपेक्षित रचनाओं के बारे में सम्पादक वर्ग ने संकेत दिए हैं कि वही रचनायें स्वीकार की जाएंगी जिनमें वासना और आसक्ति का पुट न हो। आलोचनात्मक लेखों की प्रचुर मात्रा में आवश्यकता है। विज्ञापन के नियम एवं दर दिए गए हैं। साधारण पूरा पृष्ठ रु0 40 / आधा रु0 25 /और चौथाई रु016 /

अपने सम्पादकीय में सम्पादक वर्ग ने सर्वश्री श्रीनिवास शास्त्री, एडवर्ड टामसन, ए0जी0गार्डनर और भूलाभाई देसाई के निधन पर श्रद्धाजंली के फूल चढ़ाते हुए उनके राष्ट्रीय जीवन में योगदान के लिए सराहना की है। दूसरा मुद्दा दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की कठिनाइयों को लेकर है और अंन्त में ब्रिटिश सरकार द्वारा युद्ध के लिए बनाए गए महिला सहायक दल से हो रही मनमानी और छेड़खानी की ओर न केवल संकेत किए गए हैं अपितु अंग्रजों का कच्चा चिट्ठा भी खोलकर रख दिया गया है।

जम्मू में महाराजा रणवीर सिंह के राज्यकाल में 'जम्मू प्रकाश' नाम से एक पत्र श्री दुर्गाचार्य द्वारा सम्पादित किया जाता रहा था । यह समाचार पत्र 1883–85 के बीच कभी प्रकाशित हुआ था और केवल दो ही अंक इस पत्र के प्रकाश में आए जो अब उपलब्ध नहीं है। श्री दुर्गाचार्य का जन्म साम्बा नामक कस्बे के पास एक गांव में हुआ था पर बाद में ये कलकत्ता चले गए थे। महाराजा रणवीर सिंह की प्रेरणा से जम्मू लौट आए और जम्मू की सांस्कृतिक गतिविधियों में बढ़चढ़ कर भाग लेने लगे। महाराजा रणवीर सिंह के देहावसान पर ये दुबारा कलकत्ता जाना चाहते थे कि महाराजा प्रताप सिंह ने भी इनकी सेवाएं लेनी चाहीं और इन्हें शिक्षा विभाग में सलाहकार के पद पर आसीन किया। श्री दुर्गाचार्य पं0 दुर्गा प्रसाद मिश्र के नाम से भी जाने जाते हैं। यह एक उच्चकोटि के साहित्यकार और शिक्षाविद् भी थे। इनकी कई रचनाएं प्रकाशित हुई हैं।

स्वतंत्रता से पहले जम्मू से 'गुलाब' नाम का पत्र भी निकलता रहा है। यह पत्र

उर्दू में छपता था पर बीच बीच में कभी कबार हिंदी पृष्ठ भी निकलते थे विशेष दिन बार या अनुष्ठानों पर। जन्माष्टमी के पर्व पर इसे हिंदी में ही प्रकाशित किया गया था। यह समाचार पत्र 1943 से 1945 तक ही चला और आर्थिक अभाव के कारण बंद हो गया। इसके सम्पादक थे श्री नरसिंह दास नर्गिस।

प्रिसं आफ वेल्स कालेज, सम्प्रति साईंस कालेज जम्मू, की कालेज पत्रिका का इस ओर एक बहुत बड़ा योगदान रहा है। लगभग सभी स्थानीय रचनाकार जो अब प्रौढ़ हो चुके हैं, इस पत्रिका के साथ अपने छात्र जीवन में जुड़े थे या यूं कहें कि इन साहित्यकारों में पत्रकारिता और साहित्य का बीज इसी पत्रिका ने बोया था। 'द तवी' वर्ष में एक बार छाया होती थी। इसमें हिन्दी ,डोगरी, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेजी के अलग अलग भाग होते थे और इनके संपादक भी अगल अलग थे। यद्यपि इस पत्रिका में अक्सर अधकचरी ही रचनाएं छपतीं थीं तथापि प्रारम्भिक प्रेरणा के स्रोत के तौर पर बहुत से रचनाकारों ने इसके माध्यम से अपना स्थान, बाद में, निश्चित तौर पर बनाया है। सर्वश्री रामनाथ शास्त्री, वेदपाल दीप, वेद भसीन, यश शर्मा, जी0एन0कौशिक, श्री केदार नाथ सहगल, शाम लाल शर्मा ,बंसी लाल गुप्त, चंद्रकांत जोशी, जगदीश साठे आदि सैंकड़ों नाम गिनाए जा सकते हैं। आज भी इसका प्रकाशन उसी प्रकार हो रहा है और यह निरन्तरता टूटी नहीं। कुछ पुरानी पत्रिकाओं को देखने का सौभाग्य मिला है। आश्चर्य होता है कि अधकचरी रचनाएं लिखने वाले लोग आज कैसे इतनी सुन्दंर रचनाएं कर पा रहे हैं। इनमें से कई रचनाकार तो देश की अन्यतम पत्रिकाओं में छप रहें हैं। कुछेक पत्रिकाओं के अंको के नमूने उदाहरण के तौर पर उनकी प्रतिलिपि में दिए जा रहे हैं।

कश्मीर में स्वतंत्रता से पहले पत्रकारिता के क्षेत्र में छुटपुट प्रयास अवश्य हुए हैं पर हिन्दी में बहुत काम नहीं हुआ। जम्मू से प्रकाशित होने वालीं पत्रिकाओं वसुधा, भारती, उषा आदि के समान कोई भी पत्रिका कश्मीर से नहीं निकल पाई तथापि 'महावीर' और 'चन्द्रोदय' के रूप में हिन्दी पत्रकारिता का आगाज़ कश्मीर में हुआ अवश्य। महावीर प्रथम हिन्दी पत्र कहा जा सकता है जिसका प्रवेशांक 1936 में प्रकाशित होकर सामने आया। यद्यपि इसके पहले 'मार्त्तण्ड' 1932 में निकला था तथापि इसके पहले अंक उर्दू में प्रकाशित हुए थे बाद में विशेष अवसरों पर हिन्दी में भी इसे प्रकाशित करना शुरू किया गया। मार्त्तण्ड कश्मीरी समाज का प्रतिनिधित्व करता था और इसमें बहुधा उसी समाज के समाचार और सूचनाएं प्रकाशित कीं जातीं थी। एक समय तो यह समाचार पत्र बहुत मकबूल हुया जिसे हर फिरके के लोग पढ़ने लगे थे और इसका 'स्कोप' भी काफी फैल गया था। यह अखबार बाद में अनियमित तो होगया पर बंद नहीं हुआ आजकल यह पत्र अंग्रेजी में छाया होता है।

एक बार फिर महावीर पत्र की बात उभरती है। इसमें समाचारों और सूचनाओं के

इलावा साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित होतीं थीं। चंद्रोदय साप्ताहिक भी साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित करने के लिए शुरू किया गया।

1939 ई0 में 'चन्द्रवार कार्तिक 9,1995 की सांझ को ,चंद्रोदय की पहली किरण फूटी। साप्ताहिक के सम्पादक थे पृथ्वी नाथ पुष्प और दीना नाथ 'दीन,' पर संचालन का श्रेय दुर्गा प्रसाद काचरू के प्रेरक प्रयत्न और संस्थापक नंद लाला चौधरी के सक्रिय सहयोग को ही मिलना चाहिए।..................दुर्गा प्रेस से छपने वाले इस साप्ताहिक का कलेवर था 20×30/4 के चार पृष्ठ, वार्षिक चन्दा था रु0 2/ ..... और एक प्रति के दाम थे अढ़ाई पैसे।

चंद्रोदय का प्रवेशांक शारदीय चंद्रोदय के शीर्षक से प्रकाश में आया। सम्पादक ने चार पंक्तियों के माध्यम से इसके प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट किया है:

जागृति उन्नति और शान्ति का/चंद्रोदय संदेश है लाया
अंन्धकार के सिर पर पद धर कर/ज्योति का इसने स्रोत बहाया।

अपने सम्पादकीय में सम्पादक ने इसका मंतव्य सपष्ट किया है:

"ऐसे हालत में जबकि कश्मीर में हिन्दी को पुनर्जीवन मिल रहा है यह आवश्यक था कि हिन्दी जगत के मत को प्रकट करने के लिए कोई पत्र हो। चंद्रोदय इस कंटीले पथ पर सबसे पहले पर्दापण करता हैं। इसका उद्देश्य हिन्दी प्रचार, समाज सुधार, हिन्दुत्व की रक्षा, प्रतिक्रियावाद का तिरस्कार तथा राज्य के प्रति युक्तिसंगत और उचित तौर पर अटल श्रद्धा का भाव रखते हुए नागरिकता का प्रचार होगा।"

इसी अंक में पुष्प जी की एक कविता—दीवाली की रात शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है। कुछ पंक्तियां देखें:

तेरी इन आखों में अंगारे धधकते किसलिए
खुश्क आहें हैं निकलती दिल से तेरे किसलिए
सीना अपना खोल के हमको दिखा देती है क्या
दाग जलते अपने प्यारों की जुदाई के भला

चंद्रोदय में हिन्दी संस्कृत मंडल श्रीनगर में हिन्दी और उर्दू की कक्षाओं में बैठने वालों के लिए भी सूचनाएं प्रकाशित की जाती थीं ।

समय प्रवाह, महिला समाज, स्वास्थ्य चर्चा, बालवाटिका आदि स्थाई स्तम्भ प्रकाशित किए जाते थे। इन सतम्भों में इनकी संज्ञा के अनुरूप लेख प्रकाशित किए जाते थे। इन स्थाई घोषित स्तम्भों के साथ साथ कविताएं भी प्रकाशित की जाती थीं। किन्तु दुःख की बात है कि आर्थिक संकट ने इसे भी आन घेरा और इसकी भी नियति वही हुई जो इससे पहले प्रकाशित होने वाले पत्रों की हुई थी। कुछेक अंक निकाल कर चंद्रोदय भी दम तोड़ गया।

स्वतंत्र्योत्तर काल में साहित्य की विभिन्न विधाओं का विकास

कविता के नये सोपानः

1960 के आसपास आते कविता का स्वर पैना होने लगा था। कवि महसूस करने लगा था कि मात्र सौन्दर्यबोध, मांसलता और प्रकृति सौन्दर्य में ही जीवन का उत्स नहीं है। अपने आसपास के वातास को वह पहचानने लगा था। समाज में व्याप्त विसंगतियां अब उसके सामने यथार्थ का ठोस धरातल खोल रही थीं। देश आज़ाद हो चुका था पर जो स्वप्न उन्होंने देश की आज़ादी के पक्ष में संजोए थे वे क्षणभंगुर हो रहे थे। मोहभंग की स्थिति में वह जीवन के यथार्थ के प्रति उन्मुख हो आया था। प्रकृति , शारीरिक सौन्दर्य, मखमूरी स्वप्न उसे कुछ नहीं दे सके मात्र क्षणिक पलायन। वह इस पलायन को पहचानने लगा था और इसे अपनी नियति नहीं बनाना चाहता था अतः उसका तेवर अब पैना हो आया था। कविता में नए प्रयोग होने लगे थे, तुकबंधी, लय तथा छन्द को छोड़कर वह अब नई कविता की ओर उन्मुख हो आया था। सबसे पहले इस स्वर को पकड़ने वाले थे प्रो0 सुभाष भारद्वाज। बाद में सर्वश्री शशि शेखर तोषखानी, रतन लाल शांत, ओम गुप्त,मोहन निराश, पृथ्वी नाथ मधुप, रमेश मेहता, अशोक जेरथ, ज्योतीश्वर पथिक, सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्, बलनील देवम्, अग्निशेखर, संतोषी, निर्मल विनोद आदि इस कारवां में शामिल हो गए। उषा व्यास और निर्मल विनोद यद्यपि रागात्मक अनुभूतियों की ओर अग्रसर थे पर उनकी कविताओं में भी यह तेवर देखने को मिला है। पचास के आसपास जो एक विशेष नाम इस क्षेत्र में उभरा वह **सुभाष भारद्वाज** का था जो आगे चलकर नई कविता का प्रतिष्ठित हस्ताक्षर बना और यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि जम्मू में नई कविता की भूमिका बाधने में प्रो0 सुभाष भारद्वाज ने एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी पहली काव्य रचना 'जनरव' 1945 में हिन्दी मिलाप में छपी थी। इसी रचना से कवि का प्रगतिशील स्वर गूंजने लगा था।

प्रो0 सुभाष भारद्वाज का जन्म 15.12.29 को जम्मू में सुप्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी तथा विद्वान पं0 रमाकांत भारद्वाज के यहां हुआ। हिन्दी व संस्कृत के प्राध्यापक के तौर पर कार्य करते हुए अवकाश प्राप्त हुए और बाद में जम्मू में ही 'जम्मू पत्रिका' नामक

साप्ताहिक और बाद में इसे दैनिक पत्र के रूप में प्रकाशित करते रहे। किन्तु आर्थिक स्थितियों के कारण इसे बंद करना पड़ा और फिर इनका सफर शुरू हुआ दैनिक कश्मीर टाईम्स में जहां बाकी जीवन भर यह कार्यरत रहे।

इनके तीन कविता संग्रह, 'ताण्डव', 'रेत का सागर', और 'बिन मोती की सीप' प्रकाशित हो चुके हैं। रेत का सागर संग्रह पर रियासत की कल्चर अकादमी द्वारा वर्ष की अन्यतम हिन्दी कृति के लिए 1968 में पुरुस्कृत किया गया। इसी अकादमी ने इन्हें 'रोब आव ऑनर' से भी सम्मानित किया है।

सुभाष भारद्वाज उस समय कविता के क्षेत्र में आए जब तुकबन्दी का जोर था। छन्दोबद्ध रचनाएं ही अक्सर लिखी जातीं। छन्दमुक्त कविता साधारणतः ग्राह्य नहीं थी। श्रोता इसमें रस नहीं पाते थे, पाठक न के बराबर थे पर कलम में सामर्थ्य था, रास्ते स्वयं ही बनते चले गए। नई कविता का आगाज़ इस प्रदेश में सुभाष भारद्वाज की लेखनी के साथ ही हुआ। अपने आसपास के परिवेश में फैला भ्रष्टाचार और संस्कारगत उपजी रूढ़ियों के विरोध में आक्रोश का स्वर इनकी रचनाओं में खूब उजागर हुआ लेकिन मात्र 'साहित्यिक ऐयाशी' के तौर पर नहीं अपितु यथार्थ में भोगे हुए सत्य का संधान इनकी रचनाओं का उत्स रहा है।

"लेखन दूसरे इन्सानों के लिए न कि लेखन केवल अपनी कोटि के इन्सानों के लिए। कुछ लेखकों की लेखनी किसी दर्द से स्वयं संतप्त न होते हुए भी दर्द की बात करने के लिए अभिशप्त दिखाई देती है। यह साहित्यिक ऐयाशी के इलावा कुछ नहीं। आधुनिकता के नाम पर व्यक्तिगत ग्रंथियों के उहापोह की धुंध को साहित्य कहकर उछालना मेरी दृष्टि में साहित्यिक अपराध है।

—चीड़ों में ठहरी बयार, पृ016

प्रो0 सुभाष भारद्वाज की कविता में, अपने शैशव काल में ही, पैनी धार थी जो व्यंग और कटाक्ष लिए हुए थी। इनकी प्रारम्भिक कविताओं में दलितों के प्रति संवेदना उसी स्वर में बही है:

सुन रे भिक्षुक / अर्धनग्न
भग्न झोंपड़ी के वासी / भूखे नर
यह तेरा सूखा तन, घायल मन टपक रहा है

—पदयांजलि, 1961 पृ016

कवि की आकुलता, उसके आक्रोशित स्वर में, अपनी प्रखरता लिए, छन्द के बन्धन को तोड़ती हुई, रूढ़ियों को छिन्न भिन्न करती हुई, यथार्थ के धरातल पर मुखरित हुई है:

लौट आ गई है फिर से/कविता मेरी
अलबेले राजकुमारों की /राजसी महफलों से/ उंचे दरबारों से
कि अब यह मुक्त हो गई /युगों युगों के
घिसे पिटे लय–ताल/ छन्द बन्धन से

–पद्‌याजंलि पृ0 18

प्रो0 सुभाष भारद्‌वाज की कविता आगे चलकर करवट लेती है। अब गम्भीर विचार और गहनता धीरे धीरे आने लगी थी छन्द से तो यह पहले ही मुक्त हो चुके थे अब बिम्बों और मिथको के सहारे इनकी रचना और प्रखर होने लगी थी–

चला जाता हूं/ रोज़ उसके साथ मैं
बस इसी आशा से /कि शायद वहां कभी/ कोई राम आगे बढ़कर
मारेगा किसी रावण को अथवा/किसी कृष्ण से
सुनकर गीता /कभी अर्जुन/ पछाड़ेगा किसी दुर्योधन को

–चीडों में ठहरी बयार, पृ018

अपने प्रथम कविता सग्रंह 'ताण्डव' से दूसरे कविता संग्रह तक की यात्रा में अनेक पड़ाव कवि ने तय किए हैं। भाषा में और पैनापन उभरा है और शिल्प में नए और तेज़ तर्रार बिम्बों को अपनी रचनाओं में उभारा है। इस ओर कंवि ने 'रेत का सागर' कविता संग्रह की भूमिका में संकेत भी दिए हैं–

"रेत का सागर तक आते आते मैं ताण्डव के धरातल से दूर तो आ गया हूं पर मेरे कवि की आत्मा पूर्ववत रही है। हां, कहने का ढंग पूरा बदल गया है। इसलिए इनकी कविताएं उन्हें बिल्कुल भिन्न लगेंगी जिन्होंने ताण्डव को पढ़ा है।"

–रेत का सागर, पृ0ग

इस संग्रह की रचनाओं में गद्‌यात्मकता बढ़ी है पर कथ्य में ये रचनाएं गंभीर विचारों को लिए हुए हैं–

आज हम/बहुत दूर पहुंचे हैं/बहुत दूर,
दूरी को निरन्तर तोड़ते/बिछुड़े भूखण्डों को
अनमेल संस्कृतियों/विरोधी सभ्यताओं को
जनते/और फिर उन्हें/ आपस में जोड़ते।

रेत का सागर संग्रह की अधिकतर रचनाएं मिथकों के माध्यम से खुलती हैं और सीधी सपाट भाषा में बहुत कुछ कह जाती हैं--

मेरे शहर का/ हर चौराहा/ एक कुरूक्षेत्र

और हर चौराहे पर/सूर्योदय से ही/ अर्जुनों की अपार भीड़
अपने अपने दुर्योधनों की/ टोह् लेने निकलती है
कि अपने परम–रिपु/इन दुर्योधनों को मारकर/ ले लें
अपना अपना/ छीना हुआ/हस्तिनापुर का राज्य

सुभाष्र भारद्वाज का स्वर अगले दौर में और पैना हो आया है। शीराजा पूर्णांक 79 में प्रकाशित कवि की रचना 'एक सबक' में कटाक्ष की पैनी धार महसूस की जा सकती है, मनुष्य कितना पंगु और बौना हो आया है कि अनेक जुल्म ढाए जाने पर भी बोल नहीं पाता:

कुत्तों ने जरूर सोचा होगा/ कि हम तो
एक टुकड़ा रोटी/ अथवा रोटी से छोटी/ हड्डी या बोटी के–
लिए भी/ बीच बाज़ार कट मरते हैं/ डटकर धड़ल्ले से
धड़ा धड़ भौकतें/ मगर यह आदमी की जात/ उफ तौबा
कोई इसकी सारी की सारी/कमाई चाट ले
झोंपड़ी जला डाले/ बीवी बेटी उठाकर ले जाए
या हाथ पैर काट ले / यह फिर भी नहीं बोलता।

वर्तमान परिवेश में बदतर हो आई मानवीय स्थितियों का यथार्थ चित्रण इस कविता में हमें मिलता है। इस कविता से दो एक वर्ष पहले प्रकाशित इनकी रचना 'तन्द्रा टूटी' में वही पैनापन महसूस किया जा सकता है जो इनकी समकालीन कविता में है–

हम जीते हैं/गोष्ठियों–सभाओं/ भाषणों के बल पर जीते हैं
भाषाओं के बल पर जीते है/किन्तु नहीं जागे हैं
बन्द कोठरियों में/ अपनी अपनी शय्या पर *–हमारा साहित्य, 1964*

इनकी कविताओं का विश्लेषण करने पर हम देखतें हैं कि चार पक्ष बहुत शिद्दत के साथ उभरें हैं। दीनहीन दलित वर्ग के साथ संवेदना का स्वर, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, दोहरी जिन्दगी जीते व्यवस्था के कारिंदों के प्रति आक्रोश और पंगु हो आई आधुनिक सभ्यता के प्रति व्यंग्य और कटाक्ष इनकी रचनाओं में महसूस किया जा सकता है। प्रो0 सुभाष भारद्वाज अपनी रचनाओं में प्रगतिशील स्वर मुखरित करते रहे हैं जो इनकी गद्य रचनाओं में भी उभरा है। दैनिक कश्मीर टाईम्स के सिलसिलेबार प्रकाशित हुए लेखों में वही पैना व्यंग्य और कटाक्ष ,दोहरी जिदंगी जीने वालों के प्रति, अपने सम्पूर्ण वेग के साथ उभरा है।

शिल्प के नए आयामों को इन्होंने पकड़ना शुरू किया था जब कि छायावाद की छाया यहां के कवियों पर मंडरा रही थी। मज़े की बात तो यह है कि उस समय भी इनकी

भाषा में ओज और प्रखरता थी। प्रतीकों के दुरूह प्रयोग से यह हमेशा दूर रहे हैं। सीधी सपाट इस भाषा में, मिथकों और अनछुए बिम्बों के माध्यम से प्रगतिशील वैचारिकता के उत्स को ढूंढा जा सकता हैं।

इनकी रचनाएं शीराज़ा हमारा साहित्य, योजना ,पद्यांजलि , और अकादमी के दूसरे संकलनों में प्रकाशित होती रहीं हैं। कवि सम्मेलनों में इनकी प्रखरता की अनुगूंज अक्सर सुनाई देती रही है। इनकी कुछ रचनाएं राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में भी प्रकाशित होतीं रहीं हैं।

आज प्रो0 सुभाष भारद्वाज हमारे बीच में नहीं हैं पर यह अटल सत्य है कि जम्मू कश्मीर के इस प्रदेश में नई कविता के सूत्रधार के रूप में वह सदा जाने जाएंगे।

शशि शेखर तोषखानी : 24 मई 1935 में जन्में शशिशेखर तोषखानी की शिक्षा कश्मीर में ही हुई। हिन्दी और अंग्रजी में एम.ए. के साथ साथ डॉक्टरेट होना रचनाकार के गहन अध्ययन का परिचायक है। जम्मू कश्मीर सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित योजना के सह सम्पादक के तौर पर कार्यरत रहे हैं। आजकल 'सर्वोत्तम डाइजेस्ट' से सम्बद्ध। 'थोड़ा सा आकाश' कविता संग्रह और 'एक अपरिचित आकाश' का दो और सहयोंगियों के साथ सम्पादन इनकी लेखकीय क्षमता की ओर संकेत करता है। शशिशेखर ने कई अनुबन्धों पर कार्य भी किया है। लोकसंस्कृति पर लेख भी प्रकाशित हुए हैं पर एक का : के रूप में न केवल प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं अपितु राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में इनकी रचनाओं की चर्चा भी होती रहती है।

योजना, शीराज़ा, हमारा साहित्य और अनेक राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणों में प्रकाशित होते रहे हैं। शशिशेखर नई कविता के उपासकों में से हैं। शुरू शुरू में इस प्रदेश के लगभग सभी कवि छायावादी मानसिकता से प्रभावित थे पर जम्मू में प्रो. सुभाष भारद्वाज और कश्मीर में शशिशेखर तोषखानी ऐसे दो कवि रहे हैं जिनका प्रगतिशील स्वर कवि गोष्ठियों और सम्मेलनों में गूंजता सुनाई देता रहा है। शशिशेखर तोषखानी की अक्सर प्रारम्भिक रचनाएं भी छन्दमुक्त रचनाएं रहीं हैं अपने प्रगति–शील स्वर को लिए हुए :

संशयों के अजगरों से घिरा निज को देख
हो भयभीत मैं तो रुक गया हूँ
लग रहा मुझको कि मै तो चुक गया हूँ।........*पद्यांजलि–19*61

इसी का दूसरा रूप देखें:

पर नहीं है दर्द / तो क्या है ?
आत्मा में बसी जो अनुभूति ?
उसको, कहां दू क्या नाम ?

या कुछ भी नहीं है / रिक्त हूँ ? .....*पद्यांजलि– 1961*

शशिशेखर तोषखानी की कविताओं में उदास तारीकियों के साए हैं, रफता रफता वहता दर्द है और अपने न होने की पीड़ा इनके रचनाकार को सालती रहती है। शीराज़ा 52 में प्रकाशित 'शत्रु से बात चीत' नामक कविता की कुछ पंक्तियां देखें:

दर्द करते दांत की तरह

rq eqsgj 'Kh dseq eaeksn gh

यही रचना आगे चलकर करवट लेती दिखती है पर पीड़ा के सैलाब से गुजरते हुए:

किस अदृश्य नाल से तुम
मेरी पीड़ा के नाभिस्थल से जुडे हो ? ....*पद्यांजलि पृ031*

इस दर्द और पीड़ा ने रचनाकार की छन्दोबद्ध रचनाओं में भी पीछा नहीं छोड़ा है

इन झुके हुए कुहरा डूबे माथों पर
अब एक नया सूर्योदय लहरायेगा।
संदर्भो से टूटी इन यात्राओं को,
अब नया दर्द फिर से पथ दे जाएगा

लेकिन बावजूद दर्द के आह्वान के इस रचना का स्वर आशावादी, है। 'कुहरा डूबे माथों पर 'अब एक नया सूर्योदय लहराएगा'।

'एक दुनिया और' शीराज़ा पूर्णांक 63 में भी कुछ ऐसा स्वर ही उभरता दीखता है

नहीं, मैं अपनी उदास चुपियों में भी / अकेला नहीं ....*पृ.98.*

कवि के स्वर में परिवेशगत चुप्पी का सन्नाटा, सड़ी गली व्यवस्था के विरोध में आक्रोश, जीवन की निरर्थकता का बोध, बहुत अकेले पड़ गए व्यक्ति की छटपटाहट, मानसिक तनाव और वैयक्तिक संदर्भो में पाई गई यातना का बराबर उल्लेख हुआ है। 'चीड़ो में ठहरी बयार' में कवि का वक्तव्य भी इस ओर संकेत करता है:

"............अधिकतर समय परिवेश से एक तनावपूर्ण सम्बन्ध बना रहता है। इस तनाव का संदर्भ है समसामयिक जीवन यथार्थ, उससे जुड़ी विसंगतियां और उससे उभरते सवाल, अस्तित्व को बनाए रखने के उपक्रम में किए गए समझौतों से उत्पन्न टूटन, रिक्तता, घुटन, अर्थहीनता अनुभव और चेतना के विभिन्न स्वरों पर झेली गई यातना।" यही कारण है कि कवि की रचनाओं में भी ऐसे स्वर अपनी सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं:–

मुझे तुम्हें यह बताने का साहस आज नहीं रहा
कि जिन्दगी एक टूटे रिकार्ड सी बेकार है
जो स्वप्न में भी बज नहीं सकता। ....*चीड़ों में ठहरी बयार...*

'एक शीर्षकविहीन' कविता में कवि का तेवर और प्रखर हो आया है:

समय के गड्ढों में पड़ी पड़ी
सड़ती हुई चुप्पियां गंधाती हैं
कैसे कहुं, कैसे कहुं , कैसे कहुं, अपनी यातना
टूटे हुए जूतों में / हर विद्रोही मुद्रा
विवश लौट आती है। ......*शीराज़ा सितम्बर, 1973 पृ06*

और दोगले संस्कारों में मूड़ें, दुमुखे तथा मुखौटाधारी व्यवस्था के कारिन्दों के विरोध में कवि का पैना स्वर अपने सम्पूर्ण वेग के साथ उभरता है:

उफ! कैसी है यह भाषा
जो मूर्खों, कायरों और चापलूसों को
किस्तो में मेरी पीड़ा बेच रही है.......। ......*शीराज़ा, सितम्बर,1973 पृ07*

और अकेलेपन का अहसास देखें किस कदर रचनाकार के अन्तर को बिंध जाता है:

एक दुनिया/ जो अकेलेपन के अनंत विस्तार में
मेरी यात्रा के लिए/ रेल की पटरी सी बिछ जाती है
और मैं हर स्टेशन/पर/ विदा के हिलते हुए रूमाल देखता हूँ

परिवेश जो तोड़ता है, मृत्यु की ओर व्यक्ति को धकेलता है, पर कवि को बावजूद इस विडम्बना के, उजालों की तलाश है:

अपनी मृत्यु को/ रोजनामचे के एक पृष्ठ से दूसरे पृष्ठ तक
ढोता हुआ मैं–चलता जाता हूं
उस पुल की तालाश में
जो मुझे जीवित संदर्भो के भूगोल से जोड़ दे।

......*एक अपरिचित आकाश, पृ0 23*

कवि की रचनाओं में नए बिम्ब, नए बोध, प्रतीक और अनेक नए शब्दों के प्रयोग हमें मिलते हैं। कोहरा, कुहासा, आदि शब्द निराशा के झीने आवरण की ओर संकेत करते हैं:–

कुछ अनाम फूलों और पत्तियों ने
चीर दिया है घने कोहरे की परत को।

'थोड़ा सा आकाश', 'सूरज' आदि खुलेपन, उजास, आशा आदि के प्रतीक हैं:

और हमारे लिए खोल दिया है
थोड़ा –सा आकाश ....

एक अन्य रचना 'मोम के पंख', हमारा साहित्य 1967 में कुहरे का प्रयोग देखें:

दिशाएं खोई हुई, एक आकृतिहीन कुहासे के बीच

'कोहरे और सूरज' का सुन्दर , प्रयोग कवि की प्रारम्भिक रचना 'सूर्योदय एक प्रतीक्षाः एक सम्भावना',हमारा साहित्य सित0 1964 में हुआ है:

सूरज तो एक प्रतीक्षा है अब भी पर
इन खुली खिड़कियों से वह क्षण आएगा।
इन झुके हुए कोहरापूर्ण माथों पर,
जो एक नया सूर्योदय लहराएगा।

......पृ.6

एक अन्य रचना 'एक गीत' शीराज़ा 1974' में कवि बहुत आशाओं की अपेक्षाओं से बचता हुआ कह उठता है:

मेरे प्रिय इस शब्द–सूर्य को/मत चमकाओ/ मत चमकाओ
किरणों की इस चकाचौंध से / तकती नज़र डगमगाती है।

अंधेरी गुफाएं, पोस्टर, अखबार, आदि शब्द, प्रयोग हुए है जिनके माध्यम से कवि ने अपनी बात सही ढंग से कही है :

.........सर्पिल...रेखा के अनुगामी
मुझे अंधेरी गुफा दिखाओ/गुफा दिखाओ

........शीराजा ,सित01974,पृ035

और ''पोस्टर" का प्रयोग देखें:

अपने से दूर इस रास्ते पर यह कहां निकल आया हूं कि
वर्षों बाद खम्भे पर लगे पोस्टर पर पढ़ता हूं अपनी मौत की खबर

..शीराजा पूर्णांक 37 पृ.10

और इतिहास का शब्द प्रयोग 'इतिहास की थूक' के रूप में इसी कविता की पंक्तियों में हुआ है।

आक्रोश और विरोध के स्वर को मुखरित करने के लिए कवि ने 'बन्द मुट्ठियों' का प्रयोग किया हैं

नहीं कुछ नहीं होगा
बन्द मुट्ठियों में/उबलता आक्रोश जेबों में पड़ा सड़ जाएग–एक अपरिचित आकाश

.........पृ.31

किस अदृश्य नाल से तुम मेरी पीड़ा के नाभिस्थल से जुड़े हो.....शत्रु से बात चीत,

शीराजा पूर्णांक 52

चौराहे पर बैठे "स्फिक्स" की माया, घायल न करेगी अब प्रश्नों के

इन पक्तियों में 'स्फिंक्स' का प्रयोग खूब हुआ है और निम्नलिखित पंक्तियों में महाभारतीय अभिमन्यु का प्रतीक देखें आज के विश्वास को कैसे चुनौती दी जा सकती है :

भग्न पहिया हाथ में ले, चक्रव्यूह को चुनौती दे रहा विश्वास
गलत सपनों को समर्पित फटी मैली पताका सी सांस।
....मोम के पंख, *हमारा साहित्य 1967.*

पर कभी कभी ये बिम्ब इतने क्लिष्ट लगते हैं कि इन्हें अमूर्त विम्बों की संज्ञा दी जाए तो गलत न होगा। वस्तुतः इनके लिए सटीक शब्द होगा 'अबस्ट्रेक्ट सिम्बल'। अनेक बार अनेक बिम्ब एक दूसरे से इस तरह गड़मड़ हो जाते है कि अलग करना अति दुरूह हो जाता है। तो कई बार यह बिम्ब बड़े अटपटे से लगते हैं। कहीं संदर्भों से मेल नहीं खाते–अति वैयक्तिक शायद केवल कवि के ही बस की वात है उन्हें खोलना।

बहरहाल अनेक कविताएं तो ऐसी लीं जा सकती हैं जो अंतर तक छू जाती हैं और उनके सम्प्रेषण में कोई दिक्कत नहीं होती। पर जब सम्प्रेषण पूरी तरह से न हो तो समझना थोड़ा कठिन तो होगा ही फिर प्रश्न उठता है कि क्या सम्प्रेषण की दुरूहता ही समकालीन कविता की कसौटी है– निश्चय ही नहीं। सायास ठोसे गए क्लिष्ठ विम्ब कविता को खोलते कम हैं बंद ज्यादा करते हैं।

डॉ. रतन लाल शान्तः–चिन्तक, आलोचक, निबन्धकार, कहानीकार, नाट्यशिल्पी डा0 रतन लाल शान्त सर्वोपरि एक कवि हैं,समग्र रूप से एक कवि यही कारण है कि हिन्दी की अन्य विधाओं में भी इनका कवित्व मन प्रवाहमान रहता है। 1938 में श्रीनगर में जन्में रतन लाल रैणा, 'शान्त' उपनाम से जाने जाते हैं। प्रारम्भिक अध्ययन और शिक्षा श्रीनगर में ही हुई तत्पश्चात् एम.ए. हिन्दी डा. धीरेन्द्र वर्मा की अनुकम्पा से इलाहाबाद में पूरी की। इलाहाबाद का परिवेश हो और व्यक्ति स्वयं भी संवेदनशील हो तो सोने पर सुहागा हिन्दी के प्रतिष्ठित, विद्धानों और साहित्यकारों के बीच उन्मुख कर देता है। 'शान्त' तो फिर शान्त ही थे लेकिन वहां शान्त नहीं रह सके उद्वेल्लित हो उठे और 'उन्मेश' नामक संस्था का उदय हुआ जिसकी गोष्ठियों में प्रदेश के साहित्यकार और विद्वान भाग लेते थे। शान्त जी के अनुसार, एक बार प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वर नाथ रेणु ने इसकी एक गोष्ठी में 'मैला आंचल', उपन्यास का एक अंश भी पढ़कर सुनाया था। शान्त अपने को कवि के रूप में धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त से प्रभावित मानते हैं। शान्त ने उस समय कविता क्षेत्र में पर्दापण किया जब अधिकांश कवि छायावादी मानसिकता से उलझे थे। प्रकृति–रहस्य, रोमांस के क्षण, अव्यक्त के प्रति खोज तथा प्रणय के बहुत आत्मीय हो जाने वाली स्थितियों की अभिव्यक्ति उस दौर की

रचनाओं के मुख्य कथ्य थे। शान्त को भी ये प्रभाव छीलते गए हैं। अतः इनकी प्रारम्भिक रचनाओं में 'रोमानी संसार' और मानसिक ऐश्वर्य को देखा जा सकता है। किन्तु बहुत शीघ्र ही इनकी रचनाओं ने यथार्थ के धरातल को पकड़ना शुरू कर दिया था। शान्त द्वारा रचित इनकी प्रारम्भिक छन्दोबद्ध रचनाओं में भी यथार्थ के कठोर धरातल पर पांव रखने की रचनाकार की मजबूरी अभिव्यक्त हुई है:

रंगों का एक जुलूस बढ़ा/ छूटा मेरे पीछे प्रंसग
ठण्डे हाथों से बुझा रहा/ कोई मेरे भी उजले रंग
है और मेरी निर्मय नियति है और मलय वातास की
खोली न जाए मुझ से पिछली खिड़की अपने इतिहास की

........*हमारा साहित्य, 1965*

उपर्युक्त पंक्तियों में कथ्य के हिसाब से उभरते रचनाकार को 'होनहार वीरवान के होत चिकने पात' की उक्ति में तलाशा जा सकता है यद्यपि शिल्प अधकचारी तुकबन्धी तक ही सीमित कहा जा सकता है। लेकिन भविष्य में जो रचनाएं उभर कर सामने आईं वे निश्चय ही अपना इतिहास बना गई हैं। 1965 में कवि का प्रथम कविता संग्रह 'खोटी किरणें' प्रकाशित हुआ। यह सन्धिकाल बेला थी जब कवि यथार्थोन्मुख हो रहा था और प्रगतिशील स्वर रचनाओं में उभरने लगा था– इस सग्रंह की इसी शीर्षक से संग्रहीत कविता में खोटी किरणें, सूरज, अन्धी कोठरी, तारों की बंद होती दुकानें आदि के सुन्दर शब्द प्रयोग किए हैं:

सूरज मेरे यहां से कभी नहीं गुजरता।
अपनी अंधी कोठरी के झरोखे से/ मैने बाहर झांक कर–
उषा के फूल सम्भालती मालिन से
और तारों की बंद होती दुकानों से
जितनी भी किरणें खरीदीं थीं/ वे सब खोटी निकलीं ।

इन पंक्तियों में अंधी कोठरी के माध्यम से उदासियों की ओर संकेत हैं और जितने भी प्रयास इस कोठरी से निकलने के किए गए–निष्फल गए।

इस संग्रह में संग्रहीत रचनाओं में रचनाकार की सोच, चिन्तन और अध्ययन में निश्चय ही प्रौढ़ता महसूस की जा सकती है। रचना के शिल्प में अनेक नए प्रयोग रचनाकार की निरन्तर अग्रगामी शिल्प दृष्टि की ओर संकेत करते हैं:

रात भर बर्फ गिरी/ जिसको निर्दय नल निर्वसना छोड़ गया
उस दयमंती/पेड़ को, छाया को
जाने किसका प्यार श्वेत वसन ओढा गया!
पेड़ की वह छाया सनाथ थी।

नल–दयमंती के मिथक के माध्यम से अमूर्त को मूर्त रूप देते रचनाकार के शब्द बिम्ब इन पंक्तियों में निश्चय ही अपनी परिपक्वता को पहुचें हैं। पेड़ रूपी दमयंती को ओढ़ा गया कोई श्वेत वसन–वाह क्या प्रयोग है। यह कवि का नई कविता के माध्यम से चिन्तन में आगाज़ था जो आगे जाकर रंग लाया। महानगरीय वीथिकाओं में विचरते हुए अचानक वह कह उठता है:

साठवीं मंजिल देखते हुए/जब तुम्हारी टोपी
सिर से गिर पड़ी हो/ तो पीछे खड़े दान्त निपोरते,
मैले कुचैले शहर को पहचाना है। ....*शीराजा, 61*

महानगर में रहते हुए भी अपने नगर की पहचान का उभरना और संवेदित होकर उसके साथ जुड़ जाना इन पंक्तियों में बहुत शिद्दत के साथ उभरा है

उसी ने तुम्हारी कीच सनी टोपी
धो साफ कर तुम्हारे सिर पर पहनाई है। ....*शीराजा, 61*

शीराजा के पूर्णाकं 76 में प्रकाशित तीन कविताओं में से दो छोटी कविताएं 'चिड़िया और रंग' में यथार्थ का वह स्वरूप उभरा है जो सांझा दर्द लिए है, दोगले, ढीठ और दुमुहे चरित्रों के खाके उभरे हैं जिनसे निजात पाना जन साधारण के लिए अति कठिन है:

मोटी खाल से आत्मा को ढांक कर हम
बेखौफ सो रहे हैं/और सपने में शिकायत देखते हैं
कि चिड़िया की चोंच की चोट
हमतक आकर थक क्यों जाती है/चुक क्यों जाती है।

गुटों, वादों, खेमों से जुड़े लोग/साहित्यकार उस समय बिखर जाते हैं जब इजार दारयिां टूटने लगती है:

रंग दिशा हीन झण्डों से उड़ रहे हैं।
झण्डे सिर्फ खूंटियां रह गए हैं
खूंटियां दलदलों में गड़ी हैं
थकी है तितली पड़ी है। ...*पृ.6*

सृजन की प्रक्रिया से गुजरते हुए रचनाकार की स्थिति या आत्मपरख इन पंक्तियों में मुखरित हुई हैं:

कहना कौन नहीं जाने पर
कहने से पहले हर चित्र धुंधआता है
रह रह के मन को महता है

रोज़........रात रात *.........शीराज़ा, अक्तूबर 1976*

वर्तमान स्थितियां परिवेश और द्रुतगति से बदलती मान्यताओं में इन्सान ढुलमुल सा लिजलिजा वजूद लिए अपने लिजलिजे–पन को निहार कर अस्थिर नहीं होता अपितु उसी में त्राण पाता है। 'कविता कोशिश बनाम पिकासो प्रयास में' अमूर्त वातावरण से इन्सान के वजूद को तलाशने की बात की गई है।

कविता की कोशिश में / यह क्या आज बन गया
आदमी नहीं/आदमी का कोलाज बन गया

.....शीराजा, पूर्णांक: 47

और आस्थाओं के बदलने के साथ साथ व्यक्ति की सोच और परख की दृष्टि भी बदलने लगी है। धूप में गरिमा चुक गई है, पत्तों की छायाएं चुभने लगी है– अपनी परिछाई ही हम से कतराई है।

अपनी भी छायाएं हमसे कतराती हैं
परेशानी सूरज है, उसका भरोसा क्या है?

....

धूप कोई नहीं देता, छाया/ की धूम है
रौशनी को रौंध रहा बर्फ का हुजूम है। *...बर्फानी कविता, पूर्णांक: 47*

बर्फ, धूप, छाया, पेड़, सूरज, तितलियां, रंग आदि शब्दों का प्रयोग बहुत नफासत और मौलिक हुआ है। शांत की रचना की यह सबसे बड़ी खूबी है कि हर रचना में नए बिम्बों का प्रयोग हुआ है। इस ओर अपनी रचना में भी रचनाकार ने संकेत दिए है:

मेरी हर सोच के साथ हो
मेरे हर कथ्य की सांस हो
मेरी हर बात की सकत हो
मेरे हर बिंब का भाव हो। *–शीराजा, पूर्णांक 41*

यद्यपि उपर्युक्त पंक्तियां 'तुम्हारा होना सदा अनुभवता हूं के साथ चस्पां है पर 'मेरे हर बिंब का भाव हो' पंक्ति अलग रूप से भी देखी जा सकती है जो अपने में पूरी है।

बर्फ, धूप, सूरज ऐसे शब्द हैं जो अर्थ की व्यापकता से ऊपर अनी सत्ता स्थापित करते हैं।– इन्हें सटीक प्रयोग करने की सलाहीयत होना जरूरी है।

एक बर्फानी कविता में फुनगी पर बर्फ का टिकना, बर्फ की शिला, बर्फ के मिरग होंगे या तृष्णा पथराई, बर्फानी सफेद परत, बर्फ का हुजूम आदि प्रयोग अपने में नए हैं। विशेष कर 'मृगतृष्णा' के आइनें, बर्फ के मिरग का प्रयोग अनूठा हुआ है।

इसी प्रकार सूरज के विभिन्न रूप देखें:--

'परेशान सूरज कांच बने सूरज में पड़ गई दरार' आदि प्रयोग जहा ठण्डे पड़ गए सूरज की ओर संकेत करते हैं वहीं मानवीय अनुभूतियों का इनके साथ तादात्म्य बैठा जाते हैं। आम आदमी की व्यथा पर लिखी हुई 'समर्पण' कविता में उनके प्रति दर्द वहा है :

कहीं भीतर तक छील जाते हैं
उसके अरमान सीलते हैं
और दुनिया को इंतजार रहता है उसकी मौत का
कि उसे मसीहा घोषित कर दे ....*शीराज़ा, 1968 (एक)*

लेकिन वैयक्तिक उमंगों को तितलियों के रंगो के माध्यम से उछालते कवि के शब्द अपनी सन्ध्या में आकर ठण्डे और फीके पड जाते हैं:

उस दिन कोमल हाथों से
मैने सतरंगी तितली को पकड़ना चाहा था

और जीवन की सन्ध्या में कवि का स्वर उदास हो उठता है:

खुरदरे हैं हाथ
कैसे उठाकर तितली को हवाओं में बहाएं
कि फिर उलझें रंगों में रंग
और हवाओं में हवाएं। ....*शीराज़ा, पूर्णांक.76*

उसी प्रकार धूप, छाया, कुहरा, रौशनी आदि शब्दों को इनकी सार्थक मर्यादा में बान्धकर प्रस्तुत करना रचनाकार की शब्द शक्ति और उसके सटीक विन्यास की प्रतिभा की ओर संकेत है:

रौशनी को रौंद रहा बर्फ का हुजूम है।

.........*एक बर्फानी कविता*

रौशनी और कुहरे का प्रयोग निम्नलिखित पंक्तियों में बहुत सुन्दर हुआ है:

रौशनी की उम्मीद में/कुहरे को पलकों से झाड़ने की
केंचुआ--कोशिश कर रहा हूँ

धूप और कुहरे का एक रूप देखें:

मेरी धूप किसके लिए कुहरा बेचेगी,'

इनके अतिरिक्त तवारीखी खंहडर 'गुलाबी खबरों वाले अखबार'

'वन्द मुटि्ठया 'आदि का प्रयोग भी बखूबी हुआ है।

अंश अंश मिथकों का प्रयोग भी अनुभवी रचनाकार की कविता को मांजता गया है:

मैं तुम्हें पहचनाता हूँ/ मैने रावण को भेस बदलते देखा है–
पर मेरे गले में पड़ी सफेद सिलबट/मेरी लक्ष्मण रेखा है–

..........*शीराजा , पूर्णांक 61*

पर कहीं कहीं पर अर्मूत स्थितियों को इस प्रकार बुना गया है कि रचना का सम्प्रेषण सहज नहीं हो पाता– ऐसी कुछेक रचनाएं 'अबसर्ड' की सीमा को छूने लगी हैं। वहीं पर बिना किसी विशेष प्रयास, बिना किसी बिम्ब के चक्रव्यूह में फंसे बहुत सुंदर रचनाओं का भी शान्त ने सृजन किया है जो अनायास ही मन पर छाप छोड़ जाती हैं। महानगरीय बोध के लिए आधुनिक सभ्यता पर एक बहुत बड़ा कटाक्ष इन पंक्तियों में बहुत सशक्त होकर उभरा है:

मैनें अपने पाजामें में उतनी सभ्यता छिपाई है
जितनी झुग्गी झोंपड़ी की छत की/ उंचाई है

और अति सहज शब्दों द्वारा 'वक्तव्य एक' में कवि की पंक्तियां सम्प्रेषणीय ही नहीं अपितु गहरे में पैठ पा जाती है :

दोस्त! इस राह से आते आते
इतना हो कर जाओ/बुझते अंगारों को जैसे लोहे से
मुझे थोड़ा छेड़ तो जाओ/ कुछ देरं जी लूंगा।........*शीराज़ा ,पूर्णांक 41*

अपने वक्तव्य शीराजा, पूर्णांक 41 में कवि ने यह माना है 'औरों को सुनाना, समझाना, बताना, या जिसे संप्रेषित करना कहते हैं, कविता की प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग है। वस्तुतः यही तो रचनाकार की उपलब्धि रहती है अन्यथा स्वयं लिखकर, स्वयं पढ़कर प्रसन्न हो जाना कहां तक रचनाकार के धर्म को निभा पाता है?

रमेश मेहता: जम्मू कश्मीर के युवा हिन्दी कवियों में एक नाम है रमेश मेहता का जिन्होंने अपनी रचनाओं के बल पर इस क्षेत्र में एक निश्चित स्थान बनाया है। 1947 में जम्मू में जन्मे श्री रमेश मेहता अपने छात्रकाल से ही काव्य रचना करने लगे थे। इनकी रचनाएं स्थानीय हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं थी। इनका प्रथम कविता संग्रह 'खुले कमरे बन्द द्वार' 1968 में प्रकाशित होकर सामने आया। इन कविताओं के माध्यम से कवि की वैचारिकता और मौलिक आयामों को तलाशा जा सकता है।

खुले कमरे बंद द्वार की कविताओं की सबसे बड़ी खूबी थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह जाने की सामर्थ्य, सटीक शब्दों का चयन, चुस्त प्रारम्भ और सारगर्भित समापन कवि के शिल्प की ओर संकेत करता है–

धूप के/टाइपराइटर ने/ फूलों के रिबन से
दिन के/ कागज़ पर/ टांक दिए हैं/ कुछ
नीले पीले शब्द / "लो आ गया मधुमास।"

एक अन्य रूप देखें:
दीखता/ जो चेहरा/वही उदास है।
कच्ची छत्त पर/ पड़ रही/ ज्यों
जोर की/बरसात है।

सटीक उपमाओं और प्रतीकों के माध्यम से कवि ने थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह दिया है। सौन्दर्य बोध से इतर सामाजिक वर्जनाओं के ठोस धरातल से टकराते अनुभूतियों के कारवां स्थिर हो जाते हैं।–

जीवन की/ सुनसान डगर पर/ खाते जब कोई ठोकर, टक्कर।
होता नहीं कुछ/ बनता नहीं/ कुछ/ रह जाते
बस/खेद व्यक्त कर।

64 पृष्ठीय इस काव्य संग्रह में कुल 38 रचनाएं संग्रहित हैं जिनमें से अधिकतर छोटी रचनाएं हैं या हम इन्हे लघु कविताएं कह सकतें हैं। से लघु कविताएं मन को छूती हुई भावप्रवण बना जातीं हैं। यही इन कविताओं की सबसे बड़ी खूबी भी है।

रमेश मेहता का दूसरा काव्य संग्रह "तिनका तिनका घोंसला" 1987 में प्रकाशित होकर सामने आया। यह संग्रह 47 क़ाव्य रचनाओं, गीतों, नवगीतों, छन्दमुक्त रचनाओं आदि का संग्रह है। 72 पृष्ठीय इस संग्रह का आवरण सुन्दर बना है। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में परिवर्तन की ओर संकेत मिलते हैं। कवि अब भावप्रवण स्थितियों को छोड़कर यर्थाथ के ठोस धरातल को महसूसना चाहता है–

होश आने का सिलसिला / अब
काफी लम्बा हो गया है/प्यार के नाम पर
आंखें नम कर लेने वाला दिल/दूर पीछे
भीड़ में कहीं खो गया है।

एक अन्य कविता 'नहीं फूल अब नहीं खिलते' में यह सोच उदासीन स्थितियों की ओर संकेत करती है–

मेरे मन में/अनुभूति की दीवारों से टकराकर/ एक प्रश्न
कुलबुलाने लगा था/ कि हवा अब भी नशीली है
या/चांदनी अब भी चांद ही की सहेली है

अथवा/ पत्तझर केवल पत्तों के झरने का नाम है
उम्मीदों के मरने का नहीं ....पृ013

चरमराती आस्थाओं के प्रति विक्षोभ, दोहरे मापदण्डों के प्रति झल्लाहट, व्याप्त रूढ़ियों के प्रति आक्रोश और कुछ न कर पाने की विवशता इस दौर की कविताओं में खूब अभिव्यक्त हुई है–

मेरा झल्लाया चेहरा देखा
वह एक खिसयानी सी हंसी/ मेरे चेहरे पर दे मारता है
और मैं /बेबस/खम्भा नोचने लगता हू ....पृ015

'गुलाब' कविता में व्यवस्था के प्रति आग्रही देश के कर्णधारों पर एक तीखा कटाक्ष देखें:

व्यवस्था का स्वास्थ्य/ ठीक रहे/इसिलिए
खोज रहा है/सारा देश/ एक काला गुलाब। ....पृ015

और एक दफतरी शोषण की व्यथा 'कारोबारी' कविता में देखे:
हर सुबह/दफतर में आते ही
सांजिशों का एक नया जाल/प्रस्तुत होता है
मेरे स्वागत को/प्रतीक्षारत होते हैं/ फाइलों के कान।
हर/आना जाना/कारोबारी होता है/और
कितने ही दीमक/ लगे होते हैं/ मेरी कुर्सी/ चाटने को ....पृ037

कहीं कहीं यह आक्रोश का स्वर विवशता में आकर चुक जाता है और उदासी कविताओं में घर कर जाती है। यद्यपि इसे निराशावादी स्वर नहीं कहा जा सकता पर इसकी छाया इन रचनाओं में अवश्य महसूस की जा सकती है।

रमेश मेहता चर्चित कवि रहे हैं और अनेक मंचो पर अपनी कविताएं सुनाते आए हैं। आकाशवाणी और दूरदर्शन के कवि सम्मेलनों में भी भाग ले चुके हैं। इधर इनकी कुछेक रचनाएं राष्ट्रीय स्तर के काव्य संकलनों में भी स्थान पाने लगी हैं। भारंतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित–'भारतीय कविताएँ– 1987–88' में इनकी एक रचना 'सुबह हो गई' संकलित की गई है। कविता की कुछेक पंक्तियां देखे:

उठ मेरी बच्ची/ सुबह हो गई/ मंदिरों के कलशों पर/
उतरी हैं /उजले सूरज की काली किरणें
पवित्र ग्रंथों के पन्नों पर / फड़फड़ाती हैं संतो की आंखें............।

कविता करना और उसे वैयक्तिक संग्रह में बांधना इतना महत्वपूर्ण नहीं जितना महत्वपूर्ण है राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणो में स्थान पाना। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति न होगी कि रमेश मेहता जम्मू कश्मीर के उन गिने चुनें कवियों में से हैं जिनकी रचनाएं राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, इन्द्रप्रस्थ भारती, शब्द आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं हैं।यह उनकी उपलब्धि कही जा सकती है।

डा0 ओम गुप्तः जम्मू कश्मीर प्रदेश के कुछ गिने चुने रचनाकारों में डा0 ओम गुप्त ऐसे विद्वान हैं जिनका कविता लेखन और इसकी पहचान पर समान रूप से अधिकार है। स्यालकोट में 1934 में जन्मे ओम गुप्त की काव्य रचनाएं शीराजा,नीलजा, घोषवती, मधुरिमा, चौराहे पर खड़े बारह चेहरे, चीड़ों में ठहरी वयार आदि संकलनों में प्रकाशित हो चुकी हैं। वैयक्तिक तौर भी इनके तीन संग्रह 'सागर के तीर,' 'सेतुओं की खोज' तथा 'सुनो मार्कण्डेय' प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें प्रकाशित कवि की रचनाप्रक्रिया को तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहले स्थान पर वे रचनाएं ली जा सकती हैं जो प्रारंम्भिक काल की रचनाएं हैं। इस काल की रचनाओं में वाल सुलभ भोलापन और भावुकता व्याप्त है। अधिकांश रचनाएं छन्दोबद्ध हैं और परम्परागत शैली में लिखी गई हैं। डा0 ओम गुप्त का पहला कविता संग्रह 'सागर के तीर' 1967 में छपकर सामने आया। इस संग्रह में कुल 26 कविताएं संग्रहीत हैं। सीधी सादी भाषा में रचित से रचनाए पाठकों को अपनी लगती हैं:

लहरों में रत्न उभरा करता/छिप जाते जिससे दिग्–दिगन्त
जिससे छवि पा जाता अनन्त/जो प्राण मिलाता नयनों को,
ममतायुत वक्ष तिरा करता। लहरों में स्तन उभरा करता।

अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति और प्रकृति का सुन्दर चित्रण इस काल की कविताओं में हमें मिलता है:

उषा ने पायल छनकाई/तारों ने मुखड़ों की किरणें
धुंध में लगी छिपने आली/किन्हीं अनजान कपोलों पर,
है छिटक गई लज्जा लाली।

इसी प्रकार रात्री का मानवीकरण भी निम्न उद्धृत पंक्तियों मे बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है:

पश्चिम में साजल आंचल पर अलकें बिखराती सी आती
मणिमय आंचल काला फिर धीरे धीरे आ झलकाती
उस विराट की तड़पन में जब नयन स्वतः मुंद जाते हैं,
नीरव नीरव पदचापों से सारे जग पर आ छा जाती ।

'बादल हैं ये,' 'मेधदूत,' 'बादल गीत,' 'फूल बोले, पात डोले,' 'हमारी धरती,' 'मंद मंद चलो रे पवन' आदि कुछ ऐसी कविताएं इस सग्रह में संग्रहीत हैं जो छायावादी काव्य की सौंदर्योन्मुखी चेतना की ओर संकेत करती हैं। संभवतया यह कवि की रचनाप्रक्रिया का प्रथम दौर था।

समय के साथ साथ कवि का प्रौढ़ मन भावप्रवण क्षणों से वैचारिक धरातल की ओर उन्मुख होने लगा। एक समय तो ऐसा भी आया कि इनकी कविताएं विचार कविता के मंच पर से उद्धृत की जाने लगीं थीं। परिपक्वता के इस दौर में इनकी कविता अनेक बार सपाटबयानी लगने लगी:

टूटे पंखों को/आज़ाद हवाओं से प्यार
हर पहली तरीख से बहुत पहले,
नोटों की गट्ठी का इंतजार।

....

बरसाती नदी की बाढ़ में/बेकार कचरा
तैरता रहता है/ कुछ बह जाता है/कुछ किनारों पर ठहर जाता है।

........*'एक नई कविता का उदय,'चीड़ों में ठहरी बयार पृ027*

इस ओर कवि ने अपने आत्म कथ्य चीडों में ठहरी बयार में भी संकेत किए हैं: मेरे चारों ओर, जीने की पीड़ा भोगने वाला देश, समाज, परिवार मुझसे अलग नहीं है, इसीलिए कहीं बाहर से फैंके गए समाधान मुझे कचोटते रहे हैं।..................शायद इसी नकारात्मक विश्वास से उपजी खीझ के कारण मित्रों को मेरे व्यवहार में एक तीखापन दिखाई देता है।बात को भूल भुलैंया में डालकर रास्ता लम्बा करना भी मुझे नहीं सुहाता, इसिलिए दो टूक बात करने का आदि हूं।"

'सेतुओं की खोज' डा0 ओम गुप्त द्वारा रचित दूसरा कविता सग्रंह है। 78 पृष्ठीय इस सग्रंह का प्रकाशन युवा हिन्दी लेखक संघ के सहयोग से हुआ था। इस संग्रह की अधिकांश कविताएं नई कविता के शिल्प की ओर संकेत करती हैं। अब कवि का अध्ययन और अनुभव भी विशद हो आए थे परिणाम स्वरूप इन रचनाओं में कवि की प्रौढ़ता स्पष्टतः ही दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि इस संग्रह की आरम्भिक कविताओं में कवि छन्द का मोह तोड़ नहीं सका तथापि इन कविताओं में भी कविता की पहचान झलकती है:

पत्तियों पर वही धूल/मटमैले, रोए बच्चों के से खिले फूल
अधखिले गुलाब/जैसे हर सवाल का गलत जवाब।

स्थापित मान्यताओं के प्रति आक्रोश का स्वर नई जिज्ञासाओं की ओर संकेत करता है। बैल को धर्म का प्रतीक मानकर अनेक सवाल रचना में कवि छोड़ देता है:

आजाद घूमा करता है/धर्म का बैल
पुराने इसे पूजते हैं/छोटे इससे डरते हैं
पुरानों का यह पूज्य है/इसलिए कि यह उन्हीं की तरह बूढ़ा है।

'अजनबी हवाओं के नाम' कविता में 'सूरज' और 'अजनबी हवाओं ' के विम्बों के आधार पर बहुत सटीक और सार्थक बात कही गई है:

नए सूरज की रंगीन किरणों में/ सांस लेने की कोशिश
जब जब हमने की/ अजनबी हवाओं का शोर/ हमारे सीनों में जहर भर गया।

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने अनेक संदर्भों में कई पक्षों पर बात की है। लेकिन कुछ कविताएं मात्र सपाटबयानी होकर रह गई हैं। 'एक एब्सर्ड खामोशी' की कुछ पंक्तियां देखें:

आज के टाइमटेबल में/ एक इन्टरव्यू था,
कमेटी रूम के बाहर एक लंबा क्यू था।
मगर सब को मालूम था, जो नालायक लगने वाला था,
वह चेयरमैन के बेटे का/ होने वाला साला था।

कहीं कहीं पर सीधी और सपाट भाषा में जिजिविषा में जी रहे, महानगरीय घुटन के बीच, आम आदमी की नियति की बात बहुत सटीक और सुचारु रूप से हुई है:

मेरी मजबूरी/ इन छायाओं के लिए तमाशा है
मिल में/ खतरे का भोंपू चिल्ला रहा है
एक भरा पूरा जंगल/आरे के दांतों में घुसता जाता है

............*मयकदे से दूर, पृ0 62*

'सेतुओं की खोज,' इस संग्रह की, निःसंदेह एक अच्छी कविता है। सेतुओं के माध्यम से कवि ने उन मानवीय अनुभूतियों को तलाशने की कोशिश की है जो आधुनिक संदर्भों में खोखली हो चुकी हैं:

हर द्वीप को/ एक दूसरे से मिलाने वाले/ कुछ सेतु थे।
इन बाढ़ों के युग से बहुत पहले/ इन ज्वारभाटों के आघात से पूर्व
कुछ सिरफिरे मनुष्यों ने/ इन सेतुबन्धों का निर्माण किया था।

सेतुबन्धों के निर्माण में सिरफिरे मनुष्यों की बात एक बहुत बड़ा कटाक्ष है जो आज के संदर्भ में सटीक लगता हैं।

इस कविता संग्रह की समीक्षा करते हुए डा0 कृष्ण गुप्त (शीराज़ा पूर्णांक 45) लिखते हैं–"आज के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का आक्रोश, आशा, निराशा, प्रतिबद्धता, नए स्वप्नों को देखने वाली आंखों के जो तेवर नवलेखन में प्रकट हो रहें हैं वही सबकुछ

यहां भी दिखाई देता है।"

समीक्षा यद्यपि वैयक्तिक विश्लेषण होता है उन सभी पूर्वाग्रहों और निश्चित मूल्यों पर आधारित जिसे आलोचक मापदण्ड मानकर चलता है पर किसी कृति का सामान्यकरण करके एक ही डोरी से बान्ध देना कहां तक उचित है ! अच्छा होता यदि कृति की रचनाओं के आधार पर बात की जाती और अपनी बात कहने के साथ प्रमाणित भी की जाती। बहरहाल हर आलोचक की सोच अपनी है। पर ऐसा लिखना कृति के साथ अन्याय करना है।

कवि का तीसरा कविता संग्रह 'सुनों मार्कण्डेय' साठ पृष्ठीय एक छोटी पुस्तिका के आकार में सामने आया। इसमें सग्रंहीत कवि की रचनाएं रचनाकार के अनुभूत सत्य एवं अनुभवों की वानगी प्रस्तुत करती हैं। इन रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता वाद विशेष एवं गुट विशेष भी है तो परिवेशगत स्थितियों की अकुलाहट से बुना हुआ अनिश्चित संसार भी है तो दूसरी ओर सौंदर्यनुभूति तथा आगत को दस्तक देती खुली दीर्घाएं भी हैं। इन रचनाओं को रचते समय कवि का अध्ययन और अनुभव और विशद हो आए थे अतः शब्दजाल, बिम्बों एवं प्रतीकों को सायास न बुनकर सहज और साधारण शब्दों के सशक्त चयन और विन्यास की क्षमता कवि की रचनाओं में मुखरित हुई है। इस ओर चर्चित आलोचक राम दरश मिश्र कृति की समीक्षा करते हुए शीराज़ा, पूर्णांक 70 में लिखते हैं: "इनकी मूल चिंता आम आदमी के रूप में देखने की है किन्तु इनमें बड़बोलापन नहीं है। इनमें शब्दों का कोलाहाल नहीं है, किसी राजनैतिक दर्शन का फारमूला नहीं है– इनमें आम आदमी की चिंता कविता की चिंता के साथ जुड़ी है।"

ऐसा नहीं कि कवि की कविता अति सहज है जिसे समझने के लिए माथापच्ची नहीं करनी पड़ती अपितु अनेक रचनाओं में कवि अनछुए बिम्बों के माध्यम से पाठकों की सोच को और विशद बना देता है–

इस अंधी गुफा की दीवारों को / हथेलियों को पीठ से टकोरता हूं कान लगाकर / बहुत दूर गरजते तूफान की आवाज़ / मैने सुनी है और पहचाना है / कि दूर के जंगल में कहीं बेशुमार पलाश उग चुके हैं।

इस संग्रह की दूसरी अच्छी रचनाओं में से इसी शीर्षक की कविता 'सुनो मार्कण्डेय' और 'बेताल की आखिरी कथा' आदि ली जा सकतीं हैं। इन कविताओं में मिथकों द्वारा अनेक स्थितियों को सहज ही खोला गया है लेकिन अनेकोन्मुखी बिम्बों द्वारा। कवि इसमें सफल रहा है इसमें कोई संदेह नहीं।

मोहन निराशः–1934 में श्रीनगर में जन्मे मोहन निराश इस प्रदेश के प्रतिष्ठित हिन्दी कवियों में से हैं। आकाशवाणी में कार्यरत रह कर श्रीनगर, शिमला, दिल्ली आदि

नगरों महानगरों तक की यात्रा इनके मानस की उन गलियों की यात्रा है जो कभी खत्म नहीं होती और अपनी गलियों ,गलियारों और दीर्घाओं को तलाशती रहती है। इस यात्रा से अलग खड़ा कवि एक तीसरे व्यक्ति की आंख से अपनी ही यात्राओं को पीछे मुड़कर देखता है तो अपने को तटस्थ पाता हुआ कह उठता है :

"अब मैं अन्य बिन्दुओं के साथ ऐसे धरातल पर आ चुका था, जब सारा वातावरण तो बन चुका था किन्तु मैं नहीं था। अपने आप से अलग होकर खुद के विषय में सोचना अनिवार्य हो गया। नया भावबोध, नई चेतना, नवीन शिल्प ने जन्म लिया। अब जरूरी हो गया था भीड़ के साथ साथ चलते हुए भीड़ से अलग रहकर सोचना कि कौन सी दिशा है इस मोड़ की ?" ....*चीड़ों में ठहरी बयार*

उपर्युक्त वक्तव्य में मोहन निराशा स्वीकार करते हैं कि अपने प्रारम्भिक दौर पर वह लीक पर चलते रहे हैं। इस ओर उन्होंने स्पष्ट संकेत भी किए हैं: "वादों की भीड़ में से मैं भी अन्य मित्रों के साथ साथ, गुजरता गया"– ....*चीड़ों में ठहरी बयार*

यही कारण है कि उनके प्रथम कविता संग्रह 'कृष्ण मेरा पर्याय' में छायावादी और उत्तर छायावादी मानसिकता परिलक्षित होती है। इस संग्रह में कुल 35 काव्य रचनाएं हैं। गीत, छंदोबद्ध और छन्दमुक्त रचनाओं में मानवीय दृष्टिकोण अपने सम्पूर्ण वेग से उभरा है। अधिकांश रचनाओं में जीवनोन्मुख स्थितियों को मुखरित किया गया है। आततयी के विरोध में आक्रोश, अत्याचार और अन्याय का विरोध है:

'छिति छलने वालों को देना सीख जरा सी युद्ध नहीं है"।

वस्तुतः निराशा इन प्राक् छायावादी कविताओं में भी जनवादी चेतना को लिए हुए हैं जो धीरे धीरे उनकी बाद की रचित कविताओं में घर कर जाती है। संग्रह में संग्रहीत उनकी एक रचना की पंक्तियां देखे:

वैसे तुम मांगते हो इतिहास
मैं/और कितनी सारी तिथियों के साथ
दे सकता हूँ/ दो खूबसूरत सी मृत्यु तिथियां।

परोक्ष में ये पंक्तियां उदास वातावरण और निराशाजनक स्थितियों की और संकेत करती हैं तथापि अपने परिवेश से कटी नहीं है जो आज के माहौल का परिचायक है। जहां एक और सुखमय स्वरों की खनक है वहीं पर नियति के खेल की भी अभिव्यक्ति इन रचनाओं में हमें मिलती है–

कोई मोहन कोई राधा
हंसी ज़रा भर, मन भरा रोना........................।
कब मेंहदी भी बनी सुहागन कब कुम कुम था न्यारा लगा

कब चूड़ी सधवा हो आई नभ का भाग भला कब जागा?

किन्तु अपेक्षा और प्रतीक्षा के स्वर धीरे धीरे गलकर बिखर जाते हैं न कुमकुम ही पिया को रिझा पाता है न चूड़ियों की खनक ही उसे बुला पाती है:

संध्या मेंहदी रचती जाती पर पी की बारात न आती
चूड़ी बूढ़ी हो जाती है रोली कुम कुम भर जाता है।

....

बदलती स्थितियां, चरमराते हुए मूल्यों के भवन और ईश्वर पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए कवि आधुनिक संवेदना को पकड़ने लगता है जहां हर मौसम में ईश्वर बदल जाता है:

तुम मुझसे मांगते हो इतिहास
मैं समर्थ हूँ केवल देने में एक लम्बा जुलूस
जो हर बार हर गली से गुजर कर
उसी चौक में जा पहुंचता है
जहां न जाने किस समय से ईश्वर खड़ा है
जो मौसम बदलने के साथ टूटता है।

कुछ ऐसा ही एहसास इनकी कविता 'बात बासी हो गई' में मुखर है:

शब्द बासी हो गए/ सब अर्थ बासी हो गए
हर बात बासी हो गई .....*एक अपरिचित आकाश*

मोहन निराश की छन्दोबद्ध कविता हो या छन्दमुक्त रचना में नए बिम्बों द्वारा ताज़ेपन का अहसास हर ओर झलकता है:

इन कंटीले कीकरों में रोशनी रूई हुई
जन्म जन्मों की उमर य'
मेख इक ताबूत की या कफन की सूई हुई

कीकरों से छन कर रूई की तरह बिखरने का बिम्ब बात को बहुत थोड़े शब्दों में समझा जाता है। ईश्तहार, शंख, सीपी, कांच, सूरज कैकटस, चीड़, देवदार, किरचें, बारूद आदि शब्दों के माध्यम से सशक्त बिम्ब उभारने में मोहन निराश सफल हुए है।

यही वह घुसपैठिया है/ जिसने मेरे भीतर के हर भोलेपन में बारूद भर दिया है।

......*एक अपरिचित आकाश*

और किरचों का प्रयोग देखें:–

सरे बाजार/मैं टूटा अनेकों बार

टूकड़े– किरचें समेटीं
खुदपर लपेट लिया अखबार

......एक अपरिचित आकाश

और एक कविता में 'हाइना' के प्रतीक के माध्यम से स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे क्रूरतम् प्रहारों को इंगित किया गया है चाहे यह वियतनाम हो या लोगों के अस्तित्व की बात हो या एकांत का जंगल हो हाइने की हंसी सर्वत्र सुनाई देती है–

लोगों के अस्तित्व में पूरा 'हाइना' हंसने लगता है
कबीर नाम का कोई आवारा/ भरे बाज़ार में रोने लगता है

..........एक अपरिचित आकाश

मोहन निराश कृत दूसरा संग्रह 'शून्यकाल' 1991 में प्रकाशित होकर सामने आया। इसमें 35 कविताएं संग्रहीत हैं। कविताओं के शीर्षक उनकी प्रथम पंक्तियां ही हैं। इन कविताओं के माध्यम से कवि अपने वजूद को तलाशता दीखता है और अंधिकाश रचनाओं में उसका व्यक्तित्व मुखर हो उठता है। 'भीतर कहीं साधारण सा' कवि स्वयं चिरौटे के प्रतिरूप में दिखता है जो आकाश की ऊचाईयां थाम लेना चाहता है पर उसे अचानक ही भाव होता है कि कहीं यह उड़ान उसके अपने अस्तित्व को ही छील रही है:

चिरौटा उड़ते चले जा रहे परिंदों को देखते देखते आसमान देखने लगता है/ और झूलता जा रहा है बिजूका के सिर में चुभे जा रहे हैं/ उसके पंजें

पर कहीं कहीं पर इन रचनाओं में सकारात्मक स्वर भी दिखने लगता है जहां रचनाकार का वजूद स्थापित हो:

मेरी बीवी चार–पांच दिन बाद/ मुझे परिचित लगेगी और खूबसूरत भी

किन्तु एक बात बड़ी शिद्दत से इन रचनाओं में उभरती है प्रतीकों **को सायास ठोंसने** की प्रक्रिया जो अनेक रचनाओं को क्लिष्ठ बना देती है। कई बार इन प्रतीकों के माध्यम से उभरने बाले बिम्ब एक दूसरे को या तो काट देते हैं या गढ़मड़ हो जाते हैं–

.... *बिजूका के सिरमें चुभे जा रहें हैं*
उसके पंजे/और दे रहे हैं कुछ ऐसा दर्द
कि जूता दो कदम चलने पर ही
पांव को काटने लगे।

मोहन निराश की वे रचनाएं जो प्रतीकों की क्लिष्टता से परे हैं अच्छी रचनाएं कही

जा सकती हैं। संचेनता में प्रकाशित एक रचना की कुछ पंक्तियां देखें:

बंद करो बाहर के द्वार/ भीतर का मौसम है सिरफिरा
खिड़की के द्वारों तक/ राहें ही राहें हैं।
जेबों में टांगे है/ चलने को बाहें हैं
कांख में मुखौटे हज़ार/ अपना यह चेहरा खुरदरा।

इसी प्रकार कवि की रचना 'आत्महत्या' भी सुन्दर और संप्रेषणीय है–

मै उन्हें रौंदता गया/ उन अंडों की तरह
जो यदि सेये गए होते/ तो कितने ही क्रोंच जनमते.......।

कहीं कहीं पर मिथकों के माध्यम से भी कवि ने बड़ी सारजनक बात की है:

कोई मुझे सलीब बनाकर
मेरा ही अस्तित्व चढ़ा गया उस पर
मुझ सलीब से घृणा करने वाले अरे ओ!
मै मसीहा काबिल नहीं/ समय के सलीब पर चढ़ाया गया
एक पैगम्बर हूँ स्वयं।

....आठवां दशक, सृजन के संदर्भ, 1986

निराश ने अपने नवीनतम संग्रह 'खाना बदोश' तक पहुंचते पहुचंते बहुत से पड़ाव तय कर लिए थे–नई सोच, शिल्प के नए धरातलों की तलाश, नए अनुभव, अध्ययन आदि ने कवि की रचनाओं में और भी निखार लाया लेकिन मज़े की बात यह है कि नए बिम्बों की तलाश में कृत्रिम वातास कवि ने छोड़ा है और अनायास बुनते बुनते शब्दों से अपनी सशक्त बात सहज ही कह डाली है–

बहने लगता है बरसाती नालों में पिघला हुआ इतिहास
सीमा के साथ–साथ खिंच जाती है लहु की रेखा
टांग देता हूँ हर कंटीले तार की एक एक नोक में हस्ताक्षर।

डा0 हरदयाल के अनुसार–'इस संग्रह की कविताएं पूरी तरह से प्रसूत विराट अंधकार में बौने अस्तित्व की कविताएं हैं' (शीराजा, पूर्णांक 79)। पर अभी कविता खत्म नहीं हुई न ही कवि का अस्तित्व ही इतना बौना है कि शब्दों में गुम हो जाए– एक धारा है जिसका प्रवाह अभी वेग में है।

पृथ्वी नाथ 'मधुप': अप्रैल 1937 में गांदरबल, कश्मीर में जन्में पृथ्वी नाथ 'मधुप' को बाल्यकाल से ही साहित्यिक वातावरण मिला है। इनके पिता जी पं0 नीलकंठ शर्मा स्वयं एक श्रेष्ठ कवि थे। लेखन 1950 के आसपास शुरू हुआ परन्तु प्रथम काव्य संग्रह 'वे मुखर क्षण' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा 1962 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कवि

के रचनाकाल के प्रारम्भ की रचनाएं संकलित हैं। अक्सर प्रारम्भिक काल की रचनाए भावुक स्थितियों को लेकर होती हैं जब किशोरवस्था की मानसिकता का अधकचरापन इन रचनाओं में अनायास ही प्रसार पा जाता है पर 'मधुप' की इस सग्रह की रचनाओं में भी भाषा की सुघड़ता और पैनी सोच दृष्टिगोचर होती है। अधिकाश रचनाएं नई कविता की रचनाधर्मिता पर पूरी उतरी हैं।

'मधुप' का दूसरा कविता संग्रह 'खोया चेहरा' कल्चर अकादमी, जम्मू कश्मीर के आर्थिक सहयोग से 1972 में प्रकाशित हुआ। इस काल की रचनाओं में उपयुक्त शब्द चयन ,सटीक बिम्ब और गम्भीर सोच मुखर हुए हैं। कवि प्रौढ़ता की ओर अग्रसर हैं। कवि का तीसरा कविता संग्रह 'खुली आंख की दास्तां 1981 में प्रकाशित हुआ। इस कविता संग्रह को जम्मू कल्चर अकादमी की ओर से उत्कृष्ट हिन्दी कृति मानकर पुरस्कृत किया गया। कवि का नवीनतम सग्रंह 'बबूल के साए में मोंगरा' राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा 1992 में प्रकाशित किया गया। यह अंक नीलजा—15 के रूप में प्रकाशित किया गया था। इस संग्रह में 62 कविताएं संकलित हैं। अपनी धरती से कटने का दर्द, वहां न जा पाने की अवशता, मधुर यादों की कसक, अंतर तक सालती पीड़ा के अजनबी क्षणों को झेलता कवि इस संग्रह की कविताओं में रफ्ता रफ्ता यथार्थ के शैल धरातल से टकराता है:

बहुत उदास है
चिनार की घनी छाया
पत्ते रच रहे षड्यन्त्र
जड़ों को उखाड़ने का।
अपने ही घर को जला रहे हैं घर के चिराग।

सीमित शब्दों में बहुत कुछ कह दिया कवि ने। एक अन्य कविता में देखें कवि के अन्तस् का दर्द यादों को दस्तक देता सुनहरे पलों से नहाता अचानक गहन अंधकार में डूब जाता है—

बसियाये दमघोंटू भभके जुलूस थूहर के
कसन में। कस रहे कहां गए। वे।
गिर्सों के । झील नील जल भीगे। ....पृ0 81

और अपनी धरती की गंध न पहचानने वाले अपने बंधुओं को चेता देने का स्वर भी इन पंक्तियों में मुखर हुआ है:—

तुम्हें। अफीम खिलाकर कोई। बना रहा बस
एक खिलौना। उसके लिए। स्वर्ग रचता है।
तेरा हर क्षण । धुत ही होना।

बाहरी बहकावे में आकर अपने ही घर को फूंक देने वालों को जब कवि दस्तक देने में असमर्थ रहता है तो उसका मन रो उठता है–

अरे कहीं तो खोजो
क्या हो गई रोशनी
पर्तों में अंधियारों के
खो गई रोशनी

इन पंक्तियों में हम गांधी के मिथक कि उन्हें कश्मीर में रोशनी दिखाई देती है को बीन सकते हैं। लेकिन इन्हीं रचनाओं में कवि तन्द्रा त्यागकर, भाग्य की जीविका को झाड़कर वास्तविकता को पहचाने लगता है–

शायद अब। त्यागूंगा निद्रा
पिनक से बाहर आ। समेट निज को
बरूगां। वास्तविकता ! वास्तविकता।।

शैली की दृष्टि से, कला और शिल्प की दृष्टि से कवि का यह संग्रह उनकी अन्यतमम रचनाओं का संग्रह कहा जा सकता है। उपयुक्त, सुगम तथा सरल शब्दों का चयन और विन्यास, भाषा में प्रवाह, कहीं कहीं पर अर्ध छन्द तथा स्थितिपरक प्रतीकों, बिम्बों और अंलकारों का प्रयोग इन रचनाओं को और विस्तार देता है पर साहित्यिक ध ारा में प्रवाहित ये अंश कहीं पर भी कवि की सोच पर हावी नहीं होते। भावप्रवण स्थितियों से गुजरते हुए आतुर शब्द अपना स्थान नहीं छोड़ते सम्भवतः यही कवि की काव्यात्मक संवेदना पाठकों या श्रोताओं को भावविह्वल कर देती है। नए शब्दों का प्रयोग भी खूब हुआ है।

सुतीक्षण कुमार आनन्दम्: हिन्दी साहित्य के प्रचार एवं प्रसार में कटिबद्ध सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् का जन्म 1939 में, जम्मू में, हुआ। साठ दशक के बाद के प्रतिष्ठित रचनाकारों में एक नाम सुतीक्षण कुमार आनन्दम् का भी आता है। इनकी प्रथम रचना 'ऋण मुक्ति', हिन्दी कहानी 1958 में कल्याण में प्रकाशित हुई परन्तु पहली हिन्दी कविता उर्दू में लिप्यन्तरण हो कर उर्दू संदेश में 1960 में प्रकाशित हुई। इनकी कुछ काव्य रचनायें नवभारत टाईम्स, नन्दन आदि में भी प्रकाशित हुई हैं। योजना (जम्मू कश्मीर) शीराज़ा, हिन्दी और डुग्गर समाचार के अतिरिक्त 'साक्षर' में भी इनकी रचनायें प्रकाशित होती रही हैं। 'आनन्दम्' के अभी तक चार कविता संग्रह छप चुके हैं और एक बाल गीतों की पुस्तिका को मिलाकर पांच कविता संग्रहों के रचनाकार की काव्य रचनाओं को रचनाकाल की दृष्टि से तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण में छन्दोबद्ध रचनायें, गीत रचे गए पर इन काव्य रचनाओं का संग्रह बाद में प्रकाशित (1992) होकर 'बाम के झरोखों' के नाम से सामने आया। इसकी ओर कवि ने अपने शब्दों में संकेत

किए हैं–"मेरी ये प्रारम्भिक रचनाएं हर बार उपेक्षा की पात्र बन कर मेरी प्रकाशित पहली कृतियों में दी हुई प्रकाशनार्थ पुस्तकों में सम्मिलित होती रहीं। इनके प्रकाशन से जुड़े विलंभ के कारणों में नई कविता के प्रति प्रवृत्ति की भूमिका रही है।" विरोधा भास देती हुई पंक्तियां हैं– एक ओर तो कवि इनके न प्रकाशित होने के कारण बता रहा है।तो दूसरी ओर उन्हें प्रकाशित संग्रहों में भी स्थान देने की बात कर रहा है। शायद कहीं प्रूफ की गलती रह गई है पर यह निश्चित है कि ये कवितायें कवि के पहले दौर की रचनाएं हैं। इस संग्रह में संकलित ग़ज़लें पठनीय हैं–

आप भी बहुत कमाल करते है।
याद ताज़ा हर साल करते हैं।
आपकी सादगी के क्या कहने,
कमसिनी से बेहाल करते हैं। .... *पृ0 49*

यद्यपि प्रारम्भिक कविताएं तुकबन्दी की ओर संकेत करती हैं तथापि ग़ज़लों में कवि की परिपक्वता दृष्टिगोचर होने लगती है।

कवि की दूसरे दौर की रचनायें नई कविता की परिधि में ली जा सकती हैं। यह स्वच्छन्द कविता का रूप है। कहीं कहीं पर आंतरिक छन्द हो तो अलग बात हैं अन्यथा मोटे तौर पर ये रचनायें छन्दरहित हैं। इन कविताओं का पहला संग्रह 'देखती आकाश आखें' 1968 में प्रकाशित होकर सामने आया। इस संग्रह में 34 रचनायें संकलित हैं। ये रचनायें विभिन्न भावबोध लिए हुए हैं– स्थानीय संस्कृति से उभरकर देश की अंतर्दशा और व्यक्ति के अंतर में घटती टकराहटों की सटीक अभिव्यक्ति करने में समर्थ हैं। संग्रह क़ी प्रथम कविता ही इस ओर संकेत करती है–

लिए प्याला अभिशापों का/अधिभार सहता।
जीवन का भूखा/जीने की चाह में/ निकला घर से।
भटक रहा है/ कहीं मिलेगा क्या पल भर जीवन।

एक अन्य कविता 'शेष' में सोच की अविरल धारा बिम्बों में टकराती हुई ज़रा ठहर गई है: –

कमल दल जितने भी थे/ एक एक कर तिल–तिल कर मुरझा गए हैं।
सर में केवल बूंद भर जल शेष बचा है/ और एक मछली छटपटाती रही।

अकविता का स्वरूप लिए हुए यह कविता काव्य की नई विधा की ओर संकेत करती है।

कवि के तीसरे दौर की कविताएं अनुभव की कसौटी और शब्दों की प्रखरता के साथ साथ की सोच की तीव्रता लिए हुए हैं। इस दौर के संग्रहों में छंदोबद्ध और स्वच्छन्द

दोनों ही प्रकार की रचनाएं संकलित हैं। 'कि वे बोलें' कवि का बाद में प्रकाशित संग्रह है। इसमें कुल 81 काव्य रचनायें संकलित हैं। स्वछन्द रचनाओं के साथ साथ गीत और ग़ज़लें भी यहां वहां बिखरी पड़ी हैं। इस संग्रह की स्वच्छंद रचनायें परिपक्व सोच की, प्रतीक हैं–

> **पंछी उड़ गया/ बहुत दूर/ बहुत से शब्द**
> **और उनके अर्थ /दे गया है जरूर/ परन्तु ले गया है/**
> **एक शब्द /और उसका अर्थ/ पंखो का झूलना**
> **चंचुओं का खुलना /होना बंद/ रह गया है याद।**
> **चिहुक चिहुक/ चि...............हुक।**

इन कविता संग्रहों में से 'नौका का इतिहास' जम्मू कश्मीर कलचरल अकादमी द्वारा 1976 में पुरस्कृत हो चुका है। इसके इलावा 1975 में रेडियो कश्मीर जम्मू द्वारा एक गीत प्रतियोगिता में भी इनका एक गीत पुरुस्कृत हो चुका है। 1984 में इनका कविता संग्रह 'कमल पत्र पर डोलता जल कण' प्रकाशित हुआ। यह संग्रह भी 61 स्वछन्द कविताओं का संकलन है। कविताएं अनुभूति प्रवण और विचारोत्तेजक हैं।

सुतीक्षण कुमार आनन्दम् द्वारा रचित कई गीत आकाशवाणी के कार्यक्रमों में प्रसारित किए जाते रहें हैं। इन्हें स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर के गायकों ने गाया है।

इनकी काव्य रचनाओं में स्थानीय रंग के साथ साथ भाव विचार तथा कल्पना सटीक शब्दों के माध्यम से मुखरित हुई है। इस ओर बच्चन ने देखती आकाश आंखें की भूमिका में संकेत किए हैं:

"आनन्दम् जी ने खड़ी बोली हिन्दी को अपने भाव–विचार, कल्पनाओं की वाहिनी बनाने का सफल प्रयास किया है।"

ज्योतीश्वर पथिक: जम्मू में 1940 में जन्मे ज्योतीश्वर गन्दोतरा छात्रावस्था तक पहुंचते पहुंचते 'पथिक' हो गए। पथिक होना मात्र स्थूल रूप से ही नहीं था अपितु मानसिक रूप से भी यह पथिक हो चुके थे। मज़े की बात तो यह है कि इनका भ्रमण केवल भौतिक दूरी को तय करने का ही नहीं होता अपितु मानसिक तौर पर इनका चलायमान मन ज्यादा चंचल है।

इनके कुछेक रिर्पोताज और यात्रायें इस ओर संकेत करतीं हैं। इनके दो कविता संग्रह–'रुनझुन' और ड्राइंग रूम में कैक्टस' अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इनके इलावा योजना, डुग्गर समाचार, शीराज़ा, हमारा साहित्य आदि में कवि की रचनाएं प्रकाशित होती रहतीं हैं।

रुनझुन इनकी छन्दोबद्ध रचनाओं का संग्रह है जिसमें गीतों के भाव प्रवण टुकडे हैं, रागानुभूतियों का मख़मली सफर है और स्वप्निल वातास से लहराते सुंगधित वातायन है जो ऐश्वर्य की बात कहते हैं।

'ड्राइंग रूम में कैक्टस' संग्रह की कविताओं में रचनाकार की रचनाओं में कथ्य का पैनापन और भाषा में प्रखरता आई है। इस 88 पन्नों के संग्रह में 47 काव्य रचनाएं हैं। इनमें से अधिकतर छंदमुक्त रचनाएं ही संग्रहीत हैं परन्तु इनमें भी छंद के मोह को कवि तोड़ नहीं पा रहा अतः कहीं कहीं छंद की मजबूरी आडे आती दीखती है। चार गीत और आठ ग़ज़लें भी इस संग्रह में संग्रहीत हैं। ये रचनाएं कवि के छंद के प्रति मोह को दर्शाती हैं। रचनाकार सामाजिक वर्जनाओं के प्रति क्रान्तिकारी स्वर मुखरित करता है और दोहरे मापदण्डों के प्रति आवाज़ बुलंद करने की क्षमता उसमे है:

हर शाम/ सात बजे के बाद/ मैं उधार की पीकर
प्रायः शराब की बुराई करता हूँ
एक पात्र का नाटक मैं/ देखो कितनी खुदाई करता हूँ।

कवि अपने परिवेश के प्रति सजग है और उसका यह धावा है कि मात्र शोध के लिए वह कविता नहीं लिख रहा:

मेरी यह कविता/ कोई शिलालेख नहीं/ जिस पर/ शोध करके
मेरी यह कविता आवाज़ है ऐसे युग की
जहाँ--- गर्म गर्म खबरों वाले अखबार/ कागज़ के अभाव की ठंडक
से ठिठुर रहें हैं/ सिकुड़ रहे हैं।

कवि की रचनाओं का दूसरा स्वर है प्रकृति। प्रकृति के सुंदर और लुभावने चित्र यहां तहां बिखरे पड़े हैं:

मेरे सामने —पर्वतों की ओट से/ झांकती हुई सुबह
बहुत सुहानी प्रतीत होती है/पक्षियों का कलरव
नदी नालों की कल कल/और

.... *पृ0 45*

एक और चित्र देखें:

आज— कितना उदास है/ चांद/झींगूर चीकी—मीकी बोल रहें हैं
अतीत के दुःस्वप्न में खोई नदी/ उदास से वेग में बह रही है।

और एक विषय है प्रतीक्षा का जो मानो कवि की अपनी दास्तां कहता हो:

वसंत—आकर जा भी चुका है/ मगर मेरी प्रतीक्षा का अंत नहीं हुआ

.... *पृ051*

पथिक की छन्दोबद्ध रचनाएं भी उदास संध्याओं और अकेलेपन का अहसास करवा जातीं हैं:

मैं एकाकी पथ का राही जीवन है सुनसान सड़क
सांझ समय मैं होता हूं या होती है वीरान सड़क

एक अन्य अहसास देखें:

एक अंधा सफर, धुंधलाई डगर/ कहीं मंजिलों की निशानी नहीं
किस दिशा में चलेगी यह किश्ती मेरी/यहां लहरों में रवानी नहीं

पथिक की रचनाओं में अपने अंचल की खुशबू पकड़ी जा सकती है। पहाड़, नदियां, नाले, पत्थरों का शहर, झील डल, गुलमर्ग, जूनी आदि शब्द एक अंचल विशेष की बात करते हैं। जम्मू को कभी पत्थरों का शहर कहा जाता था इस तथ्य की ओर कवि ने सकेंत दिए हैं:

मेरा शहर कभी पत्थरों का शहर था/ फिर पोस्टरों का शहर बना

...........*पृ0 47*

कश्मीर का सौन्दर्य कवि को आतुर कर जाता है:

महक रहे फूल/झूम रहे पेड़/ खुली धूप/ मस्त मस्त रूप
जहां कभी गूंजी थी 'जूनी' की आवाज/ बार बार
आजा मेरे/ फूलों के बांके राजकुमार ....*पृ039*

सीधी सादी भाषा में अपनी कल्पनाओं को बुनना और अपने आसपास के वातावरण को इसमें संजोना कवि के सहज और घुम्मकड़ जीवन की ओर संकेत करता है।

श्रीमती शामा: व्यवसाय में कार्यरत श्रीमती शामा का दख़ल कविता, कहानी और संस्मरण के साथ साथ दूसरी विधाओं में भी समान रूप से रहा है।

अब तक उनके पांच कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–'चुटकी भर मुस्कान' उदासियों के शहर में' 'बिखराव', 'मुटठी भर धूप' 'तुम्हें याद तो होगा'।

29 जुलाई 1945 में जन्मी शामा का लगाव कविता की ओर ज्यादा रहा है। देश विदेश भ्रमण के इलावा चित्रांकण, जापानी फूल सज्जा आदि में भी शामा शौक रखती हैं। लेखन अस्सी के दशक में मुखरित हुआ जब इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में छपना शुरू हुई। ऊपरलिखित कृतियों के माध्यम से शामा का एक कवियित्री के रूप में विकास आंका जा सकता है। वस्तुतः इन कविताओं में केवल दर्द बहा है– लमह लमह कटते रहने का दर्द, अकेलेपन की पीड़ा और उससे भी उपर वह कसक जो होने और न होने की स्थिति में व्यक्ति को सालती रहती है। क्रमशाः यदि इनकी रचनाओं का आकलन किया जाए तो दर्द करवट लेता हुआ दिखाई देता है:

इन्सान के बदल जाने का/ कोई वक्त नहीं होता
उदासियों के शहर में/ कोई पड़ाव नहीं होता......

.उदासियों के शहर मे, पृ029

कवियित्री उदासियों की तारीकियों में मन का सम्बल ढूंढने में असमर्थ है कारण वह खामोशी है जो उसके अन्तर में घर कर गई है:

आज एक स्याह ख़ामोशी/ हमेशा के लिए
मेरे प्रेम के एक कोणे में आ बसी है।

....वही, पृ0 25

और वह खामोशी टूटना चाहती है ताकि अन्तर में व्याप्त छटपटाहट दूर हो सके:

एक ज़ख्मी सी कल्पना/ सिसक रही है
ज़हन के सीखचों से सटी हुई/ बाहर निकल आने को

...वही, पृ0 15

लेकिन खामोशी टूटती नहीं वहीं गहरा जाती है:

आज फिर लफ्ज़ों का दिलासा
हुक्म दे गया चुप्पी का/ गुनाह के आरोपित अहसासों को

.....वही, पृ0 11

घुटी हुई जिन्दगी का अहसास दूसरे मरहले पर आकर मरहम ढूंढता है:

एक खूनी हादसा है/ मेरी जिन्दगी का आग़ाज़.............
और उम्र भर की कैद–इसका कड़वा अंजाम।....मुट्ठी भर धूप,

...........पृ0 19

और मन लौट लौट जाता है बीते हुए सुख के क्षणों को बीनने:

दिन गिरते रहे सूखे पत्तों की तरह
उम्र के पुराने चिनार से

.....वही, पृ0 23

कहीं कहीं पर मधुर क्षणों की अपेक्षा में कविमन आग्रही हो उठता है:

न कभी तुमने कुछ पूछा/ न कभी मैनें तुम्हें बताया
फिर मेरी किस बात से/ तुम्हारी खुश्क आंखों में पानी भर आया।

...वही, पृ0 111

और अपने सद्यः प्रकाशित कविता संग्रह 'तुम्हें याद तो होगा' में कवियित्री

असमंजस की स्थिति से बाहर आ गई है:

आज मैं कर्ज को लौटा आई हूं।
जो मैंने उम्रों पहले चिनारों और सफेदों की छांव में
खुली वादी के नीले आसमान के नीचे
सरसराती ठन्डी हवाओं–बंद दरवाजे पर लिया था।........
तुम्हें याद तो होगा,

...............*पृ011*

किन्तु उम्र के इस मोड़ पर आकर कवियित्री बीते दिनो में कुछ भी न कर पाने की पीड़ा को लिए पश्चाताप करती दिखती है:

काले कोयले की तरह जले वर्षों की/ फैली राख में
आज यादों की कोई ऐसी चिन्गारी भी नहीं बची कि
जिसे सुलगाकर मैं/ आगे के वर्षों की लकड़ियां जला..........लूं

...............*वही पृ0 25*

असमंजस की स्थिति में जीवन के अनेक वर्षों को जीने के बाद रचनाकार को लगने लगता है कि आखिर कहां है मेरी मंज़िल:

कुछ झूठे मोह मैंने वर्कें से तहकर
तकिए के नीचे रख लिए/ कुछ निरीह वियोग वंधना ने
मेरे माथे में/अमिट अक्षरों में लिख दिए
जीने को उच्छवासों का सिलसिला/ चलने को अनाम यात्राओं
के दुर्गमपथ/ और कहीं कोई मंजिल भी नहीं.......।

................*वही पृ0 72*

कवियित्री की रचनाशीलता में वस्तुतः चार स्थितियां आंकी जा सकतीं हैं–दर्द के दरिया में डूबने, उतराने की पीड़ा की अभिव्यक्ति, फिर दर्द को धीरे धीरे अपने में आत्मसात करने की मजबूरी, बीते समय की सुखद यात्राओं में से कुछ को बीनने का अहसास और अंत में कुछ न कर पाने की व्यथा इन कविताओं में खूब उभरी है। लगभग सभी रचनांए नितांत वैयक्तिक हैं और कवियित्री के वजूद के आगे– पीछे ही घूमतीं हैं। कवियित्री के पास शब्द चयन और उनके सटीक विन्यास की सामर्थ्य है और वह शब्दों से खेलना भी जानती है। अनेक स्थानों पर हमें ऐसे शब्द प्रयोग मिलेंगे जो मौलिक तो हैं ही ताज़गी का अहसास भी करवा जाते हैं।

दिन गिरते रहे सूखे पत्तों की तरह/ उम्र के पुराने चिनार से........

बहुत सुंदर प्रयोग चिनार और गिरते दिनों के माध्यम से इस रचना में हुआ है।

अपने परिवेश और वातास से ही कवियित्री बिम्ब चुनती है और उन्हें बहुत नफासत से अपनी रचनाओं में सजा देती है। पर इस सजावट में कोई सायास प्रयास नहीं दीखता कहीं पर भी कविता की रवानी में कोई रुकावट नहीं आती रचना का प्रवाह अपने वेग से चलता रहता है। कश्मीर की धरती की गंध इन कविताओं में चहु ओर व्याप्त है। चिनार, टूटते ग्लेशियरों की आवाज़, वूलर, मानसबल, डल आदि झीलों, वितस्ता, केसर की लहलहातीं क्यारियां, देवदारों की उंचाई, चीड़ों की चिघांड़ आदि को अपनी रचनाओं में बखूबी प्रयोग किया गया है। किसी भी पाठक को यह समझने में कतई मुश्किल नहीं होगी कि कवियित्री कश्मीर की मिट्टी की गन्ध को सौरभ की तरह फैलाती दीखती है:

चिनारों के सूखे पत्तों की/ सरसराहट ..../ जब भी करती रहती है
सूनी विरान शामों को परेशान/मुझे महादेव की बर्फानी हवाएं
अब भी छू जातीं हैं सरेआम मुझे।
कहवाघरों की भीड़ में भी/ वुलर और मानसबल के
नक्श कर जाते हैं/ अजनबी और अनजान मुझे

.........मुट्ठी भर टूटन, पृ0 47

शामा अब अपने परिवेश से कट गई हैं पर यह कटना केवल भौतिक स्तर पर हुआ है। वस्तुतः वह अपने आप को चिनारों, झीलों, नदियों, पहाड़ों, बर्फ के दरियाओं से कभी भी अलग नहीं कर पातीं। यही प्रकृति के स्रोत इनकी रचनाओं में प्रवाहमान हैं और यही इनकी कविताओं की शक्ति भी पर इसमें से गरिमा के क्षणों को बीनकर तरतीव देने की खूबी कवियित्री में है जो पाठकों को बांध लेती है और वे शब्दों के साथ साथ, कवियित्री की मानसिक यात्रा में शरीक हो जातें हैं यही रचनाकार की सबसे बड़ी खूबी है।

डा.आशोक जेरथ:—आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों के साथ साथ कलचरल अकादमी और विभिन्न संस्थाओं के साहित्यिक मंचों पर इनकी कविताएं सुनाई देती रही हैं। कादम्बिनी, विपाशा, मधुमती, हिमप्रस्थ, शीराज़ा, योजना, नीलजा, जागृति और राष्ट्रीय स्तर के अनेक समाचार पत्रों के साहित्यिक अंकों में इनकी कविताएं प्रकाशित होती रहतीं हैं। इनकी कविताओं का एक कविता संग्रह 'आहत चीड़ें' 1979 में प्रकाशित होकर सामने आया। कुछ रचनायें 'मधुरिमा' प्रतिभा पुष्प 3,' 'और चौराहे पर खड़े बारह चेहरे' संकलनों में भी संकलित हैं और अजित कुमार द्वारा सम्पादित देश की चुनी हुई कुछ हिन्दी कविताओं के संकलन में भी डा.अशोक जेरथ की एक कविता संकलित है।

आहत चीड़ें:—चौसठ पृष्ठीय इस कविता संग्रह में कवि की कुल 35 कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं में वैयक्तिक अनुभूतियों से लेकर समष्टि की बात की गई है।

चांद को ग्रसकर ज्योत्सना फैला दी है
सूरज की तपिश को अंजुली में भर उछाल दिया है
अब और कुछ भी करने को जी नहीं चाहता
ठहरा हुआ कुछ चलने लगा है बहता बहता ....*पृ० 10*

एक और रूप देखें :
मेरा हंसना हंसना नहीं मेरे दोस्त
जिस तरह बच्चे का रोना रोना नहीं होता
बच्चे के रोने से उसके बढ़ने का अहसास होता है
मुझे मेरे हंसने से घटने का आभास होता है।

और एक अन्य अहसास देखें:
कुछ फूल तुमने चुने/ कुछ फूल हमने छांटे हैं
तुम्हारे फूल, फूल हो गए/ हमारे फूल सब कांटे हैं। ....*पृ० 27*

'एक नए सूरज की तलाश' कविता में बिडम्बनाओं की एक तस्वीर उभरती है:
वही दूब, जो सूरज को पानी में उतरते/ देख/ सकुचा आई थी
रोने लगी है। उसके आंसू तृणों में लगे हैं
मोती–बिन्दु की तरह। ....*पृ० 64*

इन कविताओं का दूसरा विषय है अपने परिवेश के प्रति जागरुकता।
जीवन कहीं भूल आया हूं/ मृत्यु – एक दुःस्वप्न की तरह
आगे बढ़ आई है/ बीच में–कुछ पहचानी सीढियां हैं
जिन पर/ हर रोज़ चढ़ता हूं/ हर रोज उतरता हूं/ फिर
भूल जाता हूं ....*पृ० 18*

एक अन्य कविता 'महत्वाकांक्षा' देखें:
सोचता हूं किसी दिन। बड़ा आदमी बनूंगा
लेकिन/ प्रत्येक उंची सीढी पर चढ़ने से पहले
निचली सीढी से / टकरा कर/ वहीं/ खड़ा हो जाता हू.
.........*पृ० 39*

बेकारी, असुरक्षित वातास, भ्रष्टाचार से उत्पन्न स्थितियां एवं बिडम्बनाओं से जुड़ा कवि अपने पहले दौर की रचनाओं में कह उठता है :
.....कि कई वर्षो से/ वह इस कांटे को
घूमते–खड़े होते देखता आया है। किन्तु भूल से भी

कभी उसके घर में रुका नहीं/ केवल खाली घर
और कुछ स्लोगान/ हमें डिग्री नहीं भात चाहिए ....*पृ0 21*

इन तल्खियों के परिणामस्वरूप कवि का स्वर उसकी पहली कविताओं में महसूस किया जा सकता है।

वे सभी विचार बेकार है/ चीटियों की लम्बी कतार
........सरकारी दुकान के बाहिर/ आठ घण्टे खड़ा रहने के बाद
खाली टीन बजाता/ लौट आया हूं.........

...चौराहे पर खडे बारह चेहरे...... पृ0 54

नए वर्ष पर ताज़ा बिम्बों के प्रयोग से आम आदमी का दर्द इन पंक्तियों में बहा है:

हर बार बर्फ पड़ती है/ मेरे साथ साथ आहत चीडों का दर्द
देवदारों की चिंघाड़/ ढुलमुल–ढुलमुल सीढीदार–
खेतों की हरियाली को ढांप देती है/ मैं समझता हूं
कि मेरा दर्द अकेला नहीं।

आठवां दशक, सृजन संदर्भ ....पृ0 120

एक रंग प्रकृति का भी कवि की रचनाओं में बहा है। चीड़, देवदार, नदियां, पहाड़, पहाडों का दर्द, बर्फ, सांताक्लाज बने वृक्ष और इनमें से गुजरता हुआ यादों का कारवां कवि की रचनाओं को वैयक्तिक धरातल तक ले आता है:

देखो शिशिर की दुपहरी में जल रहा कोई
अंगड़ाती ग्रीष्म की आंच की ठंडाई में
धीरे धीरे तिल–तिल गल रहा कोई
बासंती केसर के बिखरे सौरभ को
उठाये, पतझड़ी अंधेरों में चल रहा कोई।

...........कादम्बिनी, दिसम्बर 1979 पृ0 56

सफेद बुरादा –देवदार के शिखरों पर चीडों के कंधो पर पड़ता है
और वे क्रिसमिस ट्री बन जाते हैं
मार्ग पर चलने वाला हर आदमी/ बन जाता है/ सांता क्लाज

आठवां दशक, सृजन के संदर्भ पृ0 119

एक अन्य बिम्ब देखें:

फुर्र करके गोरैया उड़ गई
सिन्दूरी उजास सिकुड़ गया था/ पेड़ों की मुंढेरों पर

सहम गई चुपचाप /दूर से आती ढोलक की थाप।

............*शीराज़ा ,पूर्णांक 77 पृ0*

छन्दोबद्ध कविताओं और गीतों में प्रकृति का स्वरूप देखें:

दरख्तों की छाया सताने लगी है
तपिश धूप की अब लुभाने लगी है
हवा चुप है, सूरज छिपा बादलों में
सुनो, धूप कुछ गुनगुनाने लगी है। ....*जागृति, अगस्त 1980* पृ0
22

मुट्ठी भर हवा फिसल गई हाथों से
रुका न कोई सैलाब/ खुल गएं बन्ध अपने आप
खो गए आसमां कैसे कैसे/ बह गया सिन्धुरी ख्वाब।

.............*हिमप्रस्थ, मार्च 93*

पर कहीं कहीं इनकी कविताओं में गद्यात्मकता हावी हो जाती दीखती है:

पर वह कांच जिसमें केवल अपना बिम्ब दीखता था
अब धुंधला हो आया है,
बहुत गौर से देखने पर एक छाया झलक आती है
जिसमें सायास में अपनी तस्वीर बुन देता हूं।

....
शीराज़ा, पूर्णांक 77 पृ0 33

रौशनी की सुरंग, चीड़, देवदार, शालवन, बर्फ, सांताक्लाज, बबूल, बरगद आदि शब्दबिम्बों को प्रयोग किया गया है

अजनबी कटी सी खामोश भीड़ का
कंटीली पिलियाई चादर से ढके,
बबूल सा प्रहरी ....*शीराज़ा ,पूर्णांक 41 पृ0 21*
और
चिनार के कटे सहस्रों टुकड़ों को
जो तुमने उछाला है–
बरगद की धनेरी छांव में/ मैनें एक एक करके लोक लिया है।

.....*शीराज़ा ,पूर्णांक 41 पृ0 27*

'रौशनी की सुरंग' का एक प्रयोग देखें :–

न जाने कैसे/ फिर अंधेरें ने सेंध लगाकर

उस रौशनी की सुरंग को छेद डाला था

..........*शीराजा पूर्णांक 47 पृ0 69*

चांद, सूरज, कैक्टस, आदि का प्रयोग भी बखूबी हुआ है :

चांद को ग्रसकर ज्योत्सना छलका दी है
सूरज की तपिश को अंजली में भर उछाल दिया है

..........*आहत चीड़ें , पृ0 16*

मिथकों के प्रयोग देखें :

उभरने दो स्वर फिर रजनीगंधा के
जागने दो पाण्डव सेना के सोए अरमान
उभरने दो बलवीर कोई बब्रुवाहन ....*आहत चीड़े*, पृ. 62

मेरा दर्द कविता में क्रिसमिस ट्री और सांताक्लाज के मिथकों का प्रयोग हुआ है और सभ्यता का अंधेरा कविता में चांद में बैठी चर्खा चलाती बुढ़िया का प्रयोग देखेः

सांझ के धुंधलके में/ जब भी चांद उतरता है
उसमें बैठी बुढ़िया/ अभी भी वही चर्खा कातती है
लगता है जवान हो रही है ....*शीराज़ा, 77 पृ0 38*

निर्मल विनोदः युवा कवियों में एक सशक्त स्वर है निर्मल विनोद का। जम्मू में 1950 में जन्मे निर्मल विनोद ने बी0एस0सी0 करने के बाद एम0 ए0 हिन्दी में उतीर्ण की और बाद में शोधकार्य में सलंग्न हो गए। आजकल केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ में प्राध्यापक के तौर पर कार्यरत हैं। विनोद का कवि सत्तर के दशक में करवट लेता है जब हिन्दी साहित्य मंडल की गोष्ठियों में इनकी स्वरबद्ध रचनाएं सुनने को मिलतीं थीं। धीरे धीरे अनुभव, अध्ययन, पारिवारिक पृष्ठभूमि आदि इनके अंतर में बैठे हुए रचनाकार को सजीव कर देते हैं। वस्तुतः 1972 के बाद इनकी कविताओं में निखार आना शुरू हो चुका था। युवा हिन्दी लेखन संघ द्वारा प्रकाशित कविता संग्रह 'बारह चेहरे खड़े चौराहे पर' में एक चेहरा निर्मल विनोद का भी था। इसके इलावा शीराज़ा,योजना आदि में भी इनकी रचनाएं स्थान पाने लगीं थीं। पर इनकी काव्यानुभूति का सटीक और सही रूप हमें इनके पहले कविता सग्रंह 'पत्थरों का दरिया' में संकलित काव्य रचनाओं में मिलता है। दुश्यंत की स्मृति को समर्पित यह संग्रह गीत और ग़ज़ल का संग्रह है। इन काव्य रचनाओं में बिम्ब और प्रतीक बहुत सुंदर ढंग से मुखरित हुए हैं। निर्मल की कविताओं और गीतों में सबसे बढ़ी खूबी उनमें शब्दबिम्ब को अपने पूर्ण सौंदर्य के साथ उजागर करना हैः

गुलमुहर झरने लगा है—

सर्र–झर–झर / सर्र–झर–झर
पत्तझरी अंदाज भी क्या खूब
ठिठुरती सी, पीत पग की दूब
विकल मन की रागिनी हो गई
मर्मभेदी तान मर्–मर् ....पृ0 10

फूल और पत्तों के झड़ने का स्वर शब्द और दृश्य दोनों को उजागर करता है। इसी प्रकार एक अन्य गीत में एक और रूप देखे:

छतरी पर वर्षा की बूंदें–
तिप्–तिप्–रिप्
तिप्–तिप्–रिप्
तृप ध्वनियों का स्वर संधान .... पृ013

निर्मल विनोद का दूसरा काव्य संकलन 'बयार के पंखों में' 1978 में प्रकाशित होकर सामने आया जिसमें कवि की छन्द मुक्त रचनाएं प्रकाशित हैं। वस्तुतः निर्मल विनोद एक गीतकार हैं और छन्दमुक्त रचनाएं रचते हुए भी वे स्वतः ही लय और ताल की ओर उन्मुख हो जाते हैं। इस ओर संकेत करते हुए चर्चित कवि और विद्वान श्री अजित कुमार लिखते हैं "गीत की ओर उनकी लेखनी स्वाभाविक रूप से उन्मुख रहती है, तनिक असावधान होते ही इनकी पंक्तियां लय और तुक में बन्धनें लगतीं हैं।"
..................पृ0 8

निर्मल विनोद की कविताओं को विषय की दृष्टि से तीन मुख्य धाराओं में बांटा जा सकता है–पहली धारा राष्ट्र के प्रति समर्पित है वस्तुतः निर्मल की कविता का आग़ाज़ देश प्रेम की रचनाओं से माना जाता है। निर्मल विनोद के अनुसार, लड़कपन से ही उन्हें देशप्रेम के गीत गाने का शोक था यही कारण है कि शुरू के गीतों में देशप्रेम का स्वर मुखरित हुआ है। 'पत्थरों का दरिया' संकलन के अंतिम आठ दस गीतों में यही स्वर बहा है।

भारती का विश्व में होना पुनः सम्मान है। .... पृ0 55
जय जय भारत भूमि जयति जय .... पृ0 58
विश्व–वंद्य मां की हम सब मिल चलें उतारें आरती– .... .पृ0 59

इनकी कविताओं का दूसरा मुख्य विषय है श्रृगांर। प्रणयसिक्त क्षण कवि के दग्ध और स्निग्ध अन्तस् को पाठकों के आगे खोल देते हैं। वस्तुतः यह कवि की रचनाप्रक्रिया का दूसरा दौर था। अब उसके काव्य में यौवन अंगड़ाई लेने लगा था। सटीक शब्दों का चयन, लय, छन्द और सोच अनुभूतियों के साथ बहकर स्वयं तो संवेदित

हो जाती हैं पाठकों को भी भावप्रवण कर देती है :

रह–रहकर होठों पर
आता है गन्धाती चीड़ों का नाम
सुबह–शाम, सुबह–शाम।
रह–रहकर काम्पती/ तन्वगी देह तुम्हारी
आशंका एक/ठन्डी सी आंखें/ जमें प्रश्न की लाचारी –पृ0 24

एक अन्य उदाहरण देखें:

रंग बड़े वैसे/ कि/छूटते नहीं
माने भी ऐसे/ कि/रूठते नहीं

ये गीत शिल्प की दृष्टि से, विषय की दृष्टि से कवि की अन्यतम रचनाओं में लिए जा सकते हैं। एक ओर तो अनुभूतियों का प्रवाह है सारी दुनिया को समेटे हुए और दूसरी ओर सारी दुनिया से कटा अकेले का दर्द है।

कवि की रचनाओं का तीसरा दौर कवि को नई कविता के बहुत करीब ले आया है।'साक्षी संध्याओं के' के प्रकाशन के साथ ही कवि की वैचारिकता इनकी रचनाओं में उभरने लगी है गो सपाटबयानी से कवि गुरेज करता है। सहज भाषा और सहज कथ्य और काव्यात्मक फलक पर इनकी रचनायें परवान चढ़ती हैं। नई कविता की लफ्फ़ाजी में कवि गुम नहीं होता अपितु काव्य के तत्तवों को साथ लिए चलता है शायद यही कवि की सबसे बड़ी खूबी भी है।

जम्मू कश्मीर के जिन इने गिने कवियों ने अपनी प्रतिभा के बल पर अपनी पहचान स्थापित की है उनमें निर्मल विनोद का भी नाम आता है। साप्ताहिक, संचेतना, आजकल, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा संवाद , यथार्थ ,गगनांचल, शिखर, आज की कविता आदि पत्रिकाओं में इनकी रचनाओं का प्रकाशन इस ओर संकेत करता है। निर्मल विनोद ने कई राष्ट्रीय स्तर के कवि सम्मेलनों में भी भाग लिया है जिनमें आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा आयोजित कवि सम्मेलन भी हैं। 26 जनवरी 1993 के गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्रीय कवि सम्मेलन (सर्वभाषी) में निर्मल विनोद ने सिंधी गज़ल का उसी छन्द में हिन्दी अनुवाद कर मंच पर सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया था। यह इनकी एक अच्छी उपलब्धि मानी जाएगी।

बचपन की दहलीज से वयः संधि की रेखा पार करता कवि अनेक मीठे, तीखे और कडुवे अनुभव बटोरता है और उसकी रचना के तेवर भी तीखे होने लगते हैं।

अब रचनाओं में विचारों की परिपक्वता, सामाजिक विसंगतियाँ और नैतिक तौर

पर खोखले हुए परिवेश का दर्द उजागर होने लगा है:

यांत्रिकता टूटना मुहाल/ मगर हाय।
जीवन भर जीना अकाल
किरमज़ी लकीरों का बही खाता
एक और वर्ष/ लटपटाता सा/ बह जाता

और 'विघटन' कविता में व्यवस्था पर चोट करता हुआ कवि का स्वर उभर आता है:

पपड़ाई धरती/ प्यासा जनगण
पानी का राशन/ प्रगति पर भाषण
....
सर्वत्र अंसतोष की/ वक्र रेखा
खाली /बड़ी आंत सी।

बावजूद इन कविताओं में प्रवाहित भाषा और पैने स्वर के कवि के दूसरे दौर की रचनाएं सशक्त रचनाएं कही जा सकती हैं जिनमें ऐसा कुछ अवश्य है जो पाठकों और श्रोताओं को बान्ध लेता है।

उषा व्यास:—2 सितम्बर 1950 में कठुआ में जन्मी उषा ने एम0 ए0 और बाद में पी0 एच0 डी0 जम्मू विश्वविद्यालय से की। वह कथा लेखन और कविता दोनो विधाओं में, समान अधिकार रखती हैं। 'प्रतिदान' नाम से उनका एक उपन्यास प्रकाशित हो चुका है और अनेक रचनाएं, कहानियां और कविताएं राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं और स्थानीय पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। सम्प्रति शीराज़ा हिन्दी से सम्बद्ध।

उषा व्यास का अभी तक कोई स्वतंत्र कविता संग्रह सामने नहीं आया पर शीराज़ा और हमारा साहित्य में प्रकाशित इन की रचनाओं के माध्यम से इनके भाव प्रवण स्वरूप को आंका जा सकता है। कोमल—कोमल शब्दों से उकेरे गए भाव, कोमल—कोमल रेशमी बिम्ब, गिरती ताजा बर्फ के फाहों से नर्म नर्म गुदाज अहसास और गरिमायुक्त वातास में से रिमझिम करती सोचों की फुहार इनकी रचनाओं में मुखरित हुई है।

सोनाली सांझ के/ गंध—डूबे आमंत्रण में
खोजते रहे चुपचाप........./ लहके लहके रोशनी बिंधे बादल
झनकते नूपुरों के अर्थ/ और/ शापित आकाश की रगों में
टीसता रहा धुआं—धुआं दर्द।

...............*शीराज़ा, पूर्णांक 35*

'सोनाली सांझ', 'झनकते नूपुर', 'शापित आकाश' आदि शब्द बिम्ब जहां स्वरों

को बान्धते हैं, रंग बिखेरते हैं वहीं पर सुनहली सन्ध्या की सुन्दर तस्वीर भी हमारे सामने टुकड़ों में आकाशीय लहकती बदली सग बना जाते हैं।

शब्द चयन और उनका विन्यास रचनाकार की रागात्मक अनुभूति की ओर संकेत करता है। इनकी रचनाएं (गीतात्मक) विशेष तौर पर चर्चित हुई हैं :

महुआ पिया फागुन ने/ जंगल में डाल–डाल
फूली है आग/ बंसी के झरने से / झरता विहाग
बांटी सौगातें/ मौसम मन भावन ने/ महुआ पिया फागुन ने।

.... शीराजा, पूर्णांक 68

एक अन्य गीत में भी वही रागात्मक अनुभूतियों के फूल झर रहे हैं :

रिमझिम रिमझिम रिमझम फूहार/बूंदों की बांसुरी में बजा मल्हार
कहते से लगे कुछ जब अमलतास/ सरक आई हवा कुछ पास, और पास।

....वही...

दोनों रचनाओं में बांसुरी का प्रयोग अलग अलग ढंग से हुआ है। पहले गीत में बांसुरी की स्वर लहरियों को झरने के रूप में देखा गया है तो दूसरे गीत में 'फूहार की बूंदों' में से कविमना रचनाकार को बांसुरी से फूटता मल्हार राग में नहाया गीत सुख देता लगता है।

कहीं कहीं पर संगीत की मधुर लहरियों के अतिरिक्त छवि स्पर्श भी पाठकों के मनोमस्तिष्क पर हॉवी हो जाता है– एक लहकी–लहकी इठलाती हुई तस्वीर जहाँ प्रकृति ने सौन्दर्य का सम्पूर्ण साम्राज्य लुटा दिया हो :

अमलतासी स्वर अधर पर/धर प्रभाती गाए निर्झर
नीड़ के पंखों की फड़–फड़/लो उनींदी शर्वरी ने
पलक रतनारे उघारे/हार सिंगार झरे भिनसारें।

................शीराज़ा, सित0 1973

निर्झर का अमलतासी स्वरों को अधर में लिए प्रभाती गाना। क्या बात है! क्या कल्पना की उड़ान है! हार सिंगार के झरने का स्वर इन पंक्तियों में निर्झर के स्वर के साथ रंगों का खेल खेलता एकाकार होकर एक अदि्वतीय रूप छवि में उढेल देता है– प्रकृति दि्वारा उकेरा गया सौंदर्य का विशद राज्य और कोमल रागात्मक अनुभूतियों का बहता हुआ संगीतात्मक दरिया और मूक सा बैठा श्रोता/ पाठक देखा किए है प्रकृति के इस अद्भुत स्वरूप को।

उषा व्यास ने केवल रोमानी संसार, प्रकृति के सौंदर्य और रागात्मक अनुभूतियों की ही बात की हो ऐसा नहीं । मूलतः कवि संवेदन–शील होता है– अपने परिवेश से जुड़ा अथवा कटा हुआ। वह बीच की स्थिति में नहीं हो सकता अतः परिवेश में चल रही हलचल का उसकी रचनाओं में आ जाना स्वाभाविक है। नकारात्मक स्थितियां, उदासी की तारीकियां, परिवेश का अनचीन्हा सा दर्द उसे सालता रहता है पर अवशता उस पर हॉवी रहती है:

विश्वास के ज्योति स्तम्भ/ढह गए
संवेदनाएं हो रही हैं खण्डहर
और उन खण्डहरों के बीच/ उग आए हैं घने कैक्टस झाड़
भीमकाय चट्टानें, बरगद के पेड़/ ताकते हैं आखें फाड़।

...............*हमारा साहित्य, 1974*

बात बड़ी पते की कही है – आशा के स्तम्भ जब ढह जाते हैं, उषा की लाली क्षीण होने लगती है तो अंतर में उठ रही सुगबुगाहट ज़ख्‍ह हो जाती है। फूलों के सौरभ और रंगों के स्थान पर कैक्टस का सा खुरदरापन उभरने लगता है। कैक्टस अपने आप में पूरा शब्द है– पर लगता है कि तुक मिलाने की मजबूरी ने रचनाकार को विवश कर दिया है कि वह 'कैक्टस–झाड़' का प्रयोग करे ताकि 'आंखे फाड़' से तुक मिल सके।

एक अन्य रचना 'बेनाम यात्रा' में आकांक्षित सत्य को खोजती आंखे रेखाकिंत रिशतों के सूक्ष्म धरातल तक पहुचना चाहतीं हैं पर आकांक्षित सत्य यदि पूरा हो जाए तो स्वप्न न रह कर यथार्थ हो जाएं, पर ठोस धरातल से टकराकर हमारा मोहभंग होने लगता है :

हम सोचते रहे बस्स सोचते रहे
कि कब होगा/चांदनी हवाओं का रुख इधर
कब सिमटेगा/नाव की ठहरी पाल में
कनेरी चांदनी का धुला विस्तार............
जेठिया दुपहरी की नोकदार किरणों के
बरसते रहे चाबुक/और बेतरतीब उघड़े लम्बे निशान।

............*चीडों में ठहरी बयार, पृ0 41*

लय और छन्द में बन्धी उषा व्यास की रचनाएं अच्छी रचनाएं कही जा सकती हैं। मूलतः उषा गीतकार है अतः रागात्मक रचनाओं में भरपूर कोशिश है, वे पाठकों को बान्ध लेतीं हैं जहां तक कि छन्दमुक्त रचनाओं में भी लय और छन्द या आंन्तरिक छन्द के मोह को कवियित्री छोड़ नहीं पाती है, यही कारण है कि उन रचनाओं में एक प्रवाह दिखता

है और विचार भी पीछे छूट जाते हैं और शिल्प पर भी इसका प्रभाव पडता है। 'बेनाम यात्रा' में 'गंध डूबी चांदनी हवाएं,' 'कनेरी चांदनी का धुला विस्तार' आदि गीतात्मक प्रयोग हैं। और दूसरी ओर 'बेतरतीब उघाड़े लम्बे निशान' इस मानसिकता को तोड़ देते हैं, दो धाराओं में बटा पाठक समझ नहीं पाता कि कौन सी धारा को पकडे।

उषा व्यास की गीतात्मक रचनाएं खूब सुन्दर हैं, उचित शब्दों के चयन से बुने गए बिम्ब उचित वातावरण तैयार करते हुए पाठकों/श्रोताओं को रागात्मक अनुभूतियों से सराबोर कर जाते हैं।

कहीं कहीं पर नए शब्दों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। कैक्टस, सूरज, कोहरा आदि चलित शब्द अकसर नई कविता में पिरो दिए जाते हैं, शायद इसलिए कि रचनाकार यह सोचता है कि इनके बिना कविता 'नई' नहीं हो सकती। उषा व्यास ने इन्हें लेकर कुछ नए प्रयोग भी किए हैं:

'कोहरे के फेन सी मधुर स्वप्न चुप्पी' जैसे एक तस्वीर सी खींच गई हो। यहां कोहरे को झीने पर्दे की तरह लिया गया है जिसमें से नग्न सौंदर्य अपना साम्राज्य स्थापित करता दिखता है। 'जेठिया दुपहरी की नोकदार किरणें' सूरज के हथियार के रूप में बहुत सशक्त बिम्ब उजागर करतीं हैं। 'बेबसी से रोज़ उगते और डूब जाते सूरज' में आशाओं और निराशाओं के झझांवतों की बात मुखरित होती है। इसी प्रकार 'विश्वास ज्योति स्तम्भों का ढहना' आशाओं, आस्थाओं और विश्वासों का गिरना है, यह एक मोहभंग स्थिति की ओर संकेत है। 'ज्योति स्तम्भ' अपने आप में पूरा शब्द है और आशाओं का प्रतीक है कि इतना सफर तय कर लिया गया है और बाकी बचा सफर भी तय हो जाएगा और मंजिल करीब है 'विश्वास' के प्रयोग, से भी वही बिम्ब उजागर होता है।

बहरहाल कवियित्री की दृष्टि और रचना की पकड़ सार्थक है, हमें प्रतीक्षा है इनके कविता संग्रह की।

क्षमा कौलः कश्मीर की विस्थापित समस्या ने एक और दिक्कत पैदा कर दी है, कश्मीर के रचनाकारों तक पहुंच कठिन हो आई है पर इनकी रचनाओं के माध्यम से रचनाकार का एक खा़का उभरता है और स्वयंमेव ही एक तस्वीर तैयार हो गई है। मै समझता हूं यह परिचय ज्यादा महत्वपूर्ण है।

क्षमा कौल की दस बारह रचनाएं पढ़ने को मिलीं हैं जिनका गंभीर अध्ययन करने से लगा है कि एक सम्भावित रचनाकार ही नहीं अपितु एक सशक्त रचनाकार करवट ले रहा है। सशक्त इसलिए कि जो अपने परिवेश से जुड़ा होने के साथ साथ अपनी भी बात कह पाने में समर्थ है। क्षमा कौल की रचनाओं में न केवल अपने आस–पास से

संवेदित होने की बात कही गई है अपितु उनसे संदर्भ उठाकर, उन्हें उचित ढंग से बीनने और उनकी सटीक अभिव्यक्ति भी इन रचनाओं में हुई है।

अक्सर हम भोगे हुए यर्थाथ की बात करते हैं पर क्षमा कौल की रचनाओं में 'झेला हुआ यर्थाथ' उभरता है। 'भोगना' मजबूरी हो न हो पर 'झेलना' मजबूरी अवश्य है। नारी मन की व्यथा नारी ही जाने पर उसकी अभिव्यक्ति भला सब नारियां कर सकतीं हैं, शायद नहीं। क्षमा कौल में वह सामर्थ्य है। पुरुष के अहम्, सामाजिक बन्धनों और उनसे भी ऊपर उन मान्यताओं के प्रति क्षमा कौल प्रश्न चिन्ह टांकती दिखती हैं जो नारी को बान्धना चाहती हैं। वह पुरुष का वर्चस्व मानने को तैयार नहीं। पुरुष को स्वामी के रूप में न देखकर वह उसे एक मित्र के रूप में देखना चाहती है जो परिवार में प्रतिभागी के तौर पर कार्य करे न कि पति परमेश्वर के रुप में। नारी के लिए ही मात्र गढ़ी गई आचार संहिता पर भी क्षमा को ऐतराज है। इसके विरोध में उसका स्वर उभरता है:

थक कर पांव पसारना/ कंजरी होना होता है
कंजरी होना/ लड़की नहीं होना होता है

......*शीराज़ा, पूर्णांक 80*

'कंजरी' औरत को दी गई भद्दी गाली है, यदि कोई लड़की अपनी सुविधा से रहने की चेष्टा करे तो लोगों की नज़र में चढ़ जाती है फिर वह संभ्रात महिला नहीं समझी जाती। ऐसी सूरत में उस लड़की के सम्बंधी, माता पिता यह सोचने लगते हैं कि उसे उन्होनें इतनी आज़ादी क्यों दी कि वह अपने बारे में सोच सके:

खुलकर सांस लेना और छोड़ना/ खतरा होता है
पिता के भविष्य के प्रति–कहीं खुल न जाए वह
पिता कोसता है खुद को
कि खुलने ही क्यों दिया था उसकी हवा को

नैतिक/अनैतिक धारणाएं,आचार संहिताएं केवल लड़की के लिए ही हैं?

पिता के भय और ज्ञान/ के खिलाफ उसे है
एक सहज ज्ञान/ नैतिक अनैतिक का

.........*शीराज़ा, पूर्णांक 80*

और उसी के लिए सभी बंन्धन हैं तो कविहृदय चीख उठता है :

मैं दुनिया में क्यों नहीं हूं.........
वह सीखती है एक अलग किस्म का रोना

कवियित्री के नारी मन को बान्धकर रखने वाले उसके माता पिता से ही नहीं अपितु

औरत के मन में सोई लालसाओं को जगाने वालों के प्रति भी आक्रोश है:

तुम चढ़े मेरे ऊपर के आकाश में,
दुमतारे की तरह/और जगाया/सोई लालसाओं को।

और जब भ्रम टूटता है तो मोहभंग की स्थिति मे व्यक्ति होता है:

लोक मान्यता ठीक ही थी/ कि तुम भ्रम हो
तुम से प्रणय सुखद काहे होता
मैंने तो भई, तुमसे/ परम्परा तोड़ने की जिद्द से
नहीं किया था प्रेम।

—'तुम,' शीराज़ा, पूर्णांक 74

इसी अक में 'मां' कविता में औरत का अपनी मां के प्रति आक्रोशित होना स्वाभाविक नहीं है। औरत फिर औरत ही है पर रचनाकार का कहना है कि औरत में भीरुता का संचार स्वयं उसकी मां करती है, लज्जा एव लोक व्यवहार के डर से। और परिणाम भुक्तने पड़ते हैं औरत को:

आज तक जितनी आत्महत्याएं हुई
सबकी जिम्मेदार उनकी माताएं/ होगीं
जिनको वाजिब सजा मिलनी चाहिए।

मां, बाप, पति जहां तक कि महिलाओं के कार्यालओं में भी उनका शोषण होता है:

मूंविग कुर्सी पर बैठे बैठे
कपट मुस्कान से कहा/नमस्ते
तुम अपनी कलम और जवान को/ काबू रखो।
तुम जैसों को मैं एन्टरटेन नहीं करता
इसीलिए क्या मालूम प्रोन्नत नहीं करता।

... 'युद्ध', शीराज़ा, पूर्णांक 69

लेकिन कवियित्री का अंतर विवशता को नहीं मानता। उसमें जल रहा एक दावानल है आक्रोश का, पुरुष के विरोध में :

तुम गिरगिट हो/ कि क्या बला?
अपने ढेरों बदलते रंगों में—
मुझे एक से भी/ गहरा नहीं रंगते
मैं पागल थी। तुम्हें ईश्वर कहा।

.. 'ईश्वर', शीराजा पूर्णांक 49

लेकिन नारी तो फिर नारी है, कोमल हृदयधारी वह रूप जो केवल स्नेह बांटना चाहता है। प्रणय के इन्द्रजाल में वह न उलझे, बार बार उसे यह सीख दी जाती है ताकि सामाजिक दीर्घाओं में कोई हलचल न हो और उसके सगे सम्बन्धियों को कहीं नीचा न देखना पड़े लेकिन रचनाकार के लिए यह सीख भी नगण्य है:

.........बुद्धि को पटकती रही
पराजय के नुकीले पत्थरों पर यह उलझी हुई तिकोणी सीख
और अमूर्त से किसी बंधन में
घिर गया मेरा हृदय प्रदेश

... 'धूप की गली', शीराज़ा पूर्णांक 49

यही नहीं आंतकवाद के परिणामस्वरूप होने वाली त्रासदियों से नारी सबसे ज्यादा ग्रसित हुई है:

उनके आनन्द का मूल / गिरते धड़
जलती इमारत, पुंछता सिंदूर
आंखों से बहती गाती विधवाएं।

... 'जूताखोर', शीराज़ा पूर्णांक 74

अपने परिवेश के प्रति जगरुक है रचनाकार और अपने आस पास व्याप्त असंगतियों के प्रति वह संवेदनशील है। ये संवेदनाएं व्यंग के माध्यम से व्यक्त हुई हैं:

उस शाम बब्बन की बीवी ने / डबल मजूरी को धोती में बांध
बकायदा रोना तो शुरू किया था
पर चंद ही मिन्टों मे उसे / गहरी नींद आ गई

.... 'बब्बन के नाम', शीराज़ा पूर्णांक 74.

क्षमा कौल के पास शब्द हैं, उनका विन्यास है और इनसे भी ऊपर अपनी एक सोच है जिसे वह इन शब्दों का जामा पहनाने में समर्थ है। कहीं कहीं पर नए शब्दों का प्रयोग रचनाकार की प्रयोगधर्मा प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से नए भावबोध इन रचनाओं में उभरे हैं:

मेरे मन में ईन्धन / जल रहा है, तुम अपनी मक्की उसमें / भून रहे हो...
'ईश्वर' *शीराज़ा पूर्णांक 49*

'पराजय के नुकीले पत्थर,' 'उलझी हुई तिकोणी सीख' 'फड़फड़ाता—मेरे स्मृति वायु—झोंको से' आदि वाक्यों का प्रयोग अनेक अर्थों को बहुत सादगी के साथ खोलता है। 'धूप' 'आकाश' 'स्मृति,' 'सूरज' आदि शब्दों का प्रयोग बिम्बों के रूप में मुखरित होता है:

यहां चोरी से आई धूप में
धुला है..........
तथा–धूप के शब्दों में मेरे गत का स्मृतिगत दर्द
और–इस चोरी की धूप ने लिखी है
कई उजले रंगों में/ मेरी कहानी। ...... *'दिन', शीराज़ा*

और आकाश का प्रयोग देखें :

आकाश/ जो तुम्हारे अस्त होने के/ साथ साथ
छोटा होता रहा रफ़्ता रफ़्ता।

और सूरज का प्रयोग देखें

वह जरूर तोड़ेंगें तुम्हारा/ सत्ताधारी रूप
तुम्हारा दहकता सूरज/ और चांद सितारे सब

.................*शीराज़ा पूर्णांक 62*

'युद्ध' कविता में 'मूविंग कुर्सी' व्यवस्था के कारिंदों का प्रतीक है और 'मां' में नारी की पीड़ा के संकेत देखें:

मैं परतंत्र थी /उसने मुझे दासी बनाकर/ स्वामी खरीदा था।

'जूताखोर' में आतंकवादियों और उनकी करतूतों पर संकेतात्मक भाषा में बड़ी सशक्त बात की गई है :

सीमांत पर काले पर्दे थे
और पर्दों के पीछे/ खरीदे हुए आखेटक
उनके भी पीछे के पर्दों में/ छिपे हैं खूनखोर।

........*शीराज़ा ,पूर्णांक 74*

क्षमा कौल की आवाज में दम है कि रचनाकार सीमा की परिधि पार कर पाठकों/श्रोताओं के अन्तर तक पैठ पा जाता है यही कवियित्री की सबसे बड़ी सफलता भी है।

बलनील देवम् : गम्भीर व्यक्तित्व, मौन सहमति और खामोश प्रकृति वाले इस वजूद में एक सशक्त और सम्भावनाशील रचनाकार करवट ले रहा है– तब कहां सोचा था ! 1974 में हिन्दी साहित्य मंडल के सम्पर्क में आने पर धीरे धीरे साहित्य क्षेत्र में बलनील देवम् जाना जाने लगा। 1971 से लेखन यद्यपि यह रचनाकार शुरू कर चुका था पर यह लेखन उसी तक नितान्त व्यक्तिगत मामले के तौर पर सीमित था। जनवरी 1974 में बलनील देवम् ने पत्रकारिता में कदम रखा और जम्मू–कश्मीर के इस अहिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की पत्रिका– 'निस्तन्द्र' का प्रकाशन करने का साहस किया। यद्यपि यह

पत्रिका अगले ही वर्ष बंद कर दी गई पर द्विमाासिक पत्रिका के तौर पर हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास के साथ अपना अध्याय जोड़ने में सफल हुई। मजे की बात यह है कि अपने प्रकाशन–काल में आठ अंकों का प्रकाशन ठीक समय पर देना बलनील देवम् के लिए ही सम्भव था।

बलनील देवम् को एक अच्छा अध्येता भी कहा जा सकता है। खाली वक्त में हिन्दी की पुस्तकों का अध्ययन और संकलन इनका मंनोरंजन रहा है। बलनील देवम् का एक अपना हिन्दी पुस्तकों का छोटा सा पुस्तकालय भी है। मोहन राकेश की कहानी की शैली और अज्ञेय की संवेदना से प्रभावित बलनील देवम् इनके साहित्य को खूब खंगाल चुका है। धर्मवीर भारती, लीलाधर जगूड़ी और मणि मधुकर उसके प्रिय कवियों में से अग्रणी कहे जा सकते हैं।

इन रचनाकारों के साहित्य का अध्ययन करने के बाद यद्यपि बलदेव की रचनाओं पर उनकी छाप लक्षित होती है तथापि यह अनायास अनदेखे कब किस समय हो गया उसे कुछ याद नहीं। सायास अपनी रचनाओं को उनकी शैली से जोड़ने का प्रयास कभी उसने नहीं किया।

बलदेव की रचनाओं में शायद इसीलिए अज्ञेय की सी संवेदित कर देने वाली अनुभूतिपूर्ण भाषा, लीलाधर जगूड़ी की सी सपाटबयानी और भारती के सांकेतित बिम्ब बहुतायत में प्रयुक्त हुए हैं पर इनकी कविताओं की मुख्य आधारभूमि सपाटबयानी ही कही जा सकती है। इस ओर बलनील देवम् की पुस्तकों के समीक्षकों ने भी संकेत किए हैं–"यह सच है कि कवि में सपाट–ब्यानी का आग्रह कुछ ज्यादा है।" स्वप्निल शर्मा, ऋतुचक्र, जून 81, पृ0 491 "रचना में केवल सही समझ देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि अपने समय में किए गए अधिक से अधिक अनुभवों को भी सामने लाना होता है। "दिविक रमेश, शीराज़ा (52) पृ0 75 "............बल्कि ऐसा महसूस हुआ है कि कवि नारे लगाने वालों की भीड़ में खड़ा होकर स्वयं भी नारे लगा रहा हो।" शर्देन्दु, हिन्दुस्तान 21.10.80.

"सपाट–ब्यानी में लिखी गई इस संग्रह की अधिकांश कविता अपने........." डॉ0 जगमोहन

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि कवि के पास अनुभूतिपूर्ण भाषा नहीं– बलनील देवम् की प्रेम कवितायें इस बात का प्रतीक हैं कि अनुभूतियों से अनुप्राणित बलनील देवम् की कवितायें पाठकों को संवेदित कर जाती हैं.........भले ही उनमें वह दर्द नहीं, टीस नहीं, पीड़ा नहीं जो सब पाठकों को अपनी लगे पर इन कविताओं में मिलन की वह आकुलता है जिसके लिए हर व्यक्ति आतुर रहता है–

मुझे जब भी रोना आए........
और आंसू बहें झरनों की तरह
सागर सी तुम्हारी गोद चाहिए और कांपती उगंलियों का स्पर्श

धूप की तरह खिला वर्तमान / पृ0 40

ऐसे समय रोमानी वातावरण चाहिए और नितान्त अकेला परिवेश जहां अकेला घरौंदा हर व्यक्ति की चाह होती हैं इन पंक्तियों द्वारा स्थापित वातावरण में निश्चय ही पाठक खो जाता है–

उन आसमान छूती चोटियों पर
जहाँ रूई के नाजुक और मखमली कणों सी बर्फ गिर रही है
आओ चलें और बनाएं बर्फ का घरौंदा

धूप की तरह खिला वर्तमान / पृ0 39

और बीच की स्थिति जब बीते हुए दिनों की गुनगनी यादें बरबस उभर कर वर्तमान को अनेक रंगों की झिलमिलाहट से सराबोर कर जाती है और वह और भी रसमय तथा स्वप्नीला हो उठता है–

बहुत रो लिए दिन, चुपके चुपके
ठहरे जल से तेरे मेरे दिन
अब बहा करते है सपनीले सागर की ओर
इन्द्रधनुषी हंसी से भरे ....*धूप की तरह खिला वर्तमान / पृ0 48*

खुले आकाश को आहत कर देने वाली नीलाहट, सूरज की पहली किरणों से प्राप्त आशा के स्वरों की झनकार –उसका कवि मन अंगड़ाई लेने लगा था :

सुबह मस्ती के साथ उग आई है,
अब समझा मैं–
कि सुबह के गर्भ में है– प्राणवान सूरज
वही खटखटा रहा है मुझे
और मैं अंगडाई लेकर उभर रहा हूं आकाश की और

...........*युगधर्म / दीपावली विशेषांक*

किन्तु खुले आकाश की नीलाहट, बसंत के से मोरपंखी स्वप्न, रूपहली कल्पना के मीठे स्वर यर्थाथ के धरातल से टकरा कर झनझनाने लगे थे। कल्पनातीत अंधेरे की चादर को बुद्धिजीवी वर्ग के सभी घटकों ने महसूसा था। उन्हीं दिनों उस अंधकार की कालिमायुक्त चादर की वकालत करने अनेक तथाकथित विद्वान मेंढकों की भांति टर्राने लगे थे– पर संवेदनशील कवि का हृदय यह सब सहन करने का अभ्यस्त नहीं

था–प्रकृति का रोमांस, सुनहरे स्वप्न, मुट्ठियों में भींचा हुआ भविष्य का उजास धीरे.धीरे पिघलने लगा। मुट्ठियां खुलकर एक बार फिर बंद हो गई–अब इनमें स्वप्न नहीं यर्थाथ की ठोस शिलाएं थी।

'अंतिम युद्ध की चाह' ने इस ठोस यथार्थ को महसूसा है। आपातकालीन स्थिति से पूर्व, आपातकालीन स्थिति और उसके बाद के परिप्रेक्ष्य में कवि की मानसिकता को इस संकलन के आधार पर परखा जा सकता है। यह युद्ध व्यवस्था के विरोध में एक तीव्र प्रतिक्रिया थी। जिसने स्वयं भोगा हो, यातना सही हो वही उसके विरोध में प्रतिक्रिया की उचित अभिव्यक्ति कर सकता है अन्यथा रचनाकार की कोशिश खोखली लगती है। बलनील देवम् ने इन दिनों अनेक कटु और कोंचते हुए अनुभवों को बीना था अतः इन अनुभवों की अभिव्यक्ति सहज भाव से उस की तत्कालीन कविताओं में हुई है–

यह सच है
कि वक्त है तुम्हारी मुट्ठी में कैद
आकाश और धरती के
सारे अर्थ
तुम्हारी व्यवस्थाओं को लिए हुए हैं
और करते जा रहे हो मेरी जिन्दगी के तमाम फैसले

जिसने घुटन का दर्द सहा हो वही खुले आकाश का सुख जानता है। जो झूठ का झूठ कहने में समर्थ हैं उनके लिए सच कितना महत्वपूर्ण है, उसकी अभिव्यंजना करते उन्हें भय नहीं लगता–वही अपरिहार्य स्थितियों में से गुजरते हुए भी खरे निकलते हैं–

सब कुछ नोच लेने के बाद
अब मेरे पास
कुछ भी नहीं रह गया
जो तुम अपनी बाहों में भर सको
मात्र उस सूर्य के सिवा

युद्ध की चाह लिए हुए कवि के मन में एक और विरोधाभास जन्म ले रहा था। इन्हीं दिनों मखमली राहदरियों में चलने की चाह किसी आकांक्षित हाथ को पकड़ने को आतुर थी। मधुर स्वप्न धीरे धीरे अंगड़ाई लेने लगे थे। एक ओर यद्यपि स्थितियों की बिडम्बना रचनाकार को घेरे थी तो दूसरी ओर किसी के स्नेहांचल में पैठ पाने का तीव्र मोह कवि की प्रेरणा का स्रोत था। यह अंतिम युद्ध की चाह का अंतिम चरण था। कवि के लिए यह युद्ध की चाह अब बटे हुए सत्य की ओर इंगित करती थी। इस युद्ध में कवि को दोनों महाजों पर सफलता मिली। यह कितना मधुर सौभाग्य था। अब बलदेव को एक

और व्यक्ति मिल गया था, द्वंद्वात्मक शक्तियों को एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व में उंडेलता हुआ– बलदेव अब बलनील देवम् हो चुका था। बलदेव और नीलम की यह संधि वस्तुतः व्याकरण के सभी नियमों का विरोध कर–प्रतिक्रिया के रूप, में एक नया रूप लेकर उभरी थी–बलदेव + नीलम = बलनील देवम्। बलनील देवम् अब एकांगी इकाईयों से ऊपर के सोपानों को तय करने के लिए उमगने लगा था। वर्तमान को पूरी तरह से जीने की चाह कवि के हृदय में हिलोरें लेने लगी थी–

बिछोह के सारे अर्थ/हो गए हैं बे–अर्थ
जीवन अब हंसता गाता झरना है
और धूप की तरह खिला हुआ वर्तमान
खिलखिलाते भविष्य की नींव है। ....*धूप की तरह खिला वर्तमान*

सूरज का खिलकर उभरना, उसकी किरणों में बैठी तपिश अब कवि को अपने पहले प्यार के ताप को अनायास स्मरण करवा जाती है–

सूरज हमें देखकर कितना मुस्कराता है
सूरज का मुस्कराना
उस प्रथम चुम्बन की याद दिलाता है ....*धूप की तरह खिला वर्तमान*

"धूप की तरह खिला वर्तमान" तक पहुंचते कवि का अध्ययन भी निश्चय ही बढ़ा होगा जिस पर अनुभवों की चाशनी ने अपना रंग जमाया। अब केवल कथ्य में ही परिवर्तन नहीं आया अपितु शिल्प में कवि की पैठ और गहरा आई थी। अंतिम युद्ध की चाह की सपाट बयानी धूप की तरह खिला वर्तमान की सांकेतिकता और अभिव्यंजना की ओर धीरे धीरे अग्रसर होने लगी। नए शब्दों का चयन, विन्यास और अनुभूतियों को उजागर कर देने वाली भाषा कविता में निखार लाने लगी थी।

मैने तो सोचा था कि/ मेरी आत्मगंध की मुहर लगी हवाएं
लौट आएंगी बैरंग/ और पिघल पड़ेंगी आकर मेरी आंखों में
बहते इंतजार के दरिया में। ....*धूप की तरह खिला वर्तमान ,पृ01*

स्पर्श कर देने वाली भाषा के अनेक रूप इस संग्रह में देखें जा सकते हैं।

एक मांसल स्पर्श देखें–

तुम्हारी नवनीत सी मृदल शुभ बाहों पर करागुलियां फेरते हुए
तुम्हारे रोओं का सिहर सिहर जाना
तुम्हारे अधखुले नयनपटों के भीतर ठाठें मारता
भूरी आंखों का समन्दर मुस्कानामृत बरसाते हुए
अधर कोरों का थरथरा जाना।

..........*धूप की तरह खिला वर्तमान, पृ. 13*

स्नेह से सिक्त कवि का हृदय मात्र कोमल भावनाओं के व्यूह जाल में ही फंसा नहीं रहा। उसके अंतर में कहीं एक तड़प, देश के प्रति एक आग को जिंदा रखे थी जो धीरे धीरे इस सारी प्रक्रिया में सुलगती रही थी। इसकी आंच को अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित, रचनाओं में पकड़ा जा सकता है–

सूरज को भी ग्रहण लगा है, जीवन की तुम बात न पूछो
अम्बर ने जो दी है हमको, कैसी है यह रात न पूछो
पत्थर के हैं लोग यहां पर, पत्थर के ही उनके भगवान
उनसे आंख मिलाने पर तुम, क्या मिलती सो बात न पूछो

.....मंगलदीप 1940, पृ. 31

और व्यंग्य के माध्यम से देश के दर्द को बाह बाह करते श्रोताओं को कवि ने पकड़ा है–

मै कविता में जब/ देश के दर्द की बात करता हूँ
लोगों को वह बात/ बहुत अच्छी लगती है
लोग बाह बाह करते हैं/ समीक्षा करते हुए अपनी दुनिया में
लौट जाते हैं।

पर बीच बीच में कवि के कटु अनुभव उसे प्रतिक्रिया के तौर पर सपाट बयानी की ओर ले जाते हैं–

कौन कहता है कि इतिहास
नहीं सिसक रहा खण्ड खण्ड होकर
मेरे जलते होंठों पर मरी पड़ी आस्थाएं
जो फिर से जिंदा हो सकती हैं/ कहीं न कहीं से हैं बेचैन

..........गवाह 8, पृ. 34

यह ठण्डी ठण्डी आंच आग में मूर्त होकर 'आग जल रही है' संग्रह में अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उभरी। कवि को बार बार यह प्रतीत होने लगा कि जो स्वप्न उसने संजोए हैं वे रचनात्मक रूप नहीं ले सकते हैं:

स्वप्न सूखे पत्तों की तरह झर गए
सूखे पत्ते जलाने के काम तो आते हैं
परन्तु झरे हुए स्वप्न
किसी भी काम के न रह *.............आग जल रही है,पृ. 73*

कवि पलायन की ओर झुकने लगा था–

आओ/ अपने अपने शब्दों के यातनामयी हथियार

पास बहती नदी में डुबो आएं/ और/ आसमान की तरफ
खुलने वाली खिड़कियों के कमरे में
खामोश बैठकर करें समझौते ....*आग जल रही है, पृ. 81*

यह सग्रंह कवि की विरोधावस्थाओं में चलने वाली अनुभूतियों का प्रतीक कहा जा सकता है। यद्यपि कवि शिल्प के अनेक सोपान तय कर चुका था पर कथ्य में मखमूरी स्वप्न अभी टूटे नहीं अपितु शक्ति के साथ उभरने लगे थेः

फागुनी धूप/ रेशे रेशे में उतर आई है
जाने क्यों/ तुम बहुत याद आई हो/ बहुत याद...............
कोई थराथराता सा ख्याल/ मुझे आलिंगन में लेने लगा है
मीतर के जंगल में फैली है खुशबू
मृत पड़ी वातास ने / फड़फड़ाए है अपने पंख
प्राणों ने कोई भूला हुआ गीत गाया है। ....*आग जल रही है, पृ. 86*

किन्तु यह अंतिम चरण नहीं था। विद्रोह का स्वर बीच में व्यवस्था के प्रति उभरता हुआ महसूसा जा सकता है–

यह कैसा तंत्र दिया जा रहा है हमें
कि हम सब होते जा रहे हैं व्यक्तित्वहीन
यह कैसा तंत्र है
कि हमारे दिमागों को किया जा रहा है क्षत–विक्षत।

यह आग दोनों अवस्थाओं की सुलगन थी। प्रेम के अथाह सागर में डूब जाने की, पर दूसरी ओर व्यवस्था के विरोध में उठने वाली प्रतिक्रिया के रूप में।

इतनी वयस में रचनाकारिता के अनके सोपानों को तय करना और भविष्य में बहुत कुछ करने की कामना में यह कर्मठ रचनाकार लगा है। यद्यपि रचनाकारिता के उच्चतम सोपान तक अभी इसकी पैठ नहीं हुई है पर ऐसा उच्चतम माध्यम कोई नहीं है जिसका उच्चतम उपमेय नहीं।

अग्निशेखरः तीन मई, 1956 में जन्मे अग्निशेखर ने अपनी शिक्षा कश्मीर विश्वविद्यालय से ही पूरी की। अग्निशेखर मूलतः कवि हैं। पर कविता के साथ साथ इनके कुछ लेख लोक संस्कृति पर भी प्रकाशित हुए हैं और कुछ कहानियां भी प्रकाश में आई हैं।

कवि अग्निशेखर अति संवेदनशील व्यक्ति हैं अतः अपने परिवेश से आत्मिक तौर पर जुड़ने और उससे मजबूरन अलग होने का दर्द पाले हैं जो उनकी रचनाओं में खूब बहा है। कांगड़ी, बर्फ, कोयला, बर्फ में धूप, हांगुल, चिनार का पत्र आदि कविताएं इस

तथ्य की ओर संकेत करतीं हैं। प्रकृति का अंधाधुंध दोहन तो दूसरी ओर हमारे परिवेश में व्याप्त असंगतियों के विरोध में उठता स्वर भी इनकी कविताओं का उत्स रहा है।

अग्निशेखर कृत कविताओं का एक संग्रह, 'किसी भी समय' प्रकाश में आ चुका है जिसके माध्यम से और शीराज़ा तथा दूसरी पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के आधार पर इनकी रचनाओं का आकलन किया जा सकता है।

'किसी भी समय' संग्रह में 61 रचनाएं संग्रहीत हैं। इस संग्रह में बहुत छोटे छोटे विषयों पर कविताएं संकलित हैं मसलन–पुस्तक, ताला, अज़गर आदि। इस पुस्तक के एक भाग में दस कविताएं मात्र विस्थापन के दर्द को लिए हुए हैं।

प्रारम्भिक कविताओं में 'कांगड़ी' एक अच्छी कविता है जिसमें कांगड़ी का सुन्दर ख़ाका खीचां है:

हम देर तक रहने वाले कोयले पर/ उसमें आंच डालते हैं
धीरे धीरे उत्तेजित होकर/ फूटने लगता है उसकी देह से संगीत
जिसे अपनी ठंड की तहों में/उतारने के लिए हम
उसे आत्मियता के साथ/ अपने चोगे के अंदर
वहशी जंगल में लिए फिरते हैं

'पढ़ पशु' भी एक अच्छी कविता कही जा सकती है जो अध्यापक वर्ग पर एक सशक्त कटाक्ष है:

उनकी चर्चाओं में सिर्फ हाथ तैरते हैं/ जो मैले दस्ताने पहने
अपने सहकर्मियों की पतलूनें खींचने लगते हैं
या अपनी ही किसी छात्रा के/कमनीय अंगो तक पहुंचते हैं..........*पृ.23*

'अज़गर' कविता में अज़गर का खाका खींचते हुए कविता की अंतिम पंक्तियां रचना के उत्स को खोल देतीं हैं:

अज़गर को देखो/ कहां पर है इस वक्त/ हमारे बीच। ....*पृ.03*

अग्निशेखर अपनी परिवेशगत स्थितियों को तो बीनतें ही हैं अथच राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय समस्याओं से भी कवि की चेतना प्रभावित हुई है। यथा भोपाल की गैस त्रासदी, रंगभेद और नेलसन मंडेला, बेंजामिन की शहादत आदि कविताएं इस ओर संकेत करतीं हैं। 'भोपाल–84' कविता की कुछ पंक्तियां देखें :

सांप/ सेंध लगाने निकले/ चोर की तरह चलकर/ हवा वृक्ष के
तने से लिपटकर/ गाढ़ गया उसमें दांत/ दंशित जड़ों में
शाखा में पत्तों से/ फलों में/ रेशे रेशे में

फुफकार उठी मृत्यु ....पृ0 37

और 'बेंजामिन मोलाइस की शहादत पर' की कुछ पंक्तियां देखें:

तुम्हारी कविता का लोहा/ उनके अंदर/गोरी रोशनियों की–
सुरंग में/ एक बिगड़ैल सांड की तरह/ दड़बों पर चढ़
दीवारे फलांगता हुआ/ मारना चाहता है/ धूल सने सींग ....पृ0 69

सामान्यतः अग्निशेखर की कविताएं सीधी सपाट धरा पर शब्दों का संसार बुनती हैं जिसमें कोई सजावट नहीं, डिजायन नहीं, बस एक इमारत खड़ी करनी है। हां कहीं कहीं पर बिम्बों का सहारा अवश्य लिया गया है।'एक पहाड़ी यात्रा की कुछ कविताएं' में से कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं:

अभी अभी नींद से जागे/ उस पर्वत शिखर पर
सफेद चिड़िया की तरह बैटी धूप
धीर धीरे खुजा रही है अपने मुलायम पंख ....पृ0 53

सफेद चिड़िया के रूप में धूप का वर्णन अच्छा हुआ है।

इस संग्रह की 'विस्थापित कश्मीर–1990' कविताएं निश्चय ही कवि की संवेदनाओं के प्रति एक समर्पण है। 'दिवंगत' कविता की पहली पंक्तियां ही पाठकों को आन्दोलित कर जातीं हैं:

हमारी तरह ही होतीं होंगी/ अपने शरीर ढूंढती बेचैन आत्माएं–अंतरिक्ष में...
...पृ0 107

और रचनाकार का हिन्दी कवियों के प्रति उलाहना, 'इस महाविपदा में' बड़ा सजग लगता है:

ओ हिन्दी जगत के अधिकांश कवियो/ मेरे मित्रो!
तुम नहीं थे रिलीफ कमीश्नर/ कि देना पड़ रहा हो हमारी
कविताओं में/ थोड़ी सी शरण पाने के लिए आवेदन पत्र ......पृ0 111

कवि की रचनाओं में कश्मीर के सौंदर्य की खुशबू के साथ साथ वहां से अलग होने का दर्द रचा बसा है। परिवेश से कवि जुड़ा है और अपनी बात कहने की सामर्थ्य रखता है।

महाराज कृष्ण संतोषी: कश्मीर के युवा कवि चरमराती आस्थाओं और व्यवस्था के विरोध में अपनी आवाज़ बुलंद करते दीखते हैं– इन कवियों में एक नाम संतोषी का भी है। अस्सी के दशक में इनका लेखन सामने आया जब इनकी कुछ रचनाएं शीराज़ा के माध्यम से प्रकाशित हुई थीं। 1980 में इनका प्रथम कविता संग्रह 'इस बार

शायद' प्रकाशित होकर सामने आया। इस संग्रह में 32 रचनाएं संग्रहित हैं। संतोषी के रचनाकार की रचना प्रक्रिया लिखते हुए डा0 निजाम्मुद्दीन (शीराज़ा, पूर्णांक 61, 1982) विश्लेषण करतें हैं " इनकी कविताओं में उनकी अपनी, अपने समाज की, अपने परिवेश की अनुभूति दृष्टिगत होती है।................संतोषी अपने को आधुनिक कवियों में धूमिल से अधिक प्रभावित समझते हैं और मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा लीला धर जगूड़ी को भी पंसद करतें हैं।" जाहिर है कि इनकी रचनाओं में भी आक्रोश और विरोध का स्वर उभरेगा।

जलो!/ पुकार है इधर उधर/ हर कहीं/ आग हाकिम है/
सारे जहां का/ और यह घोषणा सुन लो/
छाया ठंडक की वाछना/ बगावत है। ....*पृ0 3*

चरमराते मूल्यों और स्थापित आस्थाओं पर प्रश्न चिन्ह टांकते हुए कवि का आक्रोश भरा स्वर उभरता है नई आस्थाओं को जगाने:

तुम्हारा सूरज/आज मगर एक सांड है/जो सबको
पछाड़ना चाहता है/ इसलिए बेहतर है/हाथ जोड़ना बंद कर दो।

लेकिन कहीं कहीं पर निराशावादी स्वर कवि के क्रांतिकारी मानसपटल पर हावी हो जाता है:

हर टूटना/ मेरे नजदीक ही होता है/ जैसे दीवार से गिरे शीशे की झंकार
कि जिसे मैं सुन लूं। ....*पृ0 27*
जिन्दगी के निराश क्षणों में/ मैं होना चाहता हूं/ ....*पृ0 57*
एक वृक्ष विशाल ।

यद्यपि वृक्ष की विशालता को उलीचते हाथ निराशा के स्वर को धकेलने में सक्षम होतें हैं पर एक छाया सी गमकती रहती है। वृक्ष होने की बात बंगला कवियों ने अक्सर कही है जीवन से त्राण पाने और अपने वजूद को स्थापित करने की चेष्टा में। कमला सेन द्वारा बंगला में लिखी गई कविता 'मैं वृक्ष हो जाऊंगी' इस ओर संकेत करती हैं शायद संतोषी भी इसी आधार को पकड़ना चाहता है।

शब्दों में परिवर्तन और वाक्यों में छेड़ छाड़ कभी लगता है कि कश्मीरी के व्याकरणीय धरातल पर इमारत खड़ी की जा रही हो।

मसलन पृ0 33 पर एक जुमला देखें, 'याद तुम्हें है ना' और अनेक शब्दों के हिज्जे भी बदल दिए गए हैं। जैसे तसव्वुर को 'तस्सवुर'–पृ0 52, लिखा गया है ओर वह भी कविता के शीर्षक के रूप में। इस ओर डा0 निजामुद्दीन ने भी अपने लेख में संकेत किए हैं। महाराज कृष्ण संतोषी कृत 1992 में प्रकाशित दूसरा कविता संग्रह 'बर्फ पर नंगें पांव' 58 कविताओं का मजमूआ है। इन कविताओं का स्वर पहले संग्रह 'इस बार शायद'

की कविताओं के स्वर से ज्यादा प्रखर और पैना है। कवि की लघु कविताएँ सशक्त कविताएं कही जा सकती हैं।

यह सच है/इस नदी ने/ मुझे कभी नहीं दिया सुख
नौकायन का/ मगर इसी की प्रबल धार ने/
सुदृढ़ किए मेरे पांव/ मैं श्रृणी हूं इस नदी का .... *पृ0 48*

व्यग्यं का पैनापन कुछ कविताओं में मुखरित हुआ है:

कड़ी धूप/ या तेज़ बौछारें
महज़ औपचारिकताएँ हैं/ भौगोलिक सिद्धान्तों के
दरसल अब मौसम/राज नेताओं के हस्ताक्षर से/
बदलते हैं।
.........*पृ0 32*

कहीं कहीं पर बहुत सुंदर उक्तियां पढ़ने को, इन कविताओं में मिलती हैं। 'सूई' शीर्षक की कविता में एक रूप देखे :

सूई/दर्जी के हाथ में रहे
या किसी और के
कहीं भी पथभ्रष्ठ नहीं होती
वह केवल/लिबास ही नहीं सीती
उन पर इच्छाएँ भी काढ़ती है
सपने भी जोड़ती है।
.................*पृ0 25*

इस संग्रह की अंतिम आठ कविताएं विस्थापन का दर्द और उस दर्द को झेलने की पीड़ा तथा अपनी धरती से अलग होने की कसमसाहट को अभिव्यक्त करती हुई कवि की सामायिक चेतना की ओर संकेत करती है।

यह कविता संग्रह कलेवर और कविताओं के चयन की दृष्टि की ओर संकेत करता है।

उपेन्द्र रैणा: कश्मीर में जन्मे उपेन्द्र रैणा की शिक्षा भी श्रीनगर में ही हुई है। एम0 ए0 करने के बाद उपेन्द्र रैणा आकाशवाणी के परिवार के सदस्य बनकर दिल्ली चले आए। सम्प्रति आकाशवाणी महानिदेशालय दिल्ली से सम्बद्ध। रैणा ने अपने छात्रकाल के दौरान ही लिखना शुरू कर दिया था, घर का माहौल अनुकूल था परिस्थितियां बनतीं गई और कविता में निखार आता गया।

'चीख की एक भाषा है' नाम से कविता संग्रह प्रकाशित होकर सामने आ चुका है जिसकी रचनाओं के माध्यम से कवि के कृतित्व की बात की जा सकती है।

कवि अपने परिवेश से जुड़ा ही नहीं इसमें उठते बैठते उतार—चढाव के बारे में

सचेत भी है। आज हमारा परिवेश बिडम्बनाओं, कुण्ठाओं और नियति के चक्र में फंसे हुए जनसाधारण की कहानी है। ऐसी सूरत में या तो व्यक्ति पलायन कर जाता है या टूट जाता है पर एक और भी विकल्प है–विरोध का जो, प्रतिक्रियास्वरूप नहीं अपितु अपनी अस्मिता के स्थापन के लिए कई बार आवश्यक हो जाता है और शक्तिशाली की ओर उंगली उठाने की सामर्थ्य व्यक्ति को होने लगती है:

तुम, 'कृष्ण'– परन्तु/ तुम 'मैं' नहीं, और–टूट चुकी है
तुम्हारी प्रभुसत्ता/ कई बार युद्धक्षेत्र में/तुम्हारी ही रची हुई
अ–कविता में/ समझ चुका हूं/ कई बार तुम्हें.....

अपने परिवेश में रहते हुए भी उससे कटने का अहसास कवि की रचनाओं में बड़ी शिद्दत के साथ उभरा है:

बर्फ –सा पिघलने का अहसास/ तब होता है
जब कोई मेरे हाथों से/बसंत छीन के ले जाता है।

.......शीराज़ा, पूर्णांक 76

चिनार, घाटी, नदियां, पहाड़, बर्फ आदि बार बार प्रतीकों के रूप में कवि की रचनाओं में उभर आते हैं जो एक ओर तो आंचलिकता के पर्याय हैं तो दूसरी ओर कवि को अपने परिवेश के साथ जोड़ते हैं:

तुम जब भी हंसते हो/ मेरा चिनार कटने लगता है
काश! मै। चिनार नहीं/एक मरुस्थल होता *–वही–*

और नियति का चक्र देखो:

तुम कल्पना भी नहीं कर सकते हो कि
आज मरुस्थल पर खड़ा/ यह चिनार
स्वर्गघाटी की पूरी गन्ध/ पीने के बावजूद भी पात पात झर रहा है.........*वही*

कविता की भाषा और शब्द चयन रचनाकार की शब्द शक्ति और सटीक प्रयोग की बात कहते हैं। अपनी बात को सशक्त रूप से कहने के लिए कवि ने अनेक बिम्बों और शब्द प्रयोगों का सहारा लिया है।

द्वार के पार तुम/खड़ी हो रही है/ जानती नहीं हो
मां ने बांधा है मेरे ही पांव में–घुटनों अब चलता हूं
इतिहास के पृष्ठों पर/डायरी की तिथि में .... *शीराज़ा, 41 पृ0*

एक अन्य स्थान पर इतिहास का एक और प्रयोग देखें:

मेरे बाप का इतिहास/ मेरे बेटे के जन्म से शुरू होता है

.............शीराजा, पूर्णांक 60

'सूरज' का प्रयोग अनेक कविताओं में विभिन्न स्तरों पर किया गया है :

अजन्मा वह अमानुष/ कर देगा हत्या/सूरज के घोड़ों की
आवारा हो जाएगा/ बेचारा सूर्य ....*शीराज़ा, पूर्णांक 42*

किसी भी दिन हो सकता है कि अनायास ही उग आए सूर्य
.......*वही, दर्द की भाषा*

कवि ने कहीं कहीं पर मिथकों का सुन्दर प्रयोग किया है: 'कान से कर्ण जन्मा है'

और –तुम लड़ोगे/ निहत्थे लड़ोगे ....
जो हमेशा तुम्हारी तलाश में/ हर युग में जन्मता रहा .
..............*शीराज़ा, पूर्णांक 83*

कहीं तो बंद मुटिठयां आक्रोश का प्रतीक हैं तो कहीं बेबसी की:

और मेरी मुट्ठियों में बंद/ मेरे लावारिस होने की/ खबर को
गलत साबित करने के लिए/तुमने मेरे हाथ काट दिए।
..........*शीराज़ा, पृ0 76*

बंद मुट्ठियां खुलते ही/ चावल की दानों की तरह/बिखर जाते हैं...
–वही–पृ0 69

कहीं कहीं पर ये प्रयोग इतने अमूर्त हो आए हैं कि उन्हें 'एबस्ट्रैक्ट' की सीमा में रखा जा सकता है:

आज मुझे ऐसा आभासित होता है/ टांगे मेरी फैल रहीं हैं
और इनकारतीं हैं वापिस लौटने के लिए

–वही–पृ0 47

इसी प्रकार 'अजन्मा अमानुष' में हथेली पर 'दांतो का उगना' देखें:

मेरी हथेली पर उग आए दांत/ नग्न कर देंगें/ व्यक्तित्व को तुम्हारे
और प्रसव करोगी तुम/ एक अमानुष का। *–वही–पृ0 42*

डा0 आदर्श : 28 दिसम्बर 1950 में मुजफ्फरनगर में जन्मे आदर्श की शिक्षा और पालन उत्तर प्रदेश में ही हुआ जिसका प्रभाव इनके व्यक्तित्व पर साफ झलकता है। बी0 ए0एम0ए0 करने के बाद आयुर्वेदाचार्य के तौर पर उधमपुर जिले में ही कार्यरत हैं। मूलतःकवि पर बीच बीच में कहानी, लेख, संस्मरण आदि भी लिख डालने में रुचि रखते हैं।

दो कविता संग्रहों और एक सहयोगी संकलन में प्रकाशित रचनाओं के साथ साथ आदर्श की कविताएँ शीराज़ा और हमारा साहित्य के अनेक अंकों में भी प्रकाशित हुई हैं।

प्रश्न तुमसे: इस लघु कविता सग्रंह की अधिकतर रचनाएं दुःख, दर्द, पीड़ा और·

ढेर से आंसूओं की व्यथा कहती दीखतीं हैं। अलोचना, पश्चाताप, पंगु संवेदना, मुखर वदंना आदि कविताओं में अकारण ही पंक्तियों में दर्द उभर आता है:

मैं स्वयं/अपने लिए गीतों में/ अपना दर्द पाता हूं. ....*पृ0 8*

यह आत्मालाप एक तरह से इनकी अधिकतर रचनाओं की कहानी कहता है:

आज फिर/कुछ घावों के/ चिन्हों को देख रहा था
जाग्रत थी–स्मृति/ पीड़ा के अम्बरों की

और 'मुखर वंदना' में तो कवि पीड़ा के द्वारों तक जा पहुंचा है:

भेज रहा हूं/गीत/जिसको गा सको तुम
पीड़ा के द्वार को/धीमे से/ थपथपा सको तुम।

36 कविताओं के संग्रह में सभी रचनाएं छन्दमुक्त हैं पर कहीं कहीं आंतरिक छन्द का मोह रचनाकार संवरण नहीं सका। कथ्य या शिल्प में कोई विशेष प्रयोग नहीं। ढूंढे से भी बिम्ब और शब्द प्रयोग नहीं मिलते हैं। साधारण कविताओं का साधारण संग्रह है। वस्तुतः यथार्थ की बात कहते हुए भी जैसे किशोरावस्था की भावुकता से कवि ओतप्रोत. हो जाता है और बिना देखे सुने कुछ भी करने को आमादा हो जाता है।

एक आयास, अनायास: हरिद्वार से 1974 में प्रकाशित चार कवियों के सम्मिलित संग्रह में आदर्श की नौ कविताएं संकलित हैं। यद्यपि यह संग्रह 'प्रश्न तुमसे' से एक वर्ष पहले छाया हुआ पर इस संकलन की रचनाओं में प्रौढ़ता, कथ्य और शिल्प दोनों में, महसूस की जा सकती है।

व्यवस्था के कारिंदों और राजनीति की पैंतरेबाजी में निमग्न दुमुहे तथा कथित समाज और धर्म के ठेकेदारों के प्रति कवि का आक्रोशित स्वर उभरता है:

धर्म के पत्ते में/ कुण्ठाओं का तम्बाकु भर/ मुंह में ठूंस
कुपियाता मुंह लिए/ घृणा पिचकारते से धूर्त
जैसे दोहरा–तिहरा जीवन जीते हैं

शीराज़ा पृ0 47 में प्रकाशित उपर्युक्त रचना में कवि का तेवर स्पष्ट नज़र आने लगा था। अब भाषा में चुस्ती और सटीक बात कहने की सामर्थ्य कवि में आ रही थी। 'एक आयास अनायास' संकलन में संकलित कवि की रचना 'अंत' की कुछ पंक्तियां देखें :

पलकों के बाहर ठहरे/ अश्रुकण सा मैं/स्तब्ध खड़ा रहा।
और वह मधुर स्वप्न /टूटे हुए खिलौने सा/ मानस के जाग्रत तल पर,
खण्ड–खण्ड/ पड़ा रहा ....*पृ0 63*

ये पंक्तियां पाठकों के मन को स्पर्श कर लेती हैं।

अक्सर आदर्श की कविताओं में सपाटबयानी उभरी है।

'पौधों के दर्द' (शीराज़ा, पृ0 74) के माध्यम से कवि बहुत कुछ कह सकता था इसी

अपेक्षा से जब सारी कविता पढ़ ली गई तो लगा कि सचमुच कवि केवल पौधों के दर्द तक ही सीमित है, निराशा हुई। इसी प्रकार 'उस आदमी की तलाश', 'हल्कू की गुहार', 'मां', तथा 'ऊपर वाले से' सभी रचनाएं मात्र वक्तव्य सी लगतीं हैं। कही कोई बिम्ब नहीं, शब्दों का प्रयोग नहीं, प्रतीक नहीं। मात्र कथ्य सीधे सादे शब्दों में आगे बढ़ता रहता है। 'मां' कविता में कुछ पंक्तियां उभरी अवश्य हैं पर ये अपनी बात पूरी तरह कहने में सफल नहीं हुई:

पांच रुपये रोज़ पाती थी/ और तीन तीन पेटों की आग अपने श्रमजल से बुझाती थी/ आज वह और उसकी बीवी काम पर जाते हैं/ फिर भी उसके बच्चे भूखे सो जाते हैं।

इसी प्रकार 'अलाव के इर्द गिर्द', 'बस यात्रा और एक दुनिया' दोनो कविताओं में सीधे बात कह दी गई है:

आखिर है क्या/ इन अधनंगों के पास
अपने गर्म कोट की जेबों में हाथ डाल/सोचता हूं।

और 'बेटे के साथ' (शीराज़ा पृ0 96) में मात्र सीख दी गई है सीधे शब्दों में–

समझोगे/ बड़े होने पर सब समझोगे
किसने बांटी है तुम्हारी खूबसूरत दुनिया।

'बूढी आंखों का स्वप्न' (शीराज़ा, पृ0 47) में कविता का आभास इन पंक्तियों में होता है:

और अब लहरें.......फिर लहरें
लहरों पर तैरते, विलीन होते फूल

आगे की कविताओं में कहीं कहीं पर मिथकों का हल्का सा प्रयोग मिलता है :

हमें नहीं चाहिए वह रहस्य/ जो हमें इस चक्रव्यूह से बाहर कर देगा
अभी हमें हर योद्धा का हाल पूछना है/अब अभिमन्यु नादान नहीं है

–शीराज़ा, पृ0 49

कहीं कहीं पर रचनाओं में हल्के से संकेत मिलते हैं पर अधिकांश रचनाएं सीधी सपाट भाषा में लिखीं गई हैं। हां कथ्य में अवश्य विचारों के कारण प्रौढ़ता आई है पर शिल्प में अभी प्रयास की आवश्यकता है।

डा0 आदर्श की ओजपूर्ण वाणी और मंचीय प्रस्तुति आकर्षक है कि आम फहम कविताएं भी जम जाती हैं यह कवि की विशेषता है।

श्रीमती चचंल डोगराः प्राध्यापिका चंचल डोगरा कवियित्री के रूप में स्थापित रचनाकार हैं। शीराज़ा में इनकी कुछेक रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं के माध्यम से इनके कविधर्म का आकलन किया जा सकता है।

चंचल डोगरा की रचनाओं में अहसासों का कारवां अपनी पूरी चेतना के साथ पाठकों को भावप्रवण कर देता है। छोटे छोटे अहसासों पर लिखी गई पंक्तियां एक विशद वातावरण तैयार करती हैं और पाठकों के साथ तादात्म्य बैठाकर उन्हें उन अनुभूतिपूर्ण क्षणों में ले आतीं है जिन्हें रचनाकार ने भोगा है। शीराज़ा, पूर्णांक 74 में प्रकाशित कविता 'अनिश्चितता' की कुछ पंक्तियां देखेः

सोचा था नभ होगा जब उजास–उजास/बैठेगें पास–पास
खोलेंगें मन की परतें/ परत–दर–परत/ झरने लगेंगे/प्रश्न ही प्रश्न
पर ऐसा हुआ नहीं/गठरी खुली नहीं

गठरी सभी खोलना चाहतें हैं पर विडम्बना यही है कि कहीं न कहीं कुछ ऐसा हो ज़ाता है कि यह खुलते खुलते बंद हो जाती है। कवितामय शब्दों–'उजास और उजास' और बाद में इसी से तुक मिलाते हुए 'लाल–लाल पलाश' का चयन अच्छा और सटीक है। आंतरिक छन्द ऐसी कविताओं को बांधता है।

'प्रतिक्रिया' कविता में अनेक संकेत मिलते हैं। रचनाकार का संकेत मात्र 'बिरवा' पर नहीं हो सकताः

बंजर थी धरती/ पर नदी उफनती/ आंगन में मेरे/ अनजाने रोपा
तुमने एक बिरवा/ खुले/ अनुतरित प्रश्न/ कोंपलों में।

वस्तुतः इन थोड़े शब्दों में कवियित्री ने बहुत बड़ी बात कह दी है।

'बंजर थी धरती' और 'नदी का आंगन में उफनना' और किसी ने उस बंजर धरती में सृजन का बीज बो दिया कि कोपलें उभरने लगीं। और बंजर धरती सृजन करने लगी। क्या बात है। एक पूरी तस्वीर इन शब्दों के माध्यम से उजागर हो जाती है रचनाकार की यही खूबी है।

इन रचनाओं के माध्यम से कुछ बातें उभरतीं हैं कि कवियित्री कविता की भाषा जानती है और उपयुक्त स्थितियों के लिए उपयुक्त शब्दों के चयन की प्रतिभा उसके पास है और दूसरी बात जो इन रचनाओं में बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की जाती है वह है सांकेतात्मकता।सांकेतिक भाषा के लिए शब्दों की सही पहचान और उन्हें प्रतीकों के तौर पर सही प्रयोग की सामर्थ्य रचनाकार के पास हो तो वह संकेत भरी भाषा के प्रयोग में सफल हो पाएगा। चचंल के पास शब्द भी हैं और उनका सही प्रयोग भी वह

जानती है। इनका एक कविता संग्रह प्रकाशनाधीन है।

डा0 सोम नाथ कौलः कहानीकार एवं शोधकर्त्ता सोम नाथ कौल बड़ी अनुभूतिपूर्ण कविताएं भी रचते हैं। इनकी पांच कविताएं 'वितस्ता के नये चरण' संकलन में प्रकाशित हुई हैं जिनके माध्यम से कवि के शिल्प और कथ्य के बारे में बात की जा सकती है। कौल की कविताओं में अक्सर 'उदासियों के शहर' की तस्वीर उभर आती है। लगता है रचनाकार नगरीय बोध से और अति भौतिकवाद से कतराकर निकल जाना चाहता है।

जीवन के कुछ क्षण/ नभ की ओर/ नयन अंजलि फैलाए
व्यर्थ ही गए।
................मुझे मिली यहां केवल/ यह, मौन शान्त
वासुकि सी टेड़ी, नीरस पगडंडी

एक अन्य रचना 'बैसाखियां' में कवि का भीड़ में मन नहीं लगता वह भीड़ में भी अकेला ही है:

'बैसाखी' की यह भीड़/ और ये मेले हैं
किन्तु हम अकेले हैं।

इनकी रचनाओं पर भूमिका में डा0 अयूब प्रेमी ने ठीक ही लिखा है:

'डा0 सोमनाथ कौल की कविताओं में आधुनिक युग—बोध और नागरिकता का बोध यांत्रिक प्रभाव के साथ उभरा है'।

डा0 सोमनाथ कौल कृत 'रक्त के फूल' एक अच्छी कविता कही जा सकती है। केसर के जब फूल खिलते हैं तो इनकी शोभा देखने और अपने खाली समय को 'कैश' करने नगरों से सेठ आदि आने लगते हैं। इस बात से बेखबर कि इन्हें बीजने और पालने वालों ने कितनी मेहनत से इन्हे उसारा होगा। इस कविता की कुछेक पंक्तियां देखें:

इसे प्राकृतिक 'सीनरी'/ समझकर मारी जेब और/ मोटे पेट वाले
सभ्य—संस्कृत लोग/इसका मज़ा लेने/ महकती चांदनी में आते हैं।

इनकी एक और रचना 'रद्दी की टोकरी' अच्छी रचनाओं में से ली जा सकती है। कई बार रद्दी की टोकरी बड़ी काम की चीजों को उगलती है तो अनेक बार किसी बहुत जरूरी कागज़ के खो जाने पर इसे बार बार उल्टाकर देखा जाता है कि कहीं इसमें तो नहीं गलती से उसे फैंक दिया गया। इस कविता की कुछेक पंक्तियां देखें :

इसमें मेरी/एक पूरी प्रणयगाथा/ कब्रिस्तान का ढेर —सी बन गई है
जो कभी अटूट सुनहरे धागों में पिरोई गई थी, परन्तु

जिसके नुस्खे/ कटे, असम्बद्ध, अस्पष्ट, तिरछे/ छितरे पड़े हैं।

डा0 सोम नाथ कौल की भाषा सहज है पर कहीं कहीं पर संकेतों और प्रतीकों के सहारे बहुत सुन्दर बिम्ब भी उभारने में सक्षम हुए हैं।

आशोक कुमार : नई कविता के उपासकों और पहचान कर्त्ताओं में अशोक कुमार का भी एक नाम है। युवा लेखकों में अशोक कुमार विशेष स्थान रखते हैं। इनका एक कविता संग्रह 'डूबे हुए सूरज की तलाश' 1980 में प्रकाशित होकर सामने आया। चालीस कविताओं के संग्रह में सारी कविताएं मुक्त छन्द में हैं और नई कविता की वाणगी प्रस्तुत करती हैं। मोह भंग, आर्थिक अभाव, मूल्यहीनता, बेबसी, होने और न होने के बीच की मजबूरी, नियति के चक्र और दुमुखे व्यक्तियों के प्रति आक्रोश आदि काव्य के विषय हैं अशोक कुमार की कविता के :–

जब खाली पेट/संगमरमरी नल पर
गले हुए साबुन के टुकड़े के साथ/ हाथ से हाथ रगड़ती हो तो
मेरी आंतो में चुभन होती है ....*पृ0 19*

भुखमरी का ठोस यथार्थ इन पंक्तियों में से उभर आता है :

बिना रक्त की बूंद लिए
इंजैक्शन की सूई का चर्म से बाहर लौट आना
एक निश्चित सत्य है ....*पृ0 29*

मूल्यहीनता और अव्यवस्था की ओर ये पंक्तियां संकेत करती हैं:

वैसे भी इन दिनों/ मै/अंधेरें में जीने का आदि
हो गया हूँ । ....*पृ0 17*

निरर्थकता का बोध भी यहां तहां कवि की कविताओं में दृष्टिगत होता है:

इस समय अच्छा यही है
चुपी ओढ़े कब्रों को खोदकर
अपने आप को तलाशूं ....*पृ041*

नियति का चक्र और बिडम्बनाएं रचनाओं में बिखरी पड़ी है

मै तिनका चोंच में लिए उड़ता रहा
बहुत दिनों के बाद/ मैने जाना/ चोंच ने
चहकने और दाना चुगने की
नैसर्गिक शक्तियां गवां दी हैं।

एक और रूप देखें:

यहां हर किनारा सहारा मांगता है।

उसने क्षण भर देखकर आंखे फेर लीं
मेरी दृष्टि क्षितिज पर पसरे कुहासे में
अपनी छाया खोजने लगी पृ 0 39

कवि कहीं कहीं पर अपनी सोच में बहुत मौलिक भी हो आया है। आर्थिक अभाव, अव्यवस्था, धूरीहीनता आदि नई कविता में सामान्य विषय हैं पर युद्ध के प्रति अपने विचारों को भी कवि कहता गया है।

लाशें बुदबुदाती हैं–
यह युद्ध हमारा नहीं है
यह युद्ध हमारे लिए नहीं। ....पृ0 21

अशोक कुमार की रचनाओं में प्रतीकों और संकेतों के सहारे बात कह कर उसे स्थापित करने की क्षमता कवि में महसूसी जा सकती है। इस सग्रंह की एक कविता 'यात्रा से लौटने पर' के आधार पर बात की जा सकती है। हवा की दिशा का बदलना, तरुओं के नंगेपन से खतरे का आभास, पहाड़ की हवा का बांध होना आदि भौगोलिक स्थितियां नहीं है अपितु हमारा परिवेश है, व्यवस्था के कारिन्दे हैं जो नंगे होकर और खतरनाक लगते हैं– पहाड़ की हवा का बांध होना– जहां प्रदूषण का परिचायक है वहीं पर ऊंचे समाज में पनप रहे नपुंसकपन की ओर संकेत भी है जो अपनी अस्मिता भूलकर, अपने वजूद को अटकनी के साथ लटकाए स्वयं निरर्थक हो आया है। पर उसे– कोई खेद नहीं हैं। और यह दूषित वातावरण हर यात्री को नपुंसक बना देता है। नंगे तरु, पहाड़, बदचलन लताएं, विष उगलती जड़ी बूटियां आदि प्रतीकों के सहारे कवि ने अपनी सटीक बात बड़े सशक्त ढंग से की है।

कवि की रचनाओं में सूरज, कंटीले जंगल, क्षितिज, इतिहास, आवारा बादल के टुकड़ों आदि के माध्यम से बिम्ब उभरे हैं जो कविता को खोलने में सहायक होते हैं।

तुम चाहो तो मुट्ठी में बंद कर सकते हो
सूरज निगल सकते हो/ लेकिन/ मेरी प्रवृत्तियां
तुम्हारी नहीं होंगी। ....पृ0· 18

ढलती शाम का सूरज विधवा के माथे की उतारी गई बिंदी के रूप में देखना और इसे बिम्ब के तौर पर स्थापित करना कवि की सामर्थ्य की ओर संकेत है:

सूरज का रक्तिम चेहरा
विधवा के माथे से उतारी गयी
लाल बिन्दी सा दिखाई दे रहा है। ....पृ0 38

कंटीले जंगलों का प्रयोग देखें :–

पंख कटी मेरी उड़ान
अनबुझे ज़हर ने/उगा दिए कई कंटीले जंगल

और अवारा बादल के टुकडों का अहसास देखें :

आवारा बादल के टुकड़े / जिनका आकाश में बहुमत है
इन्हीं की शरारत से
चांदनी अरसे से मेरे आंगन में नहीं नाची।

मिथकों के माध्यम से भी कवि ने अपनी बात कहने का सफल प्रयास किया है :

जब बार बार पानी पीकर/डकारें लेती हो
तब मेरा महारथी होने का गर्व टूटता है
लगता है तीरों से बिंधे तात को
किसी सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा .... *पृ0 19*

कुल मिलाकर एक अच्छा प्रयास है विशेषकर जब कि यह कवि का प्रथम प्रयास ही है।

अनिल कुमार आजाद : जिन्दगी की सही अर्थों में पहचान और उसे जीने की सार्थक आकांक्षा शायद बिरलों में ही होगी। जीवन को व्यवस्था की आंख से न देखकर सामाजिक दीर्घाओं में लिप्त होते हुए भी उनसे एकदम अस्पृह, परम्पराओं को पहचानते हुए भी उनसे अजनबी हुए एक घुम्मकड़, अध्ययनशील और स्वच्छन्द व्यक्ति का ख़ाका रफ्ता रफ्ता एक तस्वीर में बदल जाता है– यह तस्वीर है आज़ाद कुमार मानव 'नाहर' की। शुरू शुरू में नाम को लेकर कौतुहल हुआ था–इतना बड़ा नाम और उच्छृंखल व्यक्तित्व युवावस्था में भी किशोर का सा मन लिए हुए। हिन्दी से अनन्य प्रेम कि सामान्य वार्तालाप में भी पांडित्य से भरपूर भाषा का उपयोग लगता था, कि शायद हिन्दी को लेकर मज़ाक हो रहा है परन्तु जब इसे गम्भीरता के साथ उपयोग करते देखा तो लगा कि नाहर की ज़िन्दगी का एक हिस्सा बन गया है। 1955 में जम्मू में जन्मे अनिल कुमार की शिक्षा भी जम्मू में ही हुई है। बी0ए0 तक की शिक्षा के बाद एम0 ए0 करना शायद , उम्र के एक मोड़ पर, इनके लिए विवशता हो चुकी थी जहां मखमूरी स्वप्नों को संजोए एक घरौंदा तैयार हो रहा था जिसमें अनेक रंगी अनुभूतियों के आकाश अपनी मुंढेरों पर रिमझिम सी फुहारें बहाए लिए जा रहे थे। अब अनिल कुमार मात्र अनिल कुमार ही नहीं आज़ाद कुमार मानव नाहर हो चुका था।

हिन्दी संस्थाओं विशेषकर हिन्दी साहित्य मंडल के सक्रिय कार्यकर्त्ता के साथ साथ

'निस्तन्द्र' नामक एक मासिक हिन्दी पत्रिका के सहसंपादक के कार्य के साथ नाहर अब स्वतंत्र लेखन में भी रुचि लेने लगे थे।

कविता और कहानी इनकी दो विधाएं रहीं हैं।'बादलों में कैद सूर्य' इनका एक मात्र कविता संग्रह 1979 में प्रकाश में आया। इस सौ पृष्ठीय कविता संग्रह को पांच खण्डों में बांटा गया है वस्तुतः ये विभिन्न वर्षो में लिखी गई रचनाएं हैं जो अलग अलग खंडों में रखी गई हैं। इन कालखण्डों के माध्यम से कवि के क्रमिक विकास की झांकी हमें मिलती है।

प्रथम खंड में कवि का विद्रोही स्वर उभरा है—व्यवस्था , समाज, परम्पराओं और जहां तक कि अपने अस्तित्व के विरोध में भी कवि का स्वर मुखरित हुआ है।

ओ नाहरपुत्रो, हुंकार भरो/ कुछ भी करो,अथवा मरो

............*पृ० 17*

इस काल की रचनाओं में क्रांति का स्वर सर्वत्र महसूसा जा सकता हैः

क्रीतदास अब क्रांति करो/ धवल धरा में रक्त भरो
अंत अन्यायी अविश्वासी का/ कर से करके काल बनो।

.....*पृ० 24*

एक अन्य रचना की ओर ध्यान दें—

मैं चौराहे पर क्रांति बेच रहा हूं/ जिसको जितनी चाहिए ले जाए
न ही मूल्य और न ही शुल्क है/ बस प्रमाण वीरता का दे जाए।

........*पृ०27*

द्वितीय खंड में वर्ष 1975 में लिखी रचनाएं संग्रहीत हैं। इन रचनाओं में यथार्थ का चित्रण हुआ है। और आपातकालीन स्थिति की वास्तविकता उभरी है—

बस्ती के गंदे इलाके से आगे/ कीचड़ सने गोलाकार पाईप खंडों में,
दिन के श्रम से चूर/ सोए हैं जो/ कौन हैं वो

आपातकालीन कविता का स्वर धीमा है पर प्रखरता लिए हुए है—

यह सहमे सहमे मन/यह बंधे बंधे तन/ पुकारते हैं किसको
धिक्कारतें हैं किसको/ यह किस व्याध ने / भेदा है/
हृदय मृगी का प्रणयावस्था में। ....*पृ० 48*

इस कालखंड की कविताओं में विद्रोही स्वर अवश हो जाने से कवि विचलित हो आया है—

क्रुद्ध तान कवि क्यों तेरी/ आज बनी समय की चेरी

............*पृ० 50*

पर शीघ्र ही अवशता का चौला उतारकर कवि का स्वर पैना हो जाता है–

दुनिया झुकती है झुकाने वाला चाहिए
सत्ता उलटती है/ उलटाने वाला चाहिए। ....पृ054

तृतीय खंड अर्थात 1976 में लिखी गई कविताओं में प्रौढ़ता का स्वर महसूस किया जा सकता है– अपनी स्थिति का यर्थाथ बोद्‌ध जिसे कवि नकारता रहा है–

आवाज़ उठाने वाला हर शख्स यहां मरता है
फिर भी आवाज़ उठाएं अपना यह दिल करता है। ....पृ057
बेकसी का है तरन्नुम रूह की हर आह में
एक समन्दर खो चुका हूं दूसरे की चाह में
एक समन्दर खो चुका हूं दूसरे की चाह में। ....पृ0 56

अपनत्व की पहचान इन पंक्तियों में देखी जा सकती है। चौथे खंड अर्थात 1977 की कविताओं में कवि की रचनाएं प्रौढ़ता के शिखर तक पहुचना चाहती हैं। कुछेक रचनाओं को कवि की उपलब्धि माना जा सकता है–

दिन के उजाले में अधेंरे को पलते देखा
हमने तो आग को पानी से जलते देखा।.
जिंदगी अब बोझ सी लगने लगी है कांधो पर
लम्हा लम्हा उम्र का बेवक्त जो ढलते देखा। ....पृ0 65
गम ज़िंदगी में इतना आम हो गया है
आनन्द एक अजनबी सा नाम हो गया है। ....पृ0 67

इस रचना प्रक्रिया के अंतिम दौर अर्थात 1978 में कवि की सोच में भी प्रौढ़ता दिखने लगी थी–

वह आते तो शायद लौटा भी देते/ आईं हैं यादें लौटाएं कैसे
हकीकत से दिल को मिली न जो राहत/ ख्वावों से मन बहलाएं कैसे।

इस दौर की सबसे बड़ी खूबी यह है कि नितान्त वैयक्तिक रचनाएं इस दौर में लिखी गईं। एक दूसरे से बंधे, जुड़ते, टूटते सम्बधों का अहसास इन रचनाओं में उभरा है–

जिस्म के हरेक अंग में समाए हुए से हैं/ इक मुख्तलिफ किस्म की आग लगाए हुए से हैं ....पृ0 98

उपर्युक्त उद्‌धरणों से एक बात बड़ी शिद्‌दत के साथ महसूस की जा सकती है कि कवि किसी भी प्रकार की वर्जना से मुक्त है। इस ओर अपने वक्तव्य में भी कवि ने संकेत दिए हैं–

'उपन्यास लेखन अधिक समय लेने लगा तो...... .कहानियों की ओर। कहानी, लेख लिखना श्रमसाध्य लगा तो पलायन कविता की ओर। छन्दोबद्ध में परिश्रम करना पड़ा तो छन्द तोड़ दिए........ग़ज़ल लिखना कठिन लगा तो अज़ल की परिपाटी चलादी..... .....'

शायद यह सब प्रक्रियाएं कवि की चंचल वृत्ति की परिचायक हैं। इसीलिए घुमक्कड़ी का शोक रचा ताकि किसी एक स्थान पर टिका न जाए। कवि के जीवन के अनेक दूसरे सोपानों में भी ये विशेषताएं दिखतीं हैं।

कवि की रचनाओं को पढ़कर संभावनाओं की ओर एक दृष्टि जाती है। कवि की सोच प्रखर है ही समय और स्थितियों की पहचान के प्रति भी वह आग्राही है केवल थोड़ा प्रयास शिल्प की दृष्टि से करने की आवश्यकता है। आज़ाद अध्ययणशील व्यक्ति का नाम है जहां कोई पलायन नहीं जब भी मिलो नई पुस्तकों के बारे में चर्चा होती है विशेषकर हिमालयी संस्कृति पर शायद यह शोक मेरा भी है अतः कहीं एक 'वेव लैंथ' पर हम एक दूसरे को मिलते हैं पर इससे इतर अगर समकालीन कविता का अध्ययन भी हो सके तो कवि निश्चय ही अच्छी रचनाएं देने में सक्षम होगा। पर खेद की बात है कि इस संग्रह के बाद अनिल की कोई रचना पढ़ने को नहीं मिली।

इनके इलावा कुछ हिन्दी कवियों एवं कवियित्रियों ने वैयक्तिक संग्रह निकाले अवश्य हैं पर इन की चर्चा नहीं हुई शायद इन संग्रहों तक ही अभी रचनाएं सीमित हो कर रह गईं।

स्वप्न माला : सुश्री सरिता शर्मा कृत यह कविता संग्रह 1982 में रियासत की कल्चरल अकादमी द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से प्रकाशित हुआ। इसमें पैंतीस कविताएं संग्रहीत हैं, छन्दोबद्ध छन्दमुक्त, गज़ल आदि काव्य विधाओं में अधिकांश रचनाएं छन्द में हैं, तुक और लय को सायास बांधने का प्रयास किया गया है।

इन कविताओं में कहीं तो निराशा का स्वर उभरता है तो कहीं विद्रोह का और कहीं अकर्मण्यता का।

मैं वह किश्ती हूं/ जिसकी पतवार ही नहीं
वह नदिया हूं/ जिसकी धार ही नहीं। ....*पृ0 2*

और इससे अगली कविता पृ02 पर विद्रोह का स्वर लिए हैः

तोड़ दे वह बेड़ियां/ जो जकड़ती पंख को/
काट दे उस वृक्ष.को/जो रोकता हो छांव को

वस्तुतः कवियित्री निश्चित नहीं कर पाती कि उसे किस दिशा में जाना है। इसका

संकेत उनकी कविताओं में हमें स्पष्ट तौर पर मिलता है:

यह जीवन/ एक दिशाहीन यात्रा
जिस पै चलते/ आंख मूंदकर/ जगती तल के सारे प्राणी ....पृ04

एक अन्य रचना 'जीवन क्या है' में भी कुछ एक ऐसे संकेत हमें मिलते हैं

जीवन क्या है/ अजब ही उलझन
एक अनुतरित प्रश्न/ एक मौण समस्या ....पृ0 13

और दिशाहीन में देखेः

निकल पड़ी हूं/ दिशा हीन सी ....पृ0 16

कवियित्री की कलम में शब्दों की पकड़ है पर दिशा नहीं।यदि दिशा पा जाए तो सम्भावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता।

उसपार : इन्दू भूषण कृत यह कविता संग्रह 1984 में प्रकाशित हो कर सामने आया। 34 रचनाओं का यह संग्रह छन्द मुक्त रचनाओं को लिए है। कहीं कहीं पर आंतरिक छन्द के मोह को कवि संवरण नहीं कर पा रहा लगता है। इस संग्रह की अधिकांश रचनाएं वैयक्तिक रिश्तों को वयक्त करती उन्हें रीझाती लगती है। नन्हें, बिटिया, तुम, वह, तू,मीत, दुश्मन , प्रिया के प्रति, प्रिया को, तेरे प्रति, पगली, छोटे बबुआ, आपको आदि कविताओं में वैयक्तिक संदर्भ उभरते हैं। बाकी की रचनाओं में छायावादी स्वर मुखरित हो रहा है:

वह/ सुनहले सदन–सी सुन्दर / कोमल नई नवेली दुल्हन
शर्माती इठलाती/ अंग पिया के लगती ....पृ0 6

और 'धूप' कविता में देखें बिम्ब :

स्वर्णिम आंचल फैलाती/ पूर्व से / नित्य प्रात चली आती
यौवन की दहलीज तक/ प्रखर तेजस्वी से जाती।

'अनजान' कविता की कुछ पंक्तियां देखें:

पुष्पों में प्राग सी/ झरते, झरनों में / अनुराग सी
तारों की आभा संग/नित दिन/ ढलती अरी अनजान/

कवि स्वप्नों की मखमली दीर्घाओं में उतराता, इठलाता सुखद क्षणों में बार बार लौट जाता है काल्पनिक संसार की ओर जहां मखमूरी जिस्म हैं, झरने हैं, नदियां हैं , सुन्दर सुबहें हैं, सन्ध्यायें हैं पर यथार्थ के पुख्ता धरातल पर कहीं पांव टिकते नज़र नहीं आते। इस सारे संग्रह में मात्र एक कविता 'लाल फूल' तलाशी जा सकती हैं जिसमें यथार्थ के अनुभूत सत्य को पकड़ा जा सकता है–

खून के तालाब में/हड्डियों की डंडियों पर

खिल रहे ताल फल/ मानव रस लोभी
झूल झूल झूम झूम/ चूमते रस

भूमिका में डोगरी के चर्चित कवि मधुकर ने इन्दू भूषण की अनेक कृतियों को गिना है – 'तेरे प्रति' आदि कविता संग्रह कवि की झोली में आगे ही पड़े हैं और आगे और लिखने की सम्भावना है।

जितेन्द्र उधमपुरी: 9/11/1944 में उधमपुर में जन्मे जितेन्द्र उधमपुरी अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद अध्यापन के कार्य में सलंग्न हुए बाद में जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी में सह सम्पादक के तौर पर भी कार्य करते रहे सम्प्रति आकाशवाणी में सहायक केन्द्र निदेशक के पद पर आसीन।

जितेन्द्र उधमपुरी मूलतः डोगरी के कवि हैं पर हिन्दी में भी इनकी कुछ कविताएं स्थानीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। एक हिन्दी कविता संग्रह 'फूल उदास हैं' कलचरल अकादमी की आर्थिक सहायता से प्रकाशित हुआ है।

'फूल उदास हैं' : बयालीस कविताओं का यह संग्रह अधिकतर छन्दमुक्त रचनाओं को ही लिए है पर लय, तुक और अर्ध छन्द के मोह से इन रचनाओं का रचनाकार अपने को अलग नहीं कर पाता।

मुख्यतः इन रचनाओं का विषय आर्थिक अभाव , नियति का चक्र, राजनीति के पैंतरो में व्याप्त सन्नाटे को लिए हुए है :

अभावग्रस्त/ यातना भरे/ इस शहर में
हर गली/ जाकर रुकती है/ एक नए दर्द के मोड़ पर ....*पृ0 13*

अभावग्रस्त जीवन तो कवि को छीजता ही है पर नियति उसे टुकड़ों में खण्ड–खण्ड कर डालती है:

संघर्ष/संत्रास/ और आकांक्षाओं के फैले इस सागर में
तुम कब तक/ सिमट–सिमट कर/सहमे–सहमे बैठोगे
और कितनी करवटें बदलोगे ?जानते नहीं/
परिस्थितियों के मछेरों ने/ नये जाल बुन लिए हैं। ....*पृ0 19*

और विषमता से बंधा कवि का स्वर विवश हो उठता है:

सारे विरोध/ सभी शिकायतें / बंद हो जातीं है
विषमताओं, विवशताओं के/ बंदीखाने में। ....*पृ0 27*

और नियति की विडम्बना देखे:

अपनी मागें, उमगें/और सपने/सब के सब मन में दबाए

मौन, मूक/ मेरे सामने की गली में से/ गुजर जाता है
हर रोज़ एक/ बहुत बड़ा जुलूस। ....*पृ0 42*

इन कविताओं का दूसरा विषय है स्मृतियां, यादें और प्रतीक्षा जो कवि की रचनाओं में खूब मुखरित हुई हैं। एकान्तिक अनुभूतियों की बात इन कविताओं में यहां तहां फैली है:

तुम! बहुत अच्छी लगती हो/ बहुत भली लगती हो
किसी/ताज़ा खिले गुलाब सी ....*पृ0 24*

एक दूसरा संदर्भ देखिए :

सुनो। वह भी समय था/ जब/ तरस जाता था
मेरा मन/ सुनने को/ तुम्हारे गुलाबी अधरों से
कुछ बोल/ कुछ शब्द। ....*पृ0 39*

और प्रतीक्षा की घड़ियों में रचनाकार का मन उदास हो उठता है:

तुम बिन/ मेरा जीवन/ कैसा उदास–उदास/ उग आई हो जैसे
फूलों के आंगन में/ सहसा/ अनचाही/ जंगल की घास.......*पृ0 49*

पर प्रतीक्षा की घड़ियां बीतते नहीं बीतती :

जब भी/ किसी ने मेरे द्वार पर/ दस्तक दी है
मुझे लगा है–तुम आये हो। ....पृ055

कवि सौंदर्य, रूप और अनुभूतियों से सराबोर हुए भावप्रवण क्षणों में ही अपना उत्स देखता है।

जितेन्द्र उधमपुरी की भाषा सीधी सादी है। आम फहम शब्दों के माध्यम से इनकी कविताएं आम पाठकों तक अपनी पैठ पा लेतीं हैं और इस तरह सहज और सुगम्य हैं। कही कहीं पर नई कविता में अक्सर बोए गए बिम्बो को भी उभारा गया है। 'सूरज', 'कुहरा', 'इश्तिहार' आदि शब्दों के माध्यम से ये बिम्ब उभरते हैं। सूरज़ के दो बिम्ब देखें:

'छीन लो मुझसे/ मेरे सूरज का प्रकाश' वस्तुतः आशाओं की ओर संकेत हुआ है। एक रचना में सूरज रूपी गडरिए का प्रयोग बखूबी हुआ है:

सूरज रूपी गडरिए/ दिन भर घूम फिर/ समेटकर अपनी
सभी सोन–रंगी भेड़ों को/ चल पड़ा है कहीं . ...*पृ0 23*

और कुहरे का एक बिम्ब देखे:

अभावों के/ फैले कुहरे ने/ढक लिया सारा जीवन

'इश्तहार' का बिम्ब अक्सर ऐलान के साथ चस्पां दीखता है:

क्या करूं / क्या करूं मैं / यह इश्तहारी स्वतंत्रता 'मोम का घर' कविता में 'महंगाई का नया इश्तहार' थोंपा हुआ दिखता है।

जितेन्द्र उधमपुरी कृत वे रचनाएं जो मांसलता लिए है अपनी पहचान बनाती दीखतीं हैं जबकि समकालीन परिवेश से जुड़ा हुआ रचनाकार कथ्य की तलाश में है।

एक मांसल कविता का रूप देखें:

वह / मादक गंध / पवन झकोरे सा / अल्हड़ / रेशमी स्पर्श .....*पृ0 35*

उपर्युक्त रचनाकारों के इलावा सर्वश्री क्षेमेन्द्र रैणा, कुमार पुष्कर, राजीव शर्मा, राकेश मोहन , वीरेन्द्र गुप्त, सुश्री संजना कौल, कु0किरण शर्मा, कु0चांद दीपिका, सुश्री शंकुत दीपमाला, सुश्री ओसवाल , सुशांत चौधरी, हिंद कुमार मानव आदि की काव्य रचनाएं भी स्थानीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं और कवि सम्मेलनों में भी सुनने को मिलीं हैं।जम्मू में कविता के क्षेत्र में कुछ और नाम सामने आए हैं–

सर्वश्री अरूण कुमार, जवाहर रैणा, वेद व्यास कुचरू, दुर्गा प्रसाद दत्त, बृज मोहन तथा महिलाओं में कु0 सुरेखा बख्शी, सुश्री अनीता किरण,कु0 नीलिमा सिंह, श्रीमती अनिला सिंह आदि और कश्मीर से डा0 त्रिलोकी नाथ गंजू, सरिता तोषखानी , श्रीमती नीना कौल और श्रीमती विजय मोहिनी आदि। इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं हैं।

आइए अब इस प्रदेश के कवियों की वाणगी करते विभिन्न कविता संकलनों की बात करें। इन सकंलनों के माध्यम से भी यहां के कवियों की पहचान स्थापित हुई है। एक अपरिचित आकाश, मधुरिमा का प्रतिभा पुष्प 3, चौराहे पर खड़े बारह चेहरे, साथ चलने का संगीत, आज की कविताएं और वितस्ता के नए चरण आदि कविता संकलनों में प्रकाशित रचनाकार ही वास्तव में हिन्दी कविता के ,इस प्रदेश के ,प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं:

एक अपरिचित आकाश: कश्मीर हिन्दी संस्थान की ओर से 1971 में कश्मीर के आधुनिक हिन्दी कवियों की रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन 'एक अपरिचित आकाश' सर्वश्री रमेश कुमार शर्मा, मोहन निराश और शशिशेखर तोषखानी द्वारा संपादित किया गया। इस संकलन में 15 कवियों की 39 रचनाओं को संकलित किया गया हैं। कुछ जाने माने कवि हैं शशि शेखर तोषखानी, रतन लाल शांत , मोहन निराश, डा0 रमेश शर्मा, डा0 अयूब प्रेमी, डा0 त्रिलोकी नाथ गंजू, पृथ्वी नाथ मधुप, आदि और कुछ नए चेहरें हैं।

संकलन के प्रारम्भ में दिए गए संदर्भ में सम्पादक त्रयी ने कश्मीर में हिन्दी कविता का उत्स स्थापित करते हुए लिखा है:

कश्मीर का हिन्दी कवि "मोहभंग की अनास्था को मूल्यहीनता से जनित पीड़ा की कविता लिखता है। प्रश्नाकुलता उसकी कविता की एक बड़ी विशेषता है। वह हर स्वीकृत मान्यता के आगे प्रश्न चिन्ह लगा देता है, आस्थाओं की शव परीक्षा करता है, आदर्शों के मुखौटे उतार फैंकता है और निर्ममता से वास्तविकता की परत–पर–परत उघाड़कर देखने का प्रयत्न करता है।"

इस कथन पर सारे कवि पूरे उतरते हों इसमें संदेह की काफी गुंजायश है। हां कुछेक कवियों के बारे में ऐसा अवश्य कहा जा सकता है। शशि शेखर की रचनाओं के माध्यम से हम इन संदर्भों को अवश्य तलाश सकते हैं :

मेरी उगंलियों के पोरों पर
हारे हुए युद्धों की संज्ञाएं रखी जाती हैं।
मेरे मुंह में अपनी ही हड्डी कर ठंडा स्वाद।

मोहन निराश के स्वर में भी इन तल्खियों को महसूस किया जा सकता है:

इश्तहारों की तरह चेहरे सभी के हो गये,
इस डगर के मोड़ से जो भी गए सो खो गये
स्वप्न कुत्तों से यहां पर कुछ वहां पर सो गये,
सत्य जितने भी थे सभी निज भाग पर वे रो गये।

और डा0 रामेश कुमार शर्मा के स्वर की धार देखिए:

आज मानव/ मानो
अपनी/ ही शव यात्रा में
शमशान जाकर/हंसी खुशी लौटा है।

पर इस संकलन में अनेक कविताओं के माध्यम से मानसिक ऐश्वर्य से रीझते, शब्दों से खिलवाड़ करते हुए रचनाकारों को भी पाएंगे:

झड़े लाल पत्तों की ढेरी तले
तड़ तड़ तड़/टूट रही
क्या नवम्बर की कसमसाती पगी देह ....

और पगे भावुक क्षणों में रीझते डा0 मुहम्मद अयूब प्रेमी का स्वर देखें:

यादों की चादर थी/ अपनी झीनी झीनी
गीतों की पोटली कि जिसमें
पूनम की चांदनी बसी थी भीनी भीनी।

और पृथ्वी नाथ मधुप मानसिक ऐश्वर्य में अपनी तुष्टि पाते हुए 'पीछा' कविता में

भाव प्रवण हो जाते हैं:

एक सुडोल उभारों वाली छवि
मोती बिखेरती/मेरी आंखों में आंखे डाल
मेरे सामने से गुज़र गई।

यह कहा जा सकता है कि विभिन्न भावबोध और स्थितियों को अपने में समोए यह कविता संकलन इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमें कश्मीर की तत्कालीन वाणी को स्वर मिला है और एक मंच पर उन्हें लाने का यह एक सफल प्रयास है। किसी कारण से ही सही इन कवियों में दो कवियों के स्वर की कमी महसूस होती है–वे हैं श्री अग्निशेखर और महाराज कृष्ण संतोषी। पर अकसर संस्थागत ऐसे प्रयासों में सभी को लेकर चलना कठिन हो जाता है और कई बार समय की सीमा या फिर स्थान का अभाव ऐसे अवसर पर आढ़े आ जाते हैं पर यह एक स्तुत्य प्रयास है।

जम्मू में कविता संकलन निकालने के दो एक प्रयास हुए हैं और वह भी संस्थागत स्तर पर। इन संकलनों में जम्मू के आधुनिक कवियों की रचनाओं को संकलित किया गया है। पहला प्रयास इस ओर हिन्दी साहित्य मंडल की ओर से 1973 में किया गया जब उस वर्ष मई के माह में मंडल की पत्रिका मधुरिमा का विशेषांक 'प्रतिभा पुष्प 3' के शीर्षक से प्रकाशित किया गया। यह अंक कविता विशेषांक था । इसे चार भागों में विभक्त किया गया। कविताओं और दूसरी काव्य रचनाओं के साथ साथ इसमें जम्मू कश्मीर की कविता पर एक लेख भी शामिल है जिसमें लेखक ने जम्मू कश्मीर में हिन्दी कविता का संक्षिप्त विवेचन दिया है। अच्छा होता कि लेखक जम्मू के कवियों पर ही खूब खुलकर बात करता क्योंकि संकलन में केवल जम्मू के ही कवियों को प्रतिनिधत्व दिया गया है।

इस काव्य संकलन में परम्परागत कविता के अंतर्गत ग्यारह कवियों की रचनाएं संकलित हैं। ये ग्यारह कवि हैं सर्वश्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्, कालिशरण ज्योतिषी, कृष्ण स्मैलपुरी, मनसा राम शर्मा चंचल, चंद्रकांत जोशी, दुर्गादत्त शास्त्री, श्याम दत्त पराग, शंकर शर्मा पिपासु , राम कृष्ण शास्त्री, सुभाष भारद्वाज और डा0 गंगादत्त विनोद।

परम्परागत कविताओं में श्री श्याम दत्त पराग और स्व0 शंकर शर्मा पिपासु की रचनाएं श्रेष्ठ कहीं जा सकतीं हैं जबकि कृष्ण स्मैलपुरी की रचना में संगीतात्मकता है और सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् की कविता में गेयता और शब्दों का तारतम्य बहुत सुन्दर हुआ है तो श्री मनसाराम शर्मा चंचल की कविता में सौंदर्य बोद्ध की झलक मिलती है।

'पराग' की कविता 'भाव से' की कुछ पंक्तियां देखें:

बरसे कभी सजल घन बन कर

कभी पुतलियों पर मंडराए
कभी हृदय के भीतर रहकर
भांति भांति के स्वप्न सजाए।

भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है। और शंकर शर्मा पिपासु की कविता 'होड़' की कुछ पंक्तियां देखिए:

मृग मरीचिका से बच बच कर चलना सिखला दो मुझको।
अथवा छलनाएं सपना हो,ऐसा भेद बता दो मुझको।।

नई कविता 'अतुकांत' में सर्वश्री अशोक जेरथ, सुतीक्षण कुमार आन्नदम, मनसा राम चंचल, श्याम दत्त पराग, बंसी लाल सूरी, रमेश मेहता, कु0 चांद दीपिका, कु0 किरण शर्मा, श्रीमती चंचल देव, डा0 गंगा दत्त विनोद, डा0 ओम गुप्त और स्वर्गीय प्रो0 सुभाष भारद्वाज की कविताएं संकलित हैं।

इन कविताओं में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से नए आयाम तलाशने का प्रयास कवियों का रहा है। नए प्रतीकों और बिम्ब योजना पर आधारित नए भाव बोद्ध को लेकर कविताएं लिखीं गईं हैं। इन कवियों में प्रो0 सुभाष भारद्वाज, रमेश मेहता और डा0 ओम गुप्त की रचनाएं उच्च कोटि की हैं:

हमारे हृदय हैं विशाल/और अनुभूतियां उदार
इसीलिए /हर आने वाले का/ होता है स्वागत/ हमारे द्वार।
हमारे विश्वास/तोड़ दिए जाते हैं/ हमारे घर की/खिड़कियों के कांच/बन जाती है हमारी उदारता/हमारे ही लिए अभिशाप।

'विकलांग' में रमेश मेहता की ये पंक्तियां वयाप्त स्थितियों की ओर संकेत करतीं हैं। और स्वर्गीय प्रो0 सुभाष भारद्वाज कृत 'काग़ज के आंसू' की कुछ प्ंक्तियां देखें:

मैं काग़ज हूं/ ऐसा/जिस पर/ जो आता है/ कुछ न कुछ लिख जाता है/
और मैं अभागा काग़ज। अपनी छाती पर/ लिखे हुए/इन लेखों को/पढ़ भी नहीं सकता।

इस संकलन का चौथा भाग है विविध काव्य रचनाओं–गीत,गज़ल और क्षणिकाओं को लिए हुए। ग़ज़लों में सर्वश्री सुतीक्षण कुमार आनन्दम्, कृष्ण स्मैलपुरी, मनसा राम शर्मा चंचल, चंद्रकांत जोशी और शंकर शर्मा पिपासु की रचनाएं शामिल हैं। सुतीक्षण कुमार की ग़ज़ल की कुछ पंक्तियां देखें:

आप किया करते प्रिय सदन की बातें
हम दर्दीले गान की बात करते हैं

हमको न समझ कहकर हंसने वालो
हम तुम्हारी शान की बात करते हैं।

और चद्रंकांत जोशी की ग़ज़ल में सौदर्य की गरिमा मुखरित है:

गगन में चांद बनकर चमको, बनूं मैं चांदनी तेरी,
अगर ऐसा न हो पाए, सितारों में चले आओ।
बुलाती लहरियां जल में, रूपहले चांद को अकसर
नशीली आंख के सदके, इशारों में चले आओ।

क्षणिकाओं में अशोक जेरथ, सुतीक्षण कुमार आनन्द्म, रमेश मेहता, शिव रैणा और सुश्री किरण शर्मा की रचनाएं संकलित हैं। इन क्षणिकाओं में अशोक जेरथ और रमेश मेहता की रचनाएं सामर्थ्य लिए हुए हैं:

अशोक जेरथ की एक क्षणिका देखें:

नेता –बिन पैंदे का लोटा
कुछ देर रुका, फिर वापिस लौटा।

और रमेश मेहता की रचना में सटीक बात कहने की सामर्थ्य मिलती है:

जीवन–एक सितारा/व्योम में उभरा/क्षण भर चमका/डूब गया/
हाय रे/ सम्बल टूट गया/ भाग्‌य किसी का/रूठ गया।

इस संकलन में कुल 21 कवियों की काव्य रचनाएं संकलित हैं। यह समझा जा सकता है कि जम्मू में लिखने वाले कवियों की रचनाओं का यह प्रतिनिधि संकलन है।

प्राक्कथन में मंडल के प्रधान डा0 गंगादत्त विनोद ने हिन्दी के समकालीन कवियों की ओर संकेत किया है–

"अब हिन्दी साहित्यकारों की एक लम्बी श्रृंखला तैयार होकर निरन्तर साधना पथ पर अग्रसर है। सर्वश्री पिपासु, चंचल, आनन्दम्, जेरथ आदि अनेक प्रौढ़ व उदयमान प्रतिभाएं उभर रहीं हैं जिन्होंने सुरभारती के कोष को नवीन रत्नों से समलंकृत किया है।"
............*पृ01*

इस ओर दूसरा प्रयास युवा हिन्दी लेखक संघ द्‌वारा प्रकाशित **'चौराहे पर खड़े बारह चेहरे'** के साथ हुआ। यह कविताओं का संकलन 1974 में प्रकाशित होकर सामने आया। इसमें बारह कवियों की 50 रचनाएं संकलित हैं। बारह कवि हैं सर्वश्री सुभाष भारद्‌वाज, ओम गुप्त, ज्योतीश्वर पथिक, सुतीक्षण कुमार आनन्दम्, रमेश मेहता, सुश्री उषा व्यास, निर्मल विनोदी, अशोक जेरथ, श्याम नारायण राय, वेद व्यास कुचरू, जवाहर रैणा और जगमोहन। इन रचनाकारों की प्रतिनिधि रचनाओं को इस संकलन में उचित स्थान दिया गया है। इनमें से प्रथम आठ कवि इस प्रकाशन के बाद भी सृजन में संलगन

रहे पर बाकी चार रचनाकार, जिनमें इस संकलन का सम्पादक भी है कहां खो गए इनकी कोई रचना बाद में सामने नहीं आई।

भूमिका में सम्पादक ने एक लम्बी सूची कवियों की दी गई है जो स्वतत्रंता से पहले और बाद में प्रकाशित होते रहे हैं—सर्वश्री बंसी लाल सूरी, सुश्री शंकुतला सेठ, शंकर शर्मा पिपासु, दुर्गा दत्त शास्त्री, राम कृष्ण शास्त्री, डा0 गंगा दत्त विनोद, आदि स्वतत्रंता से पहले भी लिखते रहे हैं और संधि काल में डा0 विद्या नाथ गुप्त, सुभाष भारद्वाज, चंद्रकांत जोशी, मनसा राम शर्मा चंचल आदि गिनाए गए हैं और डा0 ओम गुप्त, श्री ज्योतीश्वर पथिक, श्री सुतीक्षण कुमार आनन्दम्, बिमल कांत भसीन, रमेश मेहता , निर्मल विनोदी, जगमोहन, अशोक जेरथ, श्याम नारायण राय, सुश्री उषा व्यास के नाम सतत् अग्रगामी कवियों में गिनाए गए हैं।

प्रस्तुत कविता संकलन में सम्पादक लिखता है—

"किसी संस्था या व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला इस तरह का प्रथम प्रयास है। इस संकलन में कुल बारह कवियों की रचनाएं संग्रहीत हैं, प्रयास यह रहा है कि रचनाओं की विधा हिन्दी की नई कविता के समीप रहे।"

मैं समझता हूं कि इससे पहले हिन्दी साहित्य मंडल के प्रकाशन मधुरिमा के 'प्रतिभा पुष्प—3' में यह प्रयास हो चुका हैं मधुरिमा का यह कविता विशेषांक मई 1973 में प्रकाशित होकर सामने आया था। इसकी चर्चा हम ऊपर कर आए हैं।

'चौराहे पर खड़े बारह चेहरे' में संकलित रचनाओं के रचनाकारों में कुछेक वास्तव में प्रतिनिधि रचनाकार कहे जा सकते हैं। इनमें से कई निरन्तर लिख रहे हैं और कुछेक ने तो राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में भी अपनी पहचान बनाई हैं। जम्मू कश्मीर कविता के इतिहास की दृष्टि से सुभाष भारद्वाज का नाम आता है जिन्होंने जम्मू में नई कविता की नींव रखी।

भाषा जो हम बोलते हैं/सुनते हैं/ लिखते हैं/पढ़ते हैं/
उसमें अंब सिर्फ/ थोड़ी सी संज्ञाएं/ और कुछ विशेषण/
या/थोड़े सर्वनाम बचे हैं/ लेकिन क्रिया/इसमें एक भी नहीं।

डा0ओम गुप्त की भाषा में पैनापन है:

टूटे पंखों को/आज़ाद हवाओं सा प्यार
हर पहली तारीख से बहुत पहले/ नोटों की गट्ठी का इन्तजार।

और ज्योतीश्वर पथिक मानसिक ऐश्वर्य के वातायन में से झांकते हुए:

महक रहे फूल/झूम रहे पेड़/खुली धूप/मस्त मस्त रूप

सुतीक्षण कुमार आनन्द्म अपने भावों की सीमा बान्धते हुए:

यह सीमा/हां यह सीमा/जो कभी किसी को
एक इकाई नहीं रहने देती/बांटती है आधे आधों में

रमेश मेहता के स्वर में प्रखरता है :

अपने हाथों से सजाकर / अपनी चिताएं/
बेच दी थीं/राख़ के व्यपारियों के हाथ/बुझे हुए अंगारों के साथ।

और उषा व्यास 'छवि' के भावप्रवण शब्द पाठकों को बांध लेते हैं:

मन होता है थोप लूं/ जी भर पैरों में महावर
और फिर /टांक दूं उसके साथ/ बसंत में उगे कांटों की लाल
कत्थई चुभन/ लाल/लहू बहेगा/पीर चाहे मन नहीं सहेगा/
किन्तु कम से कम/रंगों का मेल तो रहेगा।

निर्मल विनोदी के स्वर में भावुक क्षणों को उलीचने की सामर्थ्य है—

खिड़की के शीशे पर/ जल कणों ने/ एक लम्बी/
अंतहीन रेखा का/ आरंभ बो दिया है।
यह शीशे के बाहर है/आरंभ से छूने पर/ तरलता का/
अनुभव ही किया जा सकता है।

अशोक जेरथ के स्वर में आक्रोश और स्थापित सामाजिक आस्थाओं के प्रति विद्रोह का स्वर महसूस किया जा सकता है:

मुझे लगता है/वे सभी विचार बेकार हैं
क्योंकि चीटियों की लम्बी कतार
किधर जा रही है/ मैं नहीं जानता
सरकारी दुकान के बाहिर/आठ घन्टे खड़ा रहने के बाद
खाली टीन बजाता/लौट आया हूं।

इस संकलन की समीक्षा करते हुए मंजु जैन ने नवभारत टाईम्स, 3/7/1975 ने लिखा है:

"यह कविता संकलन जम्मू क्षेत्र के हिन्दी रचनाकारों की वाणगी प्रस्तुत करता है। संग्रह की प्रायः सभी कविताओं में सामाजिक परिवर्तन की तड़प मौजूद है। सतत् अग्रगामी इन युवा कवियों में रमेश मेहता और अशोक जेरथ की रचनाएं उच्च कोटि की हैं। निर्मल विनोद के स्वर में कल्पनाशीलता है।"

साथ चलने का संगीत:— श्री अशोक कुमार द्वारा संपादित, युवा हिन्दी लेखक

संघ द्वारा प्रकाशित यह कविता संकलन 1991 में प्रकाशित होकर सामने आया। इस संकलन में दस नए कवियों की रचनाएं संकलित हैं। अपने संपादकीय में संपादन ने इस ओर संकेत भी किए हैं:

"मूल योजना यह थी कि जम्मू के ऐसे रचनाकारों का काव्य संकलन प्रकाशित हो जिनका कोई स्वतंत्र संग्रह सामने न आया हो"।

इन रचनाकारों में से दो एक के स्वर संभावना लिए हुए हैं। शकुन्त दीपमाला की रचनाओं में प्रौढ़ स्वर खूब बहा है:

धूलस्नात चुंबक सी आस्था/ धरती के आकर्षण से
मुक्त नहीं हो पाती/ लौट लौट जाती है/ मटियाली हरियाली
उर्वरा मृदा, बंजर धरा और तपती मरकत पर। ....*पृ016*

श्री अरुण कुमार भी अपनी बात अच्छे ढंग से कह लेते हैं:

नहीं/कभी नहीं घबराया/ जिन्दगी की कशमकश से।
मुझे लड़नी है/ अकेले/अपनी लड़ाई/अभिमन्यु की तरह। ....*पृ029*

सुरेखा बख्शी की कविताओं में पैनी दृष्टि की झलक मिलती है:

छीना झपटी के/ इस दौर में/ मुझसे/मेरा स्व छीन लिया गया है
शेष रह गई है/केवल/अन्तर्व्यथा/जो सीमित है/सिर्फ मुझी तक
......*पृ0 32*

श्रीमती सुदर्श त्रिलोचन की कविताओं में यर्थाथ बोध मुखर हुआ है:

परम्परागत इतिहास के पृष्ठों पर/ जीवन सस्ते हो चुके हैं
हर कोई जिन्दगी से/उबा है/जीवन मूल्यों में/हो रहा ह्रास ..*पृ047*

सुश्री अनीता किरण की कविताओं में संजोए स्वप्नों के साकार न होने का दुःख उभरा है:

दूधिया चांदनी सी फैली है /मेरे आंगन में

रंजू की कविताओं में विडम्बना घर कर गई है:

मुफलिसी का दौर है/ जेबों की खनक गायब है
ऐसे में जब/खुद्दारी के साथ/खरीददारी की बात आती है
तो मैं हंस पड़ती हूं। ....*पृ0 66*

संकलित कविताओं में रचनाओं का ताज़ापन तो है ही पर इससे भी ऊपर नवोदित इन कवियों और कवियित्रियों के स्वरों में अपने आसपास की दुरूह स्थितियों की पहचान और उनकी सटीक अभिव्यक्ति की सामर्थ्य झलकती है जो इस बात की साक्षी है कि

थोड़ा शिल्प में प्रयास और अध्ययन निश्चय ही इन्हें अच्छे रचनाकारों के रूप में स्थापित करने में सहायक सिद्ध होंगें।

आज की कविताएं का नबम्बर दिसम्बर 93 अंक एक तरह से कश्मीर अंक कहा जा सकता है। इस अंक के सम्पादक हैं श्री पृथ्वी नाथ मधुप। अपने सम्पादकीय में सम्पादक की लेखनी विस्थापन के दर्द को छूती हुई गुजरती नहीं ठहर जाती है–

"भला साहित्यकार, विशेषकर कवि विस्थापन की इस गहन पीड़ा की टीस से अछूता कैसे रहता। उसने इस पीड़ा को हृदय में धर इसे शब्द दिए–वह विस्थापन के दर्द से बहुत बहुत प्रभावित हुआ उसकी रचना प्रक्रिया प्रभावित हुई। मात्र उन कवियों की रचना प्रक्रिया ही इस पीड़ा से प्रभावित नहीं हुई जो सीधे विस्थापन की पीड़ा को जी रहे हैं बल्कि वे तमाम कवि इस दर्द से आन्दोलित हो उठे जो भावात्मक स्तर पर इस पीड़ा से जुड़ गए"। इस अंक में जम्मू और कश्मीर के कवियों का दर्द बहा है इस दर्द की आवाज़ हमें शशिशेखर की पंक्तियों के माध्यम से दस्तक देती लगती है:

जब मै चला
गली मेरे/ पीछे–पीछे चली आई दूर तक
चुपचाप/लेकिन जब मैने
विदा कहने के लिए मुड़कर देखा
तो वह कीचड़ बनकर/ मेरे पैरों से लिपट गई.........
मुझसे छूटे मेरे शहर,
मैने तुम्हारी जड़ों को/ अपने भीतर छुपा लिया है।

इस दर्द को अभिव्यक्ति देते रतन लाल शान्त कह उठते हैं–

बड़े धीर हो कश्मीर!
ठीक भूकम्प के समय
लोहे और आम का खेल देखने
भूमिगत हो गए।

अर्जुन देव मजबूर की चिंता इन पंक्तियों में झलकती हैं–

खिसकती रही पैरों तले
गजभर भूमि मेरीं
मैं ताकता रहा आकाश
कि दो में से एक तो हो मेरा।

रमेश मेहता परिवेश मे परिधियां तलाशते सहमे हुए वातावरण की ओर संकेत करते हैं:

सहमी हुई हवा
रुक रुक कर कदम रखती
एक घर से दूसरे घर की
दूरी नाप रही है।

और महाराज कृष्ण संतोषी पैने स्वर में तल्खियों को घोलते लगते हैं–

क्या आप नहीं मानते
एक डरा हुआ चेहरा होता है
नकाब पोश
मित्रता के स्तर से गिरा हुआ।

पृथ्वी नाथ मधुप अचानक घिर आए अंधकार की ओर संकेत करते हैं–

कभी–/भारी भाड़े के
छोटे अंधे कमरे की
उबड़खाबड फर्श पर/टहलता
सीली–मैली दीवारों पर
हजारों–हजार उसासें/चस्पां करता रहा।

और निर्मल विनोद का स्वर विस्थापितों के दंभ को उभारता हुआ कहता है:

'अगर खुशबू को बेदखल करता है धुंआ
तो किसी 'तावनजद' के पेट में
दर्द क्यों उठता है
यह हमारा आपसी मस्अला है
सुलझा लेंगे–
हम खुद ही!

इस प्रकार अपनी धरती से बिछुड़ने का दर्द जितना उस धरती के बेटों ने सहेजा है उतना ही दर्द उन बेटों की दशा देखकर दूसरों ने भी महसूसा है– समसामयिक स्थितियां इस संग्रह में उभरी हैं।

वितस्ता के नये चरण: कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा प्रकाशित यह अंक कश्मीर के कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन कहा जा सकता है। इस संकलन में एक साथ स्थापित और नए रचनाकारों की रचनाओं को संकलित किया गया है। अतः एक तरह से यह कविता संकलन कश्मीर के प्रतिनिधि कवियों को एक सांझा मंच प्रदान करता है। इसमें संकलित कविताओं के संदर्भ समकालीन कविता और कवियों के बारे में दिए गए हैं।

खंड काव्य भीम : जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित यह खंड काव्य श्री टी0डी0हंस द्वारा रचित एक मात्र काव्य रचना है जो प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गई है। 50 पृष्ठीय इस रचना को तीन खंडों में बांटा गया है– युद्ध,धर्म और दया।प्रथम खंड में भीम युद्ध की अनिवार्यता की ओर संकेत करते हुए इसे उचित ठहराता है कि जब अहिंसा से कार्य नहीं बनते तो शक्ति का सहारा लेना ही पड़ता है नहीं तो लोग भीरु समझने लगते हैं। संधि का प्रस्ताव रखना अथवा मानना गलत नहीं है तथापि संधि वही स्वीकार्य होती है जहां एक शक्तिशाली हो और दूसरे पर अपनी शर्त मनवाने में समर्थ हो:

मानता हूं संधि का प्रस्ताव रखना/ धर्म है
क्षत्री का जो शक्ति का आगार है/कुचल देने के लिए विद्रोह को।

भीम आगे कहते हैं कि संघर्ष ही महा जीवन है जिसमें युद्ध अवश्यम्भावी है:

युद्ध! संकल्प लिया है/ होगा ? करना कोई पाप नहीं है
अभिशाप नहीं है केशव संघर्ष महाजीवन है
तुमने संकेत दिया था।

धर्म के खंड में श्रीकृष्ण भीम के उत्तेजित हो जाने पर धर्म का मूल समझाते हुए कहते हैं जब तक हो सके युद्ध को टालना चाहिए ताकि मानवता का ह्रास न हो लेकिन जब कोई चारा न हो तो युद्ध करना धर्म हो जाता है।

जिसे दनुज कह रहा छूत/ मेरे प्राणों का प्यारा
कंसराज से युद्ध किया जब/वही था एक सहारा।

दया के खंड में धर्म के मूल में दया को स्थापित किया गया है।

दया धर्म का मूलमंत्र है/पर इसका यह अर्थ नहीं है/
चोर, जार, डाकू और कातिल/ घर में आकर तुम्हें सताएं।

भीम खंड काव्य में छन्द मुक्त रचना हुई है। अगर पंक्तियों को सीधा लिख दिया जाए तो कहीं नहीं लगेगा कि यह काव्य रचना है। कहीं कहीं पर आंतरिक छन्द अवश्य है पर इसका केवल आभास मात्र होता है। इस रचना में काव्य तत्त्वों का नितांत अभाव खटकता है। कहीं पर लगता ही नहीं कि हम काव्य रचना पढ़ रहे हैं। सीधे –सादे शब्दों में बात करने की कोशिश की गई है। न कोई बिम्ब ही उभरता है और न ही कहीं कोई प्रतीक योजना का ही नियोजन है। शब्द शक्तियों का भी कोई प्रयोग इसमें दिखाई नहीं देता मात्र लिखने के लिए लिखा गया है। विचार भी एक दूसरे से विरोध करते दिखते हैं।

कहानी साहित्य के पहचाने क्षितिज

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कहानी विधा में आज़ादी से पहले कोई विशेष कार्य नहीं हुआ और आज़ादी के बाद के कुछेक वर्षों में लगभग 1960 तक हमें स्थानीय रचनाकार की रचना प्रकाशित हुई हो इसके बहुत कम ब्योरे मिलते हैं। उषा और वसुधा पत्रिकाएं बंद हो चुकी थीं पर भारती दो एक वर्ष की अनियमितता के बाद पाक्षिक तौर पर पत्र के रूप में छपने लगी थी। जम्मू कश्मीर सूचना विभाग की ओर से भी 'योजना' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हो चुका था जिसके सम्पादक थे हिन्दी और डोगरी के प्रख्यात कहानीकार श्री वेद राही। योजना में शुरू में जो कहानियां छपीं वे या तो कश्मीरी या डोगरी से अनूदित थीं या हिन्दी के नाम पर उर्दू की कहानियां प्रकाशित की गईं। जैसे मोहन यावर या पुष्करनाथ अक्सर योजना में प्रकाशित होते रहे हैं। हां भारती में उन दिनों कुछ हिन्दी कहानियां अवश्य प्रकाशित होकर सामने आईं पर अधिकतर कहानियां अधकचरी और नव लेखकों की थीं जो बाद में न ही कहीं स्थापित हुए और न ही कहीं प्रकाशित ही हुए। भारती के 30 मार्च 1956 के अंक में धर्म चंद प्रशांत की एक कहानी 'नूरजहां की पेशी' प्रकाशित है। इस कहानी में लेखक चिंगस की सराय में एक स्वप्न लेता है कि जहांगीर का दरबार लगा है और जहांगीर महाबत खां को नूरजहां को दरबार में पेश करने के लिए आदेश देता है। नूरजहां पर जहांगीर को ज़हर पिलाकर मार डालने का इल्जाम लगाया जाता है और शहादत के तौर पर एक खोजा पेश होता है जिसने नूरजहां को ज़हर मिलाते हुए देखा था। नूरजहां अपना जुरम कबूल करते हुए एक शहादत को पेश करती है जो उसके पहले शोहर की होती है जिसे जहांगीर ने मारकर नूरजहां से शादी की थी और बादशाह को ललकारती है कि अगर मेरा कसूर सजा माफक है तो इसके कातिल को भी सजा दी जानी चाहिए तो जहांगीर का सर शर्म से झुक जाता है और नूरजहां को छोड़ दिया जाता है।

कहानी ऐतिहासिक पुट लिए है पर इसमें कल्पना की उड़ान काफी ऊंची है। इतिहास से यह तो पता चलता है कि जहांगीर कश्मीर जाते हुए चिंगस में मर गया था और उसकी आंते वहीं पर दबा दी गईं थीं पर यह बात कहीं पर नहीं उभरती कि उसे नूरजहां ने ज़हर दिया था। पर यह भी सच है कि यह एक कहानी है ऐतिहासिक घटना नहीं। पाठक का मनोरंजन करने में यह भरपूर योगदान देती है।

यह वह समय था जबकि जम्मू में प्रसारण शुरू हो चुका था यद्यपि शुरू शुरू में पाकिस्तान के दुष्प्रचार का उत्तर देना और समाचारों को प्रसारित करना इसका उद्देश्य रहा था तथापि धीरे धीरे झलकियां, नाटिकायें और साहित्य की अन्य विधाओं पर भी कार्य होना शुरू हो चुका था। कहानी की विधा में छुटपुट प्रयास होने लगे थे किन्तु

कोई कहानी संग्रह 1960 तक सामने नहीं आया । कल्चरल अकादमी के वजूद में आने के साथ ही प्रदेश की विभिन्न भाषाओं के साहित्य पर कार्य होना शुरू हो चुका था। 1961 में अकादमी द्वारा 'गद्याजलि' प्रकाशित की गई जिसमें संस्मरणों, एंकाकी और निबन्धों के इलावा आठ कहानियां भी प्रकाशित की गईं। श्रीमती सत्यवती मल्लिक द्वारा रचित 'वंशी और चिट्ठी', धर्मचंद प्रशांत द्वारा रचित 'मालिन' मोहन कृष्ण दर द्वारा लिखित 'घास का माया जाल', दीप कौल की 'गोपी', वेद राही द्वारा रचित 'पानी और पत्थर', हरि कृष्ण कौल कृत 'यक्ष और टोपी', जवाहर लाल कौल की 'डोलमा' तथा रतल लाल शांत कृत 'नन्हीं' आदि कहानियां इस अंक में संग्रहीत हैं।

प्रथम कहानी 'वंशी और चिट्ठी' एक आम सी कहानी है। एक बेनामी चिट्ठी लेखिका को मिलती है जिसे कौतुहलवश वह पढ़ जाती है, लिखा था 'तुम्हारी घरवाली काम नहीं करती वह कहती है मेरा घरवाला आएगा तो करूंगीं'। यह एक वाक्य पढ़कर लेखिका सोचने लगती है कि ऐसा कौन सा भाग्यशाली है जिसकी पर्वतवाहिनी अधीर नेत्रों से प्रतीक्षा कर रही हो।

दूसरी कहानी प्रशांत जी की है, 'मालिन'। यह कहानी स्त्री के चरित्र को बखूबी खोलती है। प्यारी नामक एक फूल बेचने वाली लेखक की पत्नी से खूब घुलमिल गई है अतः बिना किसी रोकटोक के घर के दूसरे सदस्यों के साथ चूहलवाजी करने में बाज नहीं आती। अचानक लेखक की पत्नी बीमार पड़ जाती है और बीमारी की हालत में ही गुजर जाती है जब मालिन को पता चलता है तो बहुत दुःखी होती है पर धीरे धीरे सबकुछ सामान्य हो जाता हे कि एक रोज़ लेखक के घर पर उसका एक मित्र आता है और मालिन के निश्चल व्यवहार से आकर्षित होकर उससे छेड़खानी कर बैठता है तो वह उसकी दुर्गति कर डालती है।

प्रशांत जी की यही कहानी 'रहमत' के नाम से भारती 1956 के अंक 30 मार्च में छपी है पर अब भंगण के स्थान पर मुख्य पात्रा मालिन ले ली गई है।

मोहन लाल दर द्वारा रचित 'घास का मायाजाल' अपना रास्ता खो बैठे ऐसे सैनिक की व्यथा कथा है जो अंततः दुश्मनों के चंगुल में फंस जाता है। इस में कहानी जैसा कुछ नहीं मात्र एक घटना है जिसका तानाबाना लेखक ने बुना है।

दीपक कौल कृत 'गोपी' एक ऐसी अबला की कथा है जो विवाह के लिए अनेक मधुर स्वप्न संजोए बैठी है पर शादी के बाद यथार्थ से टकराकर उसके स्वप्न बिखर जाते हैं वह अपने पति से अनेक आंकाक्षांए लगाए बैठी है जो उसे शादी के पहले बहुत प्यार करता था पर शादी के बाद वह उससे कई कारणों से विमुख हो जाता है और उनमें व्याप्त गरिमा धीरे धीरे चुक जाती है। गोपी अपने पति मोहन के दूर के भाई में वही अक्स

तलाशने लगती है और दूसरी ओर मनोहर भी उसके प्रति आसक्त हो जाता है पर समाज की स्थापित की गई मर्यादाएं उन्हें आगे बढ़ने में रोकतीं हैं। पर एक रोज यह बांध टूट जाता है जब अंधेरें में मनोहर गोपी को अपने स्नेहपाश में बांध लेता है। इस तरह अंधेरे में उजाला उभर आता है।

वेद राही कृत 'पानी और पत्थर' अभाव में जीते एक परिवार की यर्थाथ तस्वीर है तो दूसरी ओर ऐश्वर्य और वासना के दरिया में भीगी, एक कुलीन परिवार की लड़की की तस्वीर है जो अपने पति को छोड़कर अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है। कथा में तारतम्य है और भाषा में गति के साथ साथ प्रवाह भी है। समाज में विचरने वाले विभिन्न घटकों के द्वंद्व के माध्यम से कहानी को खोला गया है। एक अच्छी कहानी कही जा सकती है।

हरि कृष्ण कौल कृत 'यक्ष और टोपी' एक और अच्छी कहानी है जिसमें प्रतीकों के माध्यम से लेखक ने मुख्य पात्र की आत्मग्लानि को खोला है जो किसी मजबूरी के तहत अपने चाचा का कहना समय असमय मानने के लिए बाध्य था। घर की बहु समझ नहीं पा रही थी कि ऐसी क्या मजबूरी है पर अंत में मुख्य पात्र द्वारा कही उक्ति "टोपी कोई मामूली चीज़ नहीं, इज्जत की नीशानी होती है, और अपनी इज्जत बचाने के लिए कौन प्राणी प्रयास नहीं करता" यह सुनना था कि बहु को लगने लगा कि कहीं कोई ऐसी बात अवश्य है कि सभी लोग चाचा से डरते हैं। कहानी की भाषा सहज है और मनोवैज्ञानिक आधार पर इसे बुना गया है।

इस संग्रह की सबसे सशक्त कहानी 'डोलमा' है। डोलमा नाम की लड़की का पालन एक गोम्पा में होता है और वह कहानी के 'मैं' पात्र के यहां हिन्दी पढ़ने आती है और धीरे धीरे 'मैं' पात्र के मोहपाश में बंध जाती है। दोनों मन ही मन एक दूसरे को चाहने लगते हैं पर अपने स्नेह को अभिव्यक्त नहीं कर पाते। मुख्य पात्र के पिता का स्थानातंरण लद्दाख से कहीं और हो जाता है तो वे अपना सामान बान्धने लगते हैं। मुख्यपात्र को हर घड़ी डोलमा की प्रतीक्षा रहती है कि वह किसी भी पल आकर खड़ी हो जाएगी और अपने प्यार का इजहार करेगी। वह आती जरूर है पर सामान बान्धने में उसकी मां का हाथ बटाने और बिना उसे मिले ही चली जाती है वह मन मसोस कर रह जाता है। दूसरे दिन जब सभी कूच करने की तैयारी में हैं वह उसकी राह देखता उदास हो जाता है और कारवां रवाना हो जाता है। सारे रास्ते वह सोचता रहता है कि डोलमा ने ऐसा क्यों किया पर चाहकर भी समझ नहीं पाता। नीमू के पड़ाव पर वह यही सोचता हुआ बैठा था कि उसकी छोटी बहन तथागत की एक कांस्य प्रतिमा लेकर उसके पास आती है और उसे बताती है कि यह मूर्ति उसे उसके संदूक में मिली है। वह मूर्ति

को पाकर हैरान रह जाता है क्योंकि यह प्रतिमा डोलमा के पास थी और वह इसकी पूजा ध्यानमग्न होकर किया करती थी । पर उसने यह मूर्ति उसके संदूक में क्यों रखी बहुत सोचने पर उसे धीरे धीरे समझ आने लगता है कि तथागत की यह प्रतिमा संयम और अनुशासन की प्रतीक है। एक तरह से डोलमा ने इस मूर्ति के माध्यम से कहला भेजा है कि वह तथागत की है और उसे भी संयम से रहना चाहिए।

रतन लाल शांत द्वारा रचित 'नन्हीं' कहानी, लगता है कि कश्मीरी में पहले लिखी गई होगी इसी कारण अनुवाद में भी कश्मीरी मुहावरे और भाषा में वैसी ही 'टोन' आ गई है। यह एक साधारण कहानी है। नन्ही किरण के अस्तित्व को नकारती रहती है और स्वयं को भी छलती रहती है कि उसका और किरण का कोई नाता नहीं पर जब उसे पता चलता है कि किरण चला गया है तो वह सदमें को बर्दाश्त नहीं कर पाती और बेहोश हो जाती है।

इनमें से कई कहानियां योजना से 'साभार' लीं गई हैं। गद्यांजलि से पहले योजना प्रकाशित होना शुरू हो चुकी थी जिसमें डोगरी और कश्मीरी कहानियों को अनूदित कर प्रकाशित किया जाता रहा है। अतः योजना से ली गई अधिकतर कहानियां अनूदित ही होंगी।

वस्तुतः छुटपुट प्रयास कहानी में होने लगे थे पर निरन्तरता सत्तर के दशक के साथ साथ आना शुरू हुई जब कहानी के प्रकाशन में वैयक्तिक और संस्थागत प्रयास होने लग पड़े थे। यही काल था जब प्रदेश में हिन्दी कहानी ने अंगडाई लेना शुरू की थी। कल्चरल अकादमी की ओर से शीराज़ा और हमारा साहित्य का प्रकाशन, जम्मू कश्मीर के सूचना विभाग की ओर से योजना का प्रकाशन तथा बाद में इसी विभाग द्वारा डुग्गर समाचार आदि पत्रिकाएं पत्र इन रचनाकारों के लिए अच्छे मंच स्थापित हुए। इस बीच हिन्दी साहित्य मंडल का पुनः स्थापन हो चुका था परिणाम स्वरूप अनेक नई प्रतिभाएं इस क्षेत्र में उभरने लगीं। कुछ कहानीकार तो प्रदेश की सीमा लांघकर राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं और पत्रों के साहित्यिक अंकों में प्रकाशित होना शुरू होने लगे थे इस तरह इस प्रदेश के कहानीकार अपनी पहचान बना रहे थे।

अस्सी के दशक तक पहुंचते पंहुचते हिन्दी कहानी ने अपने को स्थापित कर लिया था। इस दशक में अनेक कहानी संग्रह और संकलन भी प्रकाशित हुए। कहानीकारों की रचनाओं का आकलन, भाषा और शैली के आधार पर होने लग पड़ा था। राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं और राष्ट्रीय स्तर के पत्रों के साहित्यिक अंकों में इन संग्रहों की चर्चा और समीक्षा होने लगी थी जो इस बात की ओर संकेत है कि इस प्रदेश की हिन्दी कहानी राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रही थी।

इस दशक में विभिन्न संस्थाओं की ओर से भी कहानी संकलन निकाले गए। युवा हिन्दी लेखक संघ द्वारा 'प्रिजमों में बटी किरणें' हिन्दी साहित्य मंडल द्वारा 'देवदार की छाया तले' और 'मधुरिमा' पत्रिका का कहानी विशेषांक, कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित 'शीराजा' का कहानी विशेषांक आदि संस्थागत प्रयास इस ओर रहे हैं। और ये प्रयास चर्चित हुए हैं। इन संकलनों के माध्यम से एक ओर तो नए कहानीकार उभरे और दूसरी ओर स्थापित कहानीकार चर्चित हुए।

व्यक्तिगत तौर पर भी अनेक संग्रह इस दशक में प्रकाशित हुए और कुछेक कहानी संकलन भी सामने आए जिनमें दूसरे कहानीकारों की भी रचनाएं संकलित थीं।

चचंल शर्मा कृत 'किसी से न कहना', बलनील देवम कृत 'उल्कापात', ओम गोस्वामी कृत 'निर्वासित', वेद राही कृत 'दरार' छत्रपाल कृत 'रोशनी से दूर' आदि कहानी संग्रह और अनिल सहगल द्वारा संपादित 'अधूरी कहानी का हीरो' कहानी संकलन इस दशक की उपलब्धियां हैं। इनके इलावा कहानी विधा के अनेक पक्षों पर परिचर्चाएं भी आयोजित कीं गईं और स्थानीय कहानीकारों की रचनाओं पर विद्वान समीक्षकों और आलोचकों द्वारा समीक्षात्मक लेख भी लिखे गए। इनमें से कुछेक इस प्रकार हैः

'जम्मू की हिन्दी कहानी एक सर्वेक्षण' डा0 अनिल गोयल, शीराज़ा कहानी विशेषांक, पूर्णांक 43

'जम्मू कश्मीर की हिन्दी कहानी को देन' वही, शीराज़ा, पूर्णांक 60

'जम्मू कश्मीर में हिन्दी साहित्य की नई प्रवृत्तियां' डा0 ओम गुप्त, हमारा साहित्य, 1978

'जम्मू की हिन्दी कहानी' डा0 अशोक जेरथ, निस्तंद्र मार्च 1975

इन लेखों के माध्यम से न केवल कहानी की पहचान शुरू हुई अपितु विकासोन्मुख कहानी साहित्य का विश्लेषण भी किया जाने लगा।

वेदराहीः 1933 में, जम्मू में, जन्मे श्री वेदराही जम्मू कश्मीर के प्रसिद्ध एवं चर्चित पत्रकार स्व. मुल्खराज सराफ के सुपुत्र हैं। जम्मू कश्मीर में हिन्दी कहानी के सूत्रधारों में से एक, 'दरार' नामक अपनी ही कृति पर चलचित्र का निर्देशन भी किया। बाद में अपनी ही एक और कृति 'प्रेम पर्वत' को भी फ़िलमाया। सिनेमा तथा दूरदर्शन के लिए अनेक साहित्यिक रचनाओं पर बने रूपकों, सीरियलों और लघुफिल्मों में सफल निर्देशन ओर अब बंबई में ही बास ।

श्री वेद राही ने अपना कैरियर जम्मू कश्मीर सूचना विभाग की पत्रिका 'योजना' के सम्पादन से शुरू किया। अनेक साहित्यिक सस्थाओं जैसे हिन्दी साहित्य मंडल तथा डोगरी संस्था से सम्बद्ध रहे।

इनकी चर्चित कहानियों में 'दरार' मुख्य रूप से प्रसिद्ध है। पाकिस्तान के हमले से सब गांव छोड़कर भाग रहे हैं पर ध्यानसिंह नहीं भाग पाता क्योंकि उसकी स्त्री प्रसवपीड़ा से दोचीदा है। लोगों को बदहवास भागते देखकर वह उनसे यह भी नहीं कह पाता कि कोई उसकी मदद करे। वह छज्जू की मां को बुलाने जाता है जो शायद दाई का कार्य करती है। छज्जू और उसकी मां गठरी उठाए गांव छोड़ रहे थे। छज्जू की मां उसके साथ हो लेती है कि वह लज्या, अपनी पत्नी को लिवा लाए रास्ते में ही वह सब देख लेगी। ध्यानसिंह भीतर लज्या से यही कहने जाता है पर लज्या की हालत ऐसी नहीं कि वह चल सके अतः छज्जू और उसकी मां दोनों चले जाते हैं। वह मन मसोस कर रह जाता है और भीतर जा कर एक बार फिर लज्या को चलने के लिए कहता है। पर लज्या उसे धकेल कर कहती है कि वह नहीं बचेगी अतः ध्यान सिंह निकल जाए। ध्यान सिंह अनमना कभी छत पर कभी आंगन में और कभी बाहर देखता है कि गांव खाली हो गया है। बाहर आकर वह उसी ओर चलने लगता है। पीछे कुत्तों की आवाजें उसे और आगे ठेल देती हैं और वह संध्या तक चिनाब के किनारे पहुंच जाता है। वहीं रात बिता देता है। प्रातः दो पुलिस वालों से पता चलता है कि पाकिस्तानी छम्ब की ओर बढ रहे हैं अतः वह उनके साथ अखनूर तक चला चला चले। पर वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ वापिस अपने गांव की ओर हो लेता है। घर के बाहर कोई आवाज न पाकर स्तब्ध हो उठता है। भीतर लज्या निढाल बैठी है और बच्चा एक ओर लिपटा पड़ा है। वह उसे कुत्तों की कहानी सुना कर कहता है कि रात्रि बाहर ही रह गया था पर उसे लगने लगा कि उसके और लज्या के बीच एक अलगाव सा ठहर गया है।

कहानी लड़ाई की विभीषिका और आम आदमी की बेबसी की एक यथार्थ तस्वीर है। कहीं पर कोई चौंकाने वाली बात नहीं जैसे हमारे सामने एक तस्वीर खुल जाती है।

चीड़ों में ठहरी बयार पृ.53

'दुर्घटना' कहानी (हमारा साहित्य 1967) एक और अच्छी कहानी है जिसमें एक नव विवाहित जोड़ा कश्मीर से हनीमून मनाकर लौटा है। गरिमामय क्षणों में अचानक ऐसे सम्वाद उभर आते हैं जिनमें दोनों का अतीत उभर आता है। राज का कहना कि वह अभी तक अछूता था और निम्मों को पाकर धन्य हो गया है पर ऐसा कहते कहते उसके मानस पटल पर अतीत का एक दिन लौट आया था जब रजनी, पड़ोस में रहती एक लड़की को उसने अपनी बांहों में कस लिया था। दूसरी ओर निम्मों को भी कुछ स्मरण हो आता है और उसकी मनःस्थिति बदल जाती है:

"शाल के अंदर उसने राज का हाथ ढीला छोड़ दिया"।

हाथ में पकड़े रूमाल की ओर अचानक निम्मों का ध्यान जाता है जिसके एक ओर

क काढ़ा गया था और दूसरे कौने में कमल का फूल बना था। उसने अपना रूमाल बाला हाथ गाड़ी की खिड़की से बाहर निकाल लिया और रूमाल फड़फड़ाने लगता है।

कहानी की खूबसूरती इसी में है कि बिना किसी संवादों और ब्योरों से कहानीकार ने निम्मों की मनोदशा संकेतों के माध्यम से कह दी है।

फिल्मी संसार से बावस्ता परिवेश पर भी कहानीकार की कलम चली है। 'खास—उल—खास' कहानी, हमारा साहित्य 1983, कुछ ऐसे ही कथानक पर आधारित है। हीरो का और हिरोईन का चमचों द्वारा घिरे रहना ओर खास चमचे की पहुंच तो यहां तक होनी कि प्रोड्यूसरों को हीरो से समय लेने और उसे अपनी फिल्म में रोल करने के लिए इन्हीं चमचों को खुश रखना पड़ता है। ऐसे ही हीरो नरेशकुमार से एक खास—उल—खास जुड़े थे। फिर उनकी गोद में सवार हो गए और हर शूंटिग में उन्हें देखा जाने लगा। मौका मिलते ही वे अपना स्वार्थ भी पूरा कर लेते पर नरेश के अभिन्न मित्र बन कर उसे शादी करने से रोकते रहते क्योंकि उन्हें डर था कि शादी के बाद नरेश कुमार उनके हाथ से निकल जाएगा। वेदराही की कहानियां अपने परिवेश से जुड़ी हुई कहानियां हैं अतः भौगोलिक स्थितियां, आंचलिकता और प्रदेश विशेष की संस्कृति की झलक इन कहानियों में हमें मिलती है। 'दरार' कहानी में छम्ब, अखनूर, दरिया चिनाब आदि का जिक्र इस और संकेत करता है तो दूसरी ओर छज्जू की मां को बुलाने जाने की बात इस ओर संकेत करती है कि गांव में अभी भी 'मिडवाईफ' का कार्य गांव की औरतें ही करती हैं।

'दुर्घटना' कहानी में कुद्ध, बटोत, पत्नीटाप आदि स्थानों के नाम, पतली सड़कें, चीड़ और देवदार के वृक्ष कहानीकार को तो अपने परिवेश के साथ जोड़ते ही हैं पाठकों को भी उस वातावरण में ले जाते हैं।

इसी प्रकार खास—उल—खास कहानी में फिल्मी परिवेश, वहां के चटपटे लोग, एक दूसरे पर फबतियां कसते कारिन्दें, अपने स्वार्थों के हित के लिए कुछ भी करने को तैयार पात्र उस वातावरण की बात कहते हैं।

वेद राही कृत कहानी 'एक पुल था' हमारा साहित्य 1964, में भी स्थानीय परिवेश बहुत सशक्त होकर उभरा है। रांझु की रतनों के साथ शादी पांच सौ रुपये खर्च करने पर होनी। पंडित से उधार लिए गए पैसों को न चुका पाने के कारण अपने खेत को गिरबी रख कर घर चला जाना और पंडित के कहने पर उसका शहर जाकर पैसा कमाना और इस बीच रतनों का पंडित की हवश का शिकार होना आदि समस्याएं डुग्गर के गांव के साथ अभी भी जुड़ी हैं। और एक परम्परा भी कई गांवों में प्रचलित है कि कोई भी विवाहित स्त्री किसी भी दूसरे पुरुष के साथ बैठ सकती है अगर वह पुरुष उसके पति

को उतना मुयावजा दे जितना उसने खर्च किया है और अगर पति के पास वह दुबारा आना चाहे तो वह पत्नी की मर्जी से उतने पैसे देकर उसे वापिस ले आ सकता है और इस प्रक्रिया में कई बार दूसरे मर्द से हुए बच्चे भी पत्नी के साथ पहले पति के खाते में जुड़ जाते हैं।

फिर दाड़िम के पेड़, नीरू नाला, भलेस का गांव, बांसुरी की स्वर लहरियां निश्चय ही किसी पहाड़ी परिवेश की बात कहती हैं।

इन कहानियों में बनते टूटते रिश्ते, परिवेश की समस्याएं जैसे पाकिस्तान आक्रमण आदि से उठने वाली दिक्कतें, वैयक्तिक सम्बन्धों का सूक्ष्म विश्लेषन और आम आदमी की नियति की बात बहुत सशक्त होकर उभरी है।

बेदराही के पास सटीक बात कहने की भाषा और शब्द चयन है। यद्यपि यह बात सीधी भाषा और संवादों द्वारा कह दी जाती है पर कई बार केवल संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से उजागर होती है।

'वहां एक पुल था जो अब टूट गया है' यह वास्तव में भौतिक पुल की बात नहीं अपितु रिश्तों के पुल की बात है। वर्षो बाहर रहने के बाद राझुं जब अपने गांव लौटता है तो पुल टूटा पाकर उसके अंदर में एक लीक खिंच जाती है। इसी प्रकार इसी कहानी में पंडित का रतनों से हुए अपने शिशु को हरामी कहना अपने आप में पूरा है कि वह बच्चा रतनों के साथ उसके नजायज़ सम्बधों का परिणाम था। इसी प्रकार राझूं का रतनों के लिए लाए गए कपड़ों का उसके दरवाजे पर रख देना और साथ ही उधार लिए हुए पांच सौ रुपए भी इस बात के प्रतीक हैं कि राझुं वहाँ आया था। रतनों यह समझ लेगी।

वेद राही की कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक होते हैं। 'दरार' कहानी में ध्यानसिंह को एक कुण्ठा सालती है कि पल भर को ही सही उसके मन में प्रसव से तड़पती अपनी पत्नी लज्या को छोड़ने की बात आई थी अतः चलते समय इन दोनों के बीच एक गाण्ठ पड़ जाती है सम्बन्धो की गांठ।

इसी प्रकार 'दुर्घटना' कहानी में यद्यपि बस तो दुर्घटना से बच गई थी परन्तु निम्मों के मन में एक संदेह कर गया था कि कहीं उसके पति को यह पता तो नहीं चल गया कि शादी से पहले उसके भी कहीं सम्बध थे। मात्र उसके रूमाल पर उकेरे गए 'क' शब्द तथा कमल के चित्र के प्रतीत से पाठक जान जाते हैं कि जरूर ऐसा था कि वह अनमनी हो आई थी।

वेदराही की कहानियों के पात्र आम जिन्दगी के सक्रिय घटक हैं। अपने परिवेश

से ही वे कथानक भी बीनते लगते हैं। इस ओर अपने वक्तव्य में वेदराही कहते भी हैं :

"कहानियों के लिए पात्र मुझे खोजने नहीं पडते, न ही मुझे परिस्थितियों की तलाश रहती है। अपने आपको दार्शनिक के रूप में पेश करने के लिए मुझे विचारों को उधार लेने की आवश्यंकता भी नहीं होती"

चीड़ों में ठहरी बयार–पृ0 52

उपर्युक्त कथन से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं पहली यह कि अपने आसपास से ही कहानीकार पात्र और घटनाएं समेटता है दूसरे किसी बाद विशेष अथवा विचारधारा से प्रभावित हो कर नहीं लिखता। ये दोनों तथ्य उनकी कहानियों में भी उजागर होते हैं।

डा0 अर्जुन रैणा: कशमीर में जन्मे डा0 अर्जुन रैणा का शिक्षण कश्मीर की विभिन्न शिक्षा संस्थानों में हुआ। संस्कृत और शारदा का अध्ययण इनकी रुचि की ओर संकेत करता है। हिन्दी के प्रति इनका अनुराग इसी से जाना जा सकता है कि कश्मीर में सर्वप्रथम हिन्दी पाठशाला इन्ही के सहयोग से स्थापित की गई। 1970 में यह मिर्जापुर उ0 प्र0 में चले गए संभवतः अवकाश ग्रहण करने के बाद, और वहां गोवर्द्धन बिनानी डिग्री कालेज के प्राचार्य के पद पर आसीन हुए।

डा0 रैणा एक अच्छे कहानीकार हैं और इनकी रचनाओं में कश्मीर की धरती की गंध महसूस की जा सकती है। कुछेक राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में भी इनकी रचनाएं प्रकाशित हुईं है। इनका एक मात्र कहानी संग्रह 'केसर के फूल' 1973 में प्रकाशित होकर सामने आया।

194 पृष्ठीय इस संग्रह में कुल 16 कहानियां संग्रहीत हैं। इन कहानियों में कश्मीरी जनजीवन, वहाँ का वातावरण, रूढ़ियाँ, विश्वास, आस्थाएँ और जहां तक कि अंधविश्वासों की झांकी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत की गई हैं। संग्रह के प्रारम्भ में अपने वक्तव्य 'कहानी ही क्यों' में डा0 रैणा ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है–

"इन कहानियों में मेरा यत्न इतना है कि कश्मीर प्रांत की जनता का रहन सहन , सुख–दुख, मेल–जोल और जीवन की अन्य समस्याएं पाठक को विदित हों।"

संग्रह की पहली कहानी 'केसर के फूल' शाबान और उसकी लड़की मुगली के स्नेहसिक्त जीवन की कथा है। शाबान एक किसान है जो केसर की खेती करता है और केसर को इकट्ठा कर उसे मंडी में ले जाने के लिए एक ठेकेदार के लिए भी कार्य करता है। इस सारे कार्य में उसकी लड़की मुगली उसकी भरसक सहायता करती है। शाबान

अपने छोटे और खुशहाल परिवार से खुश है। वह चाहता है कि उसकी लाडली बेटी किसी अच्छे परिवार की बहु बने इसके लिए उसने एक अमीर जमींदार के बेटे करीम को भी पंसद कर लिया है जो अपने बाप का कार्य संभालकर चला रहा है। शाबान हर वर्ष केसर के पहले फूलों को तोड़कर अपने बाप की कब्र पर चढ़ाता है और आज वह दिन आ पहुंचा है। मुगली ने पहले फूल तोड़कर अपनी टोकरी में रख लिए हैं और सारा परिवार करीम के साथ कब्रीस्तान की ओर चल पड़ता है। शावान के पिता की कब्र को दूध और पानी से धोया जाता है और एक एक कर सभी उन फूलों को कब्र पर श्रद्धा के साथ रखते हैं। शाबान और उसकी पत्नी की आंखें भीगी हैं और मुगली सुवकियों में भीग जाती है उसे दादा की बहुत याद आती है। फूल चढ़ाकर सभी वापिस लौट आते हैं।

कहानी की सीधी सादी भाषा, सहज स्थितियां और संक्षिप्त ब्योरे कहानीकार की शैली की ओर संकेत करते हैं। भोले–भाले पात्र, कश्मीरी रस्में–रिवाज़ और धार्मिक आस्थाओं से भीगे समाज की झांकी इस कहानी से हमें मिलती है पर कहीं कहीं पर भाषा में और वाक्यों के विन्यास में त्रुटियां चुभतीं हैं। हो सकता हो कि इस कहानी को पहले कश्मीरी में लिखा गया हो और बाद में इसका शब्दशः अनुवाद किया गया हो बहरहाल कमी तो है। मसलन पृ06 पर देखें "उसे अपने पिता की याद आई जो केसर रुपेया एक चांदी का ढेर सामने रखकर कहता था..........." और इसी प्रकार पृ0 10 पर देखें–"वह क्रोध से एकमात्र और सुन्दर लगी।" आदि।

इस संग्रह की दूसरी कहानी 'सरकार की वह जमानत' कश्मीर की भाईचारे की रिवायत की ओर संकेत करती है। जौहरा का बाप हमीद किसी ठेकेदार की हत्या कर देता है जो उसकी पत्नी की इज्जत लूटने आया था। बाद में हमीद आत्मसमर्पण कर देता है। कत्ल के जुर्म में उसे मृत्युदण्ड की सजा होनी थी पर उसकी पत्नी की फरियाद पर महाराजा उसे उम्रकैद में बदल देते हैं और एक स्थानीय मौलवी के परिवार में इस बेसहारा हो गए परिवार को आश्रय दिलाया जाता है जहां जौहरा पढ़लिखकर बड़ी होती है और उसकी नौकरी उसके घर मुजफराबाद में ही लग जाती है और कालान्तर से उसकी शादी भी एक क्रान्तिकारी से होती है जो पंजाब में कैद हो जाता है और वह इस तरह फिर अकेली हो जाती है पर उसका साहस साथ देता रहता है। कहानी का उत्स उन रिश्तों में है जो अजनबी हैं– जौहरा के पिता के जेल चले जाने पर उसका वकील जिस प्रकार इस परिवार को सहारा देता है उसकी मिसाल नहीं मिलती। मौलवी के घर में जौहरा का उस्ताद कैलाश कौल जिस प्रकार बच्चों को तमीज और तहजीब सिखाना और महाराज का अभी समय रहते हमीद को माफी दे देना आदि स्थितियां कश्मीर के गौरवमय इतिहास की साक्षी हैं।

'शिवरात्रि की रात' कश्मीर के जनसाधारण में व्याप्त अंधविशवासों की ओर संकेत

करती है। गोपाल कौल की लड़की मूर्छा की स्थिति में घर में तूफान खड़ा कर देती है–अपने कपड़े फाड़ देती है और बहशी हो जाती है। गोपाल कौल बहुत तंग आ गया है और एक रोज़ वह शिवरात्री की रात को प्रकांड शिवभक्त दादा को अपने घर बुला लाता है जो मंत्र शक्ति से न केवल उसकी मूर्छा दूर करते हैं अपितु उस पर खड़ी ऊपरी छाया को भी बोलने पर मजबूर करते हैं। इस प्रकार अपनी मंत्र शक्ति से वह इस बीमारी का निदान करने में सफल होते हैं। कहानी अति साधारण है पर कश्मीरी समाज की रूढियों की ओर बड़ी ईमानदारी से संकेत किया गया है।

इस संग्रह की अच्छी कहानियों में एक कहानी 'नफुल' है। यह एक ऐसा त्योहार कश्मीर में मनाया जाता रहा है जिसमें सभी धर्मो के लोग प्रार्थी के रूप में नतमस्तक होकर वर्षा लाने के लिए सर्वशक्तिमान से प्रार्थना करते हैं। पूजा के बाद एक जलूस निकाला जाता है जिसके आगे एक पहलवान एक बड़ा ध्वज उठाए चलता है और रास्ते में आने वाले अनेक धार्मिक स्थलों के ध्वज भी उसके साथ मिलते जाते हैं और कहीं कहीं पर उस ध्वज पर फूलों की भी वर्षा की जाती है। अंत में वितस्ता पार कर एक धर्म स्थल पर इन धार्मिक वस्तुओं की पूजा होती है और बाद में इन्हे जल में प्रवाहित कर दिया जाता है। उस रोज भी रहमान की नौका ही सजी संवरी झांकी को अपने में छुपाए प्रवाह के लिए गहरे जल की ओर बहने लगी। उसका साथ दे रहीं थीं दो नौकाएं। रहमान की नौका भंवर के किनारों को छूने लगी थी कि किनारे पर खड़े लोग चिल्लाने लगे –आगे मत जाओ। पर तब तक देर हो चुकी थी रहमान ने नौका की रस्सी दूसरी नौकाओं की ओर फैंकी और स्वयं उसी रस्सी के सहारे दूसरी नौका पर आ गया और बाद में अपनी नाव को भी भंवर से बाहर खींच लिया। इस तरह न केवल अपनी बहादुरी से उसने अपनी जान बचाई अपितु पुजारी की जान के साथ साथ नौकर को भी बचाकर निकाल लाया।

इस तरह यह कहानी कश्मीर की संदियों पुरानी परम्पराओं की ओर संकेत करते हुए सौहार्द और सद्भाव के साथ साथ एक चरित्र विशेष को भी मुखरित करती है।

इन कहानियों के आधार पर डा0 अर्जुण रैणा के लेखकीय व्यक्तिव्य को आंका जा सकता है। इन कहानियों में कथ्य की दृष्टि से तीन बातें मुख्यता उभरकर हमारे सामने आतीं हैं।

पहली बात स्थानीय भूगोल और स्थितियों की है। कश्मीर की नदियां, पहाड़, गांव, नगर तथा उनके बारे में सटीक जानकारियां हमें उपलब्ध होती हैं। वितस्ता, डल आदि झीलों का स्पर्षनीय सौंदर्य पाठकों को बांध लेता है। दूसरी बात है वहां के रीति–रिवाज़, परम्पराएं, रूढ़ियां, विश्वास और तीज त्योहार जो इन कहानियों में हर जगह व्याप्त मिलते हैं। और तीसरी बात है यहां के भोले भाले लोगों का

चरित्र। कहीं कोई मैल नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, वैमनस्य नहीं शुद्ध स्नेह का दरिया बहता दीखता है जिसमें से पाठक भी सरोबार होकर गुजरने लगता है। विभिन्न जातियों में आपस में सौहार्द और भाईचारा इन कहानियों का उत्स है। शैली के बारे में हम पहले बात कर चुके हैं।

प्रो0 हरि कृष्ण कौलः 1934 में श्रीनगर में जन्में हरि कृष्ण कौल एक प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। इनकी कहानियां भारतीय स्तर पर अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं जिनमें से साप्ताहिक एवं सारिका प्रमुख हैं। इनके चर्चित संग्रहों में, 'इस हमाम में' 'टोकरी भर धूप' और 'अरथी' संग्रह हैं। यह तीनों कहानी संग्रह इनकी कहानियों के नाम पर हैं। इन कहानी संग्रहों की अधिकांश रचनाएं व्याप्त दंभ, राजनीतिज्ञों की पैंतरेवाजी, तथाकथित बुद्धिजीवियों का बड़बोलापन तथा दोगलेपन को 'एक्सपोज़' करती दीखतीं हैं। 'नायक' नामक एक कहानी में प्रोफेसर की भूमिका में तथाकथित बुद्धिजीवी के आदर्श तो बहुत ऊंचे हैं पर वह यह कदापि सहन नहीं कर पाता कि इसका चपरासी उसी के साथ एक ही थिएटर में नाटक देखे। अलबत्ता अगर वहां किसी मनीस्टर अथवा डायरेक्टर का चपरासी होता तो वह उसे न केवल अपने पास बैठाता अपितु उसे सिग्रेट भी पेश करता।

इनकी अधिकांश कहानियों में मीठा–मीठा, धीमा–धीमा व्यंग्य निरन्तर अपनी धीमी चाल से चलता रहता है और अंत में आकर एक विस्फोट का रूप धारण कर लेता है। पहले तो पाठक चटकारे लेता रहता है फिर एकदम गंभीर हो उठता है। 'यह साहब वह साहब' सारिका, अक्तूबर 74 कहानी में ऐसे दो राजनेताओं की कलई खोली गई है जो ऊपर से तो लड़ते दीखते हैं, विरोधी हैं पर असली जीवन में अभिन्न मित्र हैं। इन दोनों नेताओं के भक्त कार्यकर्त्ता इस तथ्य से अनभिज्ञ एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं पर वे दोनों ड्राइंगरूम में बैठे आगत के लिए स्कीमें बनाने में संलग्न रहतें है जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो।

कौल की कहानियों में जहां राजनैतिक हल्कों में हो रही उठापटक और बेईमानी के प्रति तीखे प्रहार हुए हैं वहीं पर अपने परिवेश से कहानीकार इस कदर जुड़ा हैं की कश्मीर की धरती की सुरभि पाठकों तक आ पहुंचती है। बर्फ, पहाड़, नदियां, झीलें, कश्मीरी पकवान, रोगनजोश, कोफता, नमकीन चाय तथा कश्मीरी नान आदि का प्रयोग इन कहानियों में खूब हुआ है। कहीं कहीं पर कश्मीर में सदियों से चल रहीं सौहार्द की परम्पराएं जैसे हिन्दुओं के अंतिम सस्कार में मुस्लमानों क़ा प्रतिभागी होना आदि भी इन कहानियों में उभरा है। 'टोकरी भर धूप' में पोझकुज चाहकर भी अपने कश्मीरी परिवेश से अलग नहीं हो पाती। गाशा और साबा नामक बेटों में उसका अस्तित्व बंटा है।

'अरथी' कहानी में जहां एक ओर कश्मीरी पकवानों और नमकीन चाय का जिक्र

है वहीं पर मुस्लमानों द्वारा हिन्दू चिता को अग्नि देने का भी संदर्भ आया है। 'चोर' कहानी में बहुत से कश्मीरी नाम उभरे हैं। प्रो0 हरिकृष्ण कौल द्वारा रचित उनकी ताज़ा कहानी 'बर्फ' सतीसर, जन0 मार्च 1992, की चर्चा बिना यह संदर्भ अधूरा रहेगा। अपने परिवेश से कहानीकार इस सीमा तक जुड़ा है कि कश्मीर से दूर होते हुए भी वहां से विस्थापित होने का दर्द उसे अंतर तक छील देता है। दुःस्वप्न के माध्यम से खोले गए कथानक में अपनी धरती से अलग होने का दर्द पात्रों के संवादों में सहज ही उभर आता है:

"जानती हो तुम्हारा घर तुमसे कितनी दूर छूट गया है" मैनें उससे पूछा।

"हाँ, अभी दूर ज़रूर है। पर कभी न कभी यह दूरी भी मिट जाएगी।"

'सुनकर मै अवाक् रह गया बुढ़िया भविष्य के सपने देखती है जबकि सामने कोई भविष्य नहीं था। हां पछतावे के लिए पीछे एक लम्बा अतीत जरूर था।'

इस कहानी में ऐसे कई संदर्भ पकड़े जा सकते हैं जो 'नाशिया' की सीमा तक कहानीकार को 'हॉन्ट' करते दीखते हैं:

"मुझे अचानक बर्फ याद आई जो पहले ही स्पर्श में कपड़ों को ही नहीं जिस्म को भी भिगो देती है। तन–मन को सरोबार कर देती है। मुझे याद आया जब ज़ाड़े भर आकाश और छत पर गिरी, और गिरकर आंगन के एक कोने में जमी बर्फ बंसत आने पर दूर से सूरज का मुख देखती थी तो तुरन्त पिघल जाती थी और हमारे छोटे संकरे आंगन में ही शत–शत धाराएं द्वीप, सरोवर और संगम अवतरित होते थे"।

लेकिन कभी इसी धरती से अलग होने या भाग जाने की बात भी लेखक ने कही थी:

"ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों से घिरी यह धरती मुझे एक बहुत बड़ा क़ैदखाना लगती है। पहाड़ों ने यहां आकाश की असीमता को भी कम कर दिया है। कभी–कभी लगता है कि मेरी दृष्टि को, मेरी कल्पना को थोड़ा सा आकाश ही नसीब हुआ है।"

गर्दिश के दिन

लेखक की छटपटाहट महानगरीय उस परिवेश तक पैठ पाने की रही है जहां वह अपनी अभिव्यक्ति खुलकर कर सके। शायद इसके पीछे अहम् की तुष्टि की भी बात हो कि कश्मीर में बैठा कहानीकार एक कोने में पड़ा रहेगा और उसकी रचनाओं की चर्चा नहीं होगी अर्थात वह सीमा में बंध जाता है जबकि दिल्ली, मुम्बई आदि महानगरों में वह अपना भविष्य देख रहा था। वैसे इस कथन में विरोधाभास झलकता है। अक्सर खुले आकाश को देखने महानगरों के संकुचित वातावरण शोर–गुल से निजात पाने लोग पहाड़ों की ओर भागते हैं पर शायद कहानीकार इस प्राकृतिक आकाश की सीमा की बात नहीं कर रहा अपितु सफलता के आकाश की बात कर रहा है, सफलता जो कश्मीर में बैठ कर हासिल नहीं की जा सकती महानगरों में पैठ पाकर पाई जा सकती है। बहरहाल इसी बहाने कश्मीर का आकाश तो उभरा है।

हरिकृष्ण कौल की कहानियो में मृत्युबोध को बड़ी शिद्दत के साथ महसूस किया जा सकता है। मृत्यु की घुटन की विभीषिका से वे या तो आतंकित रहते हैं या घुटते रहते हैं। 'अरथी', संदेश, 'गुलमोहर' आदि कहानियों में यह यथार्थ उभर कर सामने आता है। 'संदेश' कहानी में मृत्युगन्ध की घुटन पात्र पर छाई है:

"मुझे संदेश पहुंचाने का काम सौंपा गया था। नहीं, यह कहना शायद ठीक नहीं है। मैंने यह काम अपनी मर्जी से अपने जिम्मे लिया था। मैं खुद उस मनहूस कोठरी से बाहर निकलने के लिए कोई बहाना चाहता था।"

शीराज़ा पूर्णांक 6

महानगरीय परिवेश में लिखी कहानी 'गुलमोहर' में आत्मीय क्षणों में अचानक मृत्युगन्ध सब ठंडा कर डालती है। प्रेमी और प्रेयसी जो एक कमरे में प्रणय के कुछ समय को भुनाने आंए हैं कि सामने लॉन में लगे गुलमोहर के नीचे पड़े मृत प्रायः गोलगप्पे वाले को देखकर उनका 'मूड' ठण्डा हो जाता है। लड़का चाहता है कि कोई दूसरा उसे वहाँ से उठाकर ले जाए ताकि वह उसे भूलकर सुधा के संग इन क्षणों को पूरी तरह से जी सके अतः वह कोल्ड ड्रिंक बेचने वाले लड़के को उसे उठाने के लिए कहता है पर अपने मालिक की टेढ़ी दृष्टि को देखकर वह लड़का भी कन्नी काट लेता है। दूसरी ओर सुधा भी उस गोलगप्पे वाले को देखकर ठन्डी हो आई है। उसे संदेह होने लगता है कि कहीं यह उसका भाई तो नहीं पर वह इस विचार को तुरंत झटक देती है और नरेश के गले में बांहें डालकर उसे फिर उसी माहौल में ले आना चाहती है—यह कहकर कि हम दुनिया की चिंता क्यों करें।

गुलमोहर, शीराजा पूर्णांक 46

इन कहानियों की सबसे बड़ी खूबी मानवीय रिशतों में टूटते जुड़ते उन अहसासों को पकड़ा गया है जो अनायास ही हमारे जीवन में ठण्डक भर देते हैं। यह ठण्डापन कैसे, कब धीरे धीरे हमारे अन्तस् में घर कर जाता है कहना कठिन है पर हरिकृष्ण कौल का संवेदित मन उन क्षणों को न केवल पकड़ता है अपितु उनकी सहज ही अभिव्यक्ति भी कर डालता है। कहानीकार की यह पकड़ इतनी सूक्ष्म है कि इसे शब्द नहीं दिए जा सकते। संदर्भ के तौर पर कहानी 'टोकरी भर धूप' ली जा सकती है जो एक मध्यवर्गी बूढ़ी की कहानी है जो अपनी परम्पराओं और अपनी मिट्टी से इस सीमा तक जुड़ी है कि नए वैचारिक धरातल और तथाकथित आधुनिक सभ्यता में रंगे घटकों का व्यवहार उसे भीतर तक छील जाता है। पोझकुज के दो बेटे हैं गाशा और साबा गाशा बड़ा है, उसकी बहु बड़ी झगड़ालु है अतः वह कश्मीर से दिल्ली अपने छोटे लड़के के पास रहने के लिए आ गई है। यहां छोटी मोटी घटनाएं जैसे फूल तोड़ने पर बहु का गुस्से होना, बहु का गाउन पहनना और पड़ोस में रहती मिस कपूर के साथ घुलमिलकर बातें करना व ठट्ठा कर हंसना आदि

अच्छा नहीं लगता तथा पोझकुज को लगने लगता हैं कि उसने दिल्ली में आकर अच्छा नही किया अतः उसी रोज वह वापिस श्रीनगर जाने का फैसला कर लेती है। कथा मनोवैज्ञानिक धरातल पर अति सहज भाव से लिखी गई है कहीं पर कोई चमत्कार नहीं, चौंकाने वाली बात नहीं कहानीकार ने बहुत सहज ढंग से बड़ी सशक्त बात कही है।

इसी प्रकार 'बर्फ' कहानी में मात्र एक वाक्य के माध्यम से कहानीकार ने बहुत कुछ कह दिया है:

'तीसरा कौन' मैने हैरान होकर पूछा—"पिता जी तो मेरे पैदा होने के पहले ही।"

मां मुस्कराई—"तुम्हारा पिता पहले भी नहीं था और अब भी नहीं है। मगर वह तीसरा पहले था अब नहीं रहा।"

कहानीकार किसी शिल्प विशेष की लीक से बंधा नहीं है। जहां एक ओर सीधी—सहज और सरल अभिव्यक्ति हुई है वहीं पर अनेक कहानियों में संकेतो, प्रतीकों और फंतासियों के माध्यम से भी अपनी बात कहानीकार ने कही है और खूब कही है। 'बर्फ' कहानी में एक दुःस्वप्न अथवा फंतासी के माध्यम से अपने बासंती आंगन से टूटकर रेगीस्तानी जजीरे में चिलचिलाती धूप में लुढ़कना मात्र भौगोलिक् नहीं है अपितु मानसिक वह दूरी है जिसे पाट पाने मे पात्र असमर्थ हैं :

"मैं और मां दोनो फिसल गए और सारी रात फिसलते रहे। फिसलते ही हमने जाने कितने पर्वत शिखरों को, चहेती घाटियों को, गूढ़ घने वनों को, टेढ़ी बल खाती नदियों को, लम्बी सुरंगों को, पतली पगडण्डियों और खुले मैदानों को पार किया।"

ये परिवेश से जुड़ी यादें हैं जो बार बार कहानीकार के मानस—पटल पर उभरती हैं और उनसे अलगाने का दर्द उन सभी का सांझा दर्द जो कश्मीर से, अपने घर से विस्थापित हो गए हैं। इस प्रकार हम दखते हैं कि कहानीकार फंतासी, संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहने में पूरी तरह समर्थ है।

'संदेश' कहानी में बाबा की मृत्यु पर उसका संदेश पहुंचाने उनके अनुजों के घर जाता तो है पर झिझक वश कुछ कह नहीं पाता। वह बाबा की तस्वीर को एक माला बनाकर पहना देता है—बात मुंह से न कहकर संकेत द्वारा मृत्यु की घोषणा।

अपनी बात कम से कम शब्दों में कहने और उसे स्थापित करने की सामर्थ्य बिरलों में ही होती है। हरिकृष्ण कौल इसमें सिद्धहस्त हैं इसमें कोई संदेह नहीं:

"बाबा अमर हैं। मैंने "अमर" शब्द पर इस विश्वास के साथ जोर देते हुए कहा कि मेरी तरह वह भी भलीभांति जानता होगा कि जो सही सलामत है उन्हें कभी अमर नहीं कहा जा सकता।"

हरिकृष्ण कौल की अच्छी कहानियों में 'वर्फ', 'टोकरी भर धूप',कर्फ्यु ' आदि ली जा सकतीं हैं।

ओम गोस्वामी: ओम गोस्वामी इस प्रदेश के ही नही राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त कहानीकार हैं। डोगरी और हिन्दी दोनों भाषाओं में समानान्तर रूप से लिखते रहे हैं। इनकी कहानियां देश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि में स्थान पातीं रहीं है। शीराजा (डोगरी और हिन्दी) का वर्षो सम्पादन करने के बाद सम्प्रति मुख्य सम्पादक डिक्शनरी प्रोजेक्ट के रूप में कल्चर अकादमी में कार्यरत।

ओम गोस्वामी कृत तीन हिन्दी कहानी संग्रह निर्वासित, बारह कहानियां तथा सर्द आग प्रकाशित हो चुकें हैं। इनके इलावा बीसिओं कहानियां विभिन्न पत्रिकाओं में स्थान पाती रहीं हैं। सारिका में कमलेश्वर द्वारा चलाए गए 'समान्तर कहानी' आंदोलन के साथ भी वर्षो जुड़े रहे पर बाद में समान्तर आंदोलन से मोहभंग हो जाने पर प्रतिबद्धता डगमगाने लगी और तथाकथित दूसरे साहित्य की ओर उन्मुख हो आए। इनके कथ्य और शिल्प के विश्लेषण के लिए इनके द्वारा लिखित कहानी संग्रहों के साथ साथ गोस्वामी कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों का अध्ययन जरूरी हो जाता है।

निर्वासित: यह 74 पृष्ठीय कहानी संग्रह 1974 में प्रकाशित होकर सामने आया। इसमें कुल नौ कहानियाँ संकलित हैं। प्रथम कहानी ' समाजवाद' में व्यंग्य और कटाक्ष के माध्यम से अपनी बात कही गई है। होस्टल में नए छात्रों की रैगिंग हो रही है। बदमाश और शैतान लोग नए छात्रों को तंग कर रहे हैं कि अचानक एक पतला दुबला लड़का उनके संरक्षण के लिए आगे आता है– बदमाश लड़के उसे दबोचना ही चाहते हैं कि पता चलता है कि वह 'जनतादास मिनिस्टर का सगा भतीजा' था चुनाचे सभी की हवा निकल गई, और उस भतीजे की तूती होस्टल में बोलने लगी। वह शहजादे का वक्तव्य कि, "कुत्तों में भी अब समाजवाद चला आया है। वह दिन दूर नहीं, जब कुत्तों द्वारा काटे गए व्यक्तियों के रास्ते, मानव समाज में भी यह फैल जाएगा........" समाजवाद पर सशक्त व्यंग्य हैं।

'बुर्जुआ' कहानी में एक भिखारी की डकैती पर समाज के तथाकथित सम्भ्रात घटक इसके लिए जिम्मेदार कालू को मज़ा चखाने की बात कहते हैं। फिर वही लोग एक भिखारी की सड़ती हुई लाश की अनदेखी करते हुए तटस्थ रहते हैं तो कालू कहीं से अचानक आ धमकता है और उसको कफन के टुकड़े से ढक देता है। कालू को सभी दबोच लेते हैं और मारते मारते अधमरा कर देते हैं । लाश पर शून्यता पसर जाती है।. ...." मुझे लगता है क्रांति आते आते रह गई" लेखक के ये शब्द नपुंसक समाज की ओर संकेत करते हैं।

'फरिश्ते की मौत' कहानी लेखक की व्यथा कथा है जो कहानी लेखन से अपना गुजर नहीं कर पाता और अंधेरे का आदी हो जाता है क्योंकि रोशन समाज उसे चरमराता हुआ लगता है उसका रोशनी में बाहर निकलना उसे उचक्का बना देता है। और बिडम्बना देखो कि वह जिस मनीआर्डर की प्रतीक्षा में था वह उसकी मृत्यु के बाद पहुंचता है जिसे उसका मालिक मकान हड़प लेता है और उसकी कोठरी में पड़ी उसकी पाण्डुलिपियों से बनी रद्दी को भी बेचकर कहानीकार के किराए में बचे पैसे निकालना चाहता है। सांकेतिक भाषा में, व्यग्यों के सहारे लिखी गई कहानी कटाक्ष के साथ सम्पन्न होती है: "राजनेता की शोभायात्रा में एक मरा हुआ फरिश्ता भी शामिल था।"

"निर्वासित" कहानी में भी वही भाषा का पैनापन है। दो कोढ़ी, एक गौरा और दूसरा काला निर्वासित से भीख मांग कर गुजर करते हैं पर दोनों में नस्ल अलगाव भरा पड़ा है।श्वेतांग को यह गवारा नहीं कि नीग्रो को भी इतनी ही खैरात मिले जितनी उसे मिलती है। भिखमंगा होने पर श्वेतांग अपने को नीग्रो से श्रेष्ठ मानता है। 'जौंक' एक गरीब की कहानी है जो भूख का मारा किसी तरह घर जाने के लिए बस पकड़ता है कि उस पर पर्स उठाने का इलजाम जगा दिया जाता है—जामा तलाशी कराते कराते उसे गाड़ी में ही हाजत हो जाती है तो जामा तलाशी करने वाले सब भाग उठते हैं।

'व्यक्ति' नियति से लड़ते एक महत्वाकांक्षी नौकर की कहानी है जो बड़ा बनने के स्वप्न देखता नियति से लड़ता नौकर का नौकर रहता है 'रामराज्य' में मंत्रियों, राजनेताओं तथा उनके चमचों का कच्चा चिट्ठा खोला गया है कि किस तरह बाढ़ के चंदे से वे अपना उल्लू सीधा करते हैं। 'मुक्तिदूत' में पल पल रंग बदलते नेता रूपी मुक्तिदूत की बात दंतकथा' शैली में कही गई है। 'नन्हा सीताराम" में लालाओं पर गहरा प्रहार है जो अनेक हथकण्डे अपनाकर अपनी तिजोरियां भरते हैं।

उपर्युक्त अधिकांश कहानियां डोगरी में प्रकाशित हो चुकी हैं।

बारह कहानियां: ओम गोस्वामी कृत 'बारह कहानियां' कहानी संग्रह 1981 में प्रकाशित होकर सामने आया। लगभग सभी कहानियों का विषय आर्थिक और सामाजिक शोषण है। आम आदमी पिसता जा रहा है और अपनी अस्मिता को बचाने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं। पहली कहानी में गांव के मियां के ताने से भागा भोला किसान पन्द्रह वर्षो बाद लौटता है और पाता है कि उसकी पत्नी उसी मियां के यहां बैठ गई हैं और उसके बच्चे मियां को ही अपना पिता कहते है। दूसरी कहानी अपनी भौतिक उन्नति के लिए अपनी स्त्री को भी दांव पर लगा देने वाले नादिया जैसे चरित्र हैं जिसका बॉस श्रीमती नादिया को रखैल बनाए रखे है। तीसरी कहानी अपने मर्दो से असन्तुष्ट दो महिलाओं की कहानी है जो अपनी हवस पूरी करने के लिए जगह जगह मुंह मारती

हैं और इस सारी प्रक्रिया में 'हियरआर्की' अर्थात छोटी से बड़ी मछली तक पहुंचती खुराक की दास्तां छिपी है। चौथी कहानी में शाह और पंडितों द्वारा किए जा रहे गरीब किसानों मजदूरों के शोषण की व्यथा कथा है जो उधार के बदले शादी की पहली रात लव्यु से मांग लेते हैं और मजबूरन उसे हां करनी पड़ती है। पांचवी कहानी एक सफाईवाली की दारुण कथा है। उसका पति बूढ़ा हो आया है, काम पर नहीं जा सकता तो उसे सेनीटरी इन्सपेक्टर को खुश कर उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। छठी कहानी पाकिस्तानी परिवेश की है। युद्ध में अशरफ कैद कर लिया जाता है और उसकी पत्नी बेगमां तथा बच्चे बुरी तरह प्रभावित होते हैं और उस परिवार से सहानुभूति जितलाने में आगे काले खां दो साथियों सहित एक रोज़ घर में बेगमां को न पाकर उसकी जवान लड़की सकीना से बलात्कार कर उसे मरने पर आमादा कर देता है। सांतवी कहानी में युवा नेता को खुश करने के लिए शोषित कुतु की युवा बहन को बुलावा भेजा जाता है पर कुतु इन्कार कर देता है परिणामस्वरूप उसे अपनी औरत, बहन और अपनी जान देकर इसका मूल्य चुकाना पड़ता है।

आठवीं कहानी प्रतीकात्मक है सियारों और भेड़ियों और शोषक वर्ग के माध्यम से आम आदमी की बात कही गई है। नौवीं कहानी में जवान होती अपनी बिटिया की शादी से चिंतातुर शर्मा आर्थिक सहायता के लिए अपने परिचित गुप्ता के यहां जाते हैं जहां वह अपनी कोठी बनवा रहे हैं पर गुप्ता इमारत बनाने में आने वाली दिक्कतों और पैसे की जरूरत पर बात करते हैं कि शर्मा हां हूँ कर लौट आते हैं।

दसवीं और ग्यारहवीं कहानियां साधारण कहानियाँ हैं जिनमें बेकारी के दिन, आर्थिक अभाव और लेखकीय दम्भ भरते तथाकथित लेखकों पर प्रहार भी किया गया है। बारहवीं कहानी में भ्रष्टाचार से लिप्त व्यवस्था पर प्रहार किया गया है।

सर्द आग : ओम गोस्वामी कृत तीसरा हिन्दी कहानी संग्रह 'सर्द आग' 1983 में प्रकाशित होकर सामने आया। यह नौ कहानियों का संग्रह है। इस संग्रह के कथ्य का विषय निश्चय ही बदला है और शिल्प में भी प्रौढ़ता आई है। 'अजगर' कहानी में मुख्य कथा तो भिखमंगे और उसके नाग देवता की है पर अनेक उपकथाएं साथ साथ चलती हुई वर्ग विषमता के कगार पर पहुंचती हैं। 'स्मृति–भवंर' निर्मल वर्मा की शैली में लिखी कहानी है जिसमें मुख्यपात्र एक तपेदिक की मरीज से स्नेह करने लगता है जो उस नगर से जब जाती है तो उसे उसकी प्रतीक्षा रहती है पर वह फिर कभी लौटकर नहीं आती। 'ड्राक्यूला' तिल तिलकर मरती एक ऐसी लड़की की कहानी है जो शादी की प्रतीक्षा में अपने आपको बुढ़ाया महसूस करती है माने हर किसी की शादी हो जाएगी और वह कुवांरी ही रह जाएगी। उससे कोई लड़का प्यार भी नहीं करता। 'भीगी मिट्टी,' परिवार में बनी सीमा रेखा की कहानी है जिसने हिन्दोस्तान और पाकिस्तान को विभाजित

कर रखा है। जग्गा पाकिस्तान में रह गया था जहाँ उसने धर्म बदलकर अपना परिवार बना लिया है। मुद्दत के बाद वह अपने पैतृक गांव में आता है और अपने परिवार में सज्जनों और गांव के परिवेश को देखकर उसे कोई खुशी नहीं होती।

'हड़ताल' में मजदूर वर्ग की मजबूरियां और राजनितिक स्थितियों से उभरते समाज की चरमराती तस्वीर के ब्योरे हैं। 'खिलौना' में गूंगे सांईदास की व्यथाकथा है जो उस दिन की प्रतीक्षा में था कि कभी तो उसकी शादी होगी परन्तु जब उसका मोहभंग हो जाता है तो वह टूट जाता है। 'सर्द आग' में सीमा पार से आए एक चरित्र की कहानी है जो गलतफहमी वश सीमा के इस गांव में पकड़ लिया जाता है। शुरू शुरू में उसकी धुनाई होती है बाद में पूरे बाजे गाजे के साथ उसकी विदाई। 'चीड़' में मीता नामक ऐसे चरित्र की कहानी है जो अनेक मर्दों की गोद गर्म कर चुकी है पर अंत में उसे एक ऐसे मर्द की तलाश है जो उसे नीड़ बनाकर दे सके पर अंतिम आशा भी टूट जाती है। 'जिम्नोस्पर्म्स' सुमन की ओर आकर्षित मुख्यपात्र की कथा यात्रा के विभिन्न मुकामों का उल्लेख है।

हम देखते है। कि रफ्ता.रफ्ता इन कहानियों के माध्यम से कहानीकार की सोच, कथ्य और शिल्प में विकास हुआ है। निर्वासित की कहानियों में किसान मजदूर और गांव के आम व्यक्ति, छात्र और लेखक सभी या तो आर्थिक अभाव के साथ दोचीदा हैं या सामाजिक वर्जनाओं से पीड़ित और इन सभी में अहम् की एक फांक समान्तर रूप से फंसी है। चाहे वह समाजवाद का शहज़ादा है ,बुर्जुआ का कालू है या फरिश्ते का लेखक, निवार्सित का **श्वेतांग** या व्यक्ति का मुख्यपात्र सभी को अपने अस्तित्व की तलाश है। ये छोटी छोटी कहानियां अक्सर अंत में जाकर जैसे एक निचोड़ छोड़ जाती हैं जो सशक्त वाक्य के रूप में अपना प्रभाव छोड़ जाती हैं 'समाजवाद' में कुत्तों के माध्यम से इन्सान तक समाजवाद का पहुंचना बुर्जुआ में क्रांति आते आते रह जाना, 'फरिश्ते की मौत' में राजनेता की शोभायात्रा के साथ एक मरे हुए फरिश्ते का होना, निर्वासित मे नीग्रो की कुटिया के बाहर 'आओ हम अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे की बात करें,' लिखा होना 'रामराज्य' में मंत्री जी प्रतीक्षा में है कि कब बाढ़ आए और वे............'मुक्तिदूत' में आनन्द का बुद्ध से प्रश्न कि भावी भारत में कहीं यह नेता नामक प्राणी तो नहीं– ये सभी वक्तव्य, प्रश्न और तीखे प्रहार व्यंग्य का पुट लिए हुए हैं और कहानी को स्थापित करते दीखते हैं।

दूसरे दौर की कहानियों में ज़िन्दगी की तल्खियों से रचनाकार के पुख्ता टकराव और विरोध में सही आक्रोश की बात उभरती दिखाई देती है। पहली सात कहानियां नारी के शोषण की जीती जागती तस्वीरें हैं चाहे वह गृहणी हो, गरीब की बहन हो या कैद हो गए सैनिक की जवान बेटी हो, एक तरह से सभी के साथ सामाजिक दीर्घाओं में बलात्कार होता दिखाया गया है, जर्बदस्ती से या मजबूर किया जाता है। इस के लिए

गांव के शाहुकार, जमींदार, राजनेता, अफसर, उपनगरों और नगरों के गुण्डा तत्त्व सभी जिम्मेदार है और सबसे बड़ी मजबूरी है आंर्थिक अभाव की। चौथी कहानी में लव्यु का कहना कि "हमने लीलो की शादी के वास्ते जब गांव के शाह से पैसा उधार लिया था तो उसने पहले जुवान ले ली थी कि शादी की पहली रात उसकी होगी.......फिर जमानत देने वाले खजूरिया पुरोहित ने दूसरी रात मांग ली थी" इस ओर संकेत करता है। दूसरी बात जो इन कहानियों में उभरती है वह है वर्ग विषमता और व्यवस्था के कारिन्दों का घिनौना रूप। सांतवी कहानी में युवा नेता को खुश करने के लिए उसके चमचे गरीब कुतु की बहन को लेने आते हैं पर जब वह इन्कार कर देता है तो उस की पत्नी, उसकी बहन और स्वयं कुतु को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है। उसे इस इलजाम में गिरफ्तार किया जाता है कि वह सी.आई.ए. का एजेंट है। लब्बू के बचपन में यज्ञोपवीत पहनने की बात पर "एक पंडित ने हंसिया आग में सुर्ख करके उसकी पुश्त को हमारी देह पर फेरकर जनेऊ का नक्शा छाप दिया।" इतनी बड़ी सज़ा इस बात की साक्षी है कि गावों में अभी भी वर्गों में संघर्ष चल रहा है।

तीसरे दौर की कहानियों में एक बात बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की जाती है कि अब समष्टि से वैयक्तिक चिन्तन और व्यक्ति में हो रहे परिवेशगत परिवर्तन के साथ साथ वैयक्तिक सम्बंधों की पहचान और उनके विश्लेषण की बात कहानीकार की रचनाओं में उभरने लगी थी। कहानीकार उम्र के इस मोड़ पर आकर महसूस करता है कि आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दुःख, दर्द, पीड़ा के साथ साथ व्यक्ति की अपनी भी एक "ईकाई होती है जो समाज से ज्यादा किलष्ट और पैनी है इस ईकाई का प्रभाव उसके चरित्र पर मनोवैज्ञानिक होता है।" कभी रचनाकार इसे नकारता रहा है। और इसे दूसरे दर्जे के साहित्य से अभिहित करता रहा है—जिसमें ...."पात्र या चरित्र की व्यक्तिगत समस्याओं को उकेरा जाता है।" —पर परिपक्व होकर इसी ओर लौटना रचनाकार के इस वक्तव्य को ग़लत साबित करता है। "सर्द आग" संग्रह की कहानियां कहानीकार की सब से सशक्त कहानियां है। 'स्मृतिभंवर,' 'ड्राक्युला' और 'नीड़' विशेष रूप से उद्धृत की जा सकती हैं जिनमें वैयक्तिक कुष्ठाओं का सटीक विश्लेषण हमें मिलता है। रचनाकार निश्चय ही इन कहानियों के माध्यम से शिल्प और कथ्य की दृष्टि से मंजा हुआ दिखता है।

इन कहानियों में जम्मू का परिवेश खूब उभरा है। इसके गली मुहल्ले, भौगोलिक स्थितियां और इनसे जुड़े मानवीय सम्बन्धों के ख़ाके उभरते चले जाते हैं।

ओम गोस्वामी की भाषा पर गहरी पकड़ है और अक्सर छोटे छोटे वाक्यों द्वारा व्यंग्यवाण भाषा रूपी तुणीर में से निकलते अपने निशाने पर ठीक बैठते हैं। 'नन्हा सीताराम' में जब सीता राम पढ़ता है कि उस ज़माने में धोखा धड़ी करने वालों को सख्त

सजायें दी जाती थीं तो सेठजी को लगता है कि उनके हाथ पैर काट दिए गए हों। सेठ सीताराम पर खीझने लगता है कि यह कैसी पढाई है। निर्वासित संग्रह की प्रस्तावना में ओम गोस्वामी के इस ओर संकेत बड़े पुख्ता हैं "श्री 'अमुक' फौलाद के कारखाने का उद्‌घाटन करते हुए........और कारखाने से फौलाद की जगह औलाद निकलने लगती है। "एक बहुत बड़ा कटाक्ष है।

ओ0पी0शर्मा सारथी: इस प्रदेश के कुछ कहानीकार और लेखक अनेक भाषाओं में एक साथ रचना कर रहे हैं। दो भाषाओं के साथ जुड़े तो अनेक लेखक हैं– डोगरी–हिन्दी, कश्मीरी–हिन्दी, पंजाबी–हिन्दी, उर्दू–हिन्दी ऐसे अनेक मेल मिलते हैं पर डोगरी, पंजाबी, उर्दू और हिन्दी में एक साथ लिखने और वह भी थोक के भाव से, केवल सारथी ही है। ओ0पी0 शर्मा सारथी की कहानियां स्थानीय पात्र –पत्रिकाओं तथा संकलनों में प्रकाशित होती रहती हैं। 'देवदार की छाया तले' संकलन में इनकी लिखी कहानी 'सड़क की यातना' चर्चित कहानी है। ओ0पी0शर्मा प्रतीकात्मक शैली के रचनाकार हैं और बहुधा अपने वजूद की तलाश में रहते हैं जो सूना सा लगता है। समस्त पाठकों को इनकी रचनाओं में अतिशय बिखरांव लगेगा परन्तु अनुभवी और अध्ययन –शील पाठक इनकी रचनाओं में प्रतीकात्मक शैल को पकड़ पाने में सफल हो जाएगा। अक्सरं बहुत क्लिष्ठ प्रतीक कहीं कहीं गड़मड़ होकर अभूर्त स्थितियों को जन्म देते हैं और रचना 'एब्सर्ड' रुप धारण कर लेती है। अभी इनकी कहानियों के आकलन की जरूरत है।

छत्रपाल : डोगरी और हिन्दी कहानी के हस्ताक्षार छत्रपाल का जन्म 1949 में हुआ। जम्मू से ही बी.एस.सी. करने के बाद आकाशवाणी के जम्मू केन्द्र में डोगरी के समाचार वाचक के पद पर नियुक्त हुए। छत्रपाल की अनेक कहानियां देश की हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं इनमें धर्म युग, साप्ताहिक , शीराज़ा, योजना आदि प्रमुख हैं। इनकी अनेक कहानियों का अनुवाद भारत की अनेक भाषाओं में हो चुका है।

छत्रपाल की कहानियों में मनोवैज्ञानिक धरातल पर मानवीय मूल्यों का विश्लेषण ही नहीं अपितु बनते, टूटते रिश्तों का यथार्थ चित्रण भी हुआ है। इन कहानियों के पात्र जीवंत पात्र हैं अपने सही रूप में व्यवहारिक अच्छाइयां बुराईयां लिए हुए। घटनाएं मानवीय धरातल पर घटती हैं, कहीं नाटकीयता नहीं अपितु कथाधारा अति सहज रूप से चलती है। भाषा की प्रौढ़ता का इससे ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि कहीं पर भी ब्योरे कहानी में नहीं लगते अपितु जीवन धारा का अनिवार्य अंग प्रतीत होते हैं। छत्रपाल द्वारा रचित कहानियों का एक संग्रह 'रोशनी से दूर' 1982 में प्रकाशित होकर सामने आया। इस 120 पृष्ठीय संग्रह में कुल नौ कहानियां संकलित हैं। इस संग्रह की प्रथम कहानी 'रोशनी से दूर' एक सशक्त रचना है जिसमें लेखक की आत्म व्यथा पाठकों के मर्म को छू लेती है। मुख्य पात्र विकलांग है जिसे एक बस पर यात्रा करते एक प्रौढ़

व्यक्ति बहुत सहानभूति पूर्व उससे इस पीड़ाजनक स्थिति के बारे में पूछता है और फिर अपने बेटे की दुःखद कथा उसे बताता है जो इस दुःखद स्थिति में से होकर गुजर रहा है। उसकी दोनों टांगें बेकार हो गई हैं। एक अन्य दिन वह व्यक्ति मुख्य पात्र को अपने घर ले जाता है ताकि वह वहां जाकर रुग्न पड़े बच्चे का साहस बढ़ाए। पर वहां जाकर मुख्य पात्र को अपने विकलांग होने की व्यथा यात्रा को भोगना पड़ा। एक एक कर बीती दुःखद घटनाएं मुख्यपात्र के आगे से गुजर जातीं हैं। वहां से वापिसी पर उसकी खिन्नता रोशनी में अंधेरे की सुरंग बन गई थी। दूसरी कहानी 'जंगल की आग' में एक नन्हीं लड़की की दुःखद दास्तां है जिसके पिता जंगलों के ठेके लेते थे और रईसों की तरह जीवन व्यतीत करते थे पर अचानक एक दिन जंगल में आग लग जाती है और सब कुछ जलकर राख हो जाता है। परिवार की आशाएं आकाक्षांएं सभी ढह जाती हैं जहां तक कि होस्टल में रह रही अपनी एक मात्र बेटी के लिए वे फीस भी मुहैया नहीं कर पाते। और बेटी छुट्टियों में न ही घर आना चाहती है न ही होस्टल में रहना चाहती है–" पापा, कुछ दिनों में छुट्टियां हो रही हैं। मैं न तो घर आना चाहती हूँ और न ही होस्टल में रहना चाहती हूँ। इस स्थिति में मुझे कब तक रहना है।" —*पृ.36*

तीसरी कहानी 'गांठदार धागे' एक महिला की मनौवैज्ञानिक विश्लेषण की कहानी है जिसका पति एक दुर्घटना के कारण मृत्यु को प्राप्त होता है पर उस महिला की छोटी बहन और मां चाहती हैं कि वह उसे चाहने वाले रवि से बंध जाए। वह अपने मृत पति की यादों और रवि के बीच झूलती रहती है। वह रवि को चाहती है पर नैतिक धरातल पर अपने मृत पति के साथ जुड़ी है अतः उसी द्वन्द्व में अपने आप को तोड़ती जोड़ती अन्ततः यह ही फैसला करती है कि नैतिक तौर पर वह अपने पति से ज्यादा जुड़ी है और बावजूद रवि के आकर्षण के वह उसके साथ अपने आप को जोड़ नहीं सकती। कहानी मार्मिक है और इस सोच पर पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है कि नैतिक और यथार्थ के धरातल पर हम नैतिकता से अधिक जुड़े हैं।

इस संग्रह की चौथी कहानी 'टापू का आदमी' भी एक व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक कहानी है वह गांव के सरपंच के लिए चुनाव लड़ता है पर हार जाता है जिसका उसे इतना धक्का लगता है कि वह पहले तो अपने आगे पीछे एक मोमजामी घेरा बना लेता है और किसी से कोई बात नहीं करता और एक रोज़ घर से भाग जाता है। परिवार के लोग अथक प्रतीक्षारत रहते हैं और वर्षों बाद वह घर लौटता है पर तब तक उसका बेटा उस टापू में कैद हो जाता है जिस टापू में वह स्वयं था अर्थात हर ओर से तटस्थ हो जाता है।

'पिघला हुआ गुस्सा' एक बेबस और अवश किरदार की कहानी है जो अपने समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है। वह पत्नीटाप में एक सरदार जी के ढाबे में नौकर

है जहां ट्रक रुकते हैं ड्राइवर और कलीनर मुंह हाथ धोकर खाना खाते हैं और परमें को उनकी जूठन खानी पड़ती है। घर में उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी से तीन लोगों ने बलात्कार कर डाला परिणामस्वरूप पत्नी को बच्चा ठहर गया था। वह उसे बहुत प्यार करता है पर अब वह उसके लिए अजनबी हो आई है वह अपना गुस्सा चीड़ के वृक्षों पर रास्ते में पड़े पत्थरों और फिर अपने आप पर निकालता है। आम आदमी की व्यथा कथा का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण इस कहानी में हुआ है।

अशोक जेरथः 1946 में जन्मे अशोक जेरथ छात्रकाल से ही साहित्य के प्रति उन्मुख रहे हैं। बी0एस0सी0 करते हुए साईंस कालेज की पत्रिका 'द तवी' की डोगरी सैक्शन और बाद में बी0एड0 करते हुए कालेज के प्रकाशन के प्रवेशांक 'द टीचर' के हिन्दी सम्पादक के तौर पर भी कार्यरत रहे हैं। एम0ए0अंग्रेजी व हिन्दी जम्मू विश्वविद्यालय से करने के बाद वहीं से शोधकार्य भी सम्पन्न किया। दो कहानी संग्रह और दो सम्पादित कहानी संकलनों के साथ साथ जेरथ की कम से कम पचास कहानियां विभिन्न पत्रिकाओं और पत्रों के साहित्यिक संस्करणों में प्रकाशित हो चुकीं हैं जिनमें से मुख्य हैं साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मधुमती, हिमप्रस्थ, जागृति, हरियाणा संवाद, पंजाब सौरभ, योजना, श्रृतुचक्र, उत्तरप्रदेश, शीराज़ा, हमारा साहित्य आदि और अमर उजाला, स्वतंत्र भारत, दैनिक जागरण, नवभारत टाईम्स, दैनिक ट्रिब्यून, आज,आदि समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणों में भी इनकी रचनाएं प्रकाशित हुईं हैं।

चेरी के फूलः अशोक जेरथ द्वारा रचित संग्रह चेरी के फूल में तरह कहानियां संग्रहित हैं। अधिकांश कहानियां उपर्युक्त पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकीं हैं।

प्रथम कहानी 'शालवीथी के घेरों में' एक अध्यापक की भूमिका है। स्थानान्तरण हो जाने पर भी एक फांक सी अटकी रहती है कि वह घर जाए कि नहीं। विदाई के क्षण उसके लिए और छात्रों तथा साथियों के लिए बड़े मार्मिक क्षण होते हैं वह चाहकर भी कुछ निश्चित नहीं कर पाता।

'धुंधवाते देवदार' में मुख्य पात्र एक अजनबी रोगी के रूप में एक सैनीटोरियम प्रवेश पाता है और लेडी डाक्टर को लगता है कि वह उसके प्रति अंतःचेतना से आकर्षित है। एक पहचान सी उनमें व्याप्त हो जाती है। एक रात, जब बर्फ पढ़ रही होती है कि वह अचानक बाहर जाकर बर्फ में गुम हो जाता है तो उसे लगने लगता है कि जिसे वह वर्षों तक नकारती रही है उसे स्वीकारने के लिए मजबूर हो आई है।

'समाप्ति से पहले' कैन्सर पीड़ित लड़की की कहानी है पर उस लड़की को अपने इस असाध्य रोग के बारे में कुछ नहीं बताया जाता वह बड़ी हैरान है कि उसकी मां हर समय उसे आर्द्र दृष्टि से क्यों देखती है। वहीं पर मेहमान के तौर पर एक लड़का आता है जिसके साथ वह स्नेह करने लगती है। जब लड़के के जाने का समय आता है तो

वह उसे कातर भरी दृष्टि से देखती है तो लड़का अपना सामान फिर से खोल देता है।

'कितने हाथ' अनुभूतियों के धरातल पर बुनी हुई कहानी है कि मुख्य पात्र वर्षों बाद उस महिला से मिलता है जिसे वह कभी अपनाना चाहता था पर स्थितियां इस तरह बदलीं कि वर्षों तक वह उसे मिल नहीं सका कि अचानक उस रोज़ उसे पता चलता है कि उसकी तो शादी हो गई है वह अपने को अजनबी समझने लगता है। उसके और अपने बीच दो हाथ की दूरी को वह मानसिक तौर पर मीलों की दूरी समझता है और अपने को उससे काट लेता है।

'कांटे' और 'चेरी के फूल' विभिन्न धरातलों पर सम्बधों को तलाशतीं प्रतीकात्मक कहानियां हैं।

'अपराजेय' इस संग्रह की एक ऐसी कहानी है जो आंचलिक धरातल पर बुनी गई है। मास्टर और पहाड़ी गांव के एक निपट पंचू की आपस में मित्रता हो जाती है। पंचू अनपढ़ होने के बावजूद मास्टर को बड़ी अद्भुत कहानियां सुनाता है और उसे उकसाता है कि वह भी ऐसी कहानियां लिखे। पंचू बहुत गरीब है लेकिन कार्य के प्रति अति उत्साही। वह बरसातों में एक पुराने 'घराट' (पनचक्की) को ठीक करके नया बनाता है और आटा चावल पीसने का काम शुरू कर देता है। इसमें उसके अनेक रिशतेदार भी पैसे से उसकी सहायता करते हैं। एक रोज़ बड़ी वर्षा पड़ती है सुबह मास्टर देखता है कि घराट पानी से नष्ट हो चुका है और पंचु अपना माथा थामे उसके पास ही बैठा है। वह उसे सांत्वना देने के लिए उसके कंधे पर हाथ रखता है तो वह चिहुंक पड़ता है और तुरन्त अपने होंठों पर मुस्कुराहट लाकर उसे कहता है कि वह इस मुद्दे पर कुछ नहीं कहेगा। क्या हुआ घराट नहीं रहा तो वह इसे फिर खड़ा करेगा और फिर से इसकी चक्की चलेगी तो मास्टर हैरान सा उसे देखता रहता है।

इन कहानियों के कथानक आम जिन्दगी से लिए गए हैं और भाषा कथानक के अनुकूल ही सहज है ऐसे ही कुछ सकेत उनकी कहानियों के बारे मे प्ररव्यात कहानीकार निर्मल वर्मा किए हैं :

"पिछले दिनों मैं बहुत ध्यान से आपकी कहानियां पढ़ता रहा। आपकी भाषा में जो सादगी और भावप्रवणता है, वह मुझे बहुत अच्छी लगी। इन सीधी सादी कहानियों में कोई बनावटी चौंकाने वाली बात नहीं है। अपने में इन कहानियों की यही शक्ति है।"

रचनाकार का दूसरा कहानी संग्रह 1989 में ***'अनजाने क्षितिज'*** नाम से प्रकाशित होकर सामने आया। दस कहानियों के संग्रह में 'अंतराल', 'बीते दिन', 'घरौंदा', 'नए क्षितिज की ओर' आदि कहानियां पुख्ता धरातल पर टिकीं यथार्थपरक स्थितियों में बुने गए ताने बाने पर मनोवैज्ञानिक चेतना लिए हुए हैं।

'अंतराल' कहानी में मुख्यपात्र एक पाश्चात्य महिला से जुड़ता है और दोनों में एक पहचान स्थापित हो जाती है। युलरीक भारतीय रिश्तों की मीमांसा से अति प्रभावित होती है। उसके अनुसार वे तो डिग्रियों में जीते हैं, इस तरह पूर्णत्व में जीना उसने कभी सोचा ही नहीं। वर्षों बाद जब मुख्य पात्र युलरीक को स्मरण करता है तो उसे युलरीक द्वारा दिए गए रिश्तों की मीमांसा याद आने लगती है।

'बीते दिन' कहानी में मुख्यपात्र अपने परिवेश से कटा,दूर शिलांग में, स्मृतियों के माध्यम से अपने अंतर में बैठे भावप्रवण क्षणों को एक एक कर टुकड़ों में सहेजता है। उसे लगता है कि जितना वह अपने परिवेश से कट कर दूर भागना चाहता है उतना ही उसके साथ जुड़ जाता है:

"वह भागा था अपने से, उससे, अपने परिवेश से पर क्या वह अपने को मुक्त कर पाया.........उसे लगता कि हज़ारों मील की दूरी पर वह और शिद्दत से अपने परिवेश से जुड़ गया है :

'एक दुनिया' मायूस बूढ़े इन्सान की कहानी है जो अपने घर से विस्थापित हो चुका है और यहां बहुत अकेला पड़ गया है।:

"उम्र के किसी मोड़ पर सही तरह से जीने के लिए एक साथी की आवश्यकता होने लगती है जिसके साथ व्यतीत को उधेड़कर जिया जा सके। 'घरौंदा' एक और सशक्त रचना कही जा सकती है। नारी की व्यथा यह है कि उसके लिए शादी के बाद, मां बनना एक अनिवार्य शर्त है। मां न बनने के लिए वही उत्तरदाई है चाहे कसूर किसी का भी हो। लम्बड़दारिन मास्टर से वह सहयोग चाहती है जो उसे लम्बड़दार नहीं दे सका। दोनो नैतिकता से बंधे हैं और अनेक तरह के सवाल उन दोनों को छीजने लगते हैं पर बाद में एक समझौता कर लिया जाता है, बिना किसी को सूचित किए पति पत्नी का रिशता कायम हो जाता है, फलस्वरूप लम्बड़दारिन मां बन जाती है। 'नए क्षितिज की ओर' रिशतों के नए धरातल को तलाशती कहानी है। जब तक पात्र नैतिकता से जुड़े रहते हैं अधूरे से विचरते हैं जब नैतिकता का चौला उतारकर यथार्थ के धरातल पर उतरते हैं तो पूर्णत्व के करीब पहुंच जाते हैं। बहुत आत्मीय होकर अधिकार के भाव से दूसरे को देखना रचनाकार के लिए अधूरा जीना है:

"जब हम बहुत 'पौजैसिव' हो जाते है। तो यह अभाव हमें शिद्द दत से काटने लगता है। हर व्यक्ति ड़िग्रियों में जीता है। डिग्रियों में चाहत बिखेरी जाती है और अंशों में इसके सौरभ को ग्रहण किया.जाता है।" *–बीते दिन, पृ0 38*

"अनाम बंधन" कहानी में कहानीकार की सम्बंधों में की गई मीमांसा स्पष्टतः उभरकर सामने आती है–

"यह सीमाओं का बंधन ही व्यक्ति को क्षुधित कर डालता है, तोड़ डालता है और धीरे धीरे वह स्वयं उन सीमाओं में ऐसा फंस जाता है कि अपनी पहचान ही भूल जाता है।"

अनजाने क्षितिज, पृ0 54

'घरौंदा' कहानी का कथानक ही इसका प्रमाण है– जब लम्बडदारिन मां न बन पाने पर कुण्ठित रहती है और यह अभिलाषा उसे नैतिक परीधियों को तोड़ देने के लिए बाध्य करती है।

और 'नए क्षितिज की ओर' कहानी में यूरी का कहना –"जब सौंदर्य के प्रतिमान इन पाषाण मंदिरों की भीत्तियां आप लोगों के लिए इतनी आकर्षक हैं तो जीवित और प्रत्यक्ष सौन्दर्य के प्रति इतनी उदासीनता क्यों" यह वक्तव्य उन्मुक्त और अनाम रिशतों की ओर संकेत करता है।

"चेरी के फूल" की कहानियां अकेलेपन की कहानियां हैं– ऊब, भरे दिन, ठण्डी रातें, किरमिर करती आतीं यादें, सन्नाटों को चीरती परिदों की आवाजें आदि बिम्बों के माध्यम से चुप्पी और अकेलेपन के अहसास को इन कहानियों में पकड़ा जा सकता है। 'एक नई दुनिया' में अंकल का कहना, "हां बिलासपुर दुबारा बसा दिया गया है लेकिन उसमें मेरा घर नहीं है। "उसकी उदासी और बहुत अकेले पड़ गए उसके वजूद की ओर संकेत हैं। इसी कहानी में मुख्यपात्र मौनालाप में कहता दीखता है–

"बहुत कुछ पीछे छोड़ आया हूं– अपने से संघर्ष करती श्रृचा पिछली पत्तझड़ में झड़े पत्तों की चरमराहट और चैन की नींद सोए मृतकों का अहसास।" इसी प्रकार 'बीते दिन' में मुख्य मात्र का मौनालाप, 'घेरे में' मुख्यपात्र का 'निर्वासित सा इन पहाड़ों में घूमना' और हांके का खाली हो जाना और बिना मेमनों के रीता सा दिखना आदि अहसास अकेलेपन को मुखरित कर देते हैं।

इन कहानियों के पात्र आम जिंदगी से जुड़े साधारण लोग हैं, मास्टर, लेखक, पत्रकार, बुद्धिजीवी और निपट अनपढ़ लोग भी हैं।'अपराजेय' में पंचू अनपढ़ है पर मास्टर को वह रोज़ ऐसी अद्भुत कहानियां सुनाता है जिन्हें बहुत अध्ययन के बाद भी उसने कभी नहीं पढ़ा था।

इन कहानियों में रिश्तों की मीमांसा अपने ढंग से की गई है–

"चाहत कभी घसीटी नहीं जा सकती–उसे जीना पड़ता है, भोगना पड़ता है। उसमें सुख भी है और आंशिक दुःख भी और कभी कभी ऐसी स्थितियां भी उभर आतीं हैं जिनमें न दुःख की प्रतीति होती है न सुख की"

–अंतराल, पृ0 4

और चाहत कभी बंधन नहीं चाहती रिशतों की संज्ञा नहीं चाहती

"मैं एक से जुड़ी हूं, दूसरे को चाहती हूं और तीसरे को भोग रही हूँ। तीनों के साथ मेरे सम्बन्ध हैं पर बंधकर नहीं खुलकर। ये सम्बध उन्मुक्त होते हैं बंधकर खोलते अधिक हैं पर यकीनन सन्नद नहीं मांगते।............अनाम रिशतों में जीने का एक अपना सुख है जब चाहा जुड़ गए जब चाहा अजनबी हो आए।"

अंतराल, पृ0 5

दीदार सिंह: आकाशवाणी में वर्षों कार्य करने के बाद दीदार सिंह सम्प्रति दूरदर्शन केन्द्र जालन्धर में सहायक निदेशक के पद पर आसीन हैं। पंजाबी कथाकार के रूप में एक प्रतिष्ठित नाम है और कालान्तर में हिन्दी में भी लिखना शुरू किया ओर अपने आपको स्थापित किया। इनके अब तक दो कहानी संग्रह 'धुंधलके' और 'अनकही' प्रकाशित हो चुके हैं और अनेक कहानियां शीराज़ा, हमारा साहित्य, योजना, डुग्गर समाचार, जागृति आदि में प्रकाशित हो चुकीं हैं।

दीदार सिंह द्वारा रचित कहानियां हल्की फुल्की और सहज ही सम्पन्त होने वाली कहानियां हैं जिन्हें पढ़कर पाठक यह सोचता रहता है कि अभी कहानी खत्म नहीं हुई पर उसे पता ही नहीं चलता कि कब अंतिम पंक्ति पूर्ण विराम में बदल जाती है।

'उसका दर्द' एक ऐसे पात्र की व्यथा कथा है जो अपनों के स्नेह का आकांक्षी है पर वही सब उसे दूसरों से मिलता है जो अपनों से नहीं और अपनों से केवल अपेक्षा ही रहती है। 'फालतू औरत' भी लगभग इसी विषय को छूती हुई एक औरत की कहानी है जो मृत्यु शय्या पर पड़ी है और उसके लड़के तथा बहुएं उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए उसकी जायदाद और पैसों पर अपनी आंख गड़ाए हैं लेकिन वह फिर जी उठती है परिणाम स्वरूप वह फिर दुत्कारी जाती है।

'समझौता' कहानी भी सहज स्थितियों से उभरती हुई समस्या की कहानी है जिसमें मुख्य पात्र सन्यास धर्म अपना लेता है क्योंकि उसकी पत्नी और बाद में उसकी संतान की अकस्मात मृत्यु ने उसे तोड़ कर रख दिया था। अचानक उसका परिचय एक बंगाली से होता है। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए अपने मित्र से वह वचन लेता है कि उसके बाद वह (मुख्य पात्र) बंगाली मित्र की विधवा बहन की देखभाल करेगा लेकिन स्थितियां बहुत तेज़ी से करवट बदलतीं हैं और वह मित्र की बहन को विधवा आश्रम में दाखिल करवाकर चिंतित रहने लगता है कि वह अपने मित्र को दिया हुआ वचन नहीं निभा रहा। लेकिन किसी भी तरह वह उसे अपने जीवन में लाने में समर्थ नहीं पा रहा था कि एक रोज़ सभी संकोचों को एक ओर रखकर वह उससे शादी कर लेता है और एक बार फिर से गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर जाता है।

अनकही संग्रह में इसी शीर्षक की कहानी इन सभी कहानियों में एक अच्छी कहानी कही जा सकती है। जसदीप नाम का पात्र नए घर में किराएदार के तौर पर आता है और आंगण में फूलों की बहार कर देता है। इस आंगन के दूसरी ओर एक और किराएदार, एक लड़की आती है और जसदीप की तरह वह भी अपने वाले आंगण में फूलों की क्यारियां लगाती है और उन दोनों में एक अनचीन्हा सा रिशता कायम हो जाता है। पर जसदीप के मन में एक कुण्ठा घर करने लगती है कि बार बार बगीचे की ओर जाने से कहीं लड़की यह न सोचे कि वह उसे ही देखने के लिए क्यारियों की ओर जाता है अतः जब लड़की बाहर होती है तो वह बाहर न निकलता पर मन ही मन अनेक योजनाएं बनाता रहता कि उसकी क्यारी को ऐर अच्छा करने के लिए वह क्या करे! एक रोज़ उसकी क्यारियों में एक गाय घुस जाती है और उसके बगीचे को तहस नहस कर रही होती है कि लड़की वहां पहुंचकर उस गाय को बाहर निकालती है परिणाम स्वरूप उसके मन में लड़की के प्रति संवेदनाएं जाग उठती हैं और फूलों के पौधे आंगन में दोनो ओर महकने लगते हैं। जसदीप को कई दिन तक लड़की नहीं दिखती और एक दिन वह देखता है कि बड़ी कमजोरी की हालत में वह क्यारियों को पानी दे रही है। वह समझ जाता है कि लड़की बीमार है। वह उसका हाल पूछता है और उसकी क्यारियों को भी पानी देता है पर यह सिलसिला ज्यादा देर नहीं चल पाता। लड़की अपना घर बदल लेती है और वह मन मसोस कर रह जाता है। नए किराएदार फिर आंगन में कोयले के ढेर और लकड़ियां बिखरा देते हैं और जसदीप चुपचाप यह मंज़र देखता रहता है।

इस कहानी में अनेक फूल के पौधों के नाम आए हैं जो इस बात का संकेत है कि कहानीकार इनके बारे में अच्छी जानकारी रखता है और दूसरी बड़ी बात यह है कि फूलों के माध्यम से लेखक ने बहुत सुन्दरता के साथ इन्सानी रिशतों के बनते और टूटते आयामों की ओर संकेत किए हैं। दीदार सिंह की लेखनी में सबसे बड़ी खूबी उनकी सहज अभिव्यक्ति है। मात्र थोड़े से शब्दों में वह अपनी बात कह जाते हैं और किसी भी प्रकार की कोई अतिश्योक्ति उनके बात कहने में दिखाई नहीं देती। छोटी छोटी घटना प्रधान कहानियां कहीं कहीं पर मन को छू लेती हैं पर ऐसा नही लगता कि सायास प्रयास इस ओर किया गया हो।

दीदार सिंह का दूसरा कहानी संग्रह 'धुंधलके' के शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इस कहानी संग्रह की रचनाएं ज्यादातर रोमांस की धारा को लिए हुए हैं लेकिन कुछेक रचनाएं मन के अन्तरतम कोने को छीलकर निकल जातीं हैं। पहाड़ी दृश्य सेनीटोरियम, अनजाने में बनते बिगड़ते रिश्ते आदि कुछेक विषेशताएं इन कहानियों की आंकी जा सकती है। इन कहानियों की भाषा भी सरल और ब्योरे बहुत संक्षिप्त हैं कहीं पर भी यह प्रतीत नहीं होता कि निर्रथक इन ब्योरों को जबरण खींचा गया हो।

संजना कौलः 1956 में श्रीनगर में जन्मी संजना कौल ने हिन्दी में एम0ए0 करने के बाद कुछ समय अनुसंधान व्यस्त रहीं। स्थानीय पत्रिकाओं, नीलज़ा, शीराज़ा और वितस्ता के कथाचरण में कहानियां एवं दूसरी रचनाएं प्रकाशित। संजना कौल पारिवारिक स्थितियों से बड़े साधारण कथानक उठातीं हैं पर इन कथानकों का "ट्रीटमैंट" कुछ सीमा तक मनोवैज्ञानिक होता है और इस सहजता से होता है कि कथा पढ़ने वाले को अपना लगता है। संजना कौल के पास चुस्त भाषा है और वह सटीक शब्दों को चयन कर अपनी बात कहने में न केवल समर्थ हैं अपितु एक सलीका भी है। थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह जाना और ज्यादा ब्योरों को सहज ही समेट लेना उनकी प्रतिभा की ओर संकेत करते हैं।

'भीतरी सन्नाटा': शीराज़ा पूर्णांक 55 में प्रकाशित कहानी में विशाल ललिता और उसके परिवार के सामंती संस्कारों और विशिष्टिता से न केवल कुढ़ता था अपितु मन ही मन कुण्ठित होता रहता था। मध्यवर्गी मानसिकता से घिरा हुआ विशाल ललिता के बहुत चाहने पर भी सामान्य नहीं हो पाता। ललिता यही सब सोचकर मन ही मन दुःखी होती हैः

"मम्मी पापा, उर्मिल और ललिता के साथ रहते हुए चौबीसों घण्टे अपने परिवेश के निशानों को मिटाने के लिए तत्पर रहते थे और केंचुल उतारने के इस प्रयत्न में इतने हास्यास्पद बन जाते थे कि ललिता पानी–पानी हो जाती थी।" *शीराज़ा, पूर्णांक 58*

'परिवेश के निशानों' को मिटाने का प्रयास और 'केंचुल उतारने' जैसे शब्दों का प्रयोग सटीक ही नहीं हुआ अपितु यह कुण्ठित मन की व्यथा को बहुत अच्छे ढंग से उजागर करता गया है।

'छोटे आकाश तले' शीराज़ा, पूर्णांक 59, यद्यपि एक दूसरे परिवेश की कहानी है तथापि कुण्ठित मन की व्यथा समानान्तर चलती हुई दिखाई देती है। तुषार वर्षों बाद कश्मीर लौटा है। वह अब एक बड़ी कम्पनी में ओहदे पर है। अपनी बम्बइया बहु साथ लाया है। घर पर छोटे बाबू यानिकि उसके चाचा की बात चलती है कि अनन्तनाग में वह बड़े अभाव में रह रहे हैं। तुषार को छोटे बाबू का स्नेहिल व्यवहार, दोस्ताना और मीता का मासूम चेहरा, सब एक एक कर याद आने लगते हैं पर वह अपने में कहीं उत्साह नहीं पाता। उसके मन में उन्हें मिलने के लिए कोई उमंग नहीं। अब "भावुकता के स्थान पर उन सब के प्रति तटस्थ भाव हैं।" अपनी मां के कहने से वह, अपनी पत्नी गीता के साथ अनन्तनाग पहुंचता है। छोटे बाबू के घर में खलबली मच जाती है, मीता उसके सामने से भागकर भीतर चली जाती है और चाची खाट पर पड़ी चादरों को जल्दी जल्दी बदलने लगती है घर की अभाव ग्रस्त हालत को प्रयास से छुपाने की कोशिश। तुषार को बड़ा अजीब लगता है कि वह औपचारिकता क्यों ! वह तो वही है उनका तुषार।

जहां तक कि मीता भी कपड़े बदलकर उनसे अजनबियों की तरह मिलती है। तुषार के मन में एक द्वन्द्व सा मच जाता है–" मन में कोई भावोद्वेलन नहीं, चाची से गले मिलने मुझे कोशिश क्यों करनी पड़ रही है जीवन के सत्ताईस वर्षों तक जो मेरे रहे हैं, उन्हीं के साथ पूरे बारह वर्षों के बाद आ जुड़ने का यह क्षण मेरे भीतर अपनापन....... क्यों नहीं बिखेर रहा ? कहानी में मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हुई है।

"अपनी पगडण्डी" (शीराज़ा पूर्णांक 68) सामान्य बहु की कहानी है जो आर्थिक संरक्षण के लिए शादी के बाद भी नौकरी करते रहना चाहती है पर उसका पति नहीं चाहता कि वह नौकरी करे क्योंकि वह उन पैसों से अपने मां बाप का कर्ज उतार रही थी। पति पत्नी के सम्बधों में शैथिल्य आना शुरू हो जाता है तो पत्नी उसका एक मात्र कारण अपनी नौकरी को मानती है और पति को अवग्त करवाती है कि वह नौकरी छोड़ रही है तो पति उसे आर्थिक सहयोग देने की बात कहकर नौकरी करते रहने की बात कहता है। वस्तुतः वह मन से चाहता है कि वह नौकरी करती रहे पर उन पैसों से अपने मायके की सहायता न करके उसका आर्थिक सहयोग दे। कहानी यद्यपि आम घटनाओं और कथानक पर आधारित है पर इसकी वाणगी स्तुत्य है। कुछ नए शब्दों का प्रयोग सटीक बात कहने में पूरा उतरता हैः 'बनिया संस्कृति','इस्तीफा देकर अपंग बन जाए' आदि का प्रयोग अच्छा हुआ है।

संजना कृत सतहें (शीराज़ा पूर्णांक 76) कहानी वैयक्तिक स्वतंत्रता पर आधारित है। रीमा और सरिता दो सहेलियां हैं। रीमा यद्यपि पढ़ने में तेज़ है पर दब्बू किस्म की लड़की है और अपने मां बाप के कहने से वहीं बंध जाती है जहां वे चाहते हैं तो सरिता को बड़ा अजीब लगता है। उसके जीवन में एक लड़का आता है जिसके खुले व्यवहार से वह बड़ी प्रभावित होती है और उसके साथ शादी करने को तैयार हो जाती है पर शीघ्र ही उसे पता लग जाता है कि जो वह दिखाई देता है ऐसा नहीं है तो वह उससे अपनी बदनामी के बावजूद नाता तोड़ लेती है।

संजना कौल का परिवेश कश्मीर का समाज होते हुए भी भारत का समाज लगता है वस्तुतः ये कहानियां भारतीय समाज की कहानियां हैं जिसके पात्र हर समय अपनी अस्मिता की खोज में रहते हैं जो कभी उन्हें प्राप्त होती है कभी नहीं।

अवतजार कृष्ण राज़दान : 1942 में श्रीनगर में जन्मे अवतार कृष्ण राजदान नियति के क्रूर खेल के अंश के रूप में अपाहिज जीवन बिताने पर मजबूर हैं लेकिन यह मजबूरी उनके अध्ययन और लेखन में कभी आड़े नहीं आई। अभी तक सैंकड़ों लेख सांस्कृतिक और साहित्यिक विषयों पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित। कश्मीर की कलाओं और संस्कृति पर गहरी पकड़ और कथा लेखन में सफल प्रयास। देश की अनेक स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित जिनमें कादम्बिनी, आजकल, भाषा आदि प्रमुख हैं। जम्मू

कश्मीर कल्चरल अकादमी, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति और उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (लखनऊ) द्वारा हिन्दी सेवार्थ पुरुस्कृत।

अवतार कृष्ण राजदान कृत अभी तक एक कहानी संग्रह "सौगात" प्रकाशित हुआ है। यह 12 कहानियों का संग्रह है और अनेक कहानियां विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'कीमती चीज़' अपाहिज जीवन के यथार्थ के ठोस धरातल से टकराने की कहानी है। मुख्य पात्र जो विकलांग है, चल नहीं सकता, रोज अपने कमरे की खिड़की मे से एक लड़की को अपनी ओर निहारते देखता है तो उसका मन भी कसकने लगता है वह उठने का प्रयास करते गिर पड़ता है और उसे व्हील चेयर पर बैठाकर हस्पताल से जाया जाता है। अचानक वह देखता है कि वही लड़की उस की ओर बढ़ रही है। वह उसकी ओर देखती रहती है—उसमें सात्वनां है, सहानुभूति है या बेचारगी के भाव— वह समझने की कोशिश में रहता है।

इस सग्रंह की इसी नाम से लिखी गई कहानी 'सौगात', एक अच्छी कहानी है। बचपन में मुख्यपात्र ने ठाकुर द्वारे में पड़े एक काले चौरस पत्थर पर तीन आकृतियों को देखते हए पूजा करने से इन्कार कर दिया था परिणमस्वरूप उसे अपने पिता से मार खानी पड़ी। पिता की मृत्यु के बाद जब वह ठाकुर द्वारे का मालिक हो गया तो उस पत्थर को हटाने ठाकुर द्वारे पहुंचा तो वह पत्थर औंधा पड़ा था । वह यत्न से उठाता है तो देखता है नीचे एक पत्र पड़ा था जिसमें उसके पिता ने लिखा था कि इस पत्थर पर उकेरी गई तस्वीरें जीवन के तीन पक्ष हैं – बचपन, दूध पीते बच्चे के तौर पर, जवानी, स्त्रीपुरूष के आलिंगनबद्ध तस्वीर के रूप में और अंत—अर्थी के तौर पर। और यह कि बचपन में मुख्यपात्र इसे समझ नहीं सका था अब समझेगा और पूजा करेगा। 'चुनौती' एक और अच्छी कहानी है जिसमें आशा अपने ससुराल नहीं जाना चाहती क्योंकि उसका पति उसके शरीर को इस कदर चाहता है कि वह उसे दर्जन बच्चों की मां बना देगा और वह अस्थिपिंजर बन कर रह जाएगी।

'पत्नी पैसा और प्यार' कहानी में पति और पत्नी के बीच आत्मिक रिश्ते को स्थापित करता मुख्यपात्र अंत में बिखर जाता है जब उसे सरे बाजार एक पत्नी अपने पति पर लांछन लगाती मिलती है कि उसका पति बेकार है और उसे जरूरत का सामान और उसके नाजो नखरों का ख्याल नहीं रख पाता अतः वह उसके साथ नहीं रहना चाहती तो मुख्य पात्र के मन में काशीनाथ के शब्द गूंजने लगते हैं:

"दोनों के प्रेम को पैसों की बैसाखियां चाहिए,

ज्यों ही छूट गई तो न पति पत्नी का, न ही पत्नी पति की।" ....*पृ036*

अवतार कृष्ण राज़दान की कहानियां अति सहज और सीधी सादी कहानियां हैं जहां जिन्दगी से जुड़े पात्र यथार्थ के ठोस धरातल पर पांव जमाते दीखते हैं। इस ओर लेखक

ने अपने वक्तव्य में यह माना है कि "कहानी के लिए मैं कृत्रिम परिवेश का निर्माण नहीं करता बल्कि इसको अपने परिवेश के सांचे में ढालने की कोशिश करता हूं।" ....*पृ0 6*

कहीं कहीं पर हिन्दी पर कश्मीरी 'एक्सेंट' हावी होता दीखता है और भाषा की कमजोरी सहज ही उभर आती है। वाक्य विन्यास में अक्सर ये त्रुटियां देखने को मिलती हैं। कश्मीर की धरती की सुंगध, इसकी गलियां, गलियारे आंचलिकता की पुट ले आते हैं पर जितना वर्णन कश्मीर के नैसार्गिक सौन्दर्य का होना चाहिए नहीं हुआ। जरूरी नहीं है कि सीधे वाक्यों से इस सौन्दर्य का वर्णन किया जाए, अपितु प्रतीक के तौर पर भी इसके पहाड़, झीलें, नदियां, फलफूल आदि का प्रयोग किया जा सकता था। इधर नई पीढ़ी के कश्मीर से जुड़े कवियों की रचनाओं में ऐसे सुन्दर प्रयोग पढ़ने को मिल जाएगें।

कुल मिलाकर ऐसी स्थितियों में यह एक अच्छा प्रयास कहा जा सकता है।

यह कहानीकारों के व्यक्तिगत संग्रहों के लेखन की बात थी। इस प्रदेश में कुछ संस्थागत प्रयास से प्रकाशित कहानी संकलन भी प्रकाश में आए हैं– 'प्रिज्मों में बटीं किरणों' 'देवदार की छाया' तले' 'अधूरी कहानी का हीरो', 'जम्मू कश्मीर की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां', 'वितस्ता के कथा चरण' और 'अभिव्यक्त होने दो' आदि।

प्रिज्मों में बटी किरणें : मार्च 1974 में युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू द्वारा प्रकाशित कहानी संग्रह स्थानीय नौ कहानीकारों की रचनाओं का संकलन है जिसमें परम्परागत कहानी से लेकर नई कहानी के संदर्भ मिलते हैं। इस संग्रह की पहली कहानी 'प्रायश्चित' परम्परागत कोटि में ली जा सकती हैं जिसमें ढेर से आंसू, भावप्रवण क्षण और मानवीय अनुभूतियों का दर्द बिखरा पड़ा है। प्रकाश बाबू को एक पुरानी परिचिता मिल जाती है जिसने कभी उनकी धर्मपत्नी की खूब सेवा की थी पर समय की धारा में उसे भूल गए थे उसके बारे में जानने की बात उनके मन में नहीं आई। अब अचानक पूर्णिमा को अपने सामने पाकर वह कुण्ठित हो जाते हैं। पूर्णिमा अपने बच्चे के इलाज के लिए वहां आई है। उसे सेनीटोरियम में दाखिल करवा कर वे उद्विग्न मन से घर आते हैं तो उनकी पत्नी बोल उठती है "तुम ने तो रात भर प्रायश्चित करके शुद्धि करली पर मुझे पवित्र नहीं होने दिया" और कहानी सम्पन्न हो जाती है। दूसरी कहानी 'बहन की असीस' वक्त पर साथ देने वाले अजनबियों को भी असीस लग जाती है और उनका सूना आंगन भी महकने लगता है– इस कहानी का केन्द्रीय भाव है। यह कहानी भी परम्परागत कहानी कही जा सकती है। दोनों कहानियों के लेखक पं0 दुर्गादत्त शास्त्री है। इस संग्रह की तीसरी कहानी 'माथे की रेखाएँ' युद्ध विभीषिका और प्रतिक्रिया स्वरूप विभिन्न मतों के लोगों के बीच उठता द्वन्द्व तथा उस द्वन्द्व में कसमसाते निरीह प्रणियों की दास्तां है जो इन सबसे निंस्पृश्य होने पर भी मन ही मन कुष्ठित हैं कि जिस दुश्मन देश के साथ उनके देश का युद्ध हो रहा है वह देश उस मत को आधार बना कर बना है। खालिद

अनु को बहुत चाहता है युद्ध के दिनों में अचानक उसके पिता के चले जाने पर वह उसका बहुत ख्याल रखने लगा है और एक रोज जब बाहर जाता है तो अनु की फर्मायश पूरी करने बाज़ार में 'नैट' खरीदने जाता है जो 'सैबरे' को मार गिराते हैं। वहां उसे अपने मत के लोगों की गद्दारी के बारे में सुनने को मिलता है– वह कुण्ठित हो उठता है कि शायद उसे भी लोग गद्दार समझते हैं। गद्दार को उसके माथे की लकीरों से पहचाना जा सकता है उसके हाथ अनायास ही अपने माथे पर चले जाते हैं। वापिस लौटने पर वह अनु को 'नैट' जहाज देता है तो वह खुश हो जाती है पर साथ ही उसे 'गद्दार' कहते हुए 'चोरी पकड़ी गई' गाने लगती है। खालिद भौंचका खड़ा रहता है कि उसे असलीयत पता चलती है कि चाय की दुकान पर खाए टोस्ट का मक्खन खालिद की दाईं आंख के ऊपर माथे पर लगा हुआ था। वह अपने में लौटता है।

एक छोटी सी घटना को लेकर मनोवैज्ञानिक स्तर पर उसे बुन देना लेखक की सामर्थ्य की ओर संकेत करता है। कहानी के लेखक हैं डॉ० ओम गुप्त। सुतीक्ष्न कुमार आनन्दम् द्वारा रचित 'तेंदुआ' एक बिखरे हुए व्यक्ति की मानसिक उथलपुथल की व्यथा कथा है जो अपने ही अंतर में उठने वाली चिंताओं से आतंकित है। 'एक मछली जेहलम की' ज़रीना की टूटती ज़िन्दगी की कहानी है। वह अपने ममेरे भाई रशीद से प्यार करती है और दोनों शादी की तैयारी में थे कि रशीद लड़ाई में काम आ जाता है। और ज़रीना केवल अपनी सहेलियों के डोले विदा करती कसकती रहती है। यह कहानी ज्योतीश्वर पथिक द्वारा रचित है।

रमेश मेहता कृत 'सन्दर्भहीन' कहानी 'फलैशबैक' शैली में लिखी गई एक अच्छी कहानी है जिसमें कहानी का मुख्य पात्र अमरेश्वर–बार, बार अतीत में, अर्पिता के साथ बिताए गए, मधुर क्षणों की ओर लौट जाता है और, अर्पिता भविष्य के सुनहरे स्वप्नों में खोई उसे बार बार वर्तमान की ओर लौटा लाती है पर उन दोनों के बीच बर्तमान की कोई रेखा पल्लवित नहीं होती। अर्पिता के साथ बैठे हुए भी अमरेश बार बार अपने कार्य की चिंता में डूब जाता है और अर्पिता सुनहरे स्वप्नों को बीनती रहती है। यह बिडम्बना उन दोनों के बीच व्याप्त रहती है।

अन्य कहानियों में निर्मल विनोद की 'एक टुकड़ा चैन', राजभल्ला की' सिकुड़े कोबों का अल्बम' और दयानन्द शर्मा की 'मेकअप' साधारण कहानियां हैं। इस संग्रह की सब से सशक्त रचना जगमोहन द्वारा रचित कहानी 'एक फैला हुआ बरगद एक घुटी हुई सांस' है जिसका आधार मनोवैज्ञानिक स्तर पर पनपने वाली कुण्ठाएँ हैं, यथार्थ के ख़ाके पर पूरी उतरती है। कहानी का मुख्य पात्र पिता जी के प्रभाव क्षेत्र में इतना बंधा है कि उसकी अपनी सोच उसमें उभर नहीं पाती है। एक बड़े बरगद के पेड़ के नीचे पनपने वाले पौधों के समान जो हवा पानी ओर धूप न पाने के कारण मुर्झा जाते हैं क्योंकि उनकी

धूप और खुली हवा को बरगद ने रोक रखा है। कहानी में हर तरफ द्वन्द्व व्याप्त है—पात्रों के बीच, पात्रों के अंतर में और बाहर। खाट पर पड़ा मुख्य पात्र इसी द्वन्द्व में उलझा अपना जीवन व्यर्थ मानता हुआ छटपटाता रहता है और अकेलेपन के अहसास में डूबता उतराता रहता है—यही आज का यथार्थ है जिसे हम चाहकर भी तोड़ नहीं पाते।

इस कहानी संग्रह का महत्व इसमें है कि तत्कालीन जम्मू के महानीकारो का एक अक्स हमें इसमें दिखाई देता है। संग्रह के सम्पादक जवाहर रैणा ने 'अपनी बात' में जम्मू के कहानीकारों को दो प्रकोष्ठों में रखा है एक वे जो हिन्दी में लिखते हैं और दूसरे वर्ग में वे कहानीकार आते हैं जो हिन्दी के साथ पंजाबी अथवा डोगरी भाषा में लिखते रहे हैं। हिन्दी कहानीकारों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

देवदार की छाया तले : 1976 में हिन्दी साहित्य मंडल द्वारा प्रकाशित जम्मू के चौदह कहानीकारों की कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में मंडल की गोष्ठियों में पढ़ी गई स्तरीय कहानियों को संकलित किया गया है। परम्परागत शैली से लेकर आधुनिक कहानी की प्रवृत्तियों पर पूरी उतरने वाली इन कहानियों में एक ओर तो प्रतीकात्मक शैली पर लिखी गई कहानियाँ हैं जैसे ओ.पी.शर्मा सारथी की 'सड़क की यातना' सुभाष शर्मा द्वारा 'जेम्स एक पैथेटिक करेक्टर,' इन्द्रजीत सिंह पुजारी द्वारा रचित 'एक दिन का सूर्य' और कुछ कहानियां सोच के धरातल पर 'फलैशबैक' तकनीक से खुलती हैं जैसे अमर नंदा की 'घर कीं ओर' और अशोक जेरथ कृत 'एक बिखरी हुई शाम'। तो द्वन्द्व और आंतरिक ऊहा पोह से लैस हैं निर्मल विनोद और बलनीलदेवम् की कहानियां। इन कहानियों में जम्मू के कहानीकारों का प्रतिनिधित्व ढूंढा जा सकता है। परम्परागत शैली में लिखी गई डा0 गंगादत्त विनोद कृत 'दादी' में मद्दो नामक एक बुढ़िया की व्यथा कथा है जो जवानी में ही विधवा हो गई और अपने गुजर के लिए उसे गांव के घरों में कार्य करना पड़ता है। अपनी कर्मठता से वह सब का मन मोह लेती है। घर पर कोई भी अनुष्ठान हो उसे ही काम काज चूल्हा चौका करने के लिए बुलाया जाता। एक दिन जब उसका आना नहीं हुआ तो गांव की औरतें उसकी कुटिया में पहुंचती हैं और क्या देखती हैं कि वह अंतिम सांस ले रही है। ओ.पी. शर्मा सारथी द्वारा रचित 'सड़क की यातना' में सड़क का मानवीकरण कर प्रतीकात्मक शैली में कहानी को खोला गया है तो अशोक जेरथ कृत 'एक बिखरी हुई शाम' में फलैश बैक, तकनीक से मुख्यपात्र के अतीत को खोला गया है। इन्द्रजीत सिंह पुजारी कृत 'एक दिन का सूर्य' एक सशक्त कहानी है जिसमें प्रतीकों के माध्यम से न केवल इसे गति दी गई है अपितु पारिवारिक इकाईयों में व्याप्त सामाजिक वर्जनाओं को बखूबी से उभारा गया है। भूखी राधा बार बार पानी पी कर अपने दिमाग को समझाने लगती है कि अपना ध्यान भूख से हटा लो तो चैन पाओगी। पर भूख तो 'अंतड़ियों' को निचोड़ रही है जो दिमाग को

बार बार कुछ खाने के लिए कहती हैं और यंत्र चालित राधा के हाथ चलने लगते हैं एक और गिलास पानी का और दर्द का असहनीय सागर।

सुभाष शर्मा द्वारा रचित कहानी 'जेम्स एक पैथेटिक करेक्टर' में जेम्स को गेंद की तहों को उधेड़ते हुए दर्शाया गया है। वस्तुतः गेंद उसका अतीत है जिसकी परतें वह अक्सर एकांत में बैठा उधेड़ा करता है। मेरी, लूसी और न जाने कौन– 2 उसकी तहों में दबे पड़े हैं पर वह अभी भी उसी तरह अकेला है जिस तरह पहले था। बलनील देवम् द्वारा रचित 'भरा पूरा पुरुष' एक और अच्छी कहानी है जिसमें मुख्य पात्र तरसेम चाचा के गुस्सीले व्यक्तित्व के सामने बहुत बौना हो आया है और उनके सामने आते ही वह कुण्ठित हो जाता है। अपने आप को निरर्थक जानते हुए वह मन ही मन कुढ़ता जाता है–

"जन्म देने के बाद अगर टुकड़े –टुकड़े करके मारना ही था तो क्यों दिया जन्म। मैंने मांगा नहीं था.......इनके शारीरिक सुख के क्षणों में, मैं यू ही टपक पड़ा था तो तब ही क्यों नहीं किया इस का इलाज़.........." पर किरण के साथ सम्पर्क हो जाने पर वह अपने आप को 'भूरा पूरा पुरुष' मानने लगता है और उसका स्वाभिमान जाग उठता है यही कारण है कि वह अब चाचा के सामने दब्बू नहीं होता अपितु प्रतिक्रिया स्वरूप बोल उठता है तो चाचा बहुत हैरान होते हैं कि अचानक ऐसा परिवर्तन क्यों!

राजऋषि शर्मा द्वारा लिखी हुई कहानी 'गुमें हुए दरख्तों के बीच' आंचलिक कहानी है जो इस अंचल की विशेष समस्या की ओर संकेत करती है। लकड़ी के चोरी से कटने की बात से पन्सालिया (गार्ड) परेशान है पर वह चाहकर भी इन लोगों की रिपोर्ट नहीं करवा पाता क्योंकि इनमें से बहुत इसके परिचित भी हैं पर वह अनमना होकर पड़ा रहता है और जंगल की लकड़ी कटती रहती है। यह संग्रह अशोक जेरथ द्वारा सम्पादित किया गया ।

अधूरी कहानी का हीरोः सन 1978 में अनिल सहगल द्वारा सम्पादित 'अधूरी कहानी का हीरो' चार कहानीकारों द्वारा रचित सात कहानियों का सग्रंह है। ये कहानीकार हैं सर्वश्री रमेश मेहता, निर्मल विनोद, अनिल सहगल और कु. नीलम खोसला।

इस संग्रह की इसी शीर्षक की कहानी, रमेश मेहता कृत, सोच के टुकड़ों, अर्न्तद्वन्द्व और आंतरिक कुण्ठा की ओर संकेत करती है। मुख्य पात्र किसी अनदेखी स्थिति के प्रति भयभीत है और घर आकर अपनी पत्नी के सामीप्य से भी उसका अधैर्य समाप्त नहीं होता अपितु उसे लेकर भी वह आंतकित हो जाता है कि कहीं वे लोग जो उसके पीछे लगे हैं उसकी पत्नी को भी चाकू न मार दें। उसी उहापोह और आतंक से वह अचेत हो जाता है। कहानी मनोविकास की ओर संकेत करती हुई एक मनोवैज्ञानिक पक्ष को हमारे सामने खोल देती है व्यक्ति किसी न किसी स्तर पर अपने माहौल से और अपने ही अनुग्रहियों

से त्रस्त रहता है, अनेक बार यह आतंक उस पर हावी नहीं हो पाता पर अनेक अकेले क्षणों में अक्सर वह जीवन की निरर्थकता के प्रति उन्मुख हो कर विखर जाता है। इसी का उच्च स्वर बाद में मृत्युबोध की ओर व्यक्ति को धकेलने लगता है– निराशावादी स्वर। निर्मल विनोद रचित 'सहज असहज' एक अच्छी कहानी कही जा सकती है जिसमें सामाजिक दीर्घाओं में टूटते सम्बल, अभाव, बेकारी, मंहगाई और अपने न होने की बेबसी सारे कथानक पर छाई रहती है। मज़े की बात यह है कि कहीं पर भी कथाकार सामने प्रतीत नहीं होता सम्वादों, मानसिक द्वन्द्व और अंतर की टूटन से कहानी गति पकड़ती हुई मुख्य पात्र की अवशता में जाकर चुक जाती है। भाषा में प्रवाह है और स्थितियों को बीनकर बांधने में कहानीकार सक्षम है।

'खिड़की से झांकता दर्द' इस संग्रह की एक सशक्त कहानी है जिसमें बीमार हुए मुख्यपात्र की मनोदशा का यथार्थ चित्रण चित्रित है। बीमारी के कारण धीरे धीरे उससे अपने करीबी रिश्तेदारी कटने लगते हैं जहां तक कि अपने सगे भी अलगाने लगते हैं और सहसा मुख्य पात्र की बेबसी झलकने लगती है–

"अबके ठेके के काम पर से लौटने पर पिता जी को कह दूंगा कि वे मुझे किसी सेनिटोरियम में छोड़ आयें।......घर से दूर......अपने जैसे रोगियों की बिरादरी में.......एक भरे पूरे परिवार में.........(पृ. 28) कहानी के रचनाकार निर्मल विनोद हैं।

अनिल सहगल की कृति 'कोहरे में से' कोहरे में गुम होने की बात कहती है– यह कोहरा धुन्ध नहीं है अपितु सोचों का कोहरा है जिसमें मुख्यपात्र कैद हो जाता है– सोचों के दायरे में अनेक पात्र उसके आसपास से गुजरते रहते हैं और वह एक तो सारे आदमी की तरह उन्हें खड़ा देखता रहता है और विश्लेषण करने लगता है कि उसे कुछ लड़कियां और कुछ लड़के क्यों अच्छे लगते हैं उनके व्यक्तित्व का अंग अथवा उनके कपड़े या उमर. ......पर अचानक हस्पताल के बाहर मृत व्यक्तियों को देख कर उसका सौन्दर्य बोध चरमराने लगता है।

कु. नीलम खोसला कृत 'अलगाव' एक साधारण सी कहानी है जिसे मनोवैज्ञानिक रंग देने का प्रयत्न किया गया है पर मात्र ख़ाका सा ही बन पाया है। बूढे होने पर पत्नी को अपने पति पर संदेह होने लगता है कि वह किसी ओर से प्यार करता है अतः बार बार उसकी बात की खाल उधेड़ती रहती है।

नीलम खोसला कृत ही 'बोधिसत्व' एक दिलचस्प कहानी है जिसमें मुख्य पात्र को अचानक एक दिन आधा पत्र मिलता है पर इसका दूसरा भाग गायब है। वह प्रेम पत्र पढ़कर अधूरापन पूरा करना चाहता है– होटल के लड़के से पूछताछ करता है, थोड़ा संकेत मिलता है कि कोई कालेज से एक लड़की यहां आई थी। पर वह स्मरण नहीं कर पाता कि अचानक उक्त पत्र का आधा हिस्सा उसे निबन्ध की पुस्तक से मिलता है और कहानी पूरी हो जाती

है और पाठक की जिज्ञासा भी शांत हो जाती है। कहानी कौतुहलपूर्ण स्थितियों को लिए हुए साधारण रचना है।

इस संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें चारों कहानीकारों की शैली, शिल्प और काव्य अलग हैं और स्तर के हिसाब से एक सीमा या रेखा नहीं बांधी जा सकती। गेटअप अच्छा है।

इन कहानी संकलनों के साथ साथ संस्थाओं द्वारा प्रकाशित कुछ पत्रिकाओं ने भी कहानी विशेषांक निकाले। हिन्दी साहित्य मंडल द्वारा प्रकाशित 'मधुरिमा' का भी एक कहानी विशेषांक निकाला गया था यह अंक जनवरी 1975 में **प्रतिभा पुष्प 6** के शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस अंक में तीन कहानियां, चार लघु कथायें और एक व्यंग्य कथा संकलित हैं। कहानियों में इन्द्रजीत सिंह 'पुजारी' द्वारा रचित 'मजबूरी' एक अच्छी कहानी है यथार्थ के ठोस धरातल से टकराती हरिया और उसकी पत्नी रूपा बहुत गरीब हैं दो वक्त का खाना नसीब नहीं ऊपर से हरिया बीमार है। वह कभी कभी अपने हाथ की रेखाएं देखकर बुरे दिनों के जल्दी भाग जाने की बात सोचता है पर दूसरे ही पल इस सोच से उस का दम घुटने लगता है: – "वह भूल गया था कि गरीब की किस्मत की रेखाएं हथेली पर नहीं होतीं उसके पेट पर होती हैं।" रूपा बेबस है। वह पड़ोसन से बीस रुपए उधार मांगने जाती है पर पड़ोसन के कहने पर कि चुकाओगी कैसे वह चुप हो जाती है। फिर पड़ोसन ही रास्ता बताती है:–

"ऊंची हवेली यहां से दस कदम की दूरी पर तो है। तीन बार दरवाजा खटखटाना, फिर कपड़े उतारने और पहनने में समय ही कितना लगता है, और बीस का नोट.....

"पाप............वह चिल्लाई। नहीं मजबूरी पड़ोसन ने कहा..:..........." (पृ0 21)

और वह पाप नहीं कर सकी परिणाम स्वरूप हरिया नहीं बच सका। हरिया की लाश उसके सामने पड़ी है पर वह उसकी अंत्येष्टी नहीं कर सकती– पैसे नहीं हैं–

"उसने मुंह धोया, तीन बार ठक ठक........कपड़े उतारने में और पहनने में समय ही कितना लगता है फिर बीस रुपये................। कफन और लकड़ी का प्रबन्ध तो हो जाएगा" (पृ 21) और वह दरवाजा खोलकर ऊंची हवेली की ओर चल दी। दलित वर्ग की पीड़ाजनक स्थिति और अंत तक लड़ते रहने के बाद टूट जाना इनकी नियति बन गई है। भाषा चुस्त है और कहीं पर भी शब्द अखरते नहीं।

इस अंक की दूसरी कहानी 'टूटे हुए रास्ते, टूटे हुए लोग' अलंकार द्वारा रचित एक और अच्छी कहानी है जिसमें चार चरित्रों की आत्मव्यथा को अभिव्यक्त किया गया है। चौथा चरित्र तीन व्यक्तियों के प्रश्नों का केंन्द्र बिन्दु है–

"तुम कौन हो ?" कोई एक पूछता है।

"पहले बहुत कुछ था अब सिर्फ पति बन गया हूं।"

.."हां, दिन मेरे साथ रहता है, रात बीच में ही कहीं कट जाती है।"

"यदि तुम जानते थे कि रात को तुम नहीं फिसला सकते तो तुमने शादी ही क्यों की।"

सभी उठकर चले जाते हैं लेकिन चौथा व्यक्ति नहीं जाता–"............इसलिए कि रात मेरी नहीं रहती, मेरे सामने ही किसी और की हो जाती है"।

कहानी संवादों में शुरू होकर आत्मावलोकन पर आकर खत्म होती है पर पाठकों के सामने सभी स्थितियां स्पष्ट हो जाती हैं।

तीसरी कहानी फकीर चंद निर्मोही कृत 'राम कहानी' आर्थिक अभाव के कारण अनायास आ गई विपदाओं की कहानी है जिसमें चंदन और रजनी उनमें मथ जाते हैं। चंदन की नौकरी चले जाने पर वह मानसिक दबाव में तो रहता ही है, शरीरिक व्याधियां भी घेर लेती हैं। पर बाद में रजनी के भाई राजनाथ के सहयोग से स्वस्थ्य हो कर एक नया जीवन शुरू करते हैं। कहानी का स्वर यद्यपि निराशावादी है पर अंत आशावादी स्वर के साथ हुआ है।

कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित जुलाई– दिसम्बर 1978 का **शीराज़ा (हिन्दी) कहानी** विशेषांक के तौर पर सामने आया। इसमें छः कहानियां, कहानी विधा पर पांच लेख और कहानी को लेकर ही दो परिचर्चाएं प्रकाशित हैं। कहानियों में रतन लाल शांत कृत 'मुक्ति', ओम गोस्वामी कृत 'बनवास' तथा सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् द्वारा रचित 'बंवडर' स्थानीय लेखकों की रचनाएं संकलित हैं। परिचर्चाओं में 'नई हिन्दी कहानी उपलब्धी और सम्भावनायें, तथा 'आवश्यकता है, कहानी का असली चेहरा तलाशने की' भी संकलित हैं। इनकी चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है।

कश्मीर में कहानी लेखन में यद्यपि इतना कार्य नहीं हुआ है तथापि हरिकृष्ण कौल, श्रीमती शामा सौंधी, डा0 अयूब प्रेमी, डा0 सोमनाथ कौल, सुश्री संजना कौल, अग्निशेखर तथा महाराज कृष्ण शाह आदि नाम इस विधा में उभरे हैं। कहानीकारों का वैयक्तिक प्रयास भी रहा है छुटपुट कहानियां लिखने और उन्हें प्रकाशित करने का। कुछ कहानी अंक भी सामने आए हैं डॉ0 आयूब प्रेमी, प्रो. हरिकृष्ण कौल, श्रीमती शामा सौंधी आदि ने अपने कहानी संग्रह भी प्रकाशित किए हैं। इससे पहले 1935 के आसपास श्रीमती सत्यवती मल्लिक का एक कहानी संग्रह 'दो फूल' प्रकाशित हो चुका था। कथा साहित्य लेखन में सुश्री चन्द्रकांता का भी संदर्भ लिया जा सकता है यद्यपि वह अब इस प्रदेश से बाहर हरियाणा में चली गई हैं तथापि उनके लेखन का आग़ाज जम्मू कश्मीर में ही हुआ था। इनके अनेक कहानी संग्रह तथा उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। कश्मीर के कहानीकारों की रचनाओं के संकलन का प्रयास न के बराबर हुआ है। इस ओर दो प्रयास ही चर्चा के विषय हैं– एक संकलन जम्मू कश्मीर के कहानीकारों का 'जम्मू कश्मीर की

श्रेष्ठ कहानियां' के नाम से प्रकाशित हुआ था 1979 में और दूसरा संकलन कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा 'वितस्ता के कथारचण' के नाम से प्रकाशित हुआ। पहले हम वितस्ता के कथाचरण का उल्लेख करते है

'वितस्ता के कथाचरण' : कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की ओर से 'वितस्ता के कथाचरण' 1980 में प्रकाशित हुआ। इसमें कश्मीर के सतरह कहानीकारों की रचनाएं संग्रहित हैं वस्तुतः एक तरह से यह कहानी संग्रह कश्मीर के कहानीकारों का प्रतिनिधि संग्रह कहा जा सकता है। आरम्भ में अपने लेख 'कश्मीर में हिन्दी तथा हिन्दी कहानी' में डा0 सोमनाथ कौल ने कश्मीर में हिन्दी तथा हिन्दी कहानी के इतिहास को तलाशा है।पर जो नाम उन्होंनें नई कहानी के आरम्भ में बताएं हैं उनमें से श्री हरिकृष्ण कौल को छोड़कार और किसी की भी रचना कहीं बाहर छपी हो– संदेह की काफी गुजायश है। हां कहानी संग्रहों के रूप में डा0 अयूब 'प्रेमी' का 'राजमार्ग के यात्री' श्रीमती शामा सौंधी द्वारा प्रकाशित 'जेहलम के मोड़' कहानी संग्रह अवश्य प्रकाशित हो चुके हैं। अधिकतर ये कहानीकार वितस्ता, नीलजा और शीराज़ा आदि पत्रिकाओं में छपे हैं।

डा0 भूषण लाल कौल कृत 'वायलपुल' एक साधारण कहानी है– घुसपैठियों ने एक घोड़ेवाले को लालच और आतंकित कर अपनी ओर मिला लिया है। वे दूसरे रोज घुसपैठ करने वाले थे और वायल के पुल के उड़ाने के साथ साथ लूटमार और आगजनी की उनकी योजना थी कि उनके लीडर की बात चीत एक हवलदार सुन लेता है और पुलिस और सेना के सूचित कर देता है जिसके फलस्वरूप इस हमले को न केवल असफल कर दिया जाता है अपितु उनके अनेक आदमी मारे जाते हैं। हवलदार घोड़े वाले को बचा लेना चाहता है पर अचानक उसकी लड़की घुसपैठियों के लीडर के मृत शरीर को देखकर चिल्ला उठती है जिससे भेद खुल जाता है और पुलिस उसके पिता को रस्सी से बांधकर ले जाती है।

डा0 बिमला कुमारी मुंशी कृत 'रूपसि' एक ऐसी सुन्दर और लाड़ प्यार में पली लड़की की कहानी है जो स्वच्छंद ख्यालों की है और लड़कों का मज़ाक उड़ाना तथा उसे देखने आए लोगों को अस्वीकार कर देना उसके लिए आम बातें थी पर बाद में वह उससे ही शादी कर लेती है जिसको वह बदसूरत कह कर कर मज़ाक उड़ाती रही है। साधारण कहानी है– किस्से कहानी की शैली में लिखी गई ।

मोहन लाल बाबू कृत 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' यथार्थ से टकराते ऐसे युवक की व्यथा कथा है जो अपने पिता के ग़लत व्यवसाय को सहन नहीं कर पाता पर पिता उसे पागल करार दे देता है और पागलखाने भिजवा देता है जहां पहुंच कर वह अर्ध विक्षिप्त हो जाता है। तो 'झेलम के मोड़' श्रीमती शामा सौंधी द्वारा रचित एक अच्छी कहानी है

दो सहेलियो, निन्नी और रोशनी, का दोनों की नियति एक जैसी है उनके प्रेमी उन्हें छोड़कर दूसरों से शादी कर लेते हैं इस पीड़ा को पहले निन्नी सहन न कर गुमसुम हो जाती है बाद में रोशनी के साथ भी ऐसा ही होता है तो वह उन क्षणों को पहचानने लगती है जिन क्षणों में वह निन्नी को गुमसुम हुए देखती रही थी। कहानी की भाषा और कलेवर दोनों ही प्रौढ़ कहानीकार की मनोव्यथा की ओर संकेत करते हैं। हरिकृष्ण कौल द्वारा रचित 'जुड़वां' एक और अच्छी कहानी इस संग्रह की कही जा सकती है अभाव की रेखा को पकड़ते हुए पात्र अपनी पीड़ा अपने अहम् में घोल देते हैं और नशे में लखपति और करोड़पति होने की मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। कहानी में भाषा का प्रवाह है और सम्वादों के सहारे टुकड़ों में इसे गति दी गई है।

डा0 रमेश कुमार शर्मा द्वारा रचित कहानी 'चीख' एक तिलस्मी कहानी लगती है। एक सज्जन ने उन्हें पीढ़ियों का इतिहास बताते हुए एक शारदा लिपि में छोटी पाण्डुलिपि अनुवाद के लिए दी जिसे उसके पिता रोज़ पढ़ा करते थे और गाढ़कुचा नामक स्थान पर जाने से डरते थे पर उनकी मृत्यु भी वहीं हुई। उस पाण्डुलिपि में इसकी कथा दी गई थी कि गाढ़कूचा में एक सर्प वास करता था जिसे मुख्य पात्र के किसी पूर्वज ने अपनी पटारी में बंद कर लिया था। पर घर वालों ने उसे गर्म पानी से जला डाला और उसी रोज मुख्य पात्र के उक्त पूर्वज की भी मृत्यु हो गई। बाद में यह सिलसिला चल पड़ा। कहानी तिलस्मी कहानी की तरह ही दिलचस्प लगती है और आगे क्या है कि उत्सुकता लिए है।

कुमारी संजना कौल कृत 'विभाजित रेखाएं' भी एक अच्छी कहानी कही जा सकती है।– आर्थिक अभाव और संयुक्त परिवार में धीरे धीरे उठने वाले प्रश्न चिन्ह और विभाजन रेखाएं मुख्य पात्रा अपने और अपनी बड़ी दीदी सुशीला के मध्य भी महसूस करने लगती है। एक परिवार के सदस्य होने पर भी सभी ने अपने आप को अपने अपने मुखौटे में छुपा रखा है और समय, स्थिति तथा व्यक्ति को लेकर वे मुखौटे बदलती रहती हैं पर इस औपचारिकता का दर्द मुख्यपात्रा को सालता रहता है तो दूसरी ओर आगे पढ़ाई न जारी कर पाने की मजबूरी की कसमसाहट उसे तोड़ देती है– एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार का यथार्थ ख़ाका।

डा0 अयूब प्रेमी द्वारा रचित कहानी 'कहो कैसी तबीयत है?' नारी के विविध रूपों को खोलती दिखती है। उपन्यासकार के यहां जश्न की रात और सुरा और सुन्दरी का दौर चल रहा है। मुख्यपात्र को शराब पीने से मना करने वाली उसके मित्र की पत्नी स्वयं पीने लगती है और अंधेरे में उसके बिस्तर में घुस जाती है। प्रातः उसका सौम्य रूप देखने को मिलता है जो मुख्यपात्र से उसकी तबीयत के बारे में जानना चाहती है। संवादों और सोच के सहारे कहानी को बुना गया है और एक अच्छे कहानीकार की सम्भावनाएं इस रचना से दृष्टिगोचर होती हैं।

डा0 सोमनाथ कौल कृत 'एक घण्टे लम्बी सड़क की नियति' एक बाबू की दास्तां

है जो दिन भर पिसता रहता है और केवल छुट्टी वाले दिन ही बच्चों को दिखता है क्योंकि, प्राताः उनके उठने से पहले ही वह चला जाता है और गई रात लौटता है जब बच्चे सो चुके होते हैं इसीलिए बच्चे 'संडे फादर' के तौर पर उसे जानते हैं। एक बार शनिवार को ही वह रह जाता है तो सारे परिवार को आश्चर्य होता है यहां तक कि उसकी धर्म पत्नी भी उसे आश्चर्य से ताकती रहती है।

वितस्ता के कथाचरण में 'वितस्ता' की महक और उसके आसपास बिखरी संस्कृति अभिव्यक्त हुई है– कांगड़ी, फिरन, जेंहलम, झील डल, कश्मीर के गांव, गलियारे, नगर, हाउसबोट, बजरे आदि इन कहानियों द्वारा मुखरित हुए हैं।

कुछ कहानियां मात्र किस्सागोई लगती हैं तो कुछ कहानी बनने की ओर अग्रसर हैं तो कुछेक अच्छी कहानियां कही जा सकती हैं– शायद इस संग्रह की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

जम्मू कश्मीर की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ : जम्मू कश्मीर के कहानीकारों को एक सामूहिक मंच प्रदान करने हेतु जम्मू कश्मीर की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियों की योजना बनाई गई और डा0 अशोक जेरथ के संयोजन में इसे कार्यरूप दिया गया। इस कहानी संकलन में इस प्रदेश के प्रतिष्ठित और चर्चित कहानीकारों की रचनाएँ संकलित हैं। कश्मीर से सर्वश्री हरिकृष्ण कौल, अग्निशेखर और महाराज कृष्ण शाह की कहानियाँ हैं तो जम्मू से सर्वश्री वेद राही , ओ0 पी0 शर्मा सारथी, ओम गोस्वामी, छत्रपाल, बलनील देवम्, इन्द्रजीत सिंह, डा0 अशोक जेरथ आदि की कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों के कथा फलक अलग अलग धरातल पर लिए हैं पर अधिकांश कहानियों में से अपने वातास की सुगन्ध को महसूस किया जा सकता है।

प्रो0 हरिकृष्ण कौल की कहानी में व्यंग्य और सामाजिक विसंगतियों पर अपने माध्यम से सशक्त कटाक्ष किया गया है। क्लासरूम में पहुंचे एक अर्धनंगे अध्यापक की मनः स्थिति का यथार्थ वर्णन इस कहानी में हुआ है। वस्तुतः यह हमारे तथा कथित उन्नायकों का स्वरूप है जो मानसिक रूप से नंगे होकर क्लास रूपी समाज में अपने आपको ढकने का अथक प्रयास करते हैं। महाराज कृष्ण शाह और अग्निशेखर की कहानियाँ एक और तो सामाजिक वर्जनाओं पर प्रहार करतीं दीखतीं हैं तो दूसरी ओर व्यक्ति के वजूद के स्थापन की भी बात कहतीं हैं। वेद राही की कहानियां अपने परिवेश से जुड़कर भी समष्टि की बात करतीं हैं तो ओ0 पी0 शर्मा की कहानियां प्रतीकात्मक तो हैं, पर अपने सशक्त ढंग से, हमारे आसपास स्थित विषैले वातावरण और इसके लिए जिम्मेदार घटकों और तथाकथित सामाजिक ठेकेदारों पर प्रहार करने में नहीं चूकतीं। सांकेतात्मक भाषा में, थोड़े से शब्दों द्वारा बहुत सी स्थितियों को समेटने की क्षमता ओ0 पी0 की कहानियों में है। यह दुरूहता इनके जीवन में भी व्याप्त है। शायद ये कथानक इन्हें आपने आप से

ही सहज रूप से मिल जातें हैं। यद्यपि इनकी कहानियो में मरुस्थल की खुश्की को ही फैंला हुआ देखा जाता है पर कहीं न कहीं से अपने मानसिक ऐश्वर्य के लिए सरस स्थितियां, स्त्री पात्रों के रूप में, या फिर उनके अहसास के रूप में गढ़ ही लेते हैं जो इनके लेखन की खूबी है।

इन्द्रजीत और बलनील देवम् की कहानियां अपने वजूद की कहानियां हैं जहां रफ्ता रफ्ता जीवन की परतों को रचनाकार उधेड़ता लगता है। ओम गोस्वामी की कहानियां तथाकथित आम आदमी की कहानियां हैं। जिन्हें यह यथार्थ कहतें हैं क्या उस यथार्थ के प्रति इनकी संवेदनाएं बहती रहतीं हैं पर जो यथार्थ इनका अपना है उनके बारे में इनकी कहानियां चुप हैं। छत्रपाल की कहानियां वस्तुतः यथार्थ की रचनाएं हैं। संकलन का सम्पादन किया था आशोक जेरथ ने। गेटअप बहुत अच्छा बना है।

अभिव्यक्त होने दो : डा. राज कुमार द्वारा सम्पादित पांच रचनाकारों की कहानियों का यह संकलन 1984 में प्रकाशित हो कर सामने आया। पांच रचनाकार हैं डॉ. आदर्श, डॉ. ओम गुप्त, डॉ. राजकुमार , श्री ज्योतीश्वर पथिक और श्री रमेश मेहता। अपने सम्पादकीय में राज कुमार लिखते हैं। 'अभिव्यक्त होने दो' में उन कहानीकारों को लिया गया है जो मूलतः कवि हैं बड़ा हास्यस्पद वक्तव्य है। उन्हें क्या बाध्य करता है कि कवियों को कहानीकार बनाना है। वैसे भी इन रचनाकारों में से अधिकांश की कहानियां छपीं हैं। डॉ. ओम गुप्त द्वारा रचित कहानियों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है, आदर्श का भी एक कहानी संग्रह इधर प्रकाशित हुआ है। रमेश मेहता की कहानियां भी 'अधूरी कहानी का हीरो' संकलन में संकलित हैं। ज्योतीश्वर पथिक की एक दो कहानियां भी प्रकाशित हुई हैं तो बाकी कौन सा रचनाकार केवल कवि रह गया है!

डॉ. आदर्श की तीन कहानियां 'उधार', 'समझदारी का सबूत' और 'गिद्ध' इस संकलन में संकलित हैं। 'उधार' एक आम सी कहानी है जिसमें डाक्टर सहानुभूतिपूर्ण एक गरीब मरीज़ के परिवार का इलाज़ करता है तो वह व्यक्ति उसके उधार को न केवल पैसा देकर चुकाता है अपितु ईद पर उन्हें खीर का मसौदा भी सौंप देता है। डा. खीर नहीं खाता पर उस रोज़ उस मसौदे से बनाई गई खीर उसे अच्छी लगती है। 'समझदारी का सबूत' एक ऐसे माहौल की कहानी है जो हमारे आस पास वरपा है। रिश्वत और घूसखोरी का ऐसा बाजार गर्म है कि दफतरों में बाबू तब तक कार्य नहीं करते जब तब उनके हाथ पर कुछ रख न दिया जाए। अब्दुल, अर्दली को अपनी लड़की के निकाह पर एक माह की छुट्टी दरकार है। वह एक माह एडवांस ही छुट्टी के लिए दरख्वास्त देता है जो बी.एम. ओ. के आफिस में पहुंचती हैं । वहां का बाबू देसराज निहायत घटिया स्तर का घूसखोर है। वह अब्दुल से आकांक्षा रखे है कि वह कुछ देगा पर जब कुछ हासिल नहीं होता तो टाल देता है। जब तंग आकर अब्दुल बी.एम. ओ.

के पास पहुंचता है तो वहां गाली गलोच से उसका स्वागत होता है। बाहंर आकर वह समझ लेता है कि जब तक देसराज को कुछ देगा नहीं तो छुट्टी नहीं मिलेगी और वह देसराज के आगे वढ़े हाथ पर थूक देता है, दृश्य परिवर्तन। तीसरी कहानी 'गिद्ध' एक अच्छी कहानी कही जा सकती है। एक व्यक्ति रात्रि में बस को लुढ़कते देखकर सवारियों को बचाने की गर्ज से खड्ड की ओर उतरता है तो देखता है कि एक बड़े पत्थर पर एक लाश पड़ी है जिसके हाथ में एक सुन्दर घड़ी चमक रही है। वह द्वन्द्व में उलझा उसे उतार लेता है तो अचानक उसे लगता है कि आदमी मरा नहीं अपितु वह अपनी जेब से रुपयों की एक गड्डी निकालकर कहता है कि इसे भी ले लो और मेरे दो बच्चों को देखो और यह कहकर वह एक और लुढ़क जाता है। वह अब मुतमयन है कि अब घड़ी के साथ रुपयों को भी ले सकता है क्योंकि वह तो मर गया है। तीनों कहानियाँ सामूहिक शोषण और वैयक्तिक लालसा की ओर संकेत करती हैं। अपने अपने संदर्भ में लेखक बात कहने में समर्थ हैं। शिल्प अति साधारण है पाठकों को बांधता कम है।

डॉ. ओम गुप्त द्वारा रचित तीन कहानियाँ 'मौन संदर्भों का चौखटा' 'माथे की रेखाएं' और 'पीरियड से पहले' इस संकलन में संकलित हैं जिनमें से 'माथे की रेखाएं' पूर्व प्रकाशित रचना है। बाकी दो रचनाओं की पृष्ठ भूमि कालेज अथवा युनिवर्सिटी है। 'मौन संदर्भों का चौखटा' एक अच्छी कहानी कही जा सकती है। डा. भटनागर एक गम्भीर प्रवृत्ति के कठोर प्रोफेसर हैं जिनके पास आकलन के लिए बहुत कम थीसिस आते हैं। इस बार वह श्रीनगर में एक मौखिक परीक्षा हेतु आए हैं विभागाध्यक्ष प्रो. शर्मा मन ही मन शंकित है कि कहीं उनका कैन्डीडेट फेल न हो जाए अतः प्रो. भटनागर को प्रसन्न करने के लिए हर तरह का हथकण्डा अपनाते हैं पर प्रो. भटनागर टस से मस नहीं होते। मौखिक परीक्षा के समय जब परीक्षार्थी स्कॉलर, जो कि एक लड़की थी, भीतर आई तो प्रो. भटनागर को अचानक बीते दिन स्मरण हो आते हैं। उनका छात्र जीवन भी श्रीनगर में बीता था और यह लड़की जो कि विधवा थी उनके घर के सामने रहती थी इससे बतियाने का उनका मन बहुत होता पर वह अपनी निर्धनता को देखते उसे मात्र देख लेते थे। लड़की खामोश बैठी रहती है और भटनागर अनमने से, अचानक उन्हें लगता हे कि कोई प्रश्न करना चाहिए पर प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता तो प्रो. शर्मा लड़की पर खीझ उठते हैं कि भटनागर उन्हें समझाते हैं कि कभी मौन चिन्तन वार्ता से श्रेयस्कर होता है और इस तरह विभाग का थीसिस अप्रूव हो जाता है। संवेदनशील क्षणों की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है यद्यपि विभा और डा. भटनागर का मिलन बड़ी चमत्कारिक स्थितियों में हुआ है पर इसे संयोग कहा जा सकता है। भाषा चुस्त है और शिल्प रवानी लिए है। 'पीरियड से पहले' स्वभाविक है कि किसी कालेज अथवा शिक्षालय की बात होगी। नीता अध्यापिका है– युनिवर्सिटी के प्रांगण तक पहुंचते पहुंचते उसे

कितनी दुरूह स्थितियों का सामना करना पड़ता है पर ये दुरूहताए स्टाफरूम में भी उसका पीछा नहीं छोड़ती जब उसके दूसरे साथी उस पर फबतियां कसते रहते हैं। वह क्लास लेना चाहती है पर होली के हुडदंग में रंगी जाती है और अपने साथी अध्यापकों के ताने सुनने पड़ते हैं कि उसने न केवल खुद को रंग डाला अपितु उन्हें भी उसी स्थिति में लाने के लिए उत्तरदायी है।

यूनिवर्सिटी का माहौल, अध्यापकों का संकुचित व्यवहार और कुंचित सोच का यथार्थ चित्रण इस कहानी में हुआ है।

डा.राजकुमार की भी तीन कहानियां 'वेटिग रूम' 'पीले गुलाब' और 'फिलासफर' संकलित हैं। 'वेटिंग रूम' बस के अड्डे का जीवंत स्वरूप प्रस्तुत करती कहानी है। जहां बसचालकों, परिचालकों, सवारियों दूकानदारों और इस माहौल में पल रहे दूसरे लोगों का यथार्थ ख़ाका उभरता है। एक औरत को आकर्षित करने में चालक, परिचालक, सम्भ्रात व्यक्ति, अधेड़, बूढे सभी संलग्न हैं और औरत उन सबको उकसाती दिखती है। बाद में कुछ न बनता देखकर ड्राईवर और कंडक्टर उठ जाते हैं और महिला अकेली पड़ जाती है। कहानी परिवेशगत स्थितियों को उजागर करती है पर वैयक्तिक ब्योरे कहीं कहीं पर चुभते हैं। कथ्य बहुत संकुचित हो आया है। कहीं कहीं पर शब्दों के माध्यम से बिम्ब उभारे गए हैं–

'भक्तनुमा बुदबुदाहट' और 'औरत नोंच निगाह' का सिलसिला जारी था– एक वाक्य में एक ख़ाका उभर आता है और " वह कुछ कह रहा था, जिसे मैं सुन रहा था। मैं भी कुछ कह रहा था जिसे वह सुन रहा था, परन्तु समझ कोई नहीं रहा था," अच्छी पक्तियां कहीं जा सकती हैं।

दूसरी कहानी 'पीले गुलाब' में एक हस्पताल का दृश्य है। मुख्य पात्र अठारहवीं मरीज़ के प्रति आकर्षित हो जाता है। मरीज़ की बेटी उसके साथ घुलमिल जाती है और मरीज के जाने के बाद कभी हस्पताल नहीं आती तो वह बहुत अकेला महसूस करने लगता है। साधारण सी क़हानी है।

'फिलासफर' एक अच्छी कहानी कही जा सकती है जिसमें तीन पात्र हैं मालिक जो मकान मालिक है और मदन तथा अनुभा, पति, पत्नी मालिक के किराएदार। मदन और अनुभा में अनुभूतिपूर्ण क्षणों में बीच बीच में, कहीं ठण्डक पैठ पा जाती है कारण मदन का तटस्थ व्यवहार है अतः दोनों में कही एक तनाव घर कर गया है। मालिक जानता है और एक बार अपने विचार व्यक्त भी कर देता है–

"औरत भावुकता से भरपूर प्यार मांगती है मर्द शिथिल हुआ नहीं कि वह भटकी नहीं"। मालिक का यह कथन मदन को चुभ जाता है पर अनुभा मालिक के करीब आ जाती है। मदन पहले तो एक पति की तरह इस रिश्ते के बनता देख कुढ़ता है पर एक

दार्शनिक सोच उसे फिलास्फर बना जाती है। कहानी में मनोवैज्ञानिक स्थितियां उभरी हैं जो कहानी को सशक्त बना देती हैं।

ज्योतीश्वर पथिक द्वारा रचित तीन संकलित कहानियां हैं 'गीली दीवार' 'बनजारे' और 'दायरे'। पहली दो कहानियां आम सी कहानियां हैं जब कि 'दायरे' एक अच्छी कहानी है जिसमें बनते टूटते रिश्तों और पल पल में बदलते व्यक्ति के भावुक क्षणों की अभिव्यक्ति बड़ी सटीक हुई है। नागपाल परिवार की दो लड़कियों का स्वभाव एक दम भिन्न है। बड़ी लड़की कल्पना गंभीर प्रवृत्ति की है तो छोटी बहन प्रेरणा शोख मिजाज है। मुख्य पात्र प्रेरणा को चाहता है पर शादी कल्पना से कर डालता है और प्रेरणा जो बहुत स्फूर्त है बाद में एक साईस मास्टर के साथ बंध जाती है। सहज भाव से लिखी कहानी सम्बन्धों की अनेक परतों को खोलती चली जाती है।

रमेश मेहता कृत 'मृत्यु गन्ध' 'उखड़ने से पहले' और 'एक दीवार की दूरी' तीन कहानियां भी इस संकलन में संकलित हैं। 'मृत्युगन्ध' मृत्युबोध की कहानी है। मुख्य पात्र की पत्नी असमय मृत्यु को प्राप्त होती है और जो मृत्यु गन्ध कभी वह पुरी के सागरतट पर महसूस करता है अब घर पर भी करने लगा है। 'उखड़ने से पहले' साधारण सी कहानी है जिसमें मृत्यु आसन्न बूढ़े की गाली गलोज़ से तंग आ चुकी उसकी दो पोतियां मन ही मन उसकी मृत्यु की कामना करने लगती हैं। 'एक दीवार की दूरी' एक अच्छी कहानी है। पड़ोस में रहने वाला परिवार गृह कलह से दुःखी है। पिता अपनी बेटियों को और उनकी माँ को मारता है, तंग करता है और वे सब सहती हुई बिलखती रहती हैं उसका कोई उपाय नहीं करतीं। जब पड़ोसी इस बात को, सहानुभूतिपूर्ण हो कर पुलिस तक पहुंचना चाहता है तो वे उसे रोक लेते हैं तो मुख्यपात्र असमंझस में फंस जाता है। उसे लगता है कि यह कलह दीवार की दूरी लांघकर उसके यहां भी पहुंच जाएगी। अंतिम पंक्तियां प्रतीकात्मक कही गई हैं–

"पड़ोसी देश की लड़ाई मेरे अपने देश की सीमाएं लांघ आई है और दूरी को बनाए रखने वाली दीवार अब तक टूटने वाली है........................।"

सम्पादक ने इन कहानियों को 'मूड' की कहानियां कहा है वैसे तो हर कहानी रचनाकार के मूड पर ही स्थिर है पर अच्छा होता कहानियों के कथ्य और शिल्प पर कुछ कहा जाता। पुस्तक का गेटअप अच्छा बना है। प्रकाशन है युवा हिन्दी लेखक संघ का।

हिन्दी रंगमंच और नाटक

यह बहुत दुःखद स्थिति है कि हिन्दी नाटक में बहुत कम, लगभग नहीं के बराबर कार्य हुआ है। यद्यपि रेडियो नाटक के लिए अनेक नाट्यकर्मी लिखते रहें हैं पर मंचीय नाटक न के बराबर रहे हैं। नाट्यकर्मियों की यह शिकायत रही है कि या तो उन्हे दूसरी भाषाओं डोगरी, उर्दू, पंजाबी से रूपान्तर करना पड़ता है या फिर देश के दूसरे हिन्दी लेखकों की ओर देखना पड़ता है। ऐसा क्यों है? शायद लेखक बता सकें। पर मैं समझता हूं कि हर रचनाकार तुरन्त परिणाम चाहता है। चूंकि हिन्दी में यहां ऐसे आयाम नहीं के बराबर हैं मात्र रेडियो और दूरदर्शन के लिए लिख लेना नाकाफी है। मात्र आर्थिक लाभ के लिए लिखे गए नाटक कहां और कब तक लेखक को स्थापित कर पाएंगे इस सिलसिले में निरन्तर लिखने वालों में मात्र दो लेखक अभी तक सामने आए हैं। एक हैं मोती लाल क्यमू और दूसरे सुतीक्ष्ण आनन्दम् जिनके नाट्य आलेख अनेक मंचीय संस्थाओं द्वारा उपयोग किए गए हैं और उनके परिणाम बहुत आश्चर्यजनक रहें है। आईए पहले इस प्रदेश के रंगमंच की बात करें बाद में इन रचनाकारों के बारे में सोचें।

रंगमंचः जम्मू कश्मीर प्रदेश में रंगमंच की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है। शुरू शुरू में लोकमंच द्वारा ही विशेष अनुष्ठानों, पर्वों और मेलों में स्वांग आदि से समां बांधा जाता था। जम्मू में इन स्वांग कर्मियों की भाषा ठेठ डोगरी और कश्मीर में कश्मीरी रही है। लद्दाख में यह प्रक्रिया धार्मिक स्थानों, बौद्ध मठों और गोम्पाओं से जुड़ी रही है अतः जो भी धार्मिक अनुष्ठान होता उसमें मुखौटा नृत्य की भूमिका प्रमुख रूप से उभरकर सामने आती।

जम्मू में लोक रंगमंच के तीन प्रमुख रूप हमें मिलते हैं– ये है 'टड्ड' 'जागरणा' और 'भगतां' । **'टड्ड'** में अक्सर किसी वृद्ध की मृत्यु हो जाने पर उसके ससुराल वाले आकर उक्त मृत व्यक्ति का स्वांग रचते हैं। इसमें ससुराल की स्त्रीयां बढ़चढ़ कर भाग लेती हैं और गीत आदि के साथ नृत्य भी किया जाता है। कई बार पुरूष भी इस स्वांग में भाग लेते हैं। इस स्वांग का उद्देश्य शोक में डूबे परिवार को उस स्थिति से उभारना होता था । यह प्रचलन अब लगभग समाप्त प्राय है। कहीं दूर दराज गांवों में होता हो तो कहा नहीं जा सकता।

जागरणः यह एक लोक नाटक है जिसके सभी चालक व निदेशक स्त्रीयां होतीं हैं। लड़के की शादी में जब बारात चली जाती है तो घर में स्त्रीयां रह जाती हैं जो अनेक मुद्राएं बनाकर नाचतीं हैं, गाती हैं और अनेक बार बूढ़े, बूढ़ियां, समधिन के प्रेमी, जोकर आदि का स्वांग रचती हैं। अक्सर, दुल्हे के नानके की स्त्रीयां दुल्हे के दादके की स्त्रीयों

से छेड़खानी करती हैं और बदले में वैसा ही व्यवहार पाती हैं। चूंकि यह कार्यक्रम गई रात तक चलता रहता है अतः इसे 'जागरना' की संज्ञा दी जाती है। इस लोकनाटक की नाट्यकर्मी महिलाएं ही होती हैं और देखने वाली भी महिलाएं ही होती हैं, पुरुषों के देखने की मनाही होती है। यह लोकनाटक आज भी गांवों और कस्बों में प्रचलित है। कहीं कहीं पर नगरों में भी देखने को मिल जाता है।

भगतां:– तीसरा लोकनाटक जो जम्मू के कण्डी इलाकों में खेला जाता रहा है उसे भगतां की संज्ञा दी जाती है। भगतां के करदार, जिन्हें 'भगतिए' कहा जाता है, अनेक तरह के स्वांग रचते हैं। कुटिल नेता, सूदखोर, कपटी सामाजिक घटक तथा कथित समाजसुधारक, पाखंडी धर्म नेता आदि इन भगतयों के व्यंग्य एवं कटाक्ष का केन्द्रबिन्दु होते हैं। भगतां का एक रूप हिमाचल प्रदेश में भी प्रचलित है। इनके लिए कोई मंच की आवश्यकता नहीं होती अपितु किसी भी पठार, मैदान में ऊंचे स्थान पर इनका मंचन होता है। मेकअप भी साधारण कपड़ों, जटा–जूट, टोपी, रस्सियों की बनी चप्पलें आदि इनके वस्त्र हैं। और किसी निदेशक को निश्चित संवाद की आवश्यकता भी नहीं होती अपितु वार्तालाप में से स्वयं घट लेते हैं। कई बार इतने हाजिर जबाव होते हैं ये लोग कि दर्शकों को भी एक पात्र की तरह मिलाकर उन्हें उकसाते हैं कि वे कुछ कहें और बदले में अपना उपहास उड़ाएं। अक्सर दो भगतिए एक समय, मंच पर आते हैं। भगतां का लोक नाटक, रात्रि के समय, अलाव में खेला जाता है। अक्सर गांव का मुखिया अथवा स्वयं भगतिए अपनी ओर से प्रचार कर यह कार्यक्रम बनाते हैं। कई बार गांव अथवा कस्बे के लोग अथवा जिसके घर में कोई अनुष्ठान हो इन भगतियों को न्यौता देतें हैं । पर अब इसका प्रचलन खत्म होता जा रहा है।

उपर्युक्त स्थानीय लोकनाट्यों के अतिरिक्त प्रदेश से बाहर से अनेक रास मंडलियां यहां आती रही हैं। हमें याद है कि ब्रज से श्री कृष्ण लीला को मंचित करने अक्सर रास मंडलियां यहां आती थीं और इसी प्रकार राम लीला दर्शाने के लिए कई मंडलियां यहां आती रहीं हैं। लेकिन मंडलियों का मुख्य उद्देश्य पैसा बटोरना होता था। श्री गणेश पूजा और इष्ट देवताओं की पूजा के बाद पूजा की थाली दर्शकों में फेरी जाती थी जिसमें वे कुछ न कुछ यथाशक्ति डाल देते थे बाद में नाम ले लेकर दर्शकों को उकसाया जाता कि वे दस बीस रुपए किसी विशेष दृश्य पर दें अथवा किसी विशेष पात्र का कार्य देख कर अर्पित करें। इन मंडलियों द्वारा स्त्री का रोल भी पुरुष ही करते थे। बाद में इस प्रदेश में स्थान स्थान पर राम लीला क्लब बने और अनेक स्थानों पर रामलीला मंचित होने लगीं । बसोहली, गढ़ी, उधमपुर तथा जम्मू, दीवान मंदिर द्वारा मंचित रामलीलाएं इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन क्लबों द्वारा समय समय पर अनेक नाटक भी खेले गए।

जम्मू के प्रौढ़ विद्वानों, श्री प्रशान्त, विजय सुमन आदि के अनुसार जम्मू में 1860

के आस पास 'रघुनाथ कम्पनी' नामक एक संस्था स्थापित हो चुकी थी जिसे स्थानीय व्यवस्था की ओर से प्रोत्साहन था। श्री जितेन्द्र शर्मा के अनुसार (शीराज़ा पूर्णांक 39–40) श्री रामनाथ शास्त्री ने श्री चेतराम चोपड़ा और श्री निवास से मिलकर बहुत सी सूचनाएं इस कम्पनी के बारे में इकट्ठी की थीं कि इसका मंचन श्री रघुनाथ मंदिर के प्रागंण होता था। श्री प्रशान्त के अनुसार कम्पनी की आर्थिक सहायता धर्माथ ट्रस्ट के खातों से की जाती थी। बाद में इसे ही 'रघुनाथ थिएट्रिकल कम्पनी' में परिर्वतित कर दिया गया। पं0 गौरी शंकर के अनुसार स़र्वश्री सुखदेव, संतराम पलासर (संभवतया पराशर) ठाकर दास, गंगाराम , भगत जगतराम तथा इनके छोटे भाई देवी दास आदि कलाकार इसी कम्पनी की उपलब्धि कहे जा सकते हैं।

1898 ई0 में महाराजा हरिसिंह के मुण्डन संस्कार के समय बम्बई से विक्टोरिया कम्पनी का जम्मू में आगमन हुआ– यह फारसी थिएटर की सुप्रसिद्ध कम्पनी थी। इस कम्पनी को श्री धर्मचंद प्रशांत के अनुसार सरकारी खर्च पर जम्मू बुलाया गया था। इस कम्पनी ने जम्मू में ग्रीन हॉल में अनेक नाटकों का प्रदर्शन किया। श्री मोतीलाल क्यमू के अनुसार यह कम्पनी श्रीनगर भी भेजी गई और वहां पर भी इसने अनेक नाटकों का मंचन किया। यहीं से पारसी थिएटर का आगाज़ जम्मू कश्मीर में हुआ। परिणाम स्वरूप कश्मीर में आग़ा हश्र कश्मीरी द्वारा लिखित तथा निर्देशित अनेक नाटकों का मंचन किया गया। जम्मू में भी इसका प्रभाव पड़ा और दीवान बद्रीनाथ, श्री दीवान ज्वाला सहाय मंदिर के प्रांगण में मंच की स्थापना हुई। और साथ ही 'एमेचयोर क्लब' की स्थापना भी। "इस क्लब ने दीवान मंदिर रंगमंच पर अपने प्रथम नाटक चन्द्रावली का प्रदर्शन किया।".. .... "इस क्लब के निर्देशक श्री राम कृष्ण थ़े जो अभिनय कला में निपुण थे। वह उर्दू के सफल कवि भी थे और उनका उपनाम 'गाफिल' था.........इस क्लब के कुछेक कलाकार सचमुच बेजोड़ थे इनमें कैप्टन रामकृष्ण के अतिरिक्त सर्वश्री कृष्ण चंद कत्याल, बाल मुकुन्द, ज्ञान चंद कत्याल एवं घनश्याम के नाम विशेष रूप से उल्लेखीय हैं"

श्री जितेन्द्र शर्मा, शीराज़ा पूर्णांक 39–40

श्री मोती लाल क्यमू के अनुसार इसी क्लब द्वारा कुछेक नाटक जैसे चन्द्रावली, बिलवा मंगल आदि श्रीनगर में भी खेले गए। अर्थात यह क्लब 'दरवार मूव' के साथ श्रीनगर भी अपने खेल दिखाता रहा है।

इस क्लब के अतिरिक्त जम्मू में बाद में, फ्रैंड्स क्लब, कृष्ण ड्रैमेटिक क्लब आदि सामने आए पर 'एमेच्योर क्लब' का स्थान कोई क्लब नहीं ले सका। कालान्तर में इसी क्लब का 'सनातन धर्म नाटक समाज' के नाम से पुनर्जन्म हुआ जो अपना मंचन दीवान मंदिर मंच से ही करता रहा। आज भी यह क्लब सफलतापूर्व मंचन करता आ रहा है।

आजादी के बाद अनेक परिवर्तन हुए जिनमें रंगमंच की तकनीक पर भी प्रभाव पड़ा। फारसी थिएटर धीरे धीरे लुप्त होने लगा उसके स्थान पर आधुनिक रंगमंच उभर कर सामने आया। "जम्मू में 'पृथ्वी थिएटर' के कलाकारों ने उत्तर टाकीज में नवीन भावबोध ा के नाटक–पठान दीवार तथा अनहोनी नई तकनीक के साथ प्रस्तुत किए। धीरे धीरे जनता ने अपने प्रांत की भाषा की उन्नति की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया।" (वही पृ0 43)

कल्चर अकादमी के वजूद में आने के साथ साथ लगभग 1965 से लेकर 1977 तक नाटक समारोहों में अनेक स्थानीय लेखकों द्वारा हिन्दी में नाटक लिखे गए और मंचित भी किए गए। इन नाटकों में दीनू भाई पंत द्वारा रचित 'स्वर्ग की खोज' को कल्चरल फोरम वे अभीनीत किया, एवं नरेन्द्र खजूरिया कृत 'रास्ता, कांटे और हाथ' भारत कला मंदिर ने, तथा 'धरती और हम' रामकुमार अबरोल कृत नाटक को 'जम्मू आर्टस क्लब' ने अभिनीत किया।

1969 में श्री कवि रत्न अकादमी में ड्रामा इंस्ट्रक्टर के पद पर नियुक्त हुए तो अकादमी की रंगमंचीय गतिविधियों में जान आई। इन्होनें स्थानीय कलाकारों को लेकर राष्ट्रीय स्तर पर अनेक नाटककारों के नाटकों को सीधे या अनुवाद कर मंचित किया पर खेद की बात यह है कि किसी भी स्थानीय़ नाटककार का नाटक इनमें नहीं था।

रंगमंचीय सस्थाओं में जो इस ओर कार्यरत रहीं हैं और अभी भी इनमें कुछ कार्य कर रही हैं में बहुरंगी, नटरंग, अमेच्योर थिएटर ग्रुप, रंगमंच, डुग्गर मंच आदि चर्चित हैं। इन संस्थाओं में बहुरंगी ने शुरू शुरू में काफी हलचल पैदा की पर धीरे धीरे सब सुस्त पड़ गए। नटरंग ने 'बाडी थिएटर' की शैली को अपना कर कुछ बहुत अच्छे नाटक मंचित किए जिनमें 'चौराहा', 'और गान्धी भर गया', 'महाभोज' और 'बावा जित्तो' प्रमुख हैं। इन नाटकों के माध्यम से इस संस्था ने अपना वजूद स्थापित किया। अमेच्योर थिएटर ग्रुप के सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कृत बकरी और बच्चों द्वारा अभिनीत 'अंधेर नगरी चोपट राजा, विशेष उपलब्धियां हैं।

इन संस्थाओं से जुड़े अनेक कलाकार हमारे सामने आते हैं बलवंत ठाकुर, कलसी मुश्ताक काक, दीपक कुमार, मोहन सिंह, सच्चर, सुरेश शर्मा, युगल कौल, संजीव कु. थापा, श्रीमती सुदेश कुमारी, आशा अरोड़ा आदि जो रंगमंच के स्थापित हस्ताक्षर हैं। मज़े की बात यह है कि नौवें दशक में जम्मू से अनेक प्रतिभाएं राष्ट्रीय स्तर के आयोजनों में भी आमंत्रित की जाने लगी थीं। इनमें बलवंत ठाकुर तो संगीत नाटक अकादमी की अनेक योजनाओं में भाग लेते रहे हैं। इनके इलावा मुश्ताक काक और दीपक कुमार ने भी, राष्ट्रीय स्तर के समारोहों में भाग लिया है। इन नाटककर्मियों द्वारा हिन्दी में भी अनेक

मंचन किए जाते रहे हैं जो सराहे गए हैं। स्थानीय नाटकारों की डोगरी रचनाओं का हिन्दी में रूपान्तर कर उनका सफल मंचन भी किया गया है। परन्तु खेद की बात है कि हिन्दी में मौलिक प्रयास न के बराबर हुआ है।

हिन्दी साहित्य मंडल द्वारा प्रकाशित मधुरिमा का अंक 21,1992 रंगमंच को समर्पित है। इसमें स्थानीय कुछ रंगकार्मियों सर्वश्री कविरत्न, बलवंत ठाकुर, दीपक कुमार और मोहन सिंह से किए गए साक्षात्कारों पर आधारित उनके परिचय दिए गए हैं। जम्मू के रंगमंच पर प्रो0 रीता जितेन्द्र कृत लेख के साथ साथ नाट्य कला संसार, रंगमंच और दूरदर्शन, रंगमंच की प्रकृति, प्रतीकवादी रंगमंच , और अंत में मनोज शर्मा कृत एक लघुनाटक , 'एक आदिम चीख' आदि संकलित हैं। रंगमंच और नाटकों से जुड़ी पत्रिकाओं की सूची और नुक्कड़ नाटक से जुड़ी संस्थाओं का पता दिया गया है। हिन्दी साहित्य मंडल का यह प्रयास सचमुच एक अच्छा प्रयास है। आवरण और छपाई बहुत बढ़िया है। रंगकर्म पर निरन्तर पत्रिका निकालने का साहस यह संस्था कर सकी यह उसकी सामर्थ्य की ओर संकेत करता है। पर इस पत्रिका में एक कमी खलती है कि किसी भी स्थानीय नाटककार या लेखक का परिचय अथवा साक्षात्कार इसमें नहीं दिया गया है। क्या हम यह मानकर चलें कि यहां कोई नाटककार है ही नहीं। हैं दो एक उनकी बात हम कर रहे हैं।

कश्मीर में रंगमंच का आगाज़ यद्यपि कश्मीरी फोक थिएटर से माना जाता है जो सदियों से गांवों कस्बों आदि में खेला जाता रहा है। इसका मुख्य रूप हमें भांड पाथर में मिलता है पर आधुनिक थिएटर ' पारसी थिएटर' से शुरू माना जाता है। 1924 के आसपास विभिन्न रास मंडलियों का यहां आना हुआ था इनमें सावनमल्ल की रास मंडली विशेष तौर पर चर्चित हुई। ये मंडलियां विभिन्न स्वांग मंच पर रचती और नकलों के माध्यम से विषय को आगे बढ़ाया जाता था। पारसी थिएटर को ही आधार मानकर कश्मीर में 'अमेच्योर ड्रैमेटिक क्लब' की स्थापना 1924 में हुई और पहला नाटक 'सुदामा चरित' खेला गया। इसे आग़ा हश्र कश्मीरी ने लिखा था। इस क्लब की सरपरस्ती स्वयं महाराजा प्रताप सिंह कर रहे थे और उनके बाद महाराजा हरि सिंह इस क्लब के सरपरस्त बने। इस क्लब के साथ बड़ी बड़ी हस्तियां जुड़ी हुई थी। मसलन इस क्लब के प्रधान श्री अमर नाथ पूर्वी थे जो उस समय कस्टम के विभाग में आई0 जी0पी0 थे। निदेशक थे कैप्टन राम कृष्ण, स्टेज मैनेजर श्री चेत राम चोपड़ा और संगीत निदेशक थे मास्टर झण्डे खान। अक्सर इस क्लब द्वारा आग़ा हश्र कश्मीरी द्वारा लिखे नाटक मंचित किए जाते रहे हैं। मुख्य नाटकों में 'खूबसूरत बला,' 'अछूत की लड़की शारदा,' 'महाभारत,' 'बावफा क़ातिल,' 'वीर अभिमन्यु,' 'दानवीर कर्ण' आदि लिए जा सकते हैं। यह क्लब 1937 तक अपने कार्यक्रम देता रहा और दर्शकों की भीड़ इन नाटकों को

देखने उमड़ आती थी। धीरे धीरे दूसरे लेखक भी अब उभरने लगे थे। इसके साथ साथ अनेक नए क्लब भी अब मैदान में आ चुके थे जिनमें से सरस्वती ड्रैमेटिक क्लब, फ्रेंड ड्रैमेटिक क्लब, कश्मीर थिएटर, हिमालय थिएटर, नेशनल थिएटर आदि। इन क्लबों द्वारा पं0 नारायण प्रसाद बेताब द्वारा रचित 'कृष्ण सुदामा' और 'पत्नी प्रताप' आदि नाटक खेले गए।

'कश्मीर हमारा' नाटक तो खूब चर्चित हुआ। इसे द्रावियार क्लब ने सैनिकों के लिए कई स्थानों पर खेला। यह नाटक सुदामा कौल द्वारा लिखा गया था। दूसरे चर्चित नाटकों में 'समाज की भूल' और 'चित्र' लिए जा सकते हैं इन दोनों नाटकों के लेखक थे श्री त्रिलोकी नाथ वैश्नवी 'रफीक' और इन्हें उक्त क्लबों ने 1945, 46 में खेला। एक और नाटक बहुत चर्चित हुआ विशेषकर छात्रों और छात्राओं में यह था सुदामा कौल द्वारा रचित 'शंकर पार्वती'। इन नाटकों में आश्चर्यजनक 'ट्रिक सीन' दिए जाते थे मसलन शिव लिंग का बीच में टूटना और भगवान शिव का उसमें से प्रकट होना आदि। इन आश्चर्यजनक दृश्यों को मास्टर काशी नाथ सुनियोजित करते थे।

जम्मू में उन दिनों एक नाटककार का नाम आता है जिसके कई नाटक कश्मीर में खेले गए यह थे, श्री नूर इलाही जो उन दिनों वजीरे वजारत के ओहदे पर कार्य कर रहे थे। इनकी दो नाटकों की पुस्तकें भी बाद में प्रकाशित हुईं तख्ते ताउस और महाबली। जम्मू में एक प्रसिद्ध प्रकाशन घर था, राज महल, प्रकाशन। पहली पुस्तक वहीं पर प्रकाशित की गई और दूसरी पुस्तक उर्दू बुक स्टाल लाहौर से छाया हुई थी। इन दोनों पुस्तकों की भाषा उर्दू थी सरल उर्दू जिसे उन दिनों हिन्दुस्तानी की संज्ञा दी जाती थी।

इस लेख को सम्पन्न करने से पहले आग़ा हश्र कश्मीरी द्वारा लिखे हुए एक नाटक 'यहूदी की बेटी' का ज़िक्र करना बहुत जरूरी हो जाता है क्योंकि इस नाटक को अनेक क्लबों द्वारा खेला गया कि बाद में आग़ा हश्र कश्मीरी ने लाहौर में जाकर इस पर एक फिल्म भी बनाई थी। यह फिल्म भी अच्छी खासी चर्चित फिल्मों में से एक थी। इस फिल्म के बाद तो आग़ा हश्र साहब लाहौर में ही फिल्म संसार में ऐसे रच बस गए कि थिएटर की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया लेकिन कश्मीर के रंगमंच के लिए उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। यह बात अलग है कि वे स्वयं कश्मीरी नहीं थे। कभी उनके पुरखे कश्मीर में रहते रहे होंगे पर उनका कश्मीर में प्रवास बहुत कम रहा है।

इस प्रकार कश्मीर में रंगमंच की नींव लगभग 1924 में पड़ी थी। स्वतंत्रता के बाद अनेक रंगकर्मी इस क्षेत्र में जुड़े और रंगमंच को अनेक नए आयाम दिए। इनकी चर्चा हम आगे कर रहे हैं।

नाटककार सुतीक्ष्ण आनन्दम्: जम्मू कश्मीर में हिन्दी मंचीय नाटक रेडियो नाटक, एकांकी आदि में नितान्त अभाव रहा है। अक्सर यहां की रंगमंचीय संस्थाएं नाटकों के आलेख के लिए प्रदेश के बाहर देखती हैं। पर इस अभाव में सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम्' ने अपना स्थान बनाया है। रंगमंचीय पूर्ण नाटक, रेडियो नाटक, एकांकी आदि निरन्तर इस प्रदेश को आनन्दम् ने दिए हैं। रेडियो नाटकों के लेखक के रूप में सुतीक्ष्ण विशेष तौर पर जाने जाते है। इनके लिखे अनेक हिन्दी नाटक आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं। रेडियो नाटकों में 'आखरी पन्ने' और 'मुट्ठी भर धूप' उदाहरण स्वरूप लिए जा सकते हैं। इन नाटकों में सामाजिक विघटन, टकराव और यथार्थ परक स्थितियों से आदर्शोन्मुख चेतना की और अग्रसर कथानक सुखान्त कलेवर लेकर सम्पन्न होता है। 'आखरी पन्ने' में एक निस्वार्थ युवक की कहानी है जो एक रोगी होते हुए भी अपना एक गुर्दा दान में दे देता है और बदले में कुछ स्वीकारता नहीं इसी प्रकार 'मुट्ठी भर धूप' में दो ऐसे आदर्शोन्मुख युवाओं की कहानी है जो विभिन्न आर्थिक धरातलों पर टिके रह कर भी सामान्य मानवीय धरातल तलाशते हुए एक दूसरे से एंकाकार हो जाते हैं। इन नाटकों का प्रवाह सहज एवं गतिशील है। सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् के मंचीय नाटकों में समाजपरक सत्य की तलाश है। 'सांझे मंच पर' 1975 में प्रकाशित त्रिदृश्यीय इस नाटक में अनेक पात्रों के बीच सत्य के संधान में लगे एक पागल का चरित्र केन्द्रीय भाव कहा जा सकता है। इस पात्र के माध्यम से लेखक ने अपने आदर्शोन्मुख विचार रखे हैं– । "सत्य सदा ही सत्य रहता है।" सत्य का खण्डन करने के भले ही यत्न होते रहे बीच में एक पात्रा भिक्षुणी भी आती है जिसके माध्यम से लेखक ने शायद दुःखती रग को छेड़ा है :–"सत्य ही मस्तिक का धर्म है"

"आप सब में जीवन का संचार तभी सम्भव है जब आप सही व्यक्ति को उसका प्राप्य प्रदान करें ।" लेखक को नाटककार के रूप में उचित पहचान नहीं मिली है इस ओर प्रबुद्ध लेखक स्व. सुभाष भारद्वाज ने नाटककार की रचना प्रकिया, नाटकों का विश्लेषण करते हुए, एक स्थानीय समाचार पत्र में संकेत किए हैं–

"जम्मू में पिछले दिनों आयोजित एक नाट्य कार्यशाला में.........जो विशेष लेख पढ़े गए उनमें आनन्दम् नाम तक का उल्लेख न देख कर बहुत दुःख हुआ । जम्मू के कुछ फर्मायशी समीक्षक इस स्पृहनीय व्यक्ति का नामोल्लेख तक से न जाने किस आंतरिक विवशता के कारण कतरा जाते हैं।" *त्रिकुटा एक्सप्रेस, 22.7.86. अंक।*

इसी प्रकार आनन्दम् द्वारा रचित 'ताकन लागे काग', में हरिश्चन्द्र की कथा को आधुनिक सन्दर्भ में पिरोया है तो 'मगर यह सच है' में भ्रष्टाचार में निमग्न सत्ता के रखवाले पुलिस कर्मियों का यथार्थ चित्रण हमें मिलता है। 'मुंडू' में नगरीय परिवेश की अकर्मन्यता , नौकरों पर निरर्भ विषय पर एक तीखा कटाक्ष है। अनके इलावा 'आहत

स्वर', 'कच्चे पक्के धागे', 'टूटा हुआ आदमी' आदि नाटक आनन्दम् को एक नाटककार के रूप में स्थापित करते हैं। आनन्दम् के कई नाटकों का सफल मंचन हुआ है। सूचना विभाग, जम्मू कश्मीर सरकार द्वारा आयोजित नाटक समारोह में आनन्दम् द्वारा रचित नाटक 'सांझा मंच' का सफल मंचन 1976 में किया गया। 1986 में जम्मू कश्मीर कलचरल अकादमी द्वारा आनन्दम् द्वारा रचित 'हां पिता जी' नाट्यालेख को पुरस्कृत किया गया। 1984 में जम्मू कश्मीर कलचरल अकादमी ने ही इनकी नाटकों की एक पुस्तक पर उत्तम कृति के रूप में पुरुस्कृत कर आनन्दम् को सम्मानित किया था।

हिन्दी के इलावा डोगरी में भी इनके अनेक नाटक प्रसारित एवं पुरुस्कृत हो चुके हैं।

मोती लाल क्यमू : जम्मू कश्मीर के प्रतिष्ठित नाटककारों में एक नाम है श्री मोती लाल क्यमू का। 24.6.1933 को श्रीनगर में जन्मे मोती लाल क्यमू कत्थक और ड्रैमैटिक्स में शिक्षा ग्रहण कर कार्यक्षेत्र में उतरे। कलचरल आकदमी के जम्मू परिसर से अतिरिक्त सचिव पर से सेवानिवृत होकर सम्प्रति स्वतंत्र लेखन । इनके प्रकाशित संग्रहों में 'तीन असंगत एकांकी' , 'त्रुनोव और छाया' किसी न किसी रूप में मंचित हो चुके हैं। मोती लाल क्यमू व्यंग्य और कटाक्ष के माध्यम से अपनी नाट्य सृष्टि करते हैं जो धीरे धीरे, मंथर गति से अग्रसर होता हुआ अंत में एक विस्फोट का रूप ग्रहण कर जाता है और पाठकों के सम्मुख सारी स्थितियां स्पष्ट होने लगती हैं। यह स्वयं भी बहुत अच्छे नाट्यकर्मी रहे हैं।

महेश शर्मा: हिन्दी में नाटक लिखने वालों में एक नाम महेश शर्मा का भी लिया जाता है। इनकी एक नाटक कृति तमाशा पुतली का प्रकाशित हो चुकी है।

निबन्ध साहित्य

हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में सबसे लोकप्रिय विधा निबन्ध रही है। इस विधा में लिखा गया प्रचुर साहित्य इस प्रदेश में भी उपलब्ध है। स्वतन्त्रता से पहले और बाद में भी निरन्तर इस विधा में कार्य हुआ है। कारण चाहे कोई भी हो पर एक बात निश्चित है कि इस विधा में अक्सर सभी लेखक लिखते आ रहे हैं – चूंकि इस तरह के लेखन में कोई विशेष बन्धन या विशेष शिल्प का अनुशासन नहीं होता, और यदि कोई परिधि है भी तो इतनी शूक्ष्म कि उसका स्थूल रूप हमें नहीं दिखता अतः इस विधा पर सर्वाधिक कार्य हुआ है।

निबन्ध के अन्तर्गत लेख संदर्भित ब्योरे, आत्म कथ्य, बाह्य स्थितियों का विवेचन, संस्मरण आदि लिए जा सकते हैं। विषय के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। साहित्यिक, विवेचनात्मक, सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक निबन्ध आदि और यदि निबन्ध लालित्य लिए हो तो उसे हम ललित निबन्ध की परिधि में रखते हैं।

चूंकि निबन्धकारों की भाषा, शैली, विषय नियोजन, शिल्प और विशलेषण अपनी अपनी विशेषता लिए होता है अतः इसी आधार पर इन निबन्धों का आकलन भी किया जाता है।

किसी भी पत्रिका अथवा पत्र के प्रकाशन के साथ निबन्ध, लेख स्वतः ही अपना स्थान पा जाते हैं। अतः इन पत्रिकाओं और पत्रों के प्रकाशन के साथ इनका इतिहास जुड़ा है। इन छुटपुट प्रयासों के साथ साथ कुछ निबन्धकारों ने अपने निबन्धों को पुस्तकाकार में भी संजोया है। श्री मोहन कृष्ण द्वारा रचित 'केसर के फूल' और 'चिनार के पत्ते' प्रो. चमन लाल सप्रू द्वारा रचित 'संतूर के स्वर' और 'कमल' प्रो. देवरत्न शास्त्री द्वारा रचित 'अभिव्यक्ति' ,श्री श्यामलाल शर्मा द्वारा रचित 'निबन्धाबली' डॉ0 वेदघई कृत 'निबन्धावली' आदि इस संदर्भ में निबन्ध संग्रह लिए जा सकते हैं। रमेश मेहता द्वारा सम्पादित एक मात्र ललित निबन्धों का संग्रह 'शब्द जो तुमने दिए' इस ओर एक अच्छा प्रयास है। इन संग्रहों पर चर्चा बाद में होगी पहले विषय के आधार पर रचित निबन्धों पर हुए कार्य का आकलन किया जाए। प्रकाशित हिन्दी निबन्ध अधिकतर साहित्य और लोक संस्कृति विषयों को लिए हुए हैं।

साहित्यिक विषयों को लेकर जहां शोधपूरक लेख शीराज़ा हिन्दी, नीलजा, वितस्ता, मन्तव्य, घोषवती, मधुरिमा, योजना, डुग्गर समाचार आदि स्थानीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं वहां पर कुछ विद्वतापूर्ण लेख, निबन्ध, स्थानीय लेखकों के, राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणों में भी पढ़ने को मिलते रहे हैं। इन पत्रिकाओं में मधुमती, आजकल, हिमप्रस्थ, विपाशा, संस्कृति, कादम्बिनी जागृति, हरियाणा संवाद, उत्तर प्रदेश, समकालीन साहित्य, इन्द्रप्रस्थ भारती, सोमसी, साप्ताहिक आदि पत्रिकाएं और जनसत्ता, दैनिक हिन्दुस्तान, नवभारत टाईम्स, आज, अमर उजाला, दैनिक जागरण, स्वतंत्र भारत, दैनिक ट्रिब्यून, दैनिक कश्मीर टाईम्स आदि समाचार पत्रों के साहित्यिक अंक इस बात के गवाह हैं। प्रो. सुभाष भारद्वाज, डॉ0 ओम गुप्त, डॉ0 वेदघई, डॉ0 निजामुद्दीन, प्रो0 रतन लाल शान्त, डॉ0 देवराज बाली, डॉ0 अनिल गोयल, कृष्णा रैणा डॅा0 भूषण लाल कौल, प्रो. कशीनाथ दर, परमानन्द शास्त्री , डॅा अशोक जेरथ आदि इस संदर्भ में कुछ नाम लिए जा सकते है जिन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेख, निवन्ध लिखे हैं और प्रकाशित होते रहे हैं।

प्रो. पृथ्वी नाथ पुष्प विद्वान लेखक हैं, इनके अनेक लेखों की विशेषता प्रकाण्ड पांडित्य और सटीक अनुशीलन है। इनके अनेक लेख स्थानीय पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। प्रो. राम नाथ शास्त्री हिन्दी और डोगरी के विद्वान साहित्यकार हैं। इनके लेख सारगर्भित और सूचनात्मक होते हैं– 'परम्पराएं ' साक्षर प्रवेशांक 'नई जवान लेखनियों' निस्तंद्र जम्मू अंक और शीराज़ा तथा हमारा साहित्य में प्रकाशित अनेक लेख इस ओर संकेत करते हैं। सुभाष भारद्वाज ने जम्मू की कविता को लेकर तीन चार लेख लिखे हैं जो इनकी मौलिकता की ओर संकेत करते हैं। डॉ0 ओम गुप्त का कार्यक्षेत्र कविता है जिसमें इनकी पहचान अभूतपूर्व है। जम्मू कश्मीर की काव्य प्रवृत्तियों तथा रचनाकारों को लेकर इनके अनेक लेख शीराज़ा और हमारा साहित्य में प्रकाशित हुए हैं। डॉ0 वेद घई विदूषी महिला हैं और संस्कृत साहित्य की अध्येता। संस्कृत साहित्य के आचार्यों तथा संस्कृत साहित्य के विभिन्न आयामों पर इनका पारखी के रूप में कार्य प्रशंसनीय है। डॉ0 निजामुद्दीन हिन्दी के विद्वान लेखक और समीक्षक हैं। जम्मू कश्मीर में हिन्दी पत्रकारिता और स्थानीय हिन्दी रचनाकारों के कार्य पर इनके अनेक लेख शीराज़ा, योजना, वितस्ता, नीलजा आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। प्रो. रतन लाल शान्त एक प्रभुद्ध आलोचक हैं अतः इनके लेखों में सूक्ष्म विश्लेषण तथा साहित्यिक कृतियों का आकलन मौलिक धरातल पर हुआ है। डा0 कृष्णा रैणा कथा साहित्य की मर्मज्ञ हैं तो डॉ0 शिबन कृष्ण रैणा, डॉ0 भूषण लाल कौल तथा प्रो0. काशीनाथ कश्मीरी साहित्य के विद्वान हैं अतः इनकी रचनाओं में कश्मीरी साहित्य के कवियों मकबूल शाह, लक्ष्मण जू रैणा 'बुल बुल', रहमान राही अब्दुल अहद आज़ाद, मिर्जा गुलाम हसन बेग आदि कवियों की चर्चा हमें

मिलती है। प्रो0 हरिकृष्ण कौल, डॉ0 अनिल तथा डॉ0 अशोक जेरथ कथा साहित्य के मर्मज्ञ हैं इनके कुछ लेख तथा टिप्पणियां हिन्दी कथा साहित्य को लेकर विभिन्न पत्रिकाओं में उभरी हैं । डॉ0 देवराज बाली दर्शन के विषय पर लिखतें हैं तो प्रो0 परमानन्द शास्त्री दैविक ग्रन्थों के अध्येता हैं अतः इनके लेखों में शास्त्रीय ज्ञान का अजस्र भण्डार हमें मिलता है। डॉ0 जेरथ के निबन्ध साहित्य की विभिन्न विधाओं से जुड़े हैं। बंगला, डोगरी, हिन्दी और पाश्चात्य साहित्य के अनेक पक्षों पर इनके लेख स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

दूसरा मुख्य विषय इन निबन्धों का है संस्कृति एवं लोक संस्कृति। जम्मू कश्मीर प्रदेश मुख्यतः तीन खित्तों में बंटा है– जम्मू, कश्मीर और लद्दाख इन तीनों उपप्रदेशों की अपनी लोक संस्कृति है, एक दूसरे से बिल्कुल अलग। जम्मू के क्षेत्र को डुग्गर प्रदेश की संज्ञा दी जाती है। इसकी बड़ी विशद सांस्कृतिक धारा है। इस पर यथेष्टकार्य भी हुआ है। वैयक्तिक तौर पर भी पुस्तकें लिखी गई हैं। प्रो0 शिव निर्मोही द्वारा रचित लोक गाथाओं और डुग्गर के लोक देवताओं तथा लोक संस्कृति के अनेक पक्षों पर चार पुस्तकें रची गईं हैं। इनके इलावा 'हमारा साहित्य' और शीराज़ा के अंको में भी इन विषयों पर इनकी छुटपुट रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। डॉ0 प्रियत्तम कृष्ण कौल ने भद्रवाही लोक संस्कृति पर कार्य किया है तो ओम गोस्वामी द्वारा 'डोगरी लोक कथाओं में भाग्य की देवी, विद्धमाता' (हमारा साहित्य 1975) 'बलि और बलिदान डोगरी लोकगीतों के सन्दर्भ में' (हमारा साहित्य 1979) 'डुग्गर कुल देवता' (हमारा साहित्य 1980 आदि लेख प्रकाशित हुए हैं। डॉ0 गंगा दत्त विनोद ने डुग्गर के रीतिरिवाजों और विवाह विधि पर लेख लिखे हैं (शीराज़ा जून 1974) प्रो. रामनाथ शास्त्री द्वारा पंजाबी और डोगरी टप्पा (हमारा साहित्य 1975) प्रो.देवरत्न शास्त्री द्वारा डोगरी लोकगीतों में वनस्पति प्रतीक (हमारा साहित्य 75) श्री विश्वनाथ खजूरिया द्वारा डुग्गर के लोकनाचों पर दो एक लेख प्रकाशित किए गए हैं (हमारा साहित्य 1980) डॉ0 चम्पा शर्मा तथा डा. वीणा गुप्ता द्वारा भी छुटपुट लेख इस विषय पर लिखे गए हैं। श्री जितेन्द्र शर्मा ने लोक रंगमंच पर अच्छा कार्य किया है (हमारा साहित्य 76 अंक) डॉ0 वेद घई द्वारा रचित डोगरी लोकगीतों पर नाथ पंथ का प्रभाव एक अच्छा लेख है। इनके इलावा डॉ0 सत्य पाल श्रीवत्स द्वारा रचित भारत के संस्कृतिक मानचित्र पर प्राचीन डुग्गर का स्वरूप (शीराज़ा पूर्णांक 94) एक अच्छा सूचनाप्रद लेख है। डॉ0 अशोक जेरथ द्वारा डुग्गर की संस्कृति को लेकर अनेक क्षेत्रों में कार्य हुआ है। पणघट के पत्थर, लोकगाथा, डुग्गर संस्कृति के वाहक रूमाल एवं चोलियां, डुग्गर के लोकगायक, डुग्गर की लोककलाएं आदि। इनकी रचनाएं, लोक संस्कृति पर शीराज़ा और हमारा साहित्य के साथ साथ सोमसी, विपाशा, कादम्बिनी, अमर उजाला, स्वतन्त्र भारत, आज, जागृति, दैनिक जागरण अमृत प्रभात, दैनिक हिन्दोस्तान, जनसत्ता,

हिमप्रस्थ आदि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। इस क्षेत्र में सूरज सराफ का भी कार्य प्रशंसनीय है। इनके लेख योजना, डुग्गर समाचार तथा अनेक समाचार पत्रों में छपते रहते हैं।

कश्मीरी लोक संस्कृति को लेकर अनेक विद्वानों के लेख योजना, शीराज़ा, नीलज़ा, हमारा साहित्य आदि में प्रकाशित हुए हैं। इन विद्वानों में प्रो. चमन लाल सप्रु कृत कश्मीरी लोकगीत एक परिचय (शीराज़ा, पूर्णांक जून 1976) नाग, हमारा साहित्य 1964, डॉ० शिवन कृष्ण रैणा द्वारा कश्मीर का लोकसाहित्य, शीराज़ा 1959 कश्मीरी लोकगीतों का संकलन तथा अध्ययन कार्य (शीराज़ा सित0 1971) कश्मीरी संगीत धारा (हमारा साहित्य 1967)आदि। इस क्षेत्र में एक नाम है श्री अवतार कृष्ण राज़दान का जिन्होंनें अनेकों अभावों के बावजूद बहुत अच्छा कार्य किया है– 'कश्मीर में नृत्य–इतिहास के दर्पण में' शीराज़ा, पूर्णांक 44, कश्मीर के केसर कुसुम (योजना, दिसम्बर, 89) 'कश्मीरी ललित कलाएं,' 'कुछ प्रवृत्तियां' (हमारा, साहित्य 1980) प्राचीन ग्रंथों में कश्मीर (हमारा साहित्य 1974) कश्मीर सुफियाना संगीत (शीराज़ा, मार्च 1975) ईश भट्ट, गुप्त गंगा (योजना अप्रैल, 1989) आदि लेख इसकी ओर संकेत करते हैं। श्री अग्नि शेखर का भी इस ओर यथेष्ट कार्य है। इनके लेख 'कश्मीरी कोसनों का समाज शास्त्र' (शीराज़ा, जून 86) तथा कश्मीरी लोकोक्तियों में वर्णित भट्टों का चारित्रिक संदर्भ – शीरज़ा, दिसम्बर 83 सूचनाप्रद रहे हैं। श्री मोती लाल क्यमू द्वारा रचित लेख कश्मीर में देवदासी नृत्य (शीराज़ा, अक्तूबर 90) तथा कश्मीर के लोकनृत्य (शीराज़ा, जनवरी 79) तथा कश्मीर लोक नाट्य परम्परा (शीराज़ा, पूर्णांक 80) डा0 प्राणनाथ तृच्छल द्वारा लिखित कश्मीर लोक साहित्य में बहु बेटी (हमारा साहित्य, 1978) जवाहर लाल हण्डु द्वारा रचित कश्मीरी लोकगीतों में प्रकृतिचित्रण (शीराज़ा, 1965) शशि शेखर तोषखानी द्वारा रचित नदी नाव माझी और कश्मीरी लोक जीवन, हमारा साहित्य 1975 आदि लेख उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। इस ओर डॉ0 बृजप्रेमी, श्री पृथ्वी नाथ मधुप, श्री अर्जुनदेव मजबूर आदि के भी छुटपुट लेख प्रकाशित हुए हैं। लद्दाख की संस्कृति को लेकर यद्यपि अंग्रेजी और उर्दू में पर्याप्त कार्य मिलता है पर हिन्दी में बहुत कम कार्य इस ओर हुआ है। इसके बरक्स लोग लदद्राख के बारे में बहुत कुछ जानने को उत्सुक हैं। दो नाम मुख्य रूप से इस क्षेत्र में उभर कर सामने आए हैं – छेवांग रिगजिन और डा. प्रेमसिंह जीना। छेवांग रिगजिन स्वयं लद्दाखी हैं अतः इस ओर इनका कार्य प्रामाणिक है। इनके लेख लोसर (शीराज़ा, पूर्णांक 44) तथा लद्दाखी भाषा और साहित्य का परिचय (शी0, अंक 44) अच्छे सूचनाप्रद लेख हैं। डॉ0 प्रेमसिंह जीना लद्दाख में किसी संस्थान से जुड़े है। इनके दो लेख–लद्दाख में थंका का उद्‌भव और विकास (शीराज़ा, पूर्णांक 94) तथा लद्दाख में बौद्ध कला का उद्‌भव और विकास (शीराज़ा, पूर्णांक 106) प्रकाशित हुए हैं। डा0 अशोक जेरथ

द्वारा लद्दाख की संस्कृति पर रचित बारह लेखों की एक सचित्र श्रृंखला दैनिक ट्रिब्यून के इलावा कादम्बिनी , अमर उजाला, स्वतंत्र भारत आदि में भी लद्दाखी संस्कृति पर इनके लेख प्रकाशित हुए हैं।

चित्रकला, स्थापत्य तथा मूर्तिकला को लेकर भी अनेक लेख एवं स्वतंत्र निबन्ध लिखे गए हैं। इनके लेखकों में स्व0 श्री विधारत्न खजूरिया, श्री सूरज सराफ और डॉ0 अशोक जेरथ मुख्य तौर पर लिए जा सकते हैं। श्री विधारत्न खजूरिया का क्षेत्र चित्रकला और मूर्तिकला रहा है। इनका एक लेख बसोहली चित्र में लोकपरम्परा (हमारा साहित्य 1975) एक अच्छा रोचक लेख है। श्री सूरज सराफ ने स्थायत्य तथा मूर्तिकला विषयों पर अनेक लेख लिखे हैं। इनके लेख योजना, डुग्गर समाचार, दैनिक ट्रिब्यून, नवभारत टाइम्स आदि पत्रिकाओं और पत्रों में छपते रहे हैं। डॉ0 अशोक जेरथ द्वारा चश्मों के कलात्मक पत्थरों तथा तघुचित्र कला पर काफी कार्य किया गया है। इनके द्वारा रचित लघु चित्रकला पर लेखों की एक श्रृंखला जनसत्ता दिल्ली में प्रकाशित हुई है और अनेक लेख सोमसी, विपाशा , संस्कृति, दैनिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी नवभारत टाइम्स आदि में प्रकाशित हुए हैं।

व्यंग्यात्मक निबन्धों एवं लेखों में सिद्धहस्त शिवरैणा के अनेक लेख राष्ट्रीय स्तर की अनेक पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणों में प्रकाशित हुए हैं। श्री ज्योतीश्वर पथिक घुम्मकड़ हैं अतः इनके अनेक रिपोर्ताज तथा संस्मरण इन पत्र पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के साहित्यक संस्करणों में प्रकाशित हुए हैं। व्यंग्य में डॉ. संसार चंद मात्र एक ऐसा नाम है जिसका इस प्रदेश में कोई सानी नहीं। इनके व्यंग्यात्मक लेख शीराज़ा, हमारा साहित्य, कादम्बिनी, दैनिक ट्रिब्यून, जागृति, हरियाणा सम्वाद, पंजाब सौरभ आदि पत्र पत्रिकाओं में छपते रहे हैं।

आइए अब निबन्ध संकलनों एवं संग्रहों की बात करते हैं :–

केसर के फूल व चिनार के पत्ते: कश्मीर की धड़कनों को समोए ये दो निबन्ध संग्रह अपने नाम से ही इस ओर संकेत करते हैं। लोकमानस का बहुत अच्छा चित्रण इन निबन्धों में हुआ है। कश्मीर की धरती का सौन्दर्य भोले भाले इस धरती के घटक, इनके रीतिरिवाज, तीज त्योहार, अनुष्ठान, इसकी नदियां, झीलें, पहाड़, पेड़–पौधे अर्थात कश्मीर का जीवन स्वरूप इन निबन्धों में हमें मिलता है। निबन्धकार श्री मोहन कृष्ण दर की भाषा सीधी सादी और सटीक है जो निबन्धों की प्रकृति के अनुरूप है। सहज एवं सरल अभिव्यक्ति सामान्य पाठकों को कश्मीर के बारे में ढेर सी सूचनाएं देती है।

अभिव्यक्ति : डॉ0 देवरत्न शास्त्री द्वारा रचित 16 लेखों का संग्रह 1988 में प्रकाशित होकर सामने आया। इन निबन्धों में अधिकतर निबन्ध साहित्यिक धरातल पर लिखे गए

हैं– सूर के नैन, कालीदास का मेघदूत,एक अध्ययन, (रामायण डोगरी) राम चरित मानस में रावण, गुरू गोविन्द सिंह की हिन्दी साहित्य को देन आदि। दूसरा विषय है लोक संस्कृति, डोगरी लोकगीतों में वनस्पति प्रतीक, डोगरी लोकगीतों में श्रृंगार रस आदि लेखों के माध्यम से शास्त्री जी ने भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों को अंशों में पकड़ा है। धर्म, प्रवृत्ति, ललित कलाएं, शास्त्रीय संगीत, साहित्य और लोक संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर इन लेखों में साधिकार बात हुई है। इस ओर अपने 'विमर्श' में पुस्तक के आरम्भ में श्री बलराज पुरी ने भी संकेत किए हैं" यह पुस्तक डा0 देवरत्न शास्त्री के लेखों का संग्रह है जो इन्होंने विभिन्न विषयों पर समय समय पर लिखे थे । विषयों का चुनाव किसी पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार नहीं किया गया।......अलग अलग लेखों में विद्वान लेखक ने भारती की विशाल विविध प्राचीन और पेचीदा संस्कृति के कुछ अंगों में झांकने का प्रयास किया है।"

लेख या निबन्ध लेखन में लेखक की अभिव्यक्ति एक बहुत बड़ा रोल अदा करती है। आरम्भ शक्तिशाली हो ताकि पाठकों को बांधकर उसे पढ़ने के लिए बाध्य करे और लेख का अंत स्वाभाविक किन्तु सार्थक हो ताकि लेखक का मन्तव्य स्पष्ट हो सके, इसमें लेखक की विशलेषणात्मक प्रतिभा और भाषा की सही पकड़, दोनों खूबियों का होना अनिवार्य है। इसके साथ यदि अध्ययन की कोई सीमा न बांधी जाए तो यह कार्य सुचारु रूप से किया जा सकता है। डॉ0 देवरत्न शास्त्री का गहन अध्ययन, पृष्ठभूमि तथा भाषा की पकड़ इनके सफल लेखन की ओर संकेत करती है। बीच बीच में ऐसा भी लगता है कि कुछ कहते कहते लेखक ने एक सीमा बांध ली है। और भी कुछ कहा जा सकता था।

नीलजा: जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा समिति की और से वार्षिकी के रूप में नीलजा का प्रकाश्न किया जाता रहा है। अभी तक इसके इस श्रृंखलां में 4 अंक प्रकाशित हो चुके हैं।अक्सर इन अंकों में साहित्य की दूसरी विधाओं के साथ साथ निबन्ध और लेख भी प्रकाशित किए जाते रहे हैं। कुछ अंक व्यक्ति विशेष पर भी प्रकाशित किए गए हैं। जिसमें कश्मीरी के प्रतिष्ठित कवि दीनानाथ नादिम पर प्रकाशित अंक विशेष रूप से चर्चित हुआ। इस अंक में कवि के परिचय के साथ उसकी रचना प्रकिया को लेकर विभिन्न विद्वान लेखकों ने लेख लिखे हैं।

नीलजा–12 'कश्यप भारती' इस श्रृंखला में प्रकाशित कश्मीर भारती में 16 लेख संकलित हैं। अधिकतर लेख कश्मीर की लोक संस्कृर्ति को मुखरित करते हैं। पृथ्वी नाथ मधुप कृत कांगड़ी, अली मुहम्मद लोन कृत कश्मीरी लोक नृत्य , डॉ0 शशिशेखर तोषखानी कृत नदी नाव माझी और कश्मीरी लोक जीवन, श्रीमती सरिता तोषखानी कृत कश्मीर वसन्तोत्सव, डॉ0 बाल कृष्ण रैणा कृत वितस्ता एवं कश्मीर आदि लेखों में कश्मीर

की लोक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को उजागार किया गया है। इसमें संकलित रचनाओं का दूसरा विषय है कश्मीर साहित्य और संस्कृति । इस विषय के अंतर्गत डॉ0 वेद कुमारी घई कृत संस्कृतानुरागी सुल्तान जैनुलाब्दीन, बड़शाह, मोतीलाल शास्त्री पुष्कर कृत चिरंतन कश्मीर; प्रो. चन्द्र मोहन कौल कृत कश्मीरी कवि "राही", डॉ0 रतन लाल शांत कृत कश्मीरी अधरों पर हिन्दी के बोल, श्रीमती राज रैणा कृत ललेश्वरी का समकालीन समाज आदि लेख लिए जा सकते हैं। लद्दाख पर एक मात्र लेख छेरिंग सोनम का है, लद्दाख में छोरतेन, स्तूप । सम्पादकीय में सम्पादक का कहना है कि "इसमें जम्मू कश्मीर के प्रतिष्ठित हिन्दी लेखकों एवं लेखिकाओं के कश्मीर की संस्कृति के विषयों पर शोधपूर्ण रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक लेख संकलित हैं।' युक्ति संगत नहीं लगता क्योंकि इस में संकलित लेखों के रचनाकार कश्मीर के ही हैं। डॉ0 वेद कुमारी घई को छोड़कर जम्मू के किसी भी रचनाकार की रचना इसमें संकलित नहीं है। और अनेक लेखक तो जाने पहचाने ही नहीं है प्रतिष्ठित की तो बात दूर की है। हां कश्मीर की लोक संस्कृति को लेकर अच्छी सामग्री है पर अधिकतर लेख पूर्व प्रकाशित हैं। मसलन डॉ0 शशिशेखर तोषखानी का लेख 'नदी नाव, मांझी और कश्मीर लोक जीवन' शीराज़ा हिन्दी और हमारा साहित्य में प्रकाशित हो चुका है। छेरिंग कृत लद्दाख में छोरतेन स्तूप भी पूर्व प्रकाशित है। अच्छा होता इसमें अप्रकाशित रचनाएं ही प्रकाशित की जातीं ।

नीलज़ा –11 के अन्तर्गत नौ लेख प्रकाशित हैं जिनमें कश्मीरी भाषा साहित्य और दर्शन पर ही अधिकतर लिखित सामग्री संजोई गई है। इन लेखों में दर्शन पर डॉ0 बलजिन्नाथ पण्डित, प्रो. नीलकंठ गुरुटू, कश्मीरी भाषा और संस्कृति पर प्रो. चमन लाल सप्रू, डॉ0 त्रिलोकीनाथ गंजू, श्री अवतार कृष्ण राजदान, डॉ0 बदरी नाथ कल्ला आदि रचनाकारों के लेख संयोजित हैं।

नीलज़ा–10 यह अंक कश्मीरी कवि स्व. श्री दीनानाथ नादिम को समर्पित है। लेख संस्मरण के अन्तर्गत नादिम के व्यक्तित्व और कृतित्व पर 18 लेख और संस्मरण प्रकाशित हैं। इन लेखों के माध्यम से नादिम के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक ख़ाका रचा जा सकता है। लेख नादिम की रचनाप्रक्रिया को विभिन्न कोनों से स्थापित करते हैं।

इसी प्रकार नीलजा के अन्य अंकों में भी निबन्ध और लेख पढ़ने को मिलेंगे।

नीलजा के सम्पादन और संयोजन में प्रो0 चमन लाल सप्रू का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

तवी के आर पार: 1976 में जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी के आर्थिक सहयोग से निर्मल विनोद के सम्पादन में 'तवी के आर–पार' नामक निबन्ध' लेख संग्रह प्रकाशित

किया गया । जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है इसमें जम्मू के आसपास के ब्योरे डोगरी भाषा, साहित्य, कला दर्शनीय स्थलों आदि पर नौ लेख / निबन्ध संकलित हैं। डॉ0 प्रियतम कृष्ण कौल कृत एक लेख 'भद्रवाह की हिन्दू जातियों के उपनाम' शीर्षक से भी संकलित है। डोगरी भाषा और डोगरी कविता पर क्रमशः डॉ0 गंगादत्त विनोद, डॉ ओमगुप्त और ओ.पी . शर्मा सारथी के निबन्ध संकलित हैं। पर्यटन कला और स्थापत्य पर क्रमशः शिवरैना, दयानन्दशर्मा तथा विश्वनाथ खजूरिया के निबन्ध संकलित हैं और हिन्दी में हुए शोध कार्य तथा जम्मू की हिंदी कविता पर क्रमाशः विजय कुमार शर्मा और ज्वाहर रैना के लेख संकलित हैं। एक समूचा लेख आज के जम्मू पर जगमोहन द्वारा लिखा गया है। इन रचनाओं के आधार पर जम्मू तथा उसके आसपास का सांस्कृतिक साहित्यिक और लोकपक्षी स्थितियों का हमें विहंगम् दृश्य मिल जाता है। लगभग सौ पृष्ठीय इस पुस्तिका की छपाई यद्यपि जम्मू में ही हुई है पर सुरुचिपूर्ण है। अच्छा होता इसमें जम्मू की लोक संस्कृति को भी उजागर किया जाता पर इसकी कमी खटकती नहीं।

डोगरी रिसर्च इन्सटीच्यूट निबन्धावलियां: डोगरी रियर्च इन्स्टीच्यूट द्वारा शोध कार्य के अन्तर्गत अनेक शोध कार्यों में निबन्धावलियों के निरन्तर प्रकाशन भी अपने आप में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है।

त्रिवेणी : प्रो. शक्ति शर्मा और श्याम लाल शर्मा का सामूहिक प्रयास "त्रिवेणी" के रूप में सामने आया। इस पुस्तक में डोगरी भाषा,. संस्कृति और साहित्य पर निबन्ध संकलित कर इस दम्पत्ति ने डोगरी संस्कृति को सर्वप्रथम निबन्धों में संजोया है। श्री श्याम लाल शर्मा तो डोगरी भाषा और संस्कृति को समर्पित एक ऐसे व्यक्तिव का नाम है जो वर्षों से इस क्षेत्र में निर्लिप्त भाव से संलग्न है। यद्यपि इनके अनेक निबन्ध शीराज़ा हिन्दी और डोगरी के साथ साथ हमारा साहित्य में प्रकाशित हो चुके हैं पर इस क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयास इस पुस्तक के माध्यम से हुआ है। प्रो. शक्ति शर्मा डोगरी लोक संस्कृति की वाहक हैं ओर इस क्षेत्र में उनका कार्य एक अनुभवी और पारखी के तौर पर जाना जाता है जो इस संकलन के निबन्धों के माध्यम से परखा जा सकता है।

डोगरी रिसर्च निबन्धावली 1965 डोगरी रिसर्च संस्थान द्वारा शोध पत्रों के वाचन और तदुपरान्त इनके प्रकाशन का कार्य, अपने हाथ में 1965 से लिया गया। जो शोध कार्य इस क्षेत्र में विद्वानों द्वारा किया जाता उसकी चर्चा संस्थान के प्रांगण, श्री रघुनाथ मन्दिर के परिसर में की जाती, प्रबुद्ध श्रोताओं और विद्वानों के विचारों को भी उसमें संयोजित किया जाता और बाद में शोधन कर उन्हें निबन्धावली में प्रकाशित किया जाता रहा है। 1965 में प्रथम संकलन सामने आया। इसके सम्पादक मंडल में डॉ0 वेद घई, श्री केदार नाथ शास्त्री और श्री श्याम लाल शर्मा थे। प्रथम निबन्धावली डोगरी भाषा

साहित्य और संस्कृति को समर्पित है।

निबन्धावली 2, अंक दो 1967 में प्रकाशित हो कर सामने आया। यह अंक प्रबुद्ध भाषाविद् डॉ0 सिद्देश्वर वर्मा, पद्मभूषण को समर्पित है अतः इसे डॉ सिद्देश्वर वर्मा अभिनन्दन अंक की संज्ञा दी गई है। इस अंक को दो भागों में संजोया गया है। प्रथम भाग में डॉ0 साहब के प्रकाशित साहित्य और उनके व्यक्तित्व पर सामग्री प्रकाशित है और दूसरे भाग में डोगरी भाषा पर अनेकायामी लेख और निबन्ध संकलित हैं। इस अंक के सम्पादक मंडल में श्रीमती शक्ति शर्मा, श्री शंभू नाथ शास्त्री और श्री श्याम लाल शर्मा, डॉ0 सिद्देश्वर वर्मा के कृतित्व और व्यक्तित्व पर प्रो. गौरीशंकर और डॉक्टर धर्म स्वरूप गुप्त के लेख संकलित हैं तो डोगरी भाषा पर सर्वश्री रामनाथ शास्त्री, धर्मचंद प्रशान्त, शिवकुमार शर्मा, सत्य पाल शास्त्री, श्रीमती शक्ति शर्मा, श्याम लाल शर्मा, चरण सिंह, श्री कार्तिक प्रसाद डोगरा आदि के लेख संकलित हैं। डोगरा राज वंश और संस्कृत साहित्य पर डॉ0 गंगा दत्त विनोद तथा 'श्रीनगर संग्रहालय के शारदा अभिलेख ' पर श्री केदारनाथ शास्त्री के भी निबन्ध संकलित हैं।

निबन्धावली अंक–3 यह अंक 1970 में प्रकाशित होकर सामने आया। इस अंक में कुल नौ निबन्ध संकलित हैं जो डोगरी भाषा एवं डुग्गर की लोक संस्कृति के विविध पक्षों पर ढेर सारी सूचनाएं उपलब्ध करवाते हैं । डोगरी भाषा एवं इसकी ध्वनियों पर सर्व श्री श्याम लाल शर्मा, प्रो. सत्यपाल श्रीवत्स के निबन्ध हैं तो डुग्गर संस्कृति पर प्रो. शक्ति शर्मा, डॉ0 गंगा दत्त विनोद के लेख संकलित हैं।

डॉक्टर कैशल्या वली कृत लल्लेश्वरी, कलाओं पर डाक्टर धर्मस्वरूप गुप्ता आदि के लेख संकलित हैं। इस अंक के सम्पादक मण्डल में प्रो. शक्ति शर्मा, डाक्टर वेदघई और श्याम लाल शर्मा का सहयोग संस्थान को रहा है।

दायित्व : 1957 में ओम गोस्वामी कृत साहित्य और संस्कृति के विभिन्न आयामों को लेकर लिखे गए निबन्धों का संग्रह 'दायित्व' के नाम से प्रकाशित होकर सामने आया। इसमें तीन उपविभाज़नों के अन्तर्गत तीन तीन लेख / निबन्ध संकलित हैं। ये उपभाग हैं – विमर्श , विवेचन ओर चिंतन । प्रथम भाग में डुग्गर के कुलदेवता, भाग्य की देवी , बिद्दमाता, डोगरी लोकगाथा और द्वितीय भाग में डोगरी की प्रथम मौलिक कहानी, डोगरी कहानी और उपन्यास की विकास यात्रा तो तीसरे भाग में चिन्तन के कुछ क्षण दिये गए हैं। सभी लेख पूर्वप्रकाशित हैं। ओर इनमें से विवेचन की दृष्टि से बिद्दमाता का लिखा गया लेख लेखक की मौलिक दृष्टि की और संकेत करता है।

केसर और कमल : जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर द्वारा नीलज़ा अंक 14 के अंतर्गत प्रकाशित और प्रो0 लाल सप्रू द्वारा रचित 15 निबन्धों का संग्रह सामान्यतः कश्मीरी साहित्य , कश्मीरी रंगमंच, लोक संस्कृति आदि विषयों पर आधारित

है। साहित्य के अंतर्गत कश्मीरी साहित्य पर गान्धी जी का प्रभाव , टैगोर और कश्मीरी साहित्य, हिन्दी कविता में कश्मीर , कश्मीरी काव्य में राष्ट्रीय एकता, कश्मीरी काव्य कानन की कोकिलायें आदि और लोक संस्कृति पर कश्मीरी लोक जीवन में गंगा , कश्मीरी लोकगीत एक परिचय आदि और कश्मीर के कुछ प्रमुख कश्मीरी भाषायी कवियों का परिचय हमें मिलता है।

वस्तुतः यह निबन्ध संग्रह साहित्य और संस्कृति का वाहक कहा जा सकता है। यद्यपि इस संग्रह में कश्मीर की मुखरित धरती और प्राकृतिक सौंदर्य से अप्लावित इसकी नदियों , झीलों और इसके चश्मों का भी ज़िक्र होता तो खाका पूरा उभरकर सामने आता पर इन निबन्धों के माध्यम से भी विद्वान लेखकों ने कश्मीर की साहित्यिक और लोक साहित्य की वास्तविक झांकी प्रस्तुत की है जो अपने आप में पूरी और प्रामाणिक है। प्रो० चमन लाल सप्रू की भाषा में रवानी है। निबंध जैसी विधा में भी इनकी प्रवाहमयी वाणी ने अपने स्वर मुखरित किए हैं:

"कवि की आवाज़ देश की आवाज़ बन जाती है। जब जब भी देश की एकता ख़तरे में पड़ती है, देश पर आक्रमण होता है या विघटनवादी तत्व या सम्राज्यवादी शक्तियां हमारे देश की ओर बुरी नजर से देखती हैं"। (कश्मीरी काव्य में राष्ट्रीय एकता नामक निबन्ध में लेखक का स्वर) लेखक के तुलनात्मक विषयों पर लिखे गए निबन्ध लेखक की आकलन शक्ति और तुलनात्मक अध्ययन की ओर संकेत करते हैं। कश्मीरी साहित्य में गांधी, टैगोर, और विवेकानन्द जैसी हस्तियों को बीनकर केवल उक्त साहित्य ही नहीं इन चिंतकों और बुद्धिजीवियों की भी बात प्रमाण सहित लेखक ने कही है जो लेखक के गहन अध्ययन और सूक्ष्म दृष्टि की परिचायक है।

निबन्धकार का एक निबन्ध संग्रह 'संतूर के स्वर' पहले भी प्रकाशित हो चुका है। उक्त संग्रह में संग्रहीत निबन्ध भी कश्मीर की धरती की गंध देते हैं। कश्मीरी लोकमानस का सीधा सादा स्वरूप इन निबन्धों के माध्यम से पाठकों के सामने आता है। संतूर के स्वर को जम्मू कश्मीर अकादमी द्वारा भी पुरुस्कृत किया गया था जबकि केसर और कमल को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा पुरुस्कृत किया गया है। यद्यपि किसी कृति का पुरुस्कृत हो जाना उसे श्रेष्ठ कृति का प्रमाणपत्र नहीं माना जाता तथापि इससे पुस्तक चर्चित अवश्य हो जाती है। निबन्धकार की दोनों कृतियां चर्चित हुई हैं।

हास्य और व्यंग्य प्रधान निबंधः गंभीर साहित्य की रचना एक बात है पर हास्य और व्यंग्य प्रधान साहित्य के लिए जरूरी है कि साहित्यकार जिनके लिए लिख रहा है उनकी मनोवैज्ञानिकता से परिचित हो और हलके फुलके वाक्यों से अपनी सार्थक बात कह सके। निरर्थक बात का कोई महत्व नहीं होता और इसका साहित्य में कोई स्थान भी नहीं है। और दूसरी बात यह है कि वह इतना समर्थ हो कि अपने पर भी व्यंग्य करने

की क्षमता रखता हो। इस ओर कोई बिरला ही मिलेगा। शिव रैना ने अपनी कहानियों में अवश्य दूसरों को, कहानी के पात्रों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया है पर अपने पर व्यंग्य करने में वह चूक गए हैं अतः उनका व्यंग्य मात्र सतही रह गया है। इस ओर एक मात्र लेखक जो हमारे सामने उभरता है वह है डा0 संसार चन्द्र।

डॉ0 संसार चंद्रः डॉ0 संसार चंद्र का जन्म 28.8.1917 में मीरपुर में हुआ। हिन्दी और संस्कृत में उच्चशिक्षा प्राप्त करने के बाद विभिन्न कालेजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापन के बाद जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष के रूप में सेवा निवृत हुए। हास्य और व्यंग्य लेखन में इनका एक विशिष्ट स्थान है। डॉ0 संसार चंद्र द्वारा रचित अनेक निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं:

'सटक सीताराम' 1958 में, 'सोने के दांत,' 1962 में, 'अपनी डाली के कांटे,' 1967 में और 'बातें यह झूठीं हैं' आदि इनके चर्चित व्यंग्य निबन्ध हैं। इनके इलावा शीराज़ा, हमारा साहित्य, दैनिक ट्रिब्यून, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्र और पत्रिकाओं में सैकड़ों हास्य निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। इनका क्षेत्र केवल हास्य व्यंग्य ही रहा हो ऐसी बात नहीं। बीसियों पुस्तकें साहित्य की विभिन्न विधाओं पर प्रकाशित हो चुकीं हैं और इनके द्वारा लिखे गए सैंकड़ों लेख हिन्दी और अंग्रेजी पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हो चुके हैं : दैनिक ट्रिब्यून में अनेक लेख प्रकाशित होकर चर्चा का विषय बने हैं। अंग्रेजी में छपने वाले द ट्रिब्यून में इनके क्रमशः लेख, मुस्लिम हिन्दी कवियों पर, खूब चर्चा का विषय बने हैं। लेकिन इनकी सबसे प्रिय विधा रही है हास्य और व्यंग्य निबंधों की। उन्होंने ऐसा विषय क्यों चुना इस ओर उनका वक्तव्य दृश्टव्य है:

"सभी जानते हैं कि स्पष्टवादिता का मार्ग कण्टकाकीर्ण है सम्भवतः इसीलिए मेरे अवचेतन ने हास्य व्यंग्य निबंध को चुपके से अपना अभिव्यक्ति माध्यम बना लेने में ही अपनी कुशल समझी है। अपने चारों ओर मुझे जितनी असंबद्ध सच्चाईयां दिखाईं दीं उन्हें श्रृंखलाबद्ध करने के लिए सबसे अधिक अनौपचारिक विधा जो मेरे हाथ लगी वह निबंध ही थी और वह भी हास्य व्यंग्य निबंध।" ओर अपने वक्तव्य में ही डॉ0 संसार चंद्र अपने पर चोट करने से बाज़ नहीं आएं यहां पर भी उनका व्यंग्य स्पष्ट उद्वेलित करता दीखता है:

"दिमाग की गंभीरता तो शायद पाकिस्तान से भागते वक्त किसी राहे गुज़र में ही रह गई थी और मेरा कमजोर हाजमा यहां की सेहत अफ्ज़ा खुराक ताव न लगाकर फेल हो गया था। इस प्रकार की साधनहीनता एक लेखक के लिए जो– जो साज़ो सामान जुटा पाती है उससे मैं पूरी तरह से लैस हो गया हूं। ऐसी स्थिति में मैदान में सीधे कूद पड़ने के लिए गज भर का कलेजे का तो पहले ही बुरा हाल है।"

..........*चीड़ों में ठहरी बयार, पृ0 114*

आइए इनकी प्रकाशित कुछ निबन्ध रचनाओं का अध्ययन करें। शीराज़ा पूर्णांक 102 में प्रकाशित निबंध "लाख रु0 की बात" ढेर सी हास्यस्पद स्थितियों को उजागर करती है। पंडित जी का अद्‌भुत चरित्र इस रचना में उभरा है जो बड़े बडे अंग्रेजीदां अफसरों में विचरना अपना परम कर्त्तव्य और विशिष्टता समझते थे और अंग्रेजीं न पढ़ सकने की कुण्ठा को तिरोहित करते थे। अक्सर अफसर लोग उनकी इस अनभिज्ञता का लाभ उठाते हुए उन पर फबतियां कसते थे और हंसते थे तो पंडित जी इसे कोई हंसी की बात जानकर उनकी हंसी में पूरा योगदान देते थे। एक बार उनमें से एक ने अंग्रेजी में कहा कि:"लुक ऐट दिस फूल, ही डज़ नॉट नो इंगलिश बट ही इज़ लाफिंग सो हर्टली" और सभी खूब हँसने लगतें हैं तो पंडित जी इसे कोई मजाक समझकर झट से कहते हैं कि "लाख रु0 की बात" और उनके साथ हंसने लगते हैं।

इसी प्रकार शीराज़ा, सित0 1974 में प्रकाशित उनका लेख "वह नहीं आई–नींद" हल्के फुल्के शब्दों द्वारा बहुत सी हास्यस्पद स्थितियों को उजागर करता है। "नींद न आने का कारण ही है–गमे इश्क और ग़म भी हैं मुहब्बत के सिवा।" इस पर आगे रिसर्च होने और करने की गुंजायश है कि ऐसे और कौन कौन से ग़म है। और एक और संदर्भ देखें:

"कार वाला पैट्रोल को रोता है और पदयात्रा वाला थकान को और गुस्सा नींद पर होता है जो दुम दबाकर भाग जाती है।" इसी प्रकार इनका एक और निबंध शीराज़ा पूर्णांक 35 में प्रकाशित है, "गृहणी का भी हक है पारिश्रमिक पाने का"। जो हल्के फुल्के कटाक्ष गृहणी पर करता दीखता है।

"यह नई कविता " के माध्यम से डॉ0 साहब नई कविता के चौंचलो पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं कि कुछ भी लिखा वह नई कविता होगी।

" एटम बम की ठाह/ठाह ठाह ठाह ठाह ठाह

सबसे बड़ी विरही की आह।"

"इसकी इस रैपिड फायरिंग से हमारे कानों के राडार सैट तनतना उठें मैं अपनी हिमाकत पर शर्मिदां हो रहा था। वह अभी और सुनाने पर आमादा हो रहा था कि मुझे लाचार होकर कहना पड़ा, "इस महाकाव्य को..................."

मेरी बात में ही थी कि वह बोल उठा "हम नए कवि महाकाव्य नहीं लिखते।"

इस सारे विश्लेषण में कहीं पर ललित निबंध उभरें हों पर अधिकतर सूचनात्मक लेख और अनुसंधानपरक निबंध ही देखने को मिले हैं। डॉ0 अर्जुन नाथ रैणा के निबंध संग्रहों में कश्मीर की धरती की खुशबू अवश्य उन निबंधों को ललित निबंध की परिधि में ले आती है। इस ओर कुछ निबंधों में प्रो0 चमन लाल सप्रू ने भी अच्छा प्रयास किया है पर ये निबंध गिनती में आते हैं। अकादमी द्वारा, रमेश मेहता के संपादन में एक प्रयास किया

गया है, "शब्द जो तुमने दिए" के माध्यम से।

शब्द जो तुमने दिए: ललित निबंधों का यह संग्रह वस्तुतः किन्हीं कारणों से अपने लक्ष्य पर नहीं उतर पाया यद्यपि संपादक का प्रयास इसी ओर था। इस ओर संपादक ने भी संकेत दिए हैः

"लेखक बन्धुओं से अनुरोध किया था कि वे हमें ललित निबंध ही भेजें.........अन्ततः ललित निबंध के नाम पर हमें जो मिला, हमने बिना किसी की कांट–छांट के ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया।" संपादक का यह वक्तव्य दो बातों की ओर संकेत करता है पहली यह कि लेखक ललित निबंध और साधारण निबंध में कोई अंतर नहीं जानते और अगर जानते भी हैं तो लिख नहीं पाए । और दूसरा यह कि जो भी मिला उसे छापने की मजबूरी थी। अन्यथा उन्हें वापिस भी भेजा जा सकता था कि अमुक निबंध ललित निबंध की कोटि में नहीं आते। बहरहाल जो भी प्रकाशित होकर सामने आया वह एक मिलेजुले निबंधों का संग्रह बनकर रह गया है। फिर भी इस संग्रह में कुछेक निबंध ललित निबंध की कोटि में रखे जा सकते हैं।

इस संग्रह में कुल 18 निबंध संकलित हैं। अधिकांश निबंध लालित्य लिए हुए हैं– सर्वश्री रतन लाल शांत, डॉ0 कौशल्या वल्ली, डॉ0 कृष्णा रैणा, प्रो0 सुभाष भारद्वाज, डॉ0 गंगादत्त विनोद, डॉ0 अशोक जेरथ, ओ0 पी0शर्मा, घनश्याम सेठी, डॉ0 संसार चंद्र, डॉ0 ओम गुप्त, पथिक और जितेन्द्र शर्मा कृत क्रमशः "शब्द तुमने रचे", "अविरल चिन्तन धारा", "धारा वितस्ता की", "आधुनिक साहित्य में वर्तमान का आग्रह", "सौंदर्यबोध","आहत चीड़े","कहानी और मैं","उधार मुहब्बत की कैंची है","तुझको पराई क्या पड़ी","जरूरत है एक टी हाउस की", "लोरन", और "बाजे वाले" ललित निबंध की कोटि में लिए जा सकतें हैं। इन निबंधों में चिंतन और कल्पना के साथ साथ आधारभूमि मौलिकता लिए है और अपनी बात कहकर अपने लक्ष्य पर पहुंचने में लेखक समर्थ हुए हैं। दीदार सिंह कृत "प्रसारण के मूल सिंद्धात" एक विश्लेषणात्मक लेख है जिसमें प्रसारण के विभिन्न अंशों और उनके सही उपयोग और प्रयोग की चर्चा की गई है। डॉ0 आदर्श कृत "क्लीनिक में साहित्यकार" आत्मश्लाधा और संस्मरण लिए हुए है, नितांत वैयक्तिक। ओम्कार काचरू, कृत '' नए बौद्धिक की नई पीढ़ी''भी इसी अंदाज में लिखा गया वैयक्तिक लेख जैसा है। यह बात नहीं कि ललित निबंध में वैयक्तिक स्थितियां नहीं आ सकतीं पर कहीं तो साहित्य हो जो पाठक को सोचने या सौंदर्यानुभूति की ओर उन्मुख करे।

शांत कृत निबंध ''शब्द जो तुमने रचे'' एक अच्छा निबंध है जिसमें सृजन के समय उपजने वाली स्थितियों की ओर संकेत किए गए हैं और पाठक चिन्तन के क्षणों को बटोरता हुआ इन शब्दों के साथ अपना तादात्म्य बैठा लेता हैः

"रचना र्दद और दर्द संगी हैं। और फिर दर्द के बाद रचना का संतोष । रचना पूर्ति तक न पंहुची तो संशोधन नहीं, सुधरी तो भयंकर प्रतिक्रिया..............रचना का दर्द से मोह भी होता है या यों कहे कि वह दर्द को उस हद तक बढ़ने देता है कि जब तक वह पूरा पक जाए और स्वयं ही कोई शक्लो–सूरत उभार पाए नहीं उभरता तो रचयिता उसे उपेक्षित करता है। न कर पाए उपेक्षा तो उसे अपने हाथों मेट देता है।"

–पृ03,4

प्रो0 सुभाष भारद्वाज कृत 'वर्तमान का आग्रह' निबंध में भी मौलिक चिन्तन के धागों को पकड़ा जा सकता है:

" आज हर कोई ठीक अपने आंगन के बीच में उगने वाले सूर्य से रोशनी ग्रहण करना चाहता है। आज मानव–सागर के हर बिन्दु की चिन्तन दिशा यही है। लगता है ज्ञान, विज्ञान और इस फली फूली सभ्यता के विकास ने उसके अंग अंग को भासमान करते हुए भी उसकी आंखों की ज्योति छीन ली है।" *–पृ027*

डा0 गंगादत्त विनोद कृत " सौंदर्यबोध" में भी चिन्तन के क्षण उभरे हैं:

" मनुष्य जितना पठित, चिन्तन बुद्धि एवं सभ्य होगा, उतना ही सौंदर्योपासक और सौंदर्यपूजक होगा।" *–पृ0 35*

अशोक जेरथ कृत " आहत चीड़ें " में प्रतीकों के माध्यम से व्यवहारिक संसार की बात की गई है:

" जब तेज़ हवाऐं चलती हैं तो ओक अपने क्रोध का उफान अपने पत्तों को देवदारों की फर में उलझाकर शांत करता है। और देवदार मौन साधे अपनी सुन्दर फर में उन्हें विलीन होते भीगी आंखों से देखते रहते हैं। वे चाहकर भी विद्रोह नहींकर सकते........ ..और झांड़ियां अपने ऊपर ओक, देवदार और चीड़ों के कहर को गिरने से बचा नहीं पातीं।"

– पृ0 58

डा0 ओम गुप्त कृत " जरूरत है–एक टी हाउस की ' – में हलके फुलके अंदाज में बहुत कुछ कह डाला है : आजकल नया युग है इसलिए प्रतीक भी नए हैं। इसलिए एक स्वनाम धन्य साहियकार ने चुलबुली किशोरी की उपमा गर्मागर्म चाय से दे डाली है। लचकदार प्रौढ़ा को एक अन्य सज्जन ने लखनवी अंदाज़ में आलू मटर की चाट मान लिया है।" *–पृ0 94*

आलोचना

प्रसिद्ध विद्वान एवं अंग्रेजी भाषा के चर्चित लेखक बेकन ने व्यक्ति की मनः चेतना को तीन रूपों में माना है – प्रथम वह जो बाहर से ग्रहण करता है किसी चींटी की तरह जो संग्रह में विश्वास रखती है, दूसरा रूप वह है जो भीतर से सृजन की शक्ति रखता है जैसे मकड़ी जो अपने अन्तर से निकले किमियाई लावे से अपना संसार बुनती है तीसरा वह रूप है जो इन दोनों के बीच का रास्ता बनाता है अर्थात बाहर से मिले कच्चे माल को तरतीव देकर सृजन करता है, मधु मक्खी की तरह पहली स्थिति को बेकन ने अनुभववाद के अन्तर्गत लिया है, दूसरी को विवेकवाद के अन्तर्गत और तीसरी स्थिति को आलोचनावाद की संज्ञा दी है। अकसर पाश्चात्य साहित्य आलोचकों ने इन तीन पक्षों में से किसी एक अथवा दो पक्षों को आधार मानकर कृतियों की समीक्षा की है। इमानुएल काण्त ने अपनी मीमांसा में अनुभव और विवेक के समन्वय की बात की है। कांत के अनुसार ज्ञान के निर्माण में बाहिरी अंश अर्थात अनुभव के साथ साथ मन की कृति भी आवश्यक है। ज्ञान प्राप्ति में बुद्धि की क्षमता निःसीम न होकर अनुभव के क्षेत्र में सीमित है। आरनोल्ड अध्ययन की बात करते हैं। शास्त्रीय ग्रीक साहित्य में ही ज्ञान का उत्स खोजते हैं। उनके अनुसार जाने अनजाने ही बाहिरी अंश अनुभवों के माध्यम से हमारे साहित्य में घुसपैठ कर जाते हैं और इन बाहिरी अंशों को भी बहुत बारीकी से बीनकर इसका विश्लेषण किया जा सकता है। और केवल सौंदर्य पक्ष को उजागर करने वाले कीट्स ने सभी वस्तुओं में सौंदर्य का सिद्धान्त देखा है तो वर्ड्सवर्थ ने उस बाहिरी अंश को प्राकृतिक सौंदर्य में पाया है लेकिन साथ ही मानसिक उत्थान की भी बात करते हैं– " अन्यतम अनुभूति के लिए कविता को पढ़ना ही काफी नहीं अपितु अति उत्तम गरिमा और प्रफुल्लता जो हम कविता से पाते हैं वस्तुतः हमारे मन की उपज है और हमारा विश्लेषण ऐतिहासिक और वैयक्तिक धरातल पर होता है। वर्ड्सवर्थ के अनुसार हमारे अध्ययन का उद्देश्य अन्यतम की तलाश होना चाहिए। अगर जो पढ़ा जा रहा है वह विवादास्पद है तो उसका विश्लेषण अनेक कसौटियों पर होना चाहिए, अगर वह तथाकथित सौंदर्य है तो उसकी चीरफाड़ और उसे बेबाक दृष्टि से देखने की आवश्यकता है और यदि सच ही वह कार्य महत्वपूर्ण है तो उसे महसूस करने और सुख पाने की कामना होनी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से पाश्चात्य साहित्य में आलोचना के सौपानों को आंका जा सकता है। भारतीय पद्धति भी कमोवेश इस मीमांसा के साथ चलती दिखती है यद्यपि

भारतीय विद्वानों और दार्शनिकों ने भारतीय वाङमय के एक एक पक्ष को लेकर बहुत सूक्ष्मता के साथ उनका विशलेषण किया है तथापि सामान्य धरातल पर कुछ बातें हमारे सामने मुख्य रूप से उभर कर आतीं हैं

प्रथमतः आलोचक का विद्वान होना आवश्यक है। विद्वता के दो पक्ष हैं: एक विवेक अर्थात ज्ञान की आंतरिक पहचान जो बुद्धितत्व की ओर संकेत करती है तो दूसरा पक्ष है बाहिरी ज्ञान का जो अनुभव और अध्ययन की ओर संकेत करता है। एक अच्छे आलोचक का साहित्येतर विषयों और साहित्य के साथ जुड़े हुए विषयों का ज्ञान उसकी प्रतिभा को मांजता है ओर विषय को समझने तथा उसकी परख में सहायक होता है। विश्व में हो रही साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक उथलपुथल, इतिहास, समाजशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान, विश्व की अन्यतम कृतियों की जानकारी आदि आलोचक की दृष्टि को व्यापक बनाते हैं। व्यापक फलक पर किया गया विशलेषण निश्चय ही एकांगी और अधूरा नहीं होगा।

दूसरी बात आलोचक की विश्लेषण करने की प्रतिभा ओर तार्किक अनुभव है। अच्छे बुरे की न केवन पहचान अथच उसे ठीक से परखने की योग्यता और सामर्थ्य एक अच्छे आलोचक की पहचान है। इसमें भी मुख्य बात आलोचक के व्यापक अध्ययन की आती है।

तीसरी विशेषता आलोचक की बेबाक दृष्टि है। अकसर देखा गया है कि आलोचक किसी विशिष्ट वाद अथवा खेमे के प्रति पूर्वाग्रही होते हैं– मार्क्सवादी, परम्परावादी, अस्तित्वादी, सौंदर्यवादी आदि । ये आलोचक आलोच्य कृति का आकलन उसी दृष्टि से करेंगे तो निश्चय ही वह आकलन एकांगी होगा। अगर तो कृति उनकी सोच के अनुकूल हो तो कृतिकार प्रशंसा का पात्र होगा अन्यथा उसकी क्या दुर्गति होगी यह भली भान्ति समझा जा सकता है। इस ओर मैथ्यू आर्नोल्ड ने एक पंक्ति में बड़ी दो टूक बात कही है– 'keeping aside the individuality'

सत्य को सामाजिक, धार्मिक, और राजनैतिक प्रभाव छील जाते हैं। आर्नोल्ड आगे कहते हैं कि मैं अपने प्रभुत्व को आधार बनाकर कुछ भी निर्णय नहीं करना चाहता । उनके अनुसार यह आलोचक का धर्म हो जाता है कि वह आलोचना को समय और स्थान से मुक्त रखे। उसके लिए यह जानना जरूरी है कि सृष्टि के सृजन से लेकर आज तक अत्युत्तम क्या है और क्यों है। एक बात और कि आलोचक दारोगा नहीं है जो केवल डण्डा चलाना जानता है और उसका काम मात्र आतंक पैदा करना ही होता है। न ही ऐसा दानी व्यक्ति है जो सबकुछ अकारण दोनों हाथों से लुटाता चला जाए। वह एक ऐसा सज्जन व्यक्ति है जो अच्छे काम की सराहना करता है और ग़लत काम के लिए

टोकता है ओर ठीक तथा ग़लत की उसे समझ होती है। इसके साथ ही उसका यह भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह बताए क्या ठीक नहीं है और उसे कैसे सुधारा जाए। अकसर आलोचक अपनी विद्वता का उत्स चीड़फाड में ही पाते हैं। आलोचक का रसिक होना उतना ही अनिवार्य है जितना उसका सर्जन लेना। सौन्दर्य में रस ले सके और असौन्दर्य की चीरफाड़ कर सके ऐसा समन्वय व्यक्ति में होना चाहिए, यह आवश्यक भी है। सौंदर्य के प्रति संवेदनशील हो इसके लिए संगीत, कला आदि का जानकार और रसिक हो तो सोने पर सुहागे का काम करेगा।

साहित्य की विभिन्न विधाओं की व्याख्या के बिना विश्लेषण मात्र इनका भाषा अध्ययन है सर्वागींन आलोचना नहीं।

उपर्युकत विश्लेषण के आधार पर इस प्रदेश में हुए आंलोचना कार्य को आंकें तो हमें बड़ा खेद होगा कि इस ओर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है। वस्तुतः इस प्रदेश में "जैनुयन" हिन्दी लेखन स्वतंत्रता के बाद, और वह भी छटे दशक से ही शुरू हुआ। और जो कुछ इन दिनों लिखा गया उसकी तुलना नहीं की गई, उसका विश्लेषण नहीं हुआ। सच तो यह है जो कोई भी कुछ भी लिखता बस लेखक हो जाता। कहीं कहीं पर साहित्यिक गोष्ठियों के माध्यम से साहित्यिक परिचर्चाए अवश्य होती रहीं। सांतवें दशक में श्रीनगर में "प्रतिभा गोष्ठी" और जम्मू में हिन्दी साहित्य मंडल के नाम लिए जा सकते हैं। बाद में आठवें दशक में युवा हिन्दी लेखक संघ भी जम्मू में कार्य करने लग पड़ा था। इन मंचों द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं पर बहस का इक दौर चला था। प्रतिभा गोष्ठी में प्रो0 रतन लाल "शांत " के अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे साहित्यिक आन्दोलनों और उनके मुख्य उन्नायकों के दर्शन, और कृतियों पर खूब बहस होती थी। नवीनतम कृतियों का लेखकों में आदान प्रदान होता था। इसी प्रकार मंडल और युहिले की गोष्ठियों में ,जम्मू में, किसी भी विधा को लेकर अथवा कृति पर चर्चाएं होतीं रहीं हैं। इन चर्चाओं के माध्यम से, इन गोष्ठियों के सदस्यों की एक दृष्टि बनी। कविता के क्षेत्र में, कश्मीर में, श्री शशि शेखर तोषखानी, मोहन निराश और प्रो0 रतन लाल शांत के साथ डॉ0 निजामुद्दीन आदि के नाम लिए जा सकते हैं और कहानी के क्षेत्र में प्रो0 हरिकृष्ण कौल आदि के नाम लिए जा सकते हैं। जम्मू में कविता के क्षेत्र में डॉ0 ओम गुप्त का ही नाम लिया जा सकता है यद्यपि 'पुस्तकें और पुस्तकें' के स्तंभ में (शीरज़ा) अनेक दूसरे साहित्यकारों द्वारा समीक्षाएं भी प्रकाशित हुईं हैं। इनमें डॉ0 आदर्श, रमेश मेहता, निर्मल विनोद, सत्यपाल श्रीवत्स, भुवनपति शर्मा आदि के नाम लिए जा सकते हैं। और कथा साहित्य में डॉ0 आशोक जेरथ और डा0 अनिल गोयल आदि के नाम लिए जा सकते हैं। इन आलोचकों द्वारा जम्मू कश्मीर में रचे जा रहे साहित्य का आकलन तो किया ही गया अपितु राष्ट्रीय स्तर के अनेक लेखकों की कृतियों का भी आकलन इन

विद्‌वानों ने किया है।

रतन लाल शांत मूलतः कवि और चिंतक । कवि होना यानिकि संवेदना में विचरणा, ग्रहण करना, और बांटना विशेष भावप्रगल्भ स्थितियों में कविता हो जाना और चिंतक के स्वरूप को न केवल पाना अपितु उसमें रच बस जाना, आलोचक हो जाने के लिए वातावरण का आधार है। कवि के साथ विचारक होना कृतियों की सटीक समझ की ओर संकेत करता है।

शांत की पृष्ठभूमि साहित्यिक वातास और गरिमा लिए हुए है। हिन्दी की गतिविधियों का केन्द्र कभी इलाहाबाद रहा है। वैसे भी हिन्दी के अनन्य साहित्यकारों की जन्म और कर्मभूमि होने से लोग उस मिट्‌टी से जुड़े रहे हैं। चूंकि इलाहावाद में ही शांत की उच्च्य शिक्षा का केन्द्र रहा है अतः उस वातावरण से शांत भी प्रभावित रहे हैं। हिन्दी के श्रेष्ठ साहित्यकारों से मिलना, बातचीत करना और साहित्यिक गोष्ठियों में प्रतिभागी होना निश्चय ही व्यक्ति के वजूद को मांजता है–गोष्ठियों में प्रतिभागी होने का अर्थ है वहां पढ़ी गई रचनाओं पर बातचीत और अंततः खुलकर बहस करना यही वे स्थितियां थीं जब कवि के रचनाधर्म को निभाता हुआ रचनाकार स्वयं को आलोचक के रूप में देखने लगा।

आलोचक की दृष्टि से शांत निःस्पृह चिंतक की भूमिका निभाने में प्रयासरत रहे हैं। "खोटी किरणें" में दिए गए उनके विचार इस ओर संकेत करते हैं–

"रचयिता के लिए यह बहुत आवश्यक समझता हूं कि वह जीवन को अधिक से अधिक सामान्य स्तर पर जीने लगे। वह खुद को किसी बने बनाए या सुने सुनाए फारमूले के अनुसार संचालित न समझे । पूर्वाग्रह का शायद इसी प्रवृत्ति का अतिश्योक्तिपूर्ण नाम है। अनावृत्त होकर जीवन से ग्रहण करना मेरे लिए उतना ही कठिन है जितना हमारे समय के किसी अन्य संवेदनशील व्यक्ति के लिए हो सकता है।"

खोटी किरणें, 1965, पृ077

वस्तुतः पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर रचना के उत्स को समझते रचनाकार की संवेदना तक पैठ पाने की सामर्थ्य में ही आलोचक की इति है। जब शांत "वह खुद के किसी बने बनाए या सुने सुनाए फारमूले के अनुसार संचालित न समझे" व्यक्ति बात करते हैं तो सही अर्थों में वह आर्नोल्ड द्‌वारा प्रतिपादित सिद्‌धान्त को उलीचते दीखते हैं। आर्नोल्ड सही आलोचक का उत्स धर्म , सामाजिक वर्जनाओं , और राजनैतिक ढकोसलों से निस्पृह होने में ही पाते हैं तभी वह पूर्वाग्रहों से मुक्त रहकर सार्थक बात करने में समर्थ होगा। "जीवन में सामान्य होने की बात" पूर्वग्रहों से मुक्त होने की बात है। कृति के आकलन के समय कृति के स्तर तक पंहुच और उसके बाद उसका विश्लेषण आधारभूत

चेतना है जो साहित्यकार को आलोचक बनाती है।

चिन्तक के साथ साथ मौलिक होना, स्पष्ट एवं सटीक अभिव्यक्ति में सामर्थ्य आदि एक अच्छे आलोचक की दूसरी विशेषताएं हैं। गहन चिन्तन विश्लेषण योग्य तार्किक प्रतिभा और सुदृढ़ भाषा के साथ स्वयं कवि होने के फलस्वरूप श्री रतन लाल शांत मात्र सर्जन ही नहीं सर्जक भी हैं अतः सृजन के क्षणों में गुजरते हुए उस पीड़ा को झेलते आए हैं जो रचनाकार की सांझी पीड़ा है। आलोचक के रूप में मात्र 'सर्जन' न रहकर सज्जन पुरूष की भूमिका को भली भांति पहचानते हैं। इनकी आलोच्य कृतियों में यह बात लागू होती है।

रामदरश मिश्र कृत "बसंत का एक दिन" कहानी संग्रह की समीक्षा करते हुए शीराज़ा पूर्णांक 65 में शांत लिखते हैं– "कथात्मकता घटनाओं के क्रमिक ब्योरों में नहीं, बल्कि घटना की भीतरी तड़प में निहित संभव या असंभव गत्यात्मकता में होती है" कृति में आड़े आ रहे गत्यात्मक आवेगों की ओर संकेत सटीक अभिव्यक्ति है। न केवल कृति का सही आकलन हुआ है अपितु उस पर कही गई बात को सही ढंग से प्रस्तुत करने की आलोचक की जिम्मेदारी हो जाती है। एक और बात विषय की जानकारी के साथ पहचान और उस विषय पर लिखा गया, लिखा जा रहा अन्यतम साहित्य आलोचक की दृष्टि में हो ताकि विवेचना करते हुए कृति पर खुलकर बात हो सके।

"आधुनिक हंगरी कविता" श्री रघुवीर सहाय कृत हिन्दी अनुवाद की समीक्षा करते हुए शांत कहते हैं–

"कुदरती बात है कि अनुवाद पर बहस करते समय भाषा की बात हो और भाषांतरकार की क्षमता की जांच हो। हालांकि इस बहस की सीमा है। हम केवल अनुवाद पढ़ते हैं। यदि मूल को भी जानते हों, तो उसे सामने रखकर जांचने में सहायता मिल सकती है।" चूंकि शांत ने स्वयं कश्मीरी भाषा में रचित साहित्य का अनुवाद हिन्दी में किया है और कश्मीरी तो इनकी मातृभाषा है इसके बावजूद अनुवाद में कितनी दिक्कतें आतीं हैं विशेषकर कविता की अनुभूति को ठीक उसी प्रकार अनुवाद में अभिव्यक्त करना जिस प्रकार मौलिक रचना में है कितना दुरूह कर्म है। और अनूदित कार्य से अनुवाद करना और भी कठिन कार्य है विद्वान के विचार तर्कसंगत हैं इसमें कोई संदेह नहीं।

डॉ0 ओम गुप्त :– जम्मू कश्मीर के इनेगिने कुछ हिन्दी साहित्यकारों में डॉ0 ओम गुप्त का एक विशेष स्थान रहा है– कवि और आलोचक के रूप में। दर्जनों पुस्तकों की समीक्षा और दर्जनों समीक्षात्मक लेख अकादमी की प्रमुख हिन्दी पत्रिका शीराज़ा और वार्षिकी"हमारा साहित्य" में प्रकाशित हुए हैं जो डॉ0 ओम गुप्त की प्रतिभा की ओर संकेत करते हैं। आलोचक के रूप में एक निश्चित दृष्टि, विश्लेषण की समार्थ्य और

गहन अध्ययन डॉ0 ओम की विलक्षण प्रतिभा का सबूत है। इन सबसे ऊपर अपनी बात उचित ढंग से कह सकने की सामर्थ्य ओम गुप्त में है। पीछे कहा जा चुका है कि एक अच्छे आलोचक का बिना किसी पूर्वग्रह के, बेबाक दृष्टि से किया गया विश्लेषण ही किसी रचना का सही दृष्टि से मूल्यांकण कर सकता है। दूसरी बात यह है कि जिस विषय पर अथवा जिस विधा पर वह बात करने जा रहा है उसमें उसका दख़ल ही नहीं पारंगता होनी चाहिए तभी वह दूसरों को दिशानिर्देश दे पाएगा।

डॉ0 ओम गुप्त स्वयं कवि हैं और कविता की पहचान उनके लिए मापदण्ड है। कविता में इन दिनों चल रहे अनेक प्रयोगों से इतर वह मानते हैं कि कविता को सायास प्रयास से क्लिष्ठ कर देना कविता की सम्प्रेष्णीयता पर प्रहार करना हैं। वह कविता को एक संवेदनशील ओर सहज अभिव्यक्ति मानते हैं जिसका प्रमुख गुण है प्रेषणीयता—"कविता का प्रमुख गुण उसकी प्रेषणीयता है। बिम्ब और प्रतीक के घोटाले में प्रेषणीयता की यह कह कर हत्या कर दी जाए कि कविता को समझने के लिए उन बिम्बों प्रतीकों की गुंजलक खोलना पाठक का काम है ईमानदार कवि कर्म का अंग नहीं माना जा सकता (शीरज़ा पूर्णांक 55) और आलोचक "इस मोड़ से" कविता संग्रह की समीक्षा करता हुआ बेबाक हो उठता है:

"इन कविताओं में न तो किसी मोड़ का परिचय मिलता है, न किसी नई दिशा का संकेत दिखाई देता है। अकसर कवितायें काफी सतही हैं और कहीं भी नई मिट्टी तोड़ती प्रतीत नहीं होतीं कुछ कविताओं में कवि क्रांति की बात करता है घिसे पिटे ढंग से।"

(शीराज़ा पूर्णांक 55)

बेबाक समीक्षा और अपनी बात कह पाने की सामर्थ्य तभी संभव है जबकि आलोचक का गहन अध्ययन हो और विषय के विभिन्न मुद्दों पर गहरी पकड़ हो। डॉ0 ओम गुप्त की आलोचना कृति "कविता जो साक्षी है" इस बात की गवाही देती है कि समकालीन कविता की पहचान रचनाकार को है और मुक्तिबोध, विचार कविता, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बलदेव वंशी, लीला— धर जगूड़ी, राजीव सक्सेना, शशिशेखर, कुमार विकल, स्मेकेल पर लिखे गए लेखों के माध्यम से रचनाकार के अध्ययन की पुष्टि होती है। मुक्तिबोध की रचनाओं का विश्लेषण करते हुए डॉ0 ओम गुप्त की उक्ति बड़ी सार्थक प्रतीत होती है कि"इनकी काव्ययात्रा अंधकार में से अंधकार से जूझते हुए प्रकाश तक पहुंचने की यात्रा है।" यद्यपि इस उक्ति द्वारा भी डॉ0 ओम ने विरोधाभास के माध्यम से चमत्कार पैदा करने का प्रयास किया है पर बात बहुत सीधी है।

"समकालीन हिन्दी कविता"— श्री परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित इस आलोच्य कृति पर बात करते हुए (शीराज़ा पूर्णांक 112) ओम गुप्त 'समकालीनता' को एक नई दृष्टि से देखते हैं: हिन्दी कविता में कुण्ठा, सन्त्रास, घुटन जैसी शब्दावलियों से आक्रांत

तथा आंदोलनों एवं गुटों से प्रभावित आलोचना के दिन चुक गए हैं। ....आज का व्यक्ति 'आधुनिकता' अथवा, 'समकालीनता' के नाम पर एक कृत्रिम मानसिकता ओढ़ने को तत्पर नहीं है।" इस वक्तव्य के माध्यम से आलोचक ने दो बातों की ओर स्पष्टतः संकेत किया है कि नकरात्मक स्थितियों एवं गुटों विशेष से अब आलोचक प्रभावित नहीं होता और आधुनिकता के नाम पर कृत्रिम मानसिकता अब व्यक्ति ओढ़ना नहीं चाहता। वस्तुतः स्थिति यह है कि आज भी आलोच्य कृतियों में आम आदमी की व्यथा तलाशी जाती है हां यह बात अलग है कि आज का रचनाकार स्वयं ही परिवेशगत स्थितियों से अति प्रभावित लगता है। और वह अब गुटबाजी से दूर ही रहना चाहता है। इसका कारण भी है कि इधर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनों से इजारे दारियां टूटी है, खेमे उखड़े है और गुट बिखरे हैं अतः सामान्यतः रचनाकार अब अपनी अस्मिता को दाव पर लगाने के लिए तैयार नहीं। "प्रतिबद्धता" से बंधे रचनाकारों और आलोचकों पर तीखा प्रहार करते हुए ओम गुप्त कह उठते हैं:

"सन इक्यानवे के अंत के साथ कीलियां कुछ यूं उखड़ी कि डोरियों को अपने लिए संज्ञाएं तलाशना मुश्किल लगने लगा।"

शीराज़ा पूर्णांक 112

वस्तुतः डॉ0 ओम सकमालीन कविता में आधुनिकता उस परिप्रेक्ष्य में पकड़ते हैं जहां सब कुछ सहजगति से चले, क्लिष्ठ स्थितियों से इतर सीधी सादी भाषा में अपनी बात कही गई हो और रचनाकार बिना किसी वाद विशेष से जुड़े अपनी मौलिक सोच को उजागर कर सके:

"जीवन की सहज स्थितियों की तिक्तता और मधुरता का मिलन, अनेक संश्लिष्ठताओं को पकड़ने की कोशिश समकालीन कविता की ऐसी विशेषताएं हैं जो कवि को निरन्तर चुनौतियां देती रहती हैं और कवि है कि इन स्थितियों का अंग बन कर इन की अभिव्यक्ति करता है।" (शीराज़ा पूर्णांक 112) कुछ ऐसी ही अभिव्यक्ति विद्वान आलोचक ने 'शाश्वत पंचांग और अन्य कविताएं' की समीक्षा करते हुए (शीराज़ा पूर्णांक 63) कही हैं:

"कविता की दृष्टि से वे रचनाएं अधिक सुन्दर हैं जहां कवि सामान्य जीवन की स्थितियां चित्रित करता है।"

आलोचक मौलिक दृष्टि रखता है किसी लीक से बंधा नहीं यह डॉ0. ओम गुप्त के लेखन की खूबी रही है। "कविता जो साक्षी है" में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि बजना, सजना, तजना और मंजना मुख्य आधार हैं। मात्र फतवा देकर वे चुप नहीं रहते अपितु अपने कथ्य की विवेचना भी प्रस्तुत करते हैं। विवेचना का सत्य अज्ञेय की कविताओं का विश्लेषण करते हुए भी डॉ0 ओम गुप्त सहजता से कहते है:

"सत्य की सिद्धि के लिए की जाने वाली यात्रा भौतिक धरातल तक सीमित रखी जाए तो वह व्यर्थ सिद्ध होती है। उन प्रयासों से वे द्वार नहीं खुलते जो जड़ता को तिरोहित करके चहू ओर प्रकाश बिखेर दें और व्यक्ति को भी उसी प्रकार का अंग बना दें । ये द्वार और उनकी दहलीजें अहं की परतें हैं जिनकी लुप्ति सर्वोत्तम भाव का उद्रेक करके व्यक्ति सत्ता का विस्तार करती है।

शीराज़ा पूर्णांक 88

उपर्युक्त विवेचन से आलोचक का विशद अध्ययन, आलोच्य दृष्टि, विश्लेषण और अपनी बात कहने की सामर्थ्य प्रकट होती है। यही नहीं ओम गुप्त द्वारा की गई समीक्षाएं एक सटीक निष्कर्ष तक पहुंचती हैं। समकालीन हिन्दी कविता की समीक्षा करते हुए एक प्रश्न उठाते हैं: "...............तो एक प्रश्न नए सिरे से उभरता है कि हिन्दी प्रदेशों और दिल्ली के कवियों के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों में जो हिन्दी कवि सृजनरत हैं, उनके मूल्यांकण के लिए अकादमी के पास क्या योजना है?" अक्सर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दी रचनाकारों को यह कहकर नकारा जाता रहा है कि वे अपनी मातृ भाषा में रचना करें और उनका अनुवाद हिन्दी में हो ताकि उन रचनाओं को अनूदित रचनाएं कह कर वे हिन्दी साम्राज्यवाद की नींव पुख्ता कर सके कहां तक उचित है।

कविता के अतिरिक्त डॉ0 ओम गुप्त ने कथा साहित्य, नाटक, लोक साहित्य आदि विधाओं पर भी साधिकार लिखा है और प्रतिष्ठापित हुए हैं।"हिन्दी नाटकों के नारी पात्र" हमारा साहित्य 1974 "सूखे रेगिस्तान में दर्द का दरिया—पत्तों की बिरादरी" (शीराज़ा पूर्णांक 53) "जम्मू कश्मीर में हिन्दी साहित्य की नई प्रवृत्तियां" हमारा साहित्य,1976 , डोगरी लोकगाथाओं के वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता " हमारा साहित्य, 1975 "स्वतन्त्र्योत्तर हास्य व्यंग्य निबंध शीराज़ा, अप्रैल, 1984 आदि आलोचनात्मक लेख डॉ0 ओम गुप्त की बहुमुखी प्रतिभा की ओर संकेत करते हैं।

डॉ0 ओम गुप्त के संयोजन में अनेक परिचर्चाओं का भी आयोजन अकादमी द्वारा किया गया है— उपन्यास, कहानी, कविता आदि विधाओं पर डॉ0 ओम गुप्त का अधिकार ही नहीं एक सूक्ष्म पहचान भी है। चूंकि इनमें से दो परिचर्चाओं में इन पंक्तियों के लेखक को भी भाग लेने का अवसर मिलता है अतः डॉ0 ओम गुप्त की विलक्ष्ण प्रतिभा का मैं प्रत्यक्ष साक्षी हूँ। क्लिष्ठ से क्लिष्ठ विषय में भी उनकी पैठ विलक्षण है। एक कवि, चिंतक और आलोचक के तौर पर डॉ0 ओम गुप्त को इस प्रदेश का प्रतिनिधि रचनाकार कहा जाए तो गलत न होगा।

डॉ0 निजामुद्दीन : इस प्रदेश के इने गिने आलोचकों में डॉ0 निजामुद्दीन का नाम अगर सबसे ऊपर नहीं तो भी वरीयता रखता है। पुस्तक समीक्षाओं के साथ साथ बीसियों आलोचनात्मक लेख उनकी प्रतिभा की ओर संकेत करते हैं। उनकी लेखनी

के बारे में बहुत पहले से ही परिचित था जब अनेक पत्रिकाओं में हम साथ साथ प्रकाशित हुए थे। इनमें से कादम्बिनी, द्वीप प्रभा आदि प्रमुख हैं। इनकी रचनाएं स्थानीय पत्रिकाओं शीराज़ा, नीलजा, योजना आदि के साथ साथ अनेक राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई हैं।

'अमीर खुसरोः जीवन दृष्टि', हमारा साहित्य, 1974 में, 'कश्मीरी लोककथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन' , हमारा साहित्य, 1979 में, 'भगवान महावीर का अनेकवाद' शीराज़ा मार्ग, 1975 में, 'महजूर की चेतनभूमि,' शीराजा पू0 90 में 'मुक्तछन्द और निराला,' शीराजा,सित0 73 में, 'हरिकृष्ण कौल की कथासंवेदना और शिल्प,' शीराज़ा पू0 69 में, तथा अनेक पुस्तक समीक्षाएं इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

उपर्युक्त आलोचनात्मक लेखों के माध्यम से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि रचनाकार का अध्ययन और अनुभव बड़ा विशद है– पौराणिक ग्रथों से लेकर साहित्य की आधुनिक विधा पर अनका दख़ल है। और इन सभी विषयों पर यह अपनी बात साधिकार कहने में समर्थ हैं। विषय पर अधिकार होना एक बात है पर उस विषय को समझकर, उसका विश्लेषण करने की क्षमता और उस विश्लेषण की सटीक अभिव्यक्ति ही एक अच्छे आलोचक के कुछ गुण हैं जो निजामुद्दीन में देखे जा सकते हैं।

तिलक गोस्वामी की पुस्तक 'उजली पीली धूप' की समीक्षा करते हुए उनके कथन को पकड़ा जा सकता है:

''उजली पीली धूप में सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों , जनमानस पर आच्छादित निराशाहीनता के कोहरे आदि को नष्ट करने में संघर्षरत प्राणियों का जीवन चित्रित है''

–शीराज़ा पू073

इसी प्रकार डा0 कर्ण सिंह की पुस्तक की समीक्षा करते हुए वह लिखते हैं–'' कुछ ग्रंथ शोधग्रंथ न होकर भी अपने विषय की , अन्वेषण– विवेचन की पद्धति के कारण शोध ाग्रंथ से महत्वपूर्ण होते हैं।''

– शीराज़ा , पू0100

शीराज़ा पू079 में हिन्दी के चर्चित कवि पर अपने विचार देते हुए वह लिखते हैं ''कवि भावसंवेदना को अधिक मूर्तिमान करने, उसे बिम्बात्मकता प्रदान करने के उद्देश्य से शब्दों को उसी भावाकार में गढ़ते–संवारते हैं।'' *– पृ07*

इस रचनाकार की एक बड़ी विशेषता भाषाओं का अद्भुत ज्ञान होना है। हिन्दी, संस्कृत के इलावा उर्दू और फारसी में भी रचनाकार पारंगत दीखता है। केवल भाषा ही नहीं निजामुद्दीन इनके साहित्य में उत्कृष्ठ कार्य के प्रति भलीभान्ति भिज्ञ हैं और अपनी रचनाओं में गाहे–वगाहे इसका उल्लेख संदर्भों में करते रहते हैं। कश्मीर के युवा हिन्दी

कवि महाराज कृष्ण संतोषी पर रचनाप्रक्रिया लिखते हुए वह अनगिनत ऐसे शब्दों को ढूंढ निकालतें हैं जिनका सही प्रयोग नहीं हुआः

"कहीं कहीं शब्दों को नये आकार दिये है– 'महसूसना', 'तलाशना' इसी प्रकार के प्रयोग हैं, अन्य नए कवियों में भी इस प्रकार की नवीन प्रयोगधर्मिता दृष्टव्य है। 'तसव्वुर', लुंगी को लोंघी न जाने कैसे अशुद्ध लिखा है?"

शीराज़ा, पृ086

निजामुद्दीन का शास्त्रीय ज्ञाण उनके पांडित्य से भरे लेखों के माध्यम से सिद्ध होता है। अपने लेख 'अवतारवाद की पृष्ठभूमि में राम' लेख में राम को अवतार के रूप में स्थापित करते हुए कहते हैंः

"राम ही स्वयं भगवान हैं। भगवान अर्थात ऐश्वर्यशाली विष्णुपुराणानुसार सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, पुनर्जन्म, विद्या–अविद्या का ज्ञाता भगवान ही है। विशिष्टाद्वैतवाद में भगवान को षड्गुण विग्रह कहा गया है–ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज़ से संपुष्ट दिव्यदेह ही भगवान है।"

शीराज़ा, पृ036, पृ032

उपर्युक्त वक्तव्य से भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि रचनाकार का इस क्षेत्र में बड़ा विशद ज्ञाण है और वह अपनी बात कहने में न केवल समर्थ है अपितु बहुत सुनियोजित ढंग से नपे तुले शब्दों में कहने की प्रतिभा रखता है।

हां एक बात की ओर ध्यान अवश्य जाता है कि नये हस्ताक्षरों की कृतियों की समीक्षा करते हुए निजामुद्दीन बेबाक हो जाते हैं लेकिन स्थापित रचनाकारों की रचनाओं पर बेबाक बात करते हुए थोड़ा हिचकचातें हैं। मसलन शांत के कृतित्व की बात करते हुए उन्होंने हर प्रकार के विशेषणों का प्रयोग किया है पर उनकी प्रारम्भिक ढीली रचनाओं, विशेषतः कहानियों पर उनकी कलम चुप है। अच्छा होता कि वह अपनी बेबाक दृष्टि इधर भी उसी संयम से प्रयोग में लाते। बहरहाल डा0 निजामुद्दीन एक अच्छे आलोचक हैं इसमें शक की कोई गुजांयश नहीं।

अशोक जेरथ कहानी निबन्ध और आलोचनायें पर अनेक रचनायें प्रकाशित 'उपन्यास में महानगरीय घुटन', हिमप्रस्थ अप्रैल, 1979, 'हिंदी में नये भाषायी प्रयोग', मधुमती जनवरी 81, 'युवा कवि बलनील देवम्' शीराज़ा पूर्णांक 58, 'हिन्दी कहानी के नए सोपान' मधुमती जुलाई 83 'अभिजात्य संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में लोक संस्कृति' सोमसी जनवरी, 85 'चेतना प्रवाह, हिन्दी कथा साहित्य के संदर्भ से' मधुमती मार्च 85, 'हिन्दी कहानी के नए संदर्भ' आजकल दिसम्बर, 1986 'भाषा और संस्कृति' 'युगसाक्षी अक्तूबर 87,' 'आधुनिक हिन्दी कहानी और प्रयोग की प्रक्रिया' 'मधुमती नव. दिसम्बर 87' 'युगीन

प्रवृत्तियां और साहित्य' 'मधुमती जुलाई '88 'मादाम बवुआ और सार्त्र' 'विपाशा सितंबर, 1988,' 'अनाम रिश्तों के मसीहे', 'मधुमती नवं. 86,' 'मनोविश्लेषणवाद और जैनेन्द्र का कथा साहित्य,' मधुमती फरवरी, 89, 'जम्मू की हिन्दी कहानी' 'निस्तंद्र समापन अंक 1975–76,' 'चेतना प्रवाह शैली के मूर्धन्य कलाकार अज्ञेय', शीराज़ा अक्तूबर, 1987, आदि लेख और निबन्ध तथा दैनिक ट्रिब्यून, प्रकर, दैनिक कश्मीर टाईम्स में बीसियों पुस्तकों की समीक्षा के साथ साथ अनेक साहित्यिक परिचर्चाओं में प्रतिभागी रहे हैं। शीराज़ा पूर्णांक 102 में प्रकाशित 'रचनाशीलता और सृजन की ऊर्जा' परिचर्चा का संयोजन भी डॉ0 अशोक जेरथ ने ही किया था। इस परिचर्चा में हिन्दी के प्रख्यात कथाकार बटरोही के इलावा दो अन्य चिन्तकों ने भी भाग लिया था।

डॉ0 अशोक जेरथ का मुख्य क्षेत्र कथा साहित्य रहा है। इस विधा में भी तुलनात्मक अध्ययन में इनका अध्ययन और पैठ है। हिन्दी और डोगरी कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन विषय पर इन्हें साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा एक राष्ट्रीय वृत्ति से भी सम्मानित किया गया है।

तुलनात्मक विश्लेषण के लिए जरूरी है कि आलोचक की विश्लेष्य दृष्टि बहुत विशद हो। कुल साहित्य की विश्लेष्य विधा में विश्वभर में क्या हलचल है इसका अध्ययन हो और उसके परिप्रेक्ष्य में अपने साहित्य के आकलन की सामर्थ्य हो।

डॉ0 वी.पी. सिंह, सेवा निवृत अध्यक्ष हिन्दी विभाग वाराणसी विश्वविद्यालय, वाराणसी भी डॉ. जेरथ के शोध ग्रंथ पर अपनी टिप्पणी करते हुए लिखते हैंः–

"इस शोध ग्रंथ में पाश्चात्य साहित्य जगत में स्थापित सभी प्रमुख धाराओं की चर्चा हुई है। चेतना प्रवाह धारा को लेकर संभवतः यह पहला प्रयास अपने समग्र रूप में हुआ है। अस्तित्ववादी चिन्तन की पीठिका में हिन्दी के आधुनिक कथा साहित्यकारों की रचनाओं के विश्लेषण का भी सम्भवतः यह पहला सफल प्रयास किया गया है। इस सारे प्रयास, के लिए यह जरूरी था कि फ्रेंच, अंग्रेजी तथा अन्य युरोपीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य के प्रचुर ज्ञान के साथ साथ भारतीय साहित्य विशेषकर, हिन्दी कथा साहित्य का सम्पूर्ण ज्ञान हो–शोधकर्ता अपने प्रयास में पूर्णतया सफल हुआ है इसमें कोई संदेह नहीं।"

चेतना प्रवाह धारा का हिन्दी कथा साहित्य पर प्रभाव पृ09

केवल अध्ययन ही नहीं इकत्रित ज्ञान भण्डार को शब्दों में बान्धना और उसे सही अभिव्यक्ति देना आलोचना की मूलभूत शर्तें हैं। इस ओर न केवल अध्ययन अपितु अनुभव तथा उन अनुभवों के माध्यम से कृति का सही परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का विश्लेषण करते हुए जेरथ लिखते हैः

''जैनेन्द्र के पात्र एक धुन्ध से लिपटे हैं। वे आदर्श की धुन्ध के मोमी लिफाफे के बाहर झांक रहे हैं, उस धुंध को रेज़ा–रेज़ा कर उखाड़ फैंकने के लिए छटपटाते हैं यथार्थ में उस स्वछन्द वातावरण को पकड़ने के लिए यहां खुली हवा है, धुन्ध का गीलापन और कैद नहीं।" और एक अन्य स्थान पर पात्रों के दो रूपों को स्थापित किया गया है:

''स्त्री पात्र प्रायः आत्मसमर्पण की ओर उन्मुख हैं। पारम्परिक संस्कृति के भार से झुके हुए । उनके लिए पुरुष शक्ति के प्रतीक हैं अतः उनके सामने आत्मसमर्पण करना एक सहज भाव है।''

.........*मधुमती, फरवरी 89 पृ.69*

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का विश्लेषण जेरथ द्वारा 'हिन्दी कहानी के नए सन्दर्भ', लेख में भी हुआ है: जैनेन्द्र की शैली ,''आन्तरिक विश्लेषणात्मक कथ्य पर आधारित रही है। अक्सर तीन पात्र तिकोने द्वन्द्व में उलझे प्रतीत होते हैं जिनमें नारी का चरित्र अतिशय गम्भीर और अजनबी रहता है।''

– *आजकल, दिसम्बर 86 पृ. 27*

"हमारा आज हमारे अतीत से कहीं जटिल है, यह व्यक्ति के मनोयोग के लिए विश्लेषण हेतु अतंहीन सत्य के धरातल खोल देता है किन्तु ये विश्लेषण अतीत के संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में किये जाते हैं। अतः आज बीते कल से कभी भी अलग नहीं हुआ। यूं देखा जाए तो अति आधुनिक प्रक्रियाएं भविष्य की झांकी भी प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार अतीत और भविष्य अनेक बार वर्तमान में बौद्धिक प्रक्रियाओं के माध यम से सजीव हो उठते हैं–'' युगीन प्रवृितियां और साहित्य, मधुमती *जुलाई पृ0 88*

मौलिक चिन्तन के साथ साथ आलोचक की बेबाक दृष्टि का होना सही आलोचना के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

'' क्या सामाजिक और आर्थिक तौर पर पिछड़ा हुआ व्यक्ति ही 'आम आदमी' की संज्ञा को चरितार्थ करता है। विश्वद्यिालय में पढ़ाने वाले आचार्य, आर्थिक रूप से सम्पन्न चिंतक और सामाजिक प्रतिष्ठा से लैस व्यक्ति कभी किसी क्षण में 'आम' नहीं हो जाते बहुत टूटे हुए एकाकी व्यक्ति की अपनी व्यथा है.......यह व्यक्ति 'आम आदमी' की अन्तर्वेदना से कदापि कम नहीं हो सकती है स्थिति और संदर्भ अलग हों यह अलग बात है।"

– *आधुनिक हिन्दी कहानी और प्रयोग की प्रक्रिया, मधुमती नवम्बर 87 पृ0 96.*

विश्लेषण की दीर्धा में पैठ पाते हुए आलोचक महानगरीय घुटन का विश्लेषण करते हुए कह उठता है:

'' अकेलेपन का अहसास, मानसिक कुण्ठा, मृत्युबोध, दुःखद स्मृतियां, धुंधला भविष्य तथा शासन व्यवस्था जिसने संस्कृति के नाम पर हमारे बीच सूनापन और सन्नाटा बुन दिया है– महानगरीय परिवेश में पहले घुटन के धरातल हैं।''...........हिमप्रस्थ, पृ.37

मधुमती के जनवरी 81 अंक में उनका लेख 'हिन्दी में नए भाषायी प्रयोग' उनके भाषा पर अधिकार की साक्षी देता है। 'युग साक्षी' में प्रकाशित उनके एक लेख 'भाषा और संस्कृति ' में सटीक भाषा की शक्ति की ओर उन्होंने संकेत दिए हैं:–

''भाषा के माध्यम से व्यक्ति की पहचान सबसे पहले और अति शीघ्र होती है– पहनावा, खानपान और व्यवहार व्यक्ति के छद्म व्यक्तित्व को ज्यादा देर बान्ध नहीं सकते।''

युगसाक्षी, अक्तूबर 1987 पृ.68

डा0 अनिल गोयलः डॉ0 अनिल गोयल ने अपने लेखों और समीक्षाओं के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि उनकी कहानी के क्षेत्र में और उपन्यास के क्षेत्र में अच्छी पकड़ है। इधर शीराज़ा और अकादमी के दूसरे प्रकाशनों में इनकी अनेक रचनाएं इस ओर संकेत करती हैं। जम्मू की हिन्दी कहानी, और जम्मू कश्मीर की हिन्दी कहानी को लेकर इनका आकलन बेबाक और समोचित कहा जा सकता है। जब भी किसी तुलनात्मक कार्य की समीक्षा हो उसमें प्रकाशित संकलनों का योगदान सर्वोपरि रहता है। इन संकलनों के माध्यम से न केवल रचना अपितु रचनाकार की स्थिति को भी आंका जा सकता है। अनिल गोयल के उपर्युक्त लेख इस यात्रा की ओर संकेत करते हैं। कहानी की विधा पर प्रकाशित संकलनों के साथ साथ वैयक्तिक कहानी संग्रहों पर भी व्यापक चर्चा डा0 अनिल के कार्य की ओर संकेत करती है।

जम्मू कश्मीर अकादमी द्वारा आयोजित एक परिचर्चा 'हिन्दी कहानी, उपलब्धि और संम्भावनाएं' में डा0 अनिल का योगदान सराहनीय रहा है जो इस बात का सबूत है कि अनिल का इस विधा में सूक्ष्म अध्ययन है और अपनी बात को कहने की क्षमता भी । वर्तमान अथवा समकालीन कहानी की पहचान तभी संभव हो सकती है जबकि इस ओर व्यापक अध्ययन हो। डॉ0 अनिल ने अकाट्य तथ्यों और उदाहरणों के बल पर इस परिचर्चा में अपनी बात को स्थापित किया है। इस परिचर्चा में उनके साथ डॉ0 ओम गुप्त, अशोक जेरथ , छत्रपाल और उषा व्यास ने भाग लिया था। यह परिचर्चा लिप्यंतरण कर शीराज़ा के कहानी अंक में प्रकाशित की गई। इनके इलावा लगभग एक दर्जन पुस्तकों की समीक्षा , जिसमें से अधिकतर हिन्दी कथा साहित्य विधा पर थीं, अनिल के व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत है।

डा0 अनिल गोयल वस्तुतः तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में संलग्न हैं ओर इसी ओर इनका ज्यादा कार्य भी हुया है। अच्छे कार्य का अच्छा विश्लेषण तीन बातों पर निर्भर करता है– आलोचक का व्यापक अध्ययन, पैनी दृष्टि के साथ साथ उक्त क्षेत्र का मर्मज्ञ होना और सटीक अभिव्यक्ति या उचित शब्दों में उचित बात कहने की क्षमता । इन तीन विशेषताओं में यदि आलोचक पूरा नहीं उतरता तो निश्चय ही आधा अधूरा विश्लेषण

कृति का होगा। डा0 अनिल कुछ सीमा तक इन तीनों विशेषताओं को लिए हुए हैं अतः इनसे अच्छे आकलन की अपेक्षा की जा सकती है।

अनिल गोयल द्वारा समीक्षित पुस्तकों की एक लम्बी सूची है। कुछेक यहां गिनाई जा सकती हैं: महीप सिंह कृत संग्रह 'कुछ और कितना' की पुस्तक समीक्षा शीराज़ा पूर्णांक 34 में, मृदुला गर्ग द्वारा रचित उनकी चर्चित कृति ''उर्फ सैम', शीराज़ा पूर्णांक 81 में, बलनील देवम् कृत कहानी संग्रह 'उल्कापात', शीराज़ा पूर्णांक 42 में, चंद्रकान्ता कृत उपन्यास 'बाकी सब खैरियत है' की समीक्षा शीराज़ा पूर्णांक 73 में प्रकाशित है।

इनके इलावा अनेक आलोचनात्मक लेख मसलन, 'मेहरुीन्नसा परवेज़ के कथा साहित्य में आर्थिक तत्त्व' शीराज़ा पू0 69, 'आज की हिन्दी कहानी में विधवा नारी' शीराज़ा , पू048, 'कुहीरल आकाश पर बिखरा अतीत और तलाक' शीराज़ा , पू0 41, 'जम्मू कश्मीर की हिन्दी कहानी को देन' शीराज़ा , पू060 ,'जम्मू की हिन्दी कहानी का सर्वेक्षण' शीराज़ा, पू0 43 आदि लेख इनकी गहन दृष्टि के परिचायक हैं।

कहानी की मौलिक परिभाषा की ओर संकेत डॉ0 अनिल द्वारा रचित उनके लेख 'जम्मू की हिन्दी कहानी' शीराज़ा पू043 में दिए गए हैं: 'कहानी एक प्रकार से अस्तित्वाद का प्रयोग है। यह अस्तित्वाद किसी एक वाद का दर्शन नहीं, न ही कल्पना पर आधारित है इसका संबंध उस अपरिमेय पीड़ा में है जो अपनी अपराजेयता और अपरिसीमता में पूरे जीवन में निहित है।'– पृ065

एक आलोचक की सबसे बड़ी खूबी है कि वह कृति का परिवेश के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण कर न केवल उसे शब्दों में ढाले अपितु उसकी व्याख्या भी करने में समर्थ हो। महीपसिंह कृत कहानियों के संग्रह 'कुछ और कितना' में अनिल गोयल का महीप सिंह की कहानियों पर किया गया विश्लेषण देखें:

'नगरबोध के कहानीकार महीप सिंह ने साठोत्तरी हिन्दी कहानी को विचार सिद्धांत और जीवनपरक अर्थवत्ता दी है। वे दृष्टि की सचेतनता के प्रति आग्रहशील हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में टूटते उभरते मूल्यों, जीवन की ढहती पनपती मान्यताओं और व्यक्ति – समाज की विषमताओं की वाणी दी है जिनमें आत्मसजगता है और संघर्षेच्छा भी।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि न केवल अनिल का विश्लेषण ही सटीक हुआ है अपितु अपनी बात कहकर उसे स्थापित करने की भी सामर्थ्य अनिल में है और इससे भी ऊपर बेबाक अंदाज से वह अपने विचार भी रखतीं हैं।

भुवनपति शर्मा: दूरदर्शन के भूपाल केन्द्र में सहायक केन्द्र निदेशक के तौर पर कार्यरत भुवनपति शर्मा एक अध्ययनशील व्यक्ति हैं। एम. ए. अंग्रेजी में करने के बाँद अनेक भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन होने से भुवनपति की एक विशद दृष्टि

बनी है। इनके द्वारा रचित कुछ लेख इनके गंभीर चिंतन की ओर संकेत करते हैं शीराज़ा मार्च 1972 में प्रकाशित 'मानस का हंस' रामचरित मानस के परिप्रेक्ष्य में लिखे गए लेख में आकलन की सूक्ष्म प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

'' एक जीवन – परक उपन्यास के मूल्यांकन का आधार यह होता है कि व्यक्ति के जीवन को उसके सामाजिक संदर्भों में प्रस्तुत किया जाए।''

भुवन पति शर्मा द्वारा की गई कई कृतियों की समीक्षा शीराज़ा के अंकों में हमें मिलती है। शीराज़ा सितम्बर 1971 में प्रकाशित मोहन निराश कृत 'कृष्ण मेरा पर्याय' में विद्वान आलोचक की भाषा में प्रवाह देखा जा सकता है:

'इस अंधी क्रान्ति की आंधी के सामने आंख मून्द कर छिप जाना कवि को स्वीकार नहीं अपनी बज्रोपम छांती और आत्मविश्वास के भरोसे वह चुनौती को स्वीकार करते हुए चिंतन' में हर मनुजपुत्र का आह्वान करता है। '' फूल बनने का, विश्व सौन्दर्य का अंश बन मानव की गहनतम प्रवृत्तियों को आलोकित करने का........''

शीराज़ा दिसम्बर 1974 में प्रकाशित 'एक आयास अनायास' कविता संकलन की पुस्तक समीक्षा में भुवनपति की प्रतिभा का एक और स्वर उभरता है– हल्काफुल्का परिचायत्मक स्वर :

''एक आयास अनायास चार कवियों का सहयोगी संकलन है जिसमें ''मेरा हमदम मेरा दोस्त की शैली में परस्पर एक दूसरे पर संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणियां दी गई हैं और साथ ही एक दूसरे की रचनाओं की मनोभूमि को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया गया है।''

.......पृ0 69

उपर्युक्त वक्तव्य आलोचक की परख और सतर्क दृष्टि की ओर संकेत करते हैं शीराज़ा पूर्णांक 103 में नन्द भारद्वाज द्वारा सम्पादित राजस्थान के कवियों की रचनाओं के संकलन 'रेत पर नंगे पांव' की पुस्तक समीक्षा करते हुए आलोचक की मौलिक दृष्टि का भी परिचय मिलता है :

''हमारी बातचीत समय की स्वर लिपि में एक पारस्परिक मौन हो जाती है। शरीर दे देता है स्वीकारने की जिज्ञासाएं, नहीं छोटी छोटी उपलब्धियां'' *...........पृ0 74*

ओम गोस्वामी: शीराज़ा डोगरी और कुछ समय तक शीराज़ा हिन्दी के सम्पादक के तौर पर कार्य करने के बाद सम्प्रति मुख्य सम्पादक डिक्शनरी प्रोजेक्ट ओम गोस्वामी कहानी विधा के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। कहानी लिखना और उसकी पहचान होना दोनों प्रक्रियाओं में बड़ा अन्तर है। यह आवश्यक नहीं कि जो कहानीकार हो उसे कहानी आकलन की भी तमीज़ हो पर यह प्रतिभा ओम गोस्वामी में है। सम्पादकीय लिखना ही अपने में विश्लेष्य दृष्टि रखना है और रचनाओं की परख तभी संभव है जब मूलतः

सम्पादक इनकी पहचान रखता हो।

ओम गोस्वामी कृत अनेक पुस्तक समीक्षाएं शीराज़ा के अंकों में प्रकाशित हुई हैं जो इनकी इस क्षेत्र में पकड़ की ओर संकेत करती हैं।

जागृति हिन्दी मासिक अप्रेल, 76 का आकलन करते हुए प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं पर एक समग्र दृष्टि डालते हुए ओम गोस्वामी कह उठते हैं कि सरकारी ओर अर्धसरकारी पत्रिकाओं की अपनी भूमिका रही है– '' व्यवसायिक पत्रिकाओं के चटपटे – चटाखेदार मसाले से अलग इन्हें अपनी पहचान कायम रखकर जनमानस की सुरुचि और गुणग्राह्कता को बढ़ावा देना होता है। इसलिए विकृतिहीन सामाग्री का प्रकाशन एक लाजमी शर्त है।''
........*पृ0 72*

शीराज़ा पूर्णांक 92 में 'विचार बिन्दु' ओम गोस्वामी के चिंतन और वैचारिकता का रूप 'समकालीनता और साहित्यिक सरोकार' शीर्षक से दिए गए सम्पादकीय में दृष्टिगोचर होते हैं साहित्य की वर्तमान युगधारा के प्रति '' बीते समय में साहित्य की चाहे जो भूमिका रही हो पर वर्तमान दौर में.........साहित्य का सरोकार निश्चित रूप समकालीन स्थितियों से सम्बद्ध है। समकालीनता वर्तमान युग की वाधाओं को बहन करने के अभिप्राय से स्वतः जुड़ती गई लगती है।''
.........प0ृ11

ओम गोस्वामी की एक निश्चित दृष्टि रही है– जिसे प्रतिबद्वता की कसौटी पर पूरी करने का प्रयास उनकी कहानियों में भी देखा जा सकता है। इस दृष्टि को एक निश्चित दिशा में उनके सम्पादकीय में तथा समालोच्य कृतियों में भी देखा जा सकता है:

'' दूसरी श्रेणी में ऐसा साहित्य आता है जिसमें जीवन की प्रत्यक्ष चुनौतियों की आंख में आंख डाल कर देखने के बजाय पात्र या चरित्र की व्यक्तिगत समस्याओं को उरेहा जाता है व्यक्तिगत कुण्ठा अथवा व्यक्ति – वैचित्र्यवाद का आश्रय लेने वाले साहित्य में यथार्थ के नाम पर कल्पना और कला के नाम पर छाया का बाहुल्य दिखाई देता है। यहां समाज– चेतना गौण और आत्म– चेतना मुख्य होती है।''

यद्यपि वक्त्तव्य पर अनेक प्रश्न उठाए जा सकते हैं मसलन ऐसे तथाकथित दूसरी श्रेणी के साहित्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास से यदि निकाल दिया जाए तो बाकी क्या रह जाएगा? जैनेन्द्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश और यह नामों का कारवां बढ़ता ही जाता है– इन्होंने वैयक्तिक ग्रंथियों को साहित्य में न केवल उभारा है अपितु संदर्भों सहित इन्हें स्थापित भी किया है। हिन्दी की श्रेष्ठ रचनाएं इसी तथाकथित दूसरी श्रेणी में आती हैं।

लेकिन यह आलोचक की अपनी दृष्टि है शायद इसीलिए एक अच्छे आलोचक

के लिए पूर्वाग्रह मुक्त दृष्टि की बात की जाती है।

रमेश मेहता: शीराज़ा के वर्षों सम्पादन के बाद रमेश मेहता उप सचिव के पद पर कल्चरल अकादमी में कार्यरत हैं। लेकिन शीराज़ा के सम्पादक के तौर पर उनका कार्यकाल बहुत समुचित और इस प्रदेश में हिन्दी साहित्य को स्थापित करने वाला कार्यकाल कहा जा सकता है। रमेश मेहता की एक निश्चित दृष्टि रही है जो उनके सम्पादकीय में पकड़ी जा सकती है। सम्पादकीय के साथ साथ अनेक कृतियों की समीक्षा का प्रकाशन और अनेक साहित्यिक परिचर्चाओं की परियोजना में इस साहित्यिक व्यक्ति का योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

'अपनी बात' के अन्तर्गत रमेश मेहता की वैचारिकता ओर विश्लेषण को परखा जा सकता है।

''यदि हमें साहित्य की गरिमा और उसके सौंदर्य को बनाए रखना है तो अपने परिवेश के आग्रहों के प्रति जवाब देह होकर साहित्य सृजन करना होगा।''शीराजा पूर्णांक 58

सही साहित्य की ओर संकेत उनकी चेतन दृष्टि के परिचायक हैं।

शीराज़ा के उपन्यास अंक, पूर्णांक 53 में अपनी बात के अन्तर्गत रमेश मेहता ने कुछ विचारोत्तेजक प्रश्न उठाए हैं– ' कि क्या कारण है कि स्थापित मूल्यों और सशक्त व्यवस्था के विरोध में सही आवाज़ उठाने के लिए हिन्दी उपन्यासकारों ने प्रायः विक्षिप्त पात्रों का सहारा लिया है! (ख) हिन्दी में 997 उपन्यासकार मध्यवर्ग हो आए हैं और तथाकथित 'एफ्लुएंट क्लास' से उनका कदाचित कभी कोई नाता नहीं रहा है।

(ग) किसी काल विशेष में लिखे गए उपन्यासों में एक सी घटना अथवा मनः स्थितियों का दिखाई देना ।

(घ) वह कौन सी अनिवार्यता है जो लेखक को किसी रचना को खंडों में विभाजित करके प्रकाशित करवाने की घोषणा करने के लिए विवश करती है।

उपर्युक्त प्रश्नों के स्थापन में अनेक संदर्भ भी दिए गए हैं जो विद्वान लेखक के दो पक्षों को उजागर करते हैं– एक गंभीर अध्ययन और दूसरे विश्लेष्य दृष्टि!कहानी विशेषांक, शीराज़ा पूर्णांक 43 में एक और 'प्रश्न अपनी बात' के अन्तर्गत रमेश मेहता सुधि ा पाठकों और साहित्यकारों की ओर उछाल देते हैं कि , ''वे कौन से गुण हैं जिनके चलते आप हिन्दी साहित्य के इतिहास की पुस्तकों में विवेचित लेखकों को तो साहित्यकार मान लेते हैं लेकिन वे लोग जिनकी कृतियां लाखों की संख्या में बिकती हैं साहित्यकार बिरादरी द्वारा तिरस्कृत किंए जाते हैं ?"

इन प्रश्नों का उत्तर यद्यपि उनके पास भी है पर ये प्रश्न उनके विशलेषण और तर्क दोनों को ही उनकी लेखनी का सशक्त अंग बना जाते हैं।

रमेश मेहता द्वारा कुछ कृतियों की समीक्षा भी इन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है। सीधी सादी और सारगर्वित भाषा उनकी प्रेष्णीयता को बढ़ा देती है।

उपर्युक्त आलोचकों और चिन्तकों के इलावा प्रो0 हरिकृष्ण कौल, डॉ0 आदर्श, निर्मल विनोद, डॉ0 सिम्मी गुप्ता, कृष्ण राज़दान, प्रो. सत्यपाल और उषा व्यास आदि की आलोचनात्मक रचनाएं और इनकी लिखी हुई पुस्तक समीक्षाएं भी समय समय पर प्रकाशित हुई हैं।

शीराज़ा का एक अलोचना विशेषांक 'आलोचना के विरूद्ध' पूर्णांक 70 नाम से रमेश मेहता के सम्पादन में प्रकाशित हुआ है। इस अंक में विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गए तेरह लेख, एक कविता और एक व्यंग्य तथा एक कहानी प्रकाशित है। पर इस अंक में एक कमी खटकती है कि स्थानीय किसी भी आलोचनात्मक कृति की बात नहीं की गई। शायद इस तरह की कोई कृति सम्पादक की दृष्टि में न हो । बहरहाल प्रयास अच्छा था क्योंकि एक साथ देश और प्रदेश के विद्वानों को अपनी बात कहने का भरपूर अवसर मिला था।

समकालीन कविताः श्री अशोक कुमार द्वारा संपादित 12 आलोचनात्मक लेखों का यह संकलन 1988 में युवा हिन्दी संघ द्वारा प्रकाशित किया गया। निवेदन में संपादक ने लिखा हैः

"इस पुस्तक में समकालीन हिन्दी कविता के तीन प्रमुख हस्ताक्षर मुक्तिबोध , धूमिल और सर्वेश्वर की कृतियों पर आलोचनात्मक लेख संकलित हैं" इन लेखों में कुछ लेख गंभीर चिंतन एवं अध्ययन के परिचायक हैं पर कुछेक लेख ऐसे भी हैं जो सतही कहे जा सकते हैं। संकलित लेखों में से डॉ0 अनिल गोयल विरचित 'व्यवस्था विरोध के हथियार पटकथा और बलदेव खटिक' एक अच्छा लेख कहा जा सकता है जिसमें लेखिका का विश्लेषण और कविता की पहचान स्पष्टतः ही दृष्टिगोचर होती है। लम्बी कविता की पृष्ठभूमि में मानवीय मूल्यों के प्रति आग्रह डॉ0 अनिल गोयल का धूमिल कृत 'पटकथा' का विशलेषण भी उन्ही मूल्यों को लेकर हुआ है–

'पटकथा' की कथा विविध दृश्यों में बंटी हुई राजनीति की उधेड़बुन में उलझी हुई है। इसमें देश की स्वतंत्रता, भारत–चीन युद्ध.........चुनाव की भ्रष्ट नीति ओर युद्‌धोपरान्त वस्तुमूल्यों के बढ़ने और मानव मूल्यों के स्खलन के दृश्यों को एक सूत्र में पिरोया है।"

डॉ0 अनिल की भाषा सहज है कहीं पर भी आरोपित शब्दों का जाल हमें नहीं दिखाई देता जो अक्सर आलोचनात्मक लेखों में आलोचक अपनी धाक बैठाने के लिए बुनते हैं।

डॉ0 ओम गुप्त द्वारा रचित लेख 'मुक्तिबोध का बिम्ब विधान' एक और अच्छा लेख है जो लेखक की पैनी दृष्टि और मौलिकता की ओर संकेत करता है। डॉ0 ओम की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उन्हें अपनी बात कहने में महारत हासिल है और अध्यापकीय विश्लेषण तो उनकी आधारभूल विशेषताओं में लिया जा सकता है। चुने हुए शब्दों द्वारा अपनी बात उचित ढंग से कह सकने की सामर्थ्य बिरलों में ही होती है और यही प्रतिभा डॉ0 ओम की आलोचनात्मक कृतियों में मुखरित हुई है–

''मुक्तिबोध लगातार अविराम और निर्वार तनाव में जीने वाला कवि है । न वह क्षणिक भावावेश में अपनी बात कहकर छुट्टी पा सकता है , न गहराई से उठते सवालों को मारकर एक सामान्य जीवन जी सकता है।''

अशोक कुमार द्वारा लेख में लेखक ने अपनी बात कहने की कोशिश जरुर की है पर लेख में अभी और प्रयास की आवश्यकता है। पर कहीं कहीं पर लेखक अपनी बात कहने में समर्थ भी हुआ है–

''जिस क्रान्ति के पीछे, योजना , व्यवस्था, चिंतन तथा व्यापक जनाधार न हो वह क्रान्ति एक अनजाने खतरे से हमेशा जुड़ी रहती है। कुआनो नदी भी एक ऐसे ही खतरे की ओर संकेत करती है।

हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप

स्वतंत्रता के बाद हिन्दी पत्रकारिता ने अनेक सोपान तय किए हैं, विशेषकर जम्मू में इस ओर अनेक प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों में विभागीय और वैयक्तिक प्रयास दोनों ही खूब हुए हैं कि हिन्दी रचनाकारों और पत्रकारों का कारवां तैयार हुआ है।

विभागीय प्रयास : सरकारी और अर्ध सरकारी संस्थाओं द्वारा विभागीय प्रयासों में कश्मीर समाचार, फील्ड सर्वे आरगेनाईजेशन द्वारा डुग्गर समाचार, जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा शीराज़ा (हिन्दी), हमारा साहित्य और दूसरे संकलन तथा जम्मू विश्वविद्याल्य द्वारा प्रकाशित मंतव्य आदि पत्र पत्रिकाएं लीं जा सकती हैं।

योजना: जम्मू कश्मीर सूचना विभाग की प्रमुख हिन्दी पत्रिका के तौर पर योजना का नाम लिया जा सकता है। यद्यपि छोटी मोटी अनेक दूसरी पुस्तकाओं का भी प्रकाशन विभाग द्वारा होता रहा है तथापि योजना का प्रकाशन निरन्तर होता रहा है। इस पत्रिका के प्रकाशन के पीछे विभाग का उद्देश्य राज्य की विकासात्मक गतिविधियों का प्रचार था पर कालान्तर में सम्पादक की सूझबूझ से धीरे धीरे, पर एक निश्चित गति से, साहित्यिक प्रत्रिका के रूप में ढल गई। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1956 ई0 में हुआ था और सम्पादक थे डोगरी और हिन्दी के जाने माने साहित्यकार श्री वेद राही और इन्हें सहयोग देते रहे हैं श्री शशी शेखर तोषखानी । आरम्भ में इसका कार्यालय श्रीनगर में

था पर बाद में इसे जम्मू स्थानान्तर कर दिया गया। श्री वेद राही के सम्पादकत्व में योजना के कुछेक विशेषांक भी निकले जिनमें से नव वर्षांक और संस्कृति अंक विशेष तौर पर चर्चित हुए। योजना के अंकों में संस्कृति, पर्यटन और सूचनाओं के साथ साहित्यिक रचनायें भी प्रकाशित की जातीं रहीं हैं। कश्मीरी भाषा में रची गई रचनाओं का हिन्दी अनुवाद भी इस पत्रिका में छपता था। अकसर इसके अंक आर्ट पेपर पर निकलते थे। कतिपय कुछ कारणों से योजना का प्रकाशन 1963 में बंद हो गया पर कुछ वर्षों के बाद सन् 1978 में एक बार फिर से इसका प्रकाशन शुरू हुआ इस बार इसके सम्पादक थे श्री मनसा राम शर्मा 'चंचल' । चंचल चर्चित हिन्दी पत्र मिलाप के सम्पादन विभाग से अनुभव लेकर आए थे और स्वयं भी हिन्दी के एक अच्छे रचनाकार रहे हैं। कुछ देर बाद श्री शिव रैना ओर सरिता शर्मा सहयोगी के तौर पर कार्य करने लगे थे। कुछ समय परमान्नद भी इसके संपादन में सहयोग देते रहे। श्री मनसा राम 'चंचल' के अवकाश पर चले जाने पर श्री शिव शर्मा योजना के संपादक के तौर पर कार्य करने लगे। श्री शिव शर्मा के कार्यकाल के दौरान दो एक अंक ही योजना के अभी प्रकाशित हुए थे कि इन्होने भी अपने कार्य से छुट्टी करली और शिव रैना कार्यकारी संपादक बने और योजना साप्ताहिक से पाक्षिक हो आई। 1989 में शिव रैना के आ जाने से योजना में निरन्तरता आनी दिखाई देने लगी थी और इसका स्वरूप भी बदला, रूपसज्जा में भी बढ़ोतरी हुई ओर साहित्यिक रचनाओं के साथ रोचक ख़बरे और चुटकलेबाजी भी छाया होने लगी। पुस्तक परिचय और पत्रोत्तर के कालम भी उचित स्थान पाने लगे।

मनसा राम 'चंचल' के कार्य के दौरान दो विशेषांक प्रकाशित किए गए। एक था मुशीं प्रेमचन्द पर विशेष साहित्य अंक और दूसरा बाल अंक। मुशीं प्रेम चंद पर विशेषांक बहुत सुन्दर बना है। तीनरंगीं प्रेमचंद के चित्र के साथ बाहिरी कलेवर खूब आकर्षक है। प्रेम चंद के साहित्यिक ब्योरे के साथ साथ प्रबुद्ध लेखकों और आलोचकों के अठारह लेख प्रेमचंद की रचनाप्रकिया के साथ संकलित हैं। रचनाकारों में डॉ0 कमल गोयंका, डॉ0 राजेन्द्र भनोट, डॉ0 श्रीमती कृष्णा रैणा, धर्मचंद प्रशांत, प्रोफेसर सुभाष भारद्वाज, अशोक जेरथ आदि के लेख संकलित हैं जिनमें प्रेम चंद की रचनाएं भी दीं गईं हैं। प्रेमचंद द्वारा रचित समग्र साहित्य का परिचय भी इस अंक में संकलित है। निर्मला, गोदान , और मानसरोवर कृतियों के प्रथम संस्करणों के मुखपृष्ठों के छायाचित्र प्रेमचंद स्मृति अंक , जो 1937 में हंस के विशेषांक के तौर पर छाया हुआ था, का छायाचित्र भी इसमें संकलित है। प्रेमचंद द्वारा शिव रानी देवी को लिखे पत्र, 27 मई 1933 , की प्रतिलिपि भी इसमें संलग्न है। यह अंक हर सूरत में एक संग्रहनीय अंक है और आज भी इसकी उपायदेयता उतनी ही है जितनी इसके प्रकाशन के समय थी।

योजना का दूसरा विशेषांक बाल साहित्य पर आधारित है और बाल कथाओं ,

कविताओं और बाल मानसिकता पर लिखे गए लेख भी इस विशेषांक में संकलित हैं। यह अंक भी संग्रहनीय अंक है।

योजना के दूसरे श्रेष्ठ अंकों में जून 1980 का अंक कलेवर, रचनाओं के चयन की दृष्टि से एक अच्छा अंक कहा जा सकता है। आवरण दोरंगी है और बसोहली शैली के एक चित्र से सुशोभित है जिसमें श्रीकृष्ण गाय का दूध दोह रहे हैं और राधा ने बछड़े को पकड़ रखा है। इस अंक में सात लेख, दो कहानियां, छः कविताएं आदि संकलित हैं। इस अंक का संपादन भी श्री मनसाराम चंचल ने किया था और सहयोगी थे श्री परमानन्द।

डुग्गर समाचारः संस्थागत प्रक्रियाओं में प्रकाशन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जम्मू कश्मीर फील्ड सर्वे आर्गेनाईजेशन द्वारा एक नियमित समाचार पत्र 'डुग्गर समाचार' के नाम से प्रकाशित होता रहा है। इसका प्रवेशांक मार्च/अप्रैल, 1966 में प्रकाशित हुआ ओर अंतिम अंक 15 मार्च 1975 में अर्थात यह साप्ताहिक पत्र नौ वर्ष तक निरन्तर प्रकाशित होता रहा है। इस पत्र के सम्पादक थे हिन्दी साहित्य के स्थानीय वरिष्ठ कवि श्री मनसाराम चंचल और मुख्य सम्पादक थे पं. बलदेव प्रकाश शर्मा जो कि इस संस्था के निदेशक भी थे। डुग्गर समाचार चूंकि जम्मू कश्मीर रियासत की सरकारी पत्रिका थी अतः इस समाचार पत्रिका में जम्मू कश्मीर के विकास कार्यों के इलावा स्थानीय राजनेताओं के चरित्र, जीवनी और साहित्यिक रचनाओं को भी स्थान दिया जाता रहा है। इस समाचार पत्रिका में सर्वश्री सूरज सराफ, शिवरैणा, ज्योतीश्वर पथिक, मनसाराम शर्मा 'चंचल', माधवी भसीन, रमेश मेहता आदि के लेख, कवितायें, कहानियां आदि प्रकाशित होती रहीं हैं। अधिकतर लेख विकासात्मक और प्रदेश के मंत्रियों की प्रशंसा में लिखे गए हैं विशेषकर मुख्यमंत्री और सूचना मंत्री को मुखरित करते लेख इनमें संग्रहित हैं। "डुग्गर समाचार" के कुछेक विशेषांक भी प्रकाशित किए गए जिनमें स्वाधीनता रजत जयन्ती अंक विशेष चर्चित हुआ। सामान्यतः 'डुग्गर समाचार' आठ पृष्ठीय एक अच्छा संग्रह कहा जा सकता है। इस अंक में स्वाधीनता के पच्चीस वर्षों के इतिहास, प्रगति और विकास को रेखांकित करते सौलह लेख प्रकाशित हैं जिनमें से डॉक्टर माधवी यासीन द्वारा रचित लेख 'महान देश भक्त वासुदेव बलवंत फड़के' तथा श्री मनसाराम शर्मा चंचल द्वारा लिखित 'जम्मू कश्मीर में हिन्दी सेवा' विशेष रूप से लिए जा सकते हैं। इन लेखों के इलावा सर्वश्री निर्मल विनोद, जितेन्द्र उधमपुरी, कृष्ण स्मैलपुरी, चंचल और शंकर शर्मा पिपासु की काव्य रचनायें तथा श्रीमती पुष्पा महाजन तथा श्री मदनमोहन की कहानियां भी संकलित हैं। सुतीक्ष्ण कुमार आनंदम् द्वारा रचित एक संगीत रूपक ज्योति पर्व भी इस अंक का एक मुख्य आकर्षण है। अपने सम्पादकीय में चंचल लिखते हैं– "पच्चीस वर्ष की अवधि किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता के इतिहास में बहुत नहीं होती। हमें संतोष है कि हमने इस स्वल्प अवधि में संतोषजनक ढंग में प्रगति की है और संसार में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी है"।

डुग्गर समाचार 1975 के पूर्वार्ध तक प्रकाशित होता रहा परन्तु फील्ड सर्वे आर्गेनाइजेशन के बंद हो जाने पर 15 मार्च 1975 में इसका अंतिम अंक प्रकाशित हुआ। इस अंक में एक कहानी भी प्रकाशित है 'बुझते चिराग' शीर्षक से। शायद यह प्रतीकात्मक शीर्षक भी इस लिए रखा गया। बहरहाल अपने नौं वर्षो के सफर के बाद यह पत्र भी दम तोड गया।

वितस्ता: जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय के श्रीनगर में हिन्दी विभाग की ओर से 'वितस्ता' पत्रिका का प्रकाशन 1961 में शुरु हुआ था जो अनियमित कुछ देर चलता रहा कि 1966 में डॉ. रमेश चन्द्र शर्मा, विभागाध्यक्ष के प्रयासों से न केवल इसे फिर से स्थापित किया अपितु यह पत्रिका साहित्य, अनुसंधान और लेखन प्रक्रिया का एक मंच बनकर उभरी। 'वितस्ता' पत्रिका के माध्यम से विभाग में हो रहे शोध कार्य तथा सांस्कृतिक साहित्यक गतिविधियों की झलक मिलती है। इस पत्रिका को वार्षिक अंक के तोर पर लिया जा सकता है पर सम्पादक और संचालकों की खूबी यह है कि प्रत्येक अंक संग्रहनीय है। मसलन 1979 का अंक 'वितस्ता के नए चरण' पुस्तकाकार में है और कश्मीर के प्रतिष्ठित और उभरते हुए हिन्दी कवियों की वाणगी प्रस्तुत करता है। भूमिका में डॉ0 अयूब 'प्रेमी' लिखते हैं: ''प्रायः इन कवियों ने दर्द की अभिव्यक्ति में ही अधिक मनोयोग दिखाया है। ये सभी कविताएं कश्मीर के परिवेश में जन्म लेती हैं यद्यपि इनका परिप्रेक्ष्य बहुत व्यापक है। अतः स्थानीय वातावरण और व्यवस्था के विशेष दायरे में विविध अनुभूतियों की कोपलें प्रस्तुत संकलन में सुगबुगाती नज़र आती हैं। इस संग्रह में 18 कवियों की 45 काव्य रचनायें संकलित हैं। इन कवियों में अग्निशेखर, महाराज कृष्ण संतोषी , डॉ0 रमेश कुमार शर्मा, डॉ0 अयूब प्रेमी व डॉ0 सोमनाथ कौल जैसे कवि भी प्रकाशित हैं तो उभरते हुए हस्ताक्षर भी। लेकिन अच्छा होता कि मोहन निराश, शशिशेखर तोषखानी तथा रतन लाल शांत की काव्य रचनायें भी इसमें प्रकाशित की जाती। ताकि यह संकलन कश्मीर के प्रतिनिधि कवियों का संकलन होता। शायद कुछ विभागीय कठिनाइयां रही होंगी बहरहाल प्रयास स्तुत्य है। अंत में हर कवि का संक्षित्त परिचय भी दिया गया है।

1981 में प्रकाशित होने वाला अंक 'वितस्ता के वातायन' नाम से सामने आया। इस अंक में ज्यादातर लेख कश्मीर की संस्कृति को लेकर लिखे गए हैं। कुल 19 लेख हैं जिनमें से कश्मीर की धरती की खुश्बू महसूस की जा सकती हैं रमेश शर्मा अपनी बात कहते हुए लिखते हैं:

''हमारे विभाग के दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।वितस्ता के नए चरण नामक कविता संग्रह 1979 में प्रकाशित हुआ था और वितस्ता के कथाचरण नामक कहानी संग्रह 1980 में। इन दोनों संग्रहों में विभाग मे नए पुराने छात्रों तथा अध्यापकों की कृतियां

संग्रहीत थीं............ वितस्ता की इसी कड़ी में प्रस्तुत निबन्धः संग्रह कश्मीर तथा कश्मीरी भाषा संबन्धी इन निबन्धों में कश्मीर, गुरेज़ तथा लद्दाख की सांस्कृतिक झलक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। सचमुच यह अंक कश्मीर साहित्य और संस्कृति पर संग्रहनीय अंक है। कश्मीरी और देवनागरी, कश्मीरी और हिन्दी के स्वनिमों के तुलनात्मक अध्ययन के साथ साथ कश्मीर का संस्कृत साहित्य, कश्मीर में हिन्दी, कश्मीर में बुद्वमत आदि महत्वपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हैं। 'वितस्ता' का 1982 'शिशिर अंक' की संज्ञा से अभिहित किया गया। यह अंक हिन्दी विभाग में अनुसन्धान से सम्बधित गतिविधियों को रेखांकित करता है। इस अंक में 1982 तक हिन्दी में हुए शोधकार्य का ब्योरा दिया गया है। पी.एच. डी. की उपाधि के लिए कुल 24 शोधप्रबन्ध तिथि और अनुसंधित्सु के नाम के साथ दिए गए हैं। ये वे शोधछात्र हैं जिन्हें पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की जा चुकी है और लगभग बीस विषय ऐसे हैं जिन पर इस दिशा में कार्य हो रहा है। इनके इलावा शोध परियोजनाओं की परिचर्चा भी इस संकलन में संकलित है। इन ब्योरों के साथ साथ सतरह निबन्ध विभिन्न विषयों पर प्रकाशित हैं। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से डॉ0 उपेन्द्र रैणा द्वारा विरचित 'आज की हिन्दी तथा कश्मीरी कविता', अशोक पंडित द्वारा रचित 'अखतर–मुही–उददीन' और प्रेमचंद आदि विषयों पर अधिकारिक लेख प्रस्तुत हैं। कश्मीरी भाषा, हिन्दी और संस्कृत को लेकर भी कुछ निबन्ध इसमें संकलित हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के प्रचार, प्रसार और प्रकाशन में वितस्ता का एक अच्छा योगदान रहा है। एक ओर तो यह पत्रिका शोधार्थी के लिए एक मंच स्थापित करती है तो दूसरी ओर उभरते लेखकों के लिए आधार बुनती है। यही इस पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता है।

जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा प्रकाशित मन्तव्यः विभागीय प्रकाशनों में एक प्रकाशन जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा मन्तव्य नाम से 1978 ई0 में शुरू किया गया जिसके अभी तक केवल दो ही अंक प्रकाशित हुए हैं। पहले अंक के मुख्य संपादक थे डा0 संसार चन्द्र जो उन दिनों विभाग के अध्यक्ष भी थे। संपादक मंडल में डा0 विद्या नाथ गुप्त, डा0 जनक शर्मा, डा0 प्राण नाथ तृछल, श्री राजकुमार, कु0 अनिल गोयल, कु0 सुषमा गुप्ता और कु0 अनीषा महाजन तथा प्रबन्ध संपादक थे डा0 ओम गुप्त।

इस प्रकाशन में कुल 17 लेख सुधि लेखकों के छपें हैं। अधिकांश लेख विभाग के अध्यापकों और अनुसंधित्सुओं के हैं और कुछेक बाहर के विद्वानों के भी संकलित हैं। प्रकाशन को प्रकाश में लाने का कारण बताते हुए डा0 ओम गुप्त 'प्रारम्भ' में लिखते हैं–"शोधार्थी और साहित्यकार दोनों को अभिव्यक्ति के माध्यम की तलाश है। आवश्यकता है ऐसी पत्रिकाओं की जो प्रांतवाद, गुटवाद आदि पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर स्वस्थ वातावरण का निर्माण करें, गवेषणात्मक एवं रचनात्मक क्षेत्रों में पनम रही प्रवृत्तियों एवं

उपलब्धियो के प्रामाणिक दस्तावेज बन सकें।"

पत्रिका के शुरू में डी0लिट0 और पी0एच0डी0 के लिए 1979 तक स्वीकृत शोध प्रबन्धों की सूची दी गई है साथ में पी0 एच0 डी0 के लिए पंजीकृत शोध विषयों का भी ब्योरा दिया गया है। अर्थात डी0लिट0 और पी0एच0डी0 के लिए कुल मिलाकर 31 शोध प्रबन्ध 1979 तक स्वीकृत किए जा चुके थे और 21 शोध प्रबन्धों पर अभी कार्य हो रहा था।

92 पृष्ठीय यह पत्रिका हिन्दी विभाग की वाणगी प्रस्तुत करती है इसमें कोई संदेह नहीं । चयन और गेट अप की दृष्टि से भी यह एक अच्छा प्रयास कहा जा सकता है।

मन्तव्य का दूसरा अंक 1983 में सामने आया। अब इसके मुख्य संपादक डा0 विद्या नाथ गुप्त थे और संपादक मंडल में एक दो नए चेहरे भी उभरे। इस शोध पत्रिका में कुल अठारह लेख संकलित हैं। पत्रिका के प्रबन्ध संपादक ने इस अंक के देर से प्रकाशित होने का कारण कुछ कठिनाइयों को बताते हुए भविष्य में इसके प्रकाशन की ओर कोई संकेत नहीं दिए हैं। आज दस वर्ष के बाद भी इसका तीसरा अंक हमारे सामने नहीं आया है।

इन पत्रिकाओं के माध्यम से जम्मू में हो रहे हिन्दी पर शोधकार्य का विवरण हमें मिलता है। इस सारे शोध कार्य को देखकर एक प्रश्न उठता है कि क्या जम्मू में रचा गया हिन्दी साहित्य कहीं पर भी नहीं ठहरता! कोई भी शोध प्रबन्ध स्थानीय हिन्दी लेखन को नहीं उभारता! ऐसा लगता है कि सुधि अध्यापकों ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया या फिर वे इस बात से डरते हैं कि कहीं कोई विवाद न उठ खड़ा हो। कुछ भी हो इस ओर उनको प्रयास करना चाहिए।

धर्ममार्ग : जम्मू में संस्थागत प्रकाशनों में धर्म मार्ग भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह पत्रिका धर्म अर्थ ट्रस्ट न्यास की ओर से, इसके एक मात्र न्यासी , डा0 कर्ण सिंह द्वारा प्रकाशित की जाती रही है। इसका प्रवेशांक मार्च 1967 में सामने आया। वस्तुतः यह एक धार्मिक मासिक पत्रिका थी। इस पत्रिका में धार्मिक कर्मकाण्ड के साथ साथ दार्शनिक व्याख्यान तथा विभिन्न सम्प्रदायों की आस्थाओं को प्रकाशित किया जाता रहा। इसके सम्पादक श्री राजेन्द्र मोहन कोशिक थे। इसके प्रारम्भिक अंकों में तांत्रिक प्रक्रिया पर अनेक लेख सिलसिलेबार प्रकाशित हुए जो काफी चर्चित हुए। बीच बीच में सम्पादक द्वारा डा0 कर्ण सिंह के गीतों के हिन्दी में अनुवाद भी प्रकाशित किए गए। इस पत्रिका में देश भर से प्रतिष्ठित धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाकारों की रचनाओं को प्रकाशित किया गया। कुछ देर के व्यवधान के बाद इस पत्रिका का फिर से प्रकाशन शुरू किया गया। यह 1980 का वर्ष था जब डोगरी के चर्चित कवि श्री केहरी सिंह 'मधुकर'

के सम्पादकत्व में इसका प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। इस अंक में चौदह लेख प्रकाशित किए गए। सर्व श्री धर्म चंद प्रशांत, संसार चन्द्र, पीताम्बर पारखी, गणेश दास शर्मा। चम्पा शर्मा, डा0 कर्णसिंह, डा0 कौशल्या बल्ली, डा0 अन्नतराम शास्त्री, डॉ0 वेद कुमारी घई, आदि विद्वान लेखकों के लेख प्रकाशित हैं। अपने सम्पादकीय में मधुकर लिखतें हैं "धर्ममार्ग का प्रकाशन आज से कुछ वर्ष पहले मासिक पत्रिका के रूप में शुरू हुआ था। फिर किन्हीं कारणों से इसका प्रकाशन रुका रहा। अब पुनः इसे त्रैमासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित करने का फैसला किया गया है। इसी निर्णय के फलस्वरूप धर्ममार्ग का यह पहला अंक आपके हाथों में है। धर्ममार्ग का यह अंक भगवान श्री कृष्ण के महिमामय एवं आलौकिक चरित्र को समर्पित है।" इस प्रकार अब यह त्रैमासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो रही है।

साक्षरः जम्मू में व्यैक्तिक प्रयासों से निकलने वाली पत्रिका 'साक्षर' भी एक अच्छा ç;kl FkkA lkfkj dkçFke vd 1969 eal leusvk;kA ;g 24 i'Bh; 22 x18/8 आकार में आठ रचनाएं लिए हुए था जिनमें दो कहानियां , लेख, दो कविताएं समालोचना और लोककथा आदि थे। कहानियों में चंचल शर्मा द्वारा रचित 'टूटा फूटा पति' आकाशवाणी से पूर्व प्रसारित रचना थी। दूसरी प्रकाशित कहानी का नाम 'भूख' है जिसके रचनाकार आज़ाद गुलाटी एम.ए. है। इस अंक का मुख्य लेख 'परम्पराएं' प्रो. रामनाथ शास्त्री द्वारा रचित है। सुभाष भारद्वाज और मान मार्गव द्वारा लिखित दो कविताएं भी इसके पृष्ठों में प्रकाशित हैं। 'सुन्नी भौटली' नामक एक लोक कथा हिमाचली खुश्बू लिए हुए है। 'देखती आकाश आंखें' सुतीक्षण कुमार आनन्दम् की कृति को आलोचक की दृष्टि से प्रो. सुभाष भारद्वाज ने देखा है। कुल मिलाकर अच्छा सुनियोजित अंक है। बीच बीच में सूक्तियों तथा प्रवचनों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति की गई है।

'साक्षर' का एक और अंक उपलब्ध है जो अक्टूबर, 1969 में प्रकाशित हुआ। यह अंक बीस पृष्ठों का एक छोटा अंक है जिसमें पांच रचनाएं प्रकाशित हैं और एक पुस्तक समीक्षा। मुखलेख 'साहित्य में आधुनिकता' रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित है । पत्रिका के सम्पादकीय में आर्थिक कठिनाइयों की ओर संकेत है जो इस बात की ओर भी इंगित करता है कि शायद पत्रिका के तीसरे अंक के प्रकाशन के साथ ही यह लड़खड़ाने लगी है।

मण्थनः श्री चंचल शर्मा के प्रयासों से मन्थन नामक एक पत्रिका का प्रकाशन रिपबलिक अकादमी से शुरू किया गया 1966–67 में। साहित्यिक इस पत्रिका के कुल तीन अंक ही निकल पाए बाद में इसे बंद कर दिया गया कारण वही आर्थिक अभाव। इस पत्रिका के साथ डोगरी के चर्चित कवि चरणसिंह भी जुड़े थे और एक अंक का सम्पादन उन्होंने भी किया था। चालीस पृष्ठों के आसपास इसका अंक निकलता था

जिसमें कहानी, कविता, निबन्ध, टिप्पणियां एवं लघुकथांए संयोजित होतीं थीं। तत्कालीन कवियों की रचनाओं को यथोचित स्थान दिया जाता था। आवरण पृष्ठ पर एक नारी का चित्र चित्रित था जिसके हाथों से मंथन की प्रतियां निकलकर नीचे बिखरती दिखाई गई थी।। इसके एक अंक में डोगरी की काव्य रचनाओं का हिन्दी अनुवाद दिया गया है साथ ही डोगरी कवि का परिचय भी।

प्रतिभा / मधुरिमा: हिन्दी साहित्य मंडल के अनेक प्रकाशनों में इसकी मुख पत्रिका प्रतिभा का प्रकाशन 1971 में आरम्भ हुआ। इस पत्रिका के माध्यम से मंडल की गतिविधियों के ब्योरे, साहित्यिक रचनायें और अन्य सूचनायें प्रकाशित की जाती थीं। प्रथम अंक का सम्पादन श्री मनसाराम शर्मा "चंचल" ने किया। दूसरा अंक मई 1971 में प्रकाशित होकर सामने आया। इसके सम्पादक थे श्री रमेश मेहता। इस अंक में नौ लेख, दो कहानियां, नौ काव्य रचनायें और स्थाई स्तम्भों में सम्पादकीय, मंडल की गतिविधियों का ब्योरा आदि प्रकाशित है। तीसरा अंक कविता विशेषांक के रूप में सामने आया। अब इसका कलेवर भी बदल गया है। आमुख में एकतारा बजाती हुए एक युवती का चित्र प्रकाशित है पीले रंग में। अब इसका नाम प्रतिभा से मधुरिमा रख दिया गया। इस विशेषांक में प्रदेश के हिन्दी के प्रतिष्ठित कवियों की रचनाओं को संकलित किया गया है। मधुरिमा के प्रतिभा पृष्ठ 4 में अपने सम्पादकीय में मंडल की गतिविधियों पर नपी तुली भाषा में दृष्टिपात किया गया है। यह एक मिला जुला अंक है जिसमें कहानियां, काव्य रचनायें और लेख प्रकाशित हैं। आवरण पर वही तस्वीर छपी है पर इस बार चाकलेटी रंग में है। अंक पांच में भेंटवार्ता, पुस्तक समीक्षा, बाल कक्ष, खरीखरी आदि स्तम्भ शुरू किए गए। वस्तुतः अब पत्रिका अपना असली रूप पकड़ रही लगती है। हरे आवरण में छपा प्रतिमा पुष्प 6 ''कहानी अंक'' के रूप में सामने आया। इस अंक में स्थाई स्तम्भों के इलावा पांच कहानियां , एक व्यंग्य और चार लघुकथायें प्रकाशित हैं। सम्पादकीय में अशोक जेरथ ने इस और संकेत भी किए हैं ''इस कहानी विशेषांक में कहानी की प्रत्येक विधा को स्थान देने का प्रयास किया गया है।'' कहानियों में इन्द्रजीत सिंह द्वारा रचित 'मजबूरी' और अलंकर द्वारा रचित कहानी 'टूटे हुए रास्ते, टूटे हुए लोग' अच्छी कहानियां हैं। इस अंक का मूल्य 2/– है और वार्षिक 5/– प्रतिभा पुष्प 13 मार्च 1977 में छपकर सामने आया। आवरण पर तस्वीर वही है पर जामुनी रंग में। यह अंक भी मिला जुला अंक है। स्थाई स्तम्भों के इलावा कहानियां और कवितायें संकलित हैं। डॉ0 विद्यानाथ गुप्त के द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन, जो मारिशस में सम्पन्न हुआ था, पर संस्मरण प्रकाशित किए गए हैं। इस बार की पुस्तक परिचय के लिए 'देवदार की छाया तले' पुस्तक ली गई है। इसके समीक्षक हैं प्रसिद्ध कहानीकार और विद्वान हिमांशु जोशी। यह चौदह कहानियों का संकलन जम्मू के कहानीकारों को प्रस्तुत करता है।

मधुरिमा के प्रकाशन में बीच बीच में व्यवधान आते रहे पर अव भी प्रकाशित हो रही है। हां इसका कलेवर बदल गया है। छपाई भी अच्छी हो आई है। स्थाई स्तम्भ बदल गए हैं और ज्यादा जोर कहानी, लेख और कविता पर दिया जा रहा है।

धोषवती : संस्थागत प्रयासों में युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'घोषवती' इस और एक अच्छा प्रयास है। यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका के तौर पर उभरी हैं। अक्सर युवा हिन्दी लेखकों, साहित्यकारों द्वारा उन्हीं की गोष्ठियों में पढ़ी गई रचनाओं को इस पत्रिका में प्रकाशित किया जाता रहा है । इस तरह नए और उभरते हुए हस्ताक्षरों को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण दायित्व यह पत्रिका निभाती आ रही है । इस पत्रिका के सम्पादन में अनेक रचनाकारों का हाथ रहा है। – सर्व श्री निर्मल विनोद, जगमोहन , रमेश मेहता, ज्याहर रैणा आदि।

. घोषवती, अक्तूबर– दिसम्बर 1974 का अंक मेरे सामने खुला पड़ा है। आवरण पर एक नवयोवना की तस्वीर है जिसके चित्रकार के रूप में देवदास का नाम दिया गया है। इसी पत्रिका में रेडियो जम्मू के श्रोताओं का एक सर्वेक्षण दिया हुआ है जिसका संचालन साक्षात्कारों के माध्यम से किया है श्री वेद व्यास कुचरु ने – अच्छा दिलचस्प विषय है और बात चीत भी रुचिकर लगती है। 'बड़े शहर के लोग' श्री ज्योतीश्वर पथिक द्वारा रचित कहानी प्रकाशित है और इसके साथ ही सर्वश्री दुर्गादत्त शास्त्री, जगमोहन और निर्मल विनोद की कहानियां भी संकलित हैं। कविताओं में उषा व्यास, द्वारा रचित कविता 'आकाश पर वसंत वासंती रंग में प्रकाशित है। इनके इलावा श्री प्राण नाथ तृच्छल, कौशल्या वल्ली और श्री योगराज 'श्वेतांश की कवितायें अपना स्वर मुखरित किए हैं। कुल मिलाकर अच्छा प्रयास है। इतने कम पृष्ठों में इतनी सामग्री संकलित करना सम्पादक के दायित्व की ओर संकेत करता है जिसे उसने ठीक तरह से निभाया है । कीमत एक रुपया दी गई है।

निस्तंद्रः व्यैक्तिक प्रयासों में 'निस्तंद्र' के प्रकाशन का एक अपना स्थान हैं। इस साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन 1974 में प्रारम्भ हुआ और तीन वर्ष तक निरन्तर मासिक के तौर पर यह प्रकाश में आता रहा। इसमें छपने वाले रचनाकारों में स्थानीय प्रतिष्ठित और उभरते हस्ताक्षरों के इलावा देश के अनेक हिन्दी रचनाकारों का नाम लिया जा सकता है। अपने द्वितीय वर्ष के प्रवेश में वार्षिक विशेषांक विशेष तौर पर चर्चित हुआ। इस अंक को 'जम्मू अंक' की संज्ञा दी गई। इस अंक में जम्मू के शीर्षस्थ रचनाकारों की रचनाओं के इलावा 'निस्तन्द्र' शीर्षक से राष्ट्रीय स्तर पर रखी गई काव्य प्रतियोगिता का परिणाम भी प्रकाशित है। इस अंक में सर्वश्री मदन मोहन शर्मा, आजाद कुमार मानव 'नाहर', विश्वनाथ खजूरिया, अलंकार , ओ० पी०, शर्मा, बलनील देवम् तथा कु. किरण की कहानियां और सर्वश्री पुरी, रामनाथ शास्त्री व अशोक जेरथ के लेख

तथा वीर सक्सेना, प्रियतम कृष्ण शास्त्री, सुभाष भारद्वाज, हिन्द कुमार ओम 'मानव', शंकर शर्मा 'पिपासु' मनसाराम शर्मा 'चंचल', गंगादत्त 'विनोद', उषा व्यास, स्व0 बंसी लाल सूरी तथा राजीव 'विक्रम ' की कवितायें प्रकाशित हैं। इस अंक की सबसे बड़ी खूबी यह है कि रचनाकारों का संक्षिप्त पश्चिय उनके छाया चित्र के साथ प्रकाशित हैं इस अंक का मूल्य है रु1/ यह अंक 1975 का प्रथम अंक है और सम्पादन किया था बलनील देवम् ने जवकि सहयोग मिला था आजाद कुमार मानव 'नाहर' से । निस्तंद्र का प्रकाशन 1977 तक चलता रहा तदुपरान्त किन्ही स्थितियों के कारण इसे बंद करना पड़ा।

नीलकंठ: जम्मू में अनेक वैयक्तिक प्रयासों के फलस्वरूप कुछ हिन्दी पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ– कुछ व्यवसायिक तौर पर तो कुछ विशुद्ध साहित्यिक रूप में। 'नीलकंठ' एक ऐसी ही पत्रिका है जिसका मात्र एक अंक ही निकल कर सामने आया । इसके सम्पादक श्री निर्मल विनोद ने अपने सम्पादकीय में पत्रिकाओं के प्रकाशन में होने वाली दुविधाओं की ओर संकेत करते हुए लिखा है– "साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन और संचालन एक जोखिम भरा सामाजिक दायित्व है। बडे – बड़े दावे बांधना सरल होता है, किन्तु उनका क्रियान्वन तलवार की धार पर चलने वाला दुष्कर कर्म है। हमें अपने दायित्व का ज्ञान है।"

शायद इसकी ओर पहले से ही संकेत सम्पादन ने दे दिए थे। बहरहाल पत्रिका का समपादन, रचनाओं के चयन की दृष्टि से और उनके विन्यास की दृष्टि से अच्छा बना है। श्री रवीन्द्र नाथ त्यागी , डॉ0 नरेन्द्र मोहन, श्री रमेश मेहता, श्री सुभाष भारद्वाज, बसंत कुमार परिहार और राजकुमार कुम्भज की काव्य रचनायें सरुचिपूर्ण हैं तो डॉ0 राजकुमार द्वारा रचित 'निराला' पर लेख उनकी मिथकीय यात्रा की ओर संकेत करता है। छत्रपाल की लघुकथायें भी सुन्दर और सटीक हैं। यह एक अच्छा प्रयास था पर लगता है आर्थिक अभाव आदि आ ही गया रास्ते में।

तवी दीपिका: यद्यपि साहित्यिक पत्रिकाओं, कालेज पत्रिकाओं आदि का प्रकाशन समय समय पर इस प्रदेश में होता रहा हैं तथापि हिन्दी में व्यवसायिक पत्रिका प्रकाशित करने का साहस करना अपने आर्थिक स्रोतों को खतरे में डालने की बात थी। स्वतंत्रता से पहले 'भारती' और 'उषा' पत्रिकायें अपना स्तर इस दिशा में बना सकीं यह गौरव की बात हैं 'चांद' और 'दीपक' का प्रकाशन भी इस दिशा में अच्छे कदम थे। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद इस दिशा में कोई ठोस प्रमाण हमें नहीं मिलते हैं। इस ओर मई 84 में एक प्रयास नरेन्द्र सहगल द्वारा किया गया। इस रोज उन्होने 'तवी दीपिका' का प्रसिद्ध पत्रकार मुल्खराज सराफ के हाथों विमोचन करवा कर हिन्दी पत्रिकारिता के इतिहास को एक नया मोड़ दिया। इसका प्रवेशांक मई 84 में सामने आया। प्रवेशांक का आवरण

आकर्षक है। तीन रंगों वाले इस आवरण में बीच में एक सुन्दर युवती की तस्वीर है जिसके दो ओर ऊपर दीपक सजे हैं। पत्रिका का मूल्य 3/रु0 और वार्षिक रुपये 75 था ओर यह 70 पृष्ठों में आकर्षक छपाई के साथ प्रकाशित की गई। अपने सम्पादकीय में नरेन्द्र सहगल ने प्रकाशन की नीति की ओर संकेत किए हैं: 'तवी दीपिका' राष्ट्रीय विचारों की पत्रिका हैं परिवार में मुख्य स्थान स्त्री का माना जाता है । अखिल विश्व का आधा भाग स्त्री वास्तव में पूरे भाग का प्रेरणा स्रोत है ओर आधार स्तम्भ है। अतः पारिवारिक इस शब्द में महिलाओं का हिस्सा अधिक है । क्योंकि परिवार को समाज सेवी एवं हंसता खिलता बनाने के पवित्र उद्देश्य से ही तवी दीपिका प्रारम्भ हुई।" इस अंक के उपसम्पादक बलनील देवम् हैं अंक के प्रारंभ में सर्वश्री मुल्खराज सराफ, शीला झुनझुन वाला, पद्मा सचदेच, मृणाल पाण्डे की स्मृतियां दी गई हैं। मुख्य लेख प्रसिद्ध पत्रकार बलराज पुरी का 'जम्मू क्षेत्र– असन्तोष की ओर बढ़ते कदम, कारण और निवारण' है अन्य लेखों में डुग्गर प्रदेश की लोक नाट्य परमपराएं जितेन्द्र शर्मा द्वारा रचित, प्रो. रामनाथ शास्त्री द्वारा रचित उपनिषद् काल की वह महिला– जबाला आदि हैं। सर्वश्री राजकुमार, रमेश मेहता, पद्मा सचदेव, जनकराज, प्रियतम् चन्द्र शास्त्री जितेन्द्र उधमपुरी तथा सुश्री सुनीता केरणी की काव्य रचनायें प्रकाशित हैं महिलाओं , बच्चों और घर गृहस्थी के लिए प्रयाप्त सामाग्री संयोजित है। सर्वश्री ओम गोस्वामी, शिव रैना, छत्रपाल, पुरषोतम चन्द्र जैन की कहानियां , लघु कहानी और व्यंग्य दिए गए हैं कुल मिला कर एक अच्छा नियोजित अंक है।

'तवी दीपिका' 1984 से लेकर 1989 तक पूरे साढ़े पांच वर्षों तक निरन्तर प्रकाशित होती रही। कुल मिलाकर संयुक्त अंकों के साथ 61 अंक प्रकाशित हुए। वर्ष में दो विशेषांक, एक वर्ष प्रतिपदा विक्रमीसंवत और दूसरा दीपावली पर प्रकाशित बाल अंक। अक्तूबर 1985 में प्रकाशित शोर्य गाथाओं का अंक, जुलाई 1987 में प्रकाशित मीरपुर विशेषांक और इसके दूसरे माह में ही प्रकाशित कोटली शहीद स्मृति अंक, अक्तूबर 1987 में प्रकाशित हिन्दू शक्ति अंक तथा हेडगेवार अंक , विशेष रूप से चर्चित हुए। इन अंकों में साहित्यिक रचनाओं तथा दूसरे स्तम्भों के साथ साथ दुलर्भ ऐतिहासिक दस्तावेजों की भी झांकी हमें मिलती हैं । ये सभी अंक संग्रहणीय हैं इन विशेषाकों में मीरपुर विशेषांक, कोटली अंक विशेष तौर पर चर्चित हुए। इन अंकों में आज तक कहीं नहीं छपी दुलर्भ सामग्री , आखों देखी दास्ताने और भारत विभाजन पर मीरपुर में खेली गई खून की होली तथा मुट्ठी भर हिन्दू युवाओं की शौर्यगाथाएं संकलित हैं। इन अंकों को पढ़कर व्यक्ति का हृदय भी खोलने लगता है कि राजनैतिक स्वार्थ के कारण कैसे जनसाधारण और राष्ट्रहित की अनदेखी की गई।

अप्रैल, 1996 में प्रकाशित तवी दीपिका का अंक विवादास्पद और चर्चित अंक था

इस में कश्मीर में हुए दंगों के यथार्थ को लेकर एक मत विशेष के लोगों द्वारा दूसरे समुदाय के धर्मस्थानों को भ्रष्ट करने की कथा प्रमाणों सहित प्रकाशित है। तत्कालीन सरकार के लिए यह अति असहनीय बात थी अतः इसे प्रकाशन के तुरंत बाद "बैन" करने की बात सरकारी हलकों में चल पड़ी थी पर सरकार बदलने के साथ यह कार्य स्थगित कर दिया गया। परिणामतः इस अंक की मांग इतनी बढ़ी कि लोगों ने, विशेषकर बुद्धिजीवियों ने, अतिरिक्त दाम लेकर इसे खरीदा और उसका संग्रहण किया। आज भी वर्षों बाद ये विशेषांक बुद्धिजीवियों के पास उपलब्ध हैं। इन अंको को अपनी थाती मानकर वे सम्भाले हुए हैं।

दैनिक कश्मीर टाईम्स : जम्मू में हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में दैनिक हिन्दी समाचार पत्र के प्रकाशन के साथ एक नया युग आरम्भ हुआ है। यद्यपि इस ओर, स्वाध ीनता से पहले और बाद में, अनेक छुटपुट प्रयास हुए हैं पर सिलसिला बना नहीं। दैनिक कश्मीर टाईम्स का प्रकाशन अक्तूबर 29, 1989 से शुरू हुआ। दीपावली की पूर्व संध्या पर इसका प्रवेशांक निकला था तो यह स्वाभाविक ही था कि दीपावली पर एक विशेष परिशिष्ठ निकाला जाए। चुनाचे चार पृष्ठों पर आधारित दीवाली पर विशेष सामग्री दी गई। इस विशेषांक का पहला और मुख्य लेख 'ज्योतिपर्व पर घर–आंगण को सजाती उंगलिया' डॉ0 अशोक जेरथ द्वारा लिखा गया था। अन्य लेखों में 'मल्लाह' जो भवसागर पार करवाता है'– आशा अरोड़ा, 'चौरण से कैसिनों तक'–कंचन शर्मा आदि लेख प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित हैं। इन लेखों के इलावा एक कहानी कविता और दूसरी सामग्री भी इस में उपलब्ध है।

सामान्यता दैनिक कश्मीर टाईम्स में छः पृष्ठों का मसौदा होता है पर रविवारीय परिशिष्ठ पत्रिका के तौर पर निकलता है अतः यह आठ पृष्ठीय साप्ताहिक बन जाता है। दैनिक कश्मीर टाईम्स के माध्यम से अनेक नए रचनाकार इस क्षेत्र में उभरने लगे हैं। पुस्तक समीक्षा, कविता, कहानी, बाल साहित्य, महिलाओं के लिए, आदि विषयों पर रविवारीय पत्रिका में सामग्री उपलब्ध होती है। इसके इलावा विचारोत्तेजक लेख एवं टिप्पनियां भी प्रकाशित की जाती हैं सम्पादकीय में समकालीन विशेषकर राजनैतिक किसी विषय पर चर्चा रहती है। दैनिक कश्मीर टाईम्स के मुख्य सम्पादक हैं श्री वेद भसीन और सहयोगियों में श्री वेदपाल द्वीप और आशा अरोड़ा कार्यरत हैं । कुछ समय तक हिन्दी के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर स्व0 सुभाष भारद्वाज ने भी इसके प्रकाशन में सहयोग दिया था।

सवेराः हिन्दी समाचार पत्रों में जो इस प्रदेश में प्रकाशित होते रहे हैं। उनमें सवेरा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वह पूरे आकार का समाचार पत्र था जो आर्थिक अभाव के बावजूद कई वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। इसमें समाचारों के इलावा टिप्पणियों,

साहित्यिक रचनाओं और डोगरी की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किए जाते रहे हैं। सवेरा के कुछ विशेषांक चर्चित हुए जो स्थानीय संस्कृति और पर्वों की गरिमा का बखान करते हैं।

समर्थनः चार पृष्ठों का यह हिन्दी पत्र लगभग दो वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। इसमें समाचार, सूचनाओं तथा टिप्पणियों के इलावा कभी कबार साहित्यिक लेख भी दिए जाते थे। यह समाचार पत्र बाद में किन्हीं कारणों से अनियमित हो आया और अन्ततः बंद हो गया पर हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में इसका एक विशेष स्थान है।

हमजोलीः श्री योगराज गुप्ता ने लगभग 1971–72 में चार पृष्ठों का एक समाचार पत्र आरम्भ किया था। यह समाचार पत्र आरम्भ में आर्ट पेपर पर छपता था पर धीरे ध ीरे अपनी जमीन पहचानने लगा। वस्तुतः इस पत्र के प्रकाशन के पीछे मित्रता संघ की स्थापना थी। अतः इस का नाम भी उसी के अनुसार हमजोली रखा गया। इसमें पत्र मित्रता के इच्छुक लोगों, विशेषकर युवाओं का परिचय छायाचित्रों सहित छपता था और कई बार उनकी रचनायें भी इसके माध्यम से छाया की जातीं। कुछ देर तक नियमित चलने के बाद यह अनियमित हो आया अन्ततः श्री योग राज गुप्ता के विदेश चले जाने पर इसे बंद कर दिया गया। इस पत्र के संचालन में श्री गुलशन गुप्ता ने भी सहयोग दिया था। इसके कई अंक तो श्री गुलशन गुप्ता की प्रेस से निकले थे। श्री योगराज के विदेश चले जाने पर एक अंक स्वतंत्र तौर पर श्री गुलशन ने भी इसका प्रकाशित किया 1था। विभागीय पत्रिकाओं में महालेखाकार जम्मू व कश्मीर श्रीनगर की मुख्य पत्रिका ली जा सकती है। इसका प्रकाशन कुछेक वर्ष रहा मुख्य सम्पादक रहे हैं श्री मोहन कृष्ण कौल। इस पत्रिका में महालेखाकार के कार्यालय की हिन्दी गतिविधियों का लेखाजोखा प्रस्तुत किया जाता हैं। अप्रैल, 1983 का अंक मेरे सामने है। इस अंक में दो लेख, एक लघुकथा, कहानी, सात कवितायें, कुछ रचनाएं अनुवाद करके प्रकाशित की गईं हैं।

बालकृष्ण 'सन्यासी' द्वारा रचित 'कश्मीरी लीला का विकास' एक अच्छा सूचनात्मक लेख है। इस लेख में कश्मीरी काव्य का इतिहास ढूंढा जा सकता है।

कविताओं में संतोष द्वारा रचित 'झरोखो से' एक अच्छी रचना कही जा सकती है। पत्रिका के अंतिम पृष्ठों में विभागीय जानकारी के लिए अंग्रेजी के, अकसर प्रयोग में आने वाले, शब्दों के हिन्दी रूप दिए गए हैं। ये सौ के करीब हैं। बीच बीच में बड़े टाईप में राजाभाषा अधिनियम तथा हिन्दी के प्रयोग से होने वाली सुविधाओं की ओर संकेत दिए गए हैं। जैसे एक सूचना इस प्रकार हैः–

"हिन्दी में प्राप्त सभी पत्रों के उत्तर अनिवार्य रूप से हिन्दी में ही दिए जाएं। ज़रा शुरु तो कीजिए तथा इस सम्बंध में हिन्दी अनुभाग में उपलब्ध सुविधा का लाभ उठाइए।" आजकल इस पत्रिका का प्रकाशन बंद है।

कालेज पत्रिकाओं का हिन्दी पत्रकारिता में योगदान : छात्रकाल, विशेषतया किशोरावस्था में ही व्यक्ति में छुपा रचनाकार करवट लेने लगता है। ऐसे समय यदि उसे कोई प्रेरणा स्रोत मिल जाए या कोई मंच उपलब्ध हो जाए तो वह स्वयं ही दिशा निर्देशन पाने लगता है। कालेजों में निकलने वाली वार्षिक पत्रिकाओं का योगदान इस क्षेत्र में, इसीलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। यहीं से लेखन का प्रथम अंकुर फूटता है।

जम्मू में स्थापित प्रिंस आफ वेल्ज कालेज, जो बाद में जी.जी.एम. साईस कालेज कहलाया, द्वारा 'तवी' नामक पत्रिका का अपना इतिहास रहा है। हिन्दी में रचित रचनाओं के एक भाग में 'तवी' में प्रकाशित किया जाता रहा है। आज भी यह पत्रिका इसी रफ्तार से निकल रही है।

महिला कालेज, परेड, महिला कालेज, गांधीनगर, एम.ए.एम. कालेज की पत्रिकाओं में भी हिन्दी की रचनायें प्रकाशित होती रही हैं। इसी प्रकार बी.एड. कालेज की पत्रिका 'द' टीचर' में हिन्दी व अंग्रेजी में रचनायें प्रकाशित होती रही हैं। डिगरी कालेज उधमपुर से भी कालेज पत्रिका का प्रकाशन होता रहा है। यह निश्चय ही सत्य बात है कि आज के साहित्यकार गुजरे वक्त में, अपने छात्रकाल के समय, इन पत्रिकाओं के साथ अवश्य जुड़े रहे होंगे।

रावी : कालेज पत्रिकाओं में डिग्री कालेज कठुआ द्वारा प्रकाशित 'रावी' पत्रिका का अपना महत्व रहा है। पंजाबी, डोगरी, पहाड़ी आदि भाषाओं, उपभाषाओं से घिरे कठुआ सूबे में इन भाषाओं, उपभाषाओं का मिश्रन ही जनसाधारण की भाषा बन गई है। रावी का प्रथम प्रकाशन कब से शुरू हुआ कोई नहीं जानता, कालेज के पुस्तकालय से चाह कर भी पुराने अंकों को ढूंढा नहीं जा सका हां मार्च 1988 में प्रकाशित रावी का नारी विशेषांक खोजने में सफलता जरूर मिली । इसमें मेरा सहयोग दिया है प्रो. परमानन्द शास्त्री ने। इसके सम्पादक मंडल में भी वह स्वयं अपने दो सहयोगियों के साथ इस कार्य में संलग्न रहे हैं। इस अंक में सौलह लेखों के माध्यम से नारी के विभिन्न पंहलुओं, स्वरूपों पर सर्वागींण चर्चा की गई है। एक कविता 'नारी महिमा' शीर्षक से भी प्रकाशित है। आमतौर पर कालेज पत्रिकाओं में अधिक लेख और रचनाएं होती हैं पर सम्पादक के कठिन परिश्रम फलस्वरूप रचनाओं का चयन अच्छा बना है और अंक वास्ताव में एक संग्रहणीय अंक है।

त्रिकुटाः 'त्रिकुटा' कालेज पत्रिका एम.ए.एम. कालेज द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह वर्ष में एक बार प्रकाशित होती है। इसमें अंग्रेजी, हिन्दी, डोगरी, पंजाबी और उर्दू पांच भाषाओं में रचनाएं छापी जाती हैं। इधर प्रो. आर.एस. डिडवाल, जो कि कालेज के प्रिंसीपल हैं, की प्रेरणा से त्रिकुटा का 'जम्मू अंक' निकालने की योजना के अंतर्गत 1991 में यह वृहद् विशेषांक सामने आया। इस अंक में पच्चास पृष्ठ हिन्दी प्रभाग को दिए गए

हैं। छात्रों, अध्यापकों प्रवक्ताओं के साथ साथ जम्मू के कुछ विद्वानों के लेख भी इस में प्रकाशित किए गए। डा0 गंगादत्त शास्त्री कृत 'डोगरी का उद्गम' और प्रो. शिवनिर्मोही द्वारा लिखा 'डुग्गर का सांस्कृतिक पिरदृश्य' इस कड़ी के दो लेखों के साथ साथ डॉ0 मधुवाला बोहरा कृत' डुग्गर देश सम्बंधित पूर्व कालीन कुछ ऐतिहासिक विचार' तथा डोगरी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय के अनुसंधित्सुओं द्वारा रचित कुछ लेख भी इस में संकलित हैं जो डोगरा भूमि, इतिहास और व्यक्ति विशेष की ओर इंगित करते हैं। इस अंक में चार हिन्दी कवितायें भी प्रकाशित हैं जो कालेज के छात्रों द्वारा ही रचित हैं। सम्पादकीय में छात्र सम्पादक दीपक सडहोत्रा ने लिखा है– "इस वर्षकी कालेज पत्रिका 'त्रिकुटा' का 'जम्मू विशेषांक' डुग्गर संस्कृति को समर्पित है"। छपाई, पेपर आदि से पत्रिका का गेटअप बना है। लेखों का चयन भी सुरुचिपूर्ण है। अक्सर ऐसी पत्रिकाओं में अधकचरे लेख पढ़ने को मिलते हैं पर इसे पढ़कर सुखद अनुभूति होती है। इन पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों ने एक वातावरण तैयार किया था जो हिन्दी पत्रकारिता के अनेक स्तम्भों को आधार देने में सक्षम हुआ। यही कारण है कि अनेक हिन्दी प्रेमियों ने पत्रकारिता अपना व्यवसाय चुना और अनेक स्वतंत्र पत्रकारिता में संलग्न हुए।

श्री धर्म चंद प्रशांत प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया में कार्यरत हुए और बाद में सांसद बनकर हिन्दी पत्रिकारिता में स्वतंत्र रूप से जुड़े रहे। श्री धर्म चंद प्रशांत 'भारती' पत्रिका के साथ साथ 'गुलाब', 'रत्न' आदि अनेक पत्र पत्रिकाओं से जुड़े थे। सुश्री शांता भारती 'भारती' पत्रिका की संचालिका और सम्पादिका के साथ साथ स्वतंत्रता पूर्व काल में हिन्दी आंदोलन की उन्नायिका रही हैं। सुश्री शकुंतला सेठ एक कवियित्री के साथ साथ एक गौरवमय पत्रिका 'उषा' की सम्पादिका भी रही हैं। इनकी पत्रिका में देश भर से प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकार प्रकाशित होने में अपना गौरव समझते थे। इन्हीं के सहयोगी श्री आयोध् यानाथ 'वीर' उषा पत्रिका के सह सम्पादक के तौर पर कार्य करते रहे हैं। सुश्री सुशीला तुली भी इसी पत्रिका के साथ जुड़ी हुई थीं। श्री मनसाराम शर्मा 'चंचल' 'योजना,' 'डुग्गर समाचार' और 'फुलवाड़ी' के सम्पादक रहे हैं। इसके पहले वह मिलाप के साथ जुड़े हुए थे। हिन्दी पत्रकारिता में एक नाम श्रद्धा के साथ लिया जाता है– यह हैं श्री बी.पी.शर्मा का जो आज भी चौरासी वर्ष की आयु में उसी प्रकार कार्य में रत हैं जिस तरह कोई युवा पत्रकार उमंग में कार्य करता है। शर्मा साहब ने शाही परिवारों में राज्य के प्रति होने वाली कशमकश में सम्बधित अनेक शाही परिवार के सदस्यों के चिट्ठे दैनिक कश्मीर टाईम्स के माध्यम से छाया किए हैं। वे आकाशवाणी जम्मू के केन्द्र में केन्द्र निदेशक भी रह चुके हैं और डुग्गर समाचार तथा फुलवाड़ी पत्रिकाओं के मुख्य सम्पादक भी रहे हैं।

श्री सूरज सराफ जहां अंग्रेजी पत्र पत्रिकाओं के लिए लिखते रहे हैं वहीं पर योजना

शीराज़ा, दैनिक ट्रिब्यून, साप्ताहिक आदि पत्र पत्रिकाओं में भी उनके लेख छपते रहे हैं। प्रो. भारद्वाज अवकाश लेने के बाद 'जम्मू पत्रिका' नामक समाचार पत्र चलाते रहे हैं। बाद में उन्होंने मृत्यु पर्यन्त दैनिक कश्मीर टाईम्स में भी कार्य किया है। श्री वेद भसीन अंग्रेजी के एक जाने माने पत्रकार रहे हैं पर बहुत कम लोग जानते हैं कि वे हिन्दी पत्रिकारिता में खूब आगे रहे हैं। दैनिक कश्मीर टाईम्स के प्रकाशन के साथ उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता में एक इतिहास रचा है। इनके इलावा श्री रमेश मेहता 'शीराज़ा' हिन्दी के सम्पादक रहे हैं, श्री शिवरैना 'योजना' के सम्पादक के तौर पर और स्वतंत्र लेखन में भी अपना सानी नहीं रखते। सर्वश्री ज्योतीश्वर पथिक, जुगल किशोर, नरेन्द्र सहगल, निर्मल विनोद, जगमोहन आदि भी इस ओर प्रयासरत रहे हैं। डॉ0 अशोक जेरथ की रचनायें देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं और समाचार पत्रों जैसे साप्ताहिक, कादम्बिनी, बाल भारती, नन्दन, नव भारत टाईम्स, दैनिक हिन्दुस्तान, जनसत्ता, आज, अमर उजाला, स्वतंत्र भारत, दैनिक जागरण, दैनिक ट्रिब्यून, मधुमती, विपाशा, जागृति, हरियाणा सम्वाद, पंजाब सौरभ, आजकल, हिमप्रस्थ, दैनिक कश्मीर टाईम्स, शीराज़ा, इन्द्रप्रस्थ भारती, द्वीपप्रभा, मनोहर कहानियाँ, सन्मार्ग आदि में निरंतर छपती रही हैं और छप रही हैं।

उषा व्यास सम्प्रति शीराज़ा की सम्पादिका हैं और इनकी रचनायें राष्ट्रीय पत्र पत्रिकाओं साप्ताहिक , सारिका तथा अन्य हिन्दी पत्रिकाओं मे छपती रही हैं। इन्हें प्रकाशन और पत्रकारिता के लिए नव जम्मू ने सम्मानित भी किया गया। इस ओर एक नाम आशा अरोड़ा का है जो हिन्दी पत्रिकारिता में धूमकेतु की तरह चमका है। आशा अरोड़ा की रचनायें दैनिक हिन्दुस्तान, नवभारत टाईम्स, जनसत्ता, दैनिक ट्रिब्यून, अमर उजाला में तो छपी ही हैं, दैनिक कश्मीर टाईम्स में सिलसिलेवर डोगरी के प्रतिष्ठित रचनाकारों से भेंट वार्तायें अति चर्चित एवं विवादास्पद रहीं हैं। आशा अरोड़ा को बाद में, हिन्दी पत्रिकारिता में योगदान के लिए नव जम्मू द्वारा सम्मानित भी किया गया।

ज्योतीश्वर पथिक भी कई हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में छपते रहें हैं। सम्प्रति सूचना विभाग में सहायक निदेशक के पद पर आसीन हैं। बलनील देवम् , सुतीक्षण आनन्दम्, आज़ाद कुमार मानव 'नाहर' आदि उभरते पत्रकार इन्हीं पत्र पत्रिकाओं के सहयोग और मन्च से उभरे हैं।

कश्मीर में सर्वश्री पृथ्वी नाथ 'पुष्प', जानकी नाथ कौल, प्रो. चमन लाल सप्रू दुर्गाप्रसाद काचरू, गोपी कृष्ण, पृथ्वीनाथ राजदान आदि हिन्दी पत्रिकारिता में प्रतिष्ठित नाम हैं। श्री शशिशेखर तोषखानी योजना के सहायक सम्पादक के तौर पर कार्य करते रहे हैं। बाद में वे हिन्दी रीडर्स डाईजेस्ट के साथ जुड़े रहे हैं। इनके इलावा मोहन निराशा, श्री अग्निशेखर, महारज कृष्ण शाह, महाराज कृष्ण संतोषी आदि भी पत्र पत्रिकाओं में

प्रकाशित होते रहे हैं। कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने इस ओर यथेष्ठ कार्य किया है। डॉ0 रमेश कुमार, डा. अयूब प्रेमी, डॉ0 सोमनाथ कौल, डॉ0 त्रिलोकीनाथ गंजू, डॉ0 रोशनलाल रैणा आदि प्रमुख नाम हैं जिन्होंने वितस्ता के माध्यम से इस ओर एक अच्छा कार्य किया है और अभी यह धारा बह रही है देखते हैं कैसे करवट लेती है। इस अध्याय को सम्पन्न करने से पहले आईए उन विभूतियों को तलाशें जिन्होंने वस्तुतः हिन्दी पत्रकारिता की नींव इस अहिन्दी भाषी प्रदेश में रखी–सर्वप्रथम 'विद्याविलास' समाचार पत्र के संचालक के रूप में पंडित वेंकटराम शास्त्री के प्रति हम नतमस्तक हैं जिन्होंने नितांत अभाव में भी इस मशाल को प्रज्वलित किया। बाद में 'दीपक' पत्र के संचालन में पं. हरदत्त शर्मा ने अपनी जयदाद तक बेच दी। श्री मुलखराज सराफ ने रणवीर पत्र के माध्यम से इस दीपक को जलाए रखा जबकि पत्रकारिता के लिए वातावरण अनुकूल नहीं था। विजय 'सुमन' ने 'गुलाब' उर्दू में छाया किया पर बाद में श्री धर्मचंद प्रशांत के अनुग्रह पर इसे हिन्दी में परिवर्तित कर दिया। हिन्दी में इसके कितने ही श्रेष्ठ अंक प्रकाशित हुए। कहानी अंक 7 मार्च 1945 में प्रकाशित किया गया। श्री ओम प्रकाश सराफ द्वारा 'रतन' का प्रकाशन बच्चों की पत्रिका के रूप में शुरू हुआ। इसका एक अंक डा0 कर्ण सिंह के जन्मदिवस पर हिन्दी में प्रकाशित हुआ। इस अंक के साथ श्री मनसाराम शर्मा 'चंचल' भी जुड़े हुए थे। इस ओर श्री बंसी लाल सूरी का योगदान नहीं भुलाया जा सकता। 'वसुधा' के माध्यम से हिन्दी पत्रिका निकालकर इन्होंने एक बहुत श्रेष्ठ कार्य किया था। शीराज़ा हिन्दी के प्रथम सम्पादक श्री नरेन्द्र खजूरिया तथा योजना के प्रथम सम्पादक श्री वेद राही का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा। शुरू में श्री वेदराही अनेक राष्ट्रीय पत्रिकाओं से भी जुड़े रहे।.............

संस्थाओं का योगदानः

आज़ादी के बाद जम्मू कश्मीर के दोनों मुख्य नगरों जम्मू और श्रीनगर में साहित्यिक क्षेत्रों में खूब हलचल रही। हिन्दी भाषा और उसमें रचे जा रहे साहित्य के प्रति आम लोगों की वह हेय दृष्टि नहीं रही थी जो आज़ादी से पहले थी। अब लोगों को लगने लगा था कि इनका भविष्य बड़ा उज्जवल है अतः वे अब अपने बच्चों को हिन्दी भाषा और साहित्य पढ़ाने लगे थे। इसका प्रभाव संस्थागत गतिविधियों पर भी पड़ने लगा था अब अनेक लोग अनेक संस्थाओं के साथ जुड़ने लगे थे। नए हस्ताक्षर मंच ढूंढ रहे थे ओर स्थापित साहित्यकार संस्थागत और प्रकाशन गत मंचों की ओर उन्मुख थे।

जम्मू में हिन्दी साहित्य मंडल की गतिविधियां विभाजन के बाद शिथिल पड़ गई थीं इन्हें श्री प्रशांत जी के सहयोग से 1962 में फिर से जीवंत किया गया इसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

1964 में इस संस्था की बागडोर को प्रधान के रूप में, श्री बसीं लाल सूरी ने थामा और मंत्री बने प्रो0 देव रत्न शास्त्री । एक बार फिर से मण्डल की गतिविधियां मुखर

होने लगीं। साहित्यिक गोष्ठियों के साथ साथ कुछ विशेष कार्यक्रम भी हाथ में लिए गए। लेकिन अभी यह सुचारु रूप से चलने ही लगी थीं कि देव रत्न शास्त्री ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया परिणाम स्वरूप युवा लेखक और कर्मठ कार्यकर्ता श्री ओम गुप्त मंत्री के पद पर मनोनीत किए गए। 1968 में श्री मनसा राम 'चंचल' और श्री ओम गुप्त क्रमशः प्रधान और मंत्री के पद पर आसीन हुए और एक बार फिर से कार्य सुचारु रूप से चलने लगा तथा इस चयन में खूब हंगामा रहा। हिन्दी साहित्य मंडल की लोकप्रियता का इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस चयन में नगर के अधिकांश बुद्धिजीवी उपस्थित थे। कुछ वर्षो तक कार्य सुचारू रुप से चलने लगा। चौक चबूतरा में इसका कार्यालय स्थापित किया गया और एक बार फिर से इसके पुस्तकालय की योजना बनी जिसके अन्तर्गत इसके सदस्यों ने अनेक पुस्तकें अनुदान में दीं। एक 'प्रतिभा' नामक पत्रिका के प्रकाशन की भी योजना बनाई गई और परिणाम स्वरूप 'प्रतिभा' नामक प्रत्रिका प्रकाशित होना शुरू हुई। इसमें मंडल की गतिविधियों का ब्योरा और साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित की जातीं थीं। पर धीरे धीरे सदस्यों को लगने लगा था कि संस्था एक दो हाथों की कठपुतली बन कर रह गई है। इसके सक्रिय सदस्य इससे अलग होने लगे और धीरे धीरे इसके सदस्यों की संख्या घटकर बहुत कम रह गई थी लेकिन 1972/73 में एक नया समूह सामने आया अब डॉ0 जनक गुप्ता प्रधान के पद पर आसीन हुई और अशोक जेरथ मंत्री के पद पर। एक बार फिर से मंडल की गतिविधियां जोर पकड़ने लगीं थी। गोष्ठियां नियमित हो चुकीं थीं और लेखकों का एक कारवां सा उमड़ पड़ा था। कवि सम्मेलनों और कहानी गोष्ठियों का आयोजन होने लगा था। इसी दौर में एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन भी किया गया जिसमें सर्वश्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना , अजित कुमार, कन्हैया लाल नन्दन, दुश्यंत, कुमार शिव आदि प्रसिद्ध कवियों ने भाग लिया। मंडल की प्रत्रिका अब 'प्रतिभा' से 'मधुरिमा' हो चुकी थी जो अब नियमित तौर पर छप रही थी । कार्यालय पक्का डंगा जम्मू में श्री धर्मचन्द प्रशांत जी के सौजन्य से निशुल्क प्राप्त था। अब पुस्तकालय का भी स्वरूप सामने आया। मधुरिमा के साथ साथ कुछ दूसरे प्रकाशन भी हाथ में लिए गए– एक कहानी संकलन 'देवदार की छाया तले' नाम से जम्मू के कहानीकारों की कहानियों को लेकर प्रकाशित किया गया ओर चर्चित हुया प्रभाकर की निःशुल्क कक्षाओं का आयोजन गीता भवन के परिसर में किया गया।

आज भी मंडल की गतिविधियां कुछ ठण्डी कुछ मीठी चल रहीं हैं। श्रीमती रीता जितेन्द्र वर्तमान प्रधान के तौर पर और नरेश गुलाटी मंत्री के तौर पर कार्यरत हैं। मधुरिमा का स्वरूप कुछ निखरा है पर नियमितता टूटी है।

1961 के आसपास जम्मू में हिन्दी में रचना करने वालों की कमी नहीं थी पर उन्हें सुनने के लिए एक मंच दरकार था। हिन्दी साहित्य मंडल की गतिविधियां तब शिथिल

पड़ गई थी चुनाचे सुतीक्ष्ण आनन्दम् ने ज्येतीश्वर पथिक तथा दूसरे सहयोगियों के साथ 'साहित्य संगम' नाम का एक साहित्यिक मंच स्थापित किया। इसकी नियमित गोष्ठियां रिपब्लिक कालेज के परिसर में होने लगी थीं। बाद में इन गोष्ठियों में श्री चंचल शर्मा ओर दूसरे हिन्दी लेखक भी जुड़ना शुरू हो चुके थे। सुतीक्ष्ण आनन्दम् के अनुसार 1962 में जो हिन्दी साहित्य मंडल पुनः जागृत किया गया उसमें साहित्य संगम का योगदान भुलाया नहीं जा सकता कि साहित्य संगम को ही हिन्दी साहित्य मंडल का रूप दे दिया गया था और यह सब श्री प्रशांत जी की प्रेरणा से ही संभव हो सका।

1960 के आसपास ही एक और मंच हिन्दी के साहित्य के उत्थान के लिए कार्यरत था। इसका नाम उभर नहीं सका पर इस मंच की ओर से पुरानी मण्डी मंदिर के परिसर में नियमित साहित्यिक गोष्ठियां होतीं रहीं हैं। इस मंच के आयोजक थे श्री श्याम दत 'पराग' जिनके बाहर चले जाने पर यह मंच ढीला पड़ गया और धीरे धीरे चुक गया। हिन्दी साहित्य मंडल के पुनः कार्यक्षेत्र में आने से ये सभी साहित्यकार मंडल के सदस्य बन गए और इसकी गोष्ठियों में भाग लेने लगे।

1972 /73 में शिथिल पड़ गईं गतिविधियों के फलस्वरूप कुछेक सदस्यों ने इससे विमुख होकर **'युवा हिन्दी लेखक संघ'** को जन्म दिया। सर्वश्री ओम गुप्त, ज्योतीश्वर पथिक , रमेश मेहता, निर्मल विनोद और पं0 दुर्गा दत्त शास्त्री इसके संस्थापकों में थे। संस्था का केन्द्रीय कार्यालय सराजां ढकी मंदिर में स्थापित किया गया और साहित्यिक गोष्ठियों के साथ साथ विशेष कार्यक्रमों को भी हाथ में लिया गया । कल्चरल अकादमी के आर्थिक सहयोग से कुछ पुस्तकों का भी प्रकाशन किया गया। इनमें से सर्व प्रथम प्रकाशन था कविता संकलन का जिसमें स्थानीय बारह कवियों की रचनाओं को संकलित कर ' बारह चेहरे खड़े चौराहे पर ' नाम से यह पुस्तक प्रकाशित की गई। इसका विमोचन किया था प्रसिद्ध कवि भारत भूषण अग्रवाल ने। यह संकलन काफी चर्चित हुया। इसी प्रकार स्थानीय कहानीकारों को लेकर भी एक संकलन प्रकाशित किया गया 'प्रिज्मों में बटी किरणें'। यह कहानी संकलन भी चर्चित संकलनों में से एक था। 'घोषवती' नाम से एक नियमित पत्रिका का भी प्रकाशन शुरू किया गया जिसमें संस्था की गतिविधियों के साथ साहित्यिक रचनाओं को भी स्थान दिया गया। यह पत्रिका अब 'युहिले पत्रिका' के रूप में प्रकाशित की जाती है और अवधि पाक्षिक है। हिन्दी की प्रभाकर की कक्षाओं का भी आयोजन किया गया पर अब केवल एम0ए0 हिन्दी की कक्षाओं के साथ साथ हिन्दी की टंकण की कक्षाएं लीं जाती हैं। संस्था की एक स्मृद्ध लाईब्रेरी है और इस लेख के लिखने तक ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता पाठ में स्कूली बच्चों की प्रतिस्पर्धा व प्रतियोगिता एक प्रशंसनीय कार्यक्रम संस्था ने अपने हाथ में लिया है और विभिन्न स्थानों मसलन किश्तवाड़, विश्नाह, राजौरी आदि स्थानों पर इनकी प्रतियोगिताएं

करवाई जा चुकी हैं। इसके इलावा लेखक शिविर, सेमिनार आदि अनेक गतिविधियां इस संस्था ने अपने हाथ में लीं हैं जो सुचारु रूप से चल रहीं हैं। युवा हिन्दी लेखक संघ की इन गतिविधियों के कारण नए लेखकों को प्रोत्साहन मिल रहा है और अनेक नए हस्ताक्षर इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

1971/72 में ही 'मानस चतुःशति समिति' वजूद में आई । डा0 ओम गुप्त और अशोक जेरथ इसके क्रमशः प्रधान ओर मंत्री थे। इस संस्था की कुछेक गोष्ठियां ब्राह्मण सभा जम्मू के परिसर में बहुत गरिमा के साथ हुई बाद में डा0 ओम गुप्त के युवा लेखक संघ में तथा अशोक जेरथ के हिन्दी साहित्य मंडल में चले जाने कारण यह संस्था मृतप्राय हो गई और इसकी गतिविधियां चुक गई।

'साहित्य संगम,' 'साहित्य संसद,' 'कला साहित्य संगम' आदि अनेक छोटी मोटी संस्थाएं 1972 से लेकर 1975 तक उभरीं पर दो चार गोष्ठियों के बाद समाप्त हो गईं पर जम्मू में **हिन्दी साहित्य मंडल** और **युवा हिन्दी लेखक संघ** अपनी गरिमा लिए आज भी उसी तरह कार्यरत हैं।

जम्मू नगर के बाहर जैसे उधमपुर और कठुआ में भी संस्थागत कुछ गतिविधियां रहीं हैं। उधमपुर में 1980 के आसपास डा0 आदर्श और प्रो0 शिव निर्मोही के प्रयासों से "अभिव्यक्ति" नामक संस्था की स्थापना की गई पर एक ही गोष्ठी के बाद यह संस्था समाप्त हो गई बाद में साहित्य संगम नाम मे एक बहुभाषीय संस्था का आयोजन किया गया जिसमें उर्दू, हिन्दी , डोगरी और पंजाबी के साहित्यकार भाग लेने लगे। इसमें भाषा कोई बन्धन नहीं था। वस्तुतः लिखने वाले इतने कम थे कि उन्हें किसी तरह का बन्धन बांध नहीं सका इस संस्था के संस्थापकों में बलराज 'सोज', अजुंम, शिव निर्मोही आदि नाम आतें हैं। अनियमित गोष्ठियां होतीं हैं जिनमें उर्दू, हिन्दी और डोगरी में रचनाएं प्रस्तुत की जातीं हैं

इसी प्रकार कठूआ में भी 'सब रस साहित्य संगम' नामक एक बहुभाषी संस्था का आग़ाज 1991 में हुया। इसकी गतिविधियां कविता गोष्ठियों तक ही सीमित रहीं। खास दिनों जैसे 15 अगस्त और 26 जनवरी को इस संस्था की ओर से विशेष कवि गोष्ठी का भी आयोजन किया जाता रहा है। इस संस्था के प्रमुख सदस्यों में सर्वश्री एम0 एल0 कपूर, अमर सिंह आदिल, टी0 आर0 सुंम्बड़िया आदि हैं।

कठूआ में ही जुलाई 92 में 'त्रिवेणी ' नामक संस्था वजूद में आई। यह संस्था साहित्य , कला, संस्कृति इन तीन सूत्रों के उत्थान के लिए कटिबद्ध है। साहित्यिक गोष्ठियों के इलावा कुछ विशेष कार्यक्रम भी इस थोड़ी सी अवधि में इस संस्था ने अपने हाथ में लिए हैं। 31/12/92 को स्थानीय कवियों के गीतों को स्वरबद्ध करके स्थानीय

कलाकारों ने ही इन्हें आमंत्रित श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया । इसके इलावा कठूआ के एक गांव में रियासती सतह पर एक कवि सम्मेलन का आयोजन कर एक ऐतिहासिक कार्य किया था। इस कवि सम्मेलन में जम्मू से आए अनेक कवियों ने इसमें भाग लेकर इस संस्था को सम्मान दिया था। इस कवि सम्मेलन के मुख्यातिथि थे श्री के0बी0 अग्रवाल, विकासायुक्त कठूआ और अध्यक्षता की थी आकाशवाणी कठूआ के कार्यकारी केन्द्र निदेशक डा0 अशोक जेरथ ने। साहित्यकारों को सम्मानित करने का एक ओर कार्यक्रम इस संस्था ने अपने हाथ में लिया था। 1992 में, उस वर्ष के डोगरी में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत कवि यश शर्मा और स्थानीय कवि श्री तरसेम महाजन का सम्मान भी किया गया। इस संस्था के प्रमुख सदस्यों में हैं सर्वश्री मनसाराम शर्मा 'चंचल,' विजय शर्मा , नसीब सिंह मन्हास,उषा मोंगा , तिलक राज टगोत्रा आदि । इस संस्था द्वारा भविष्य में अनेक कार्यक्रम अपने हाथ में लेने की बात सुनाई देती है कि एक लोक गायकों का शिविर लगाया जाएगा और एक पत्रिका के प्रकाशन की भी योजना है जिसमें इस संस्था के सदस्यों की रचनाएं प्रकाशित होंगीं।

पुन्छ में भी संस्थागत गतिविधियां चलती रहीं हैं। आज़ादी के बाद श्रीमती राजभल्ला ने अपनी अनेक सहयोगिनियों के साथ हिंदी के प्रचार और प्रसार में अपना अनथक योगदान दिया है।

रियासी में भी साहित्यिक संस्था होने की बात सुनी जाती है जिसमें हिन्दी और अन्य भाषाओं में गोष्ठियां होतीं रहीं हैं।

आजादी से पहले तो कश्मीर में अनेक संस्थाएं कार्यरत थीं जिनका ब्योरा हम ऊपर दे चुके हैं पर आज़ादी के बाद भी अनेक हिन्दी संस्थाएं हिन्दी के प्रचार और प्रसार में संलग्न रहीं हैं। हिन्दी परिषद नामक संस्था की गतिविधियां स्वतंत्रता के बाद तक चलती रहीं हैं पर इसके शिथिल पड़ जाने पर तत्कालीन कुछ हिन्दी साहित्यकारों, जैसे सर्वश्री चमन लाल सप्रू , शशि शेखर तोषखानी , स्वरूप नारायण पेशिन तथा एम0एल0 क्यमू ने साहित्य परिषद् नामक संस्था को जन्म दिया। इसके मंच पर साहित्य की दूसरी विधाओं के साथ साथ नाटक पर भी कार्य होने लगा था। इनकी गोष्ठियां एक मंदिर में होतीं थीं। बाद में यह संस्था हिन्दी प्रचारिणी सभा के साथ मिल गई ओर एक नई संस्था 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' वजूद में आई। 1950 में शुरू हुई इस संस्था के साथ अनेक हिन्दी प्रेमी संलग्न थे। एक दशक तक इस संस्था की गतिविधियां सुचारु रूप से चलतीं रहीं । साप्ताहिक साहित्यिक गोष्ठियों के इलावा इस संस्था ने श्री एम0एल0 क्यमू के नेतृत्व में एक नाटक एकक भी स्थापित किया जिसका नाम 'अभिनव भारती' रखा गया। इस एकक द्वारा अनेक नाटकों का मंचन सफलतापूर्वक किया गया। 'काज़ी ' नामक एक नाटक खूब चर्चित हुआ जिस पर रियासत की कल्चरल अकादमी द्वारा द्वितीय पुरस्कार भी

प्रदान किया गया। इस नाटक का निर्देशन क्यमू साहब ने दिया था। 1961 में इस संस्था द्वारा एक मासिक पत्रिका "कश्यप" भी प्रकाशित की जाने लगी थी जिसमें संस्था की गतिविधियों के इलावा साहित्यिक रचनाएं भी प्रकाशित की जातीं थीं । इस पत्रिका के संचालकों में सर्व श्री के0एल0धर, चमन लाल सप्रु , शशि शेखर तोषखानी और रतन लाल शांत आदि थे। प्रो0 चमन सप्रू इसके प्रबन्ध संपादक थे पर साहित्यिक रचनाओं के चयन में श्री रतन लाल शांत और श्री शशि शेखर तोषखानी का भरपूर योगदान श्री सप्रू को मिलता रहा है। कुछ माह तक इसका प्रकाशन निरन्तर होता रहा पर छः सात अंकों के बाद इसकी निरन्तरता टूट गई। गोष्ठियों के इलावा प्रसिद्ध साहित्यकारों की जयन्तियों का आयोयन करना और स्थानीय साहित्यकारों को सम्मानित करना आदि मुख्य उद्देश्यों को लेकर यह संस्था चलती रही। बाद में श्री चमन लाल सप्रू और पी0 एन राज़दान तथा श्री पेशिन की कोशिशों से एक किशोर साहित्यक मंच भी स्थापित किया गया जिसमें नवोदय लेखक भाग लेते थे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ अनेक विभूतियां जुड़ी हुई थीं जिनमें सर्वश्री डी0एन0 फोतेदार, सरदार हरबंश सिंह आज़ाद , प्रो0 के0 एन0 धर, सव0 श्री डी0 पी0 काचरु , टी0 एन0 डुल्लू, मोहन निराश , जिया लाल कौल, सी0 एल0 हक्कू, पृथ्वी नाथ मधुप आदि प्रमुख हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा हिन्दी के प्रचार के साथ साथ नई प्रतिभाओं को उजागर करने और उन्हें स्थापित करने में बहुत बड़ा योगदान रहा है पर धीरे धीरे इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के अलग पड़ जाने से यह अन्धेरे में गुम हो गई।

भारतीय हिन्दी परिषद् , हिन्दी संसद आदि संस्थाओं का उदय 1952/53 में हुआ पर ये संस्थाएं दो एक गोष्ठियों तक ही सीमित रहीं। इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य हिन्दी साहित्य सेवा ही था। 1965 में एक और संस्था, 'हिन्दी साहित्य संगम' के रूप में उभर कर सामने आई पर इस संस्था का भी परिणाम वही हुआ जो उपर्युक्त संस्थाओं का हुआ था।

जम्मू कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समितिः हिन्दी के प्रचार और प्रसार में संलग्न संस्थाओं में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति का योगदान भुलाया नहीं जा सकता इस संस्था की एक इकाई कश्मीर में भी स्थापित की गई। शुरू शुरू में इस संस्था की गतिविधियां मात्र राष्ट्रभाषा की परीक्षाओं तक सीमित थीं। बाद में इसे जम्मू कश्मीर सरकार की ओर से भी मान्यता मिली। अब जम्मू कश्मीर के अनेक स्थानों पर इसके केन्द्र स्थापित किए गए। इन केन्द्रों द्वारा अध्यापकों को हिन्दी शिक्षण के बारे में अवगत करवाने के लिए एक 144 दिवसीय कार्य शाला का भी आयोजन किया गया। विभिन्न स्थानों पर पुस्तकालय स्थापित किए गए जिनमें हजारों पुस्तकें उपलब्ध करवाईं गईं। सुगम पाठ्य

पुस्तकों को भी प्रकाशित किया गया। बाद में 'नीलजा' नामक एक वार्षिकी भी प्रकाशित की जाने लगी जिसमें संस्था की गतिविधियों के इलावा साहित्यिक रचनाओं को भी स्थान दिया जाने लगा। इस पत्रिका के सम्पादक श्री सप्रू रहे हैं। इस पत्रिका के कुछ विशेषांक भी निकाले गए जिनकी चर्चा हम अन्यत्र करेंगे। आजतक इसके तेरह वार्षिक अंक प्रकाशित हो चुके हैं इसके साथ साथ 'सतीसर' नामक एक पत्रिका का भी प्रकाशन शुरू किया गया जो संस्था की मुख्य पत्रिका के रूप में आज भी प्रकाशित हो रही है। संस्था का वर्तमान कार्यालय जम्मू में है।

इस अध्याय को सम्पन्न करने से पहले 'प्रतिभा गोष्ठी' की बात बहुत आवश्यक हो जाती है। सर्वश्री शशि शेखर तोषखानी , मोहन निराश और रतन लाल शांत के प्रयासों से यह शुद्ध साहित्य गोष्ठी लोगों के घरों में होती रही है और इसमें विश्व भर के अन्यतम साहित्य पर चर्चा के साथ साथ साहित्यिक आन्दोलनों की परख और पुस्तकों का आदान प्रदान इस गोष्ठी की विशेषताएं रही हैं। नए साहित्य के प्रति जागरूक ये साहित्यकार नई सोच के आग्रही रहे हैं।

महिला लेखिका संघ, श्रीनगर : श्रीमती निर्मल कुसुम, हिन्दी लेखिका द्वारा मिले ब्योरों से यह पता चलता है कि कश्मीर में कुछ उद्दमी महिलाओं ने हिन्दी साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिए एक मंच तैयार किया था जिसका नाम था महिला लेखिका संघ। वस्तुतः इस संस्था की उपज हिन्दू कन्या विद्यालय, पुरुषयार , श्रीनगर में हुई थी। इस संस्थान में लड़कियों के लिए हिन्दी की विशेष कक्षाओं–रत्न, भूषण और प्रभाकर का आयोजन किया जाता था। साहित्य परिषद् और विद्यार्थी परिषद् नामक संस्थाएं साहित्य और दूसरी गतिविधियों के लिए कार्यरत थीं। यहीं पर एक द्विमासिक हिन्दी पत्रिका 'परम्परा' के नाम से भी प्रकाशित की जाती रही है जिसके संपादक विद्यालय के प्राचार्य श्री ओमकार काचरु और सहसंपादिका कु0 गौरी रैणा थीं। इस पत्रिका के संपादन के लिए एक सलाहकार समिति का भी गठन किया गया था जिसमें श्री नादिम , कुसुम, श्री रामजी व श्री मधुसूदन शास्त्री थे।

महिला लेखिका संघ की भी एक हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित की जाती रही है 'संगरमाल' के नाम से इस पत्रिका का प्रवेशांक जनवरी 1952 में प्रकाश में आया। और इसी के तुरंत बाद फरवरी 1952 में 'परम्परा' का भी प्रवेशांक निकला था। संगरमाल के संपादक मंडल में कु0 चूनी कौल, कु0 रजनी राज़दान, कु0 गौरी रैणा और कु0 निर्मल कुसुम थे।

लेखिका संघ की गोष्ठियां निरन्तरता लिए हुईं थी और अकसर पंद्रह बीस सदस्य इन गोष्ठियों में भाग लिया करते थे । ये साप्ताहिक गोष्ठियां साहित्य के किसी न किसी विशेष मुद्दे को लेकर होतीं थीं। इन गोष्ठियों के साथ साथ महीने दो महीने के बाद

बड़े आयोजन भी किए जाते रहे हैं जिनमें कवि सम्मेलन अथवा विशेष कहानी गोष्ठियों का भी आयोजन किया जाता रहा है। इन आयोजनों में मंच की सदस्याओं के इलावा गण्यमान्य अतिथियो को भी आमंत्रित किया जाता था। ऐसे विशेष कार्यक्रमों में श्रीमती नादिम, श्रीमती मोहिनी कौल आदि अनेक महिलाओं को सादर बुलाया जाता रहा है। साहित्यिक कार्यक्रमों के इलावा इस मंच दवारा मुस्लिम महिलाओं को हिन्दी की ओर प्रवृत्त करने का भी योगदान इस संस्था के सदस्यों दवारा दिया गया है। लेखिका संघ की प्रमुख सदस्याओं मे कु0 गौरी रैणा , कु0 चूनी कौल, कु0 शीला कौल, श्रीमती मोहिनी कौल, कु0 कुसुम, निर्मल कुसुम आदि सक्रिय थीं। ये सब लेखिकाएं हिन्दी में मौलिक लेखन के साथ साथ कश्मीरी में भी रचनाएं लिखतीं थीं और अनेक बार हिन्दी ओर कश्मीरी में तुलनात्मक विषयों पर भी इन से लेख लिखवाए जाते थे।

आकाशवाणी और दूरदर्शन का योगदानः इस प्रदेश में आकाशवाणी की चार इकाईयां और दूरदर्शन की दो इकाईयां कार्यरत हैं। आकाशवाणी के अन्तर्गत जम्मू , श्रीनगर , लेह और कठूआ के केन्द्र लिए जा सकते हैं और पुन्छ तथा भद्रवाह के केन्द्र बनकर तैयार हो चुके हैं पर अभी प्रसारण शुरू नहीं हुआ । इन सभी केन्द्रों से जम्मू केन्द्र सबसे पहले अर्थात स्वतंत्रता के तुरन्त बाद दिस0 1947 में श्री रणवीर हाई स्कूल के दो कमरों में शुरू किया गया। तब यह केन्द्र जम्मू कश्मीर प्रशासन के अन्तर्गत कार्य करता था और इसका कार्यक्रम पाकिस्तानी झूठे प्रचार का जवाब देना और समाचार प्रसारित करना था। फिर धीरे धीरे दूसरे कार्यक्रम भी शुरू किए गए। इस केन्द्र का सौभाग्य रहा है कि इसको प्रारम्भिक दौर में श्री राजेन्द्र सिंह बेदी और कैम्फर जैसे विद्वान और निष्ठावान व्यक्ति मिले जिन्होने अगले ही वर्ष यानिकि 1948 के मध्य में जाकर हिन्दी में झलकियों को प्रसारित करना शुरू किया । राजेन्द्र सिंह बेदी न केवल पाकिस्तानी दुष्प्रचार का सटीक और पैना उत्तर देते थे पर अब इस उत्तर कों उन्होने छोटी छोटी नाटिकाओं और झलकियों के माध्यम से भी सजाना शुरू किया था । यह इतना तेजी से होता था कि सीमा पार से कोई कार्यक्रम प्रसारित होता तो उसके दो घन्टों के भीतर ही इधर से भी उसका उत्तर तोप के गोले की तरह दाग़ दिया जाता। यह शीतयुद्ध वर्षों चलता रहा पर जो धार बेदी और कैम्फर के ज़माने में थी वह फिर दिखाई नहीं दी। धीरे धीरे नाटकों के साथ साथ अन्य कार्यक्रमों को भी प्रसारित किया जाने लगा था जिनमें गीत – संगीत के इलावा हल्की फुल्की वार्ताएं भी लीं जा सकतीं हैं। पहला पूरा नाटक मार्च 1951 में रिफ्त जम्माली द्वारा 'वूदरिंग हाइट' का रूपान्तर आलेख के रूप में तैयार किया गया और इसे श्री कैम्फर ने प्रस्तुत किया। धीरे धीरे दूसरे प्रभाग भी इसमें खुलने शुरू हो चुके थे और बीते कल की कलाकारों की जामात आकाशवाणी की मुख्यधारा के साथ जुड़ती गई थी जिनमें सर्वश्री जितेन्द्र शर्मा, विष्णु भारद्वाज, बोधराज शर्मा, कृष्णदत्त

, बलदेव आदि रहे हैं और अब अनेक क्षेत्रों में इसके कार्यक्रम प्रसारित होने लगे थे। धीरे धीरे हिन्दी के कार्यक्रम भी प्रसारित किए जाने लगे थे। इन कार्यक्रमों में साहित्यिक पत्रिका 'निर्झर' की चर्चा करनी बहुत आवश्यक हो जाती है क्योंकि इस कार्यक्रम में भाग लेना अपने आप में ही बहुत बड़ी बात थी। एक समय था कि हम इसके प्रयास में रहते थे कि कब इस कार्यक्रम में हमें बुलाया जाए हिन्दी साहित्यकार के रूप में इन कार्यक्रमों के माध्यम से व्यक्ति की पहचान होनी शुरू हो चुकी थी। युवा वर्ग के लिए एक और कार्यक्रम 'मधुकोष' भी आरम्भ किया गया जो निर्झर का ही रूप था पर इसमें नवोदित रचनाकार भाग लेते थे। पर इसमें भी नितांत मंजी हुई रचनाओं को ही प्रसारित किया जाता था। बाद में युववाणी खुल जाने से युवाओं के लिए अनेक क्षेत्रों में वार्ताएं, कवि गोष्ठियां और कहानी प्रसारण आदि कार्यक्रमों का वर्चस्व बढ़ा ओर नए हस्ताक्षरों के लिए अनुभव और अवसर दोनों ही प्रदान किए गए। ऐसा निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि इस प्रदेश का कोई भी ऐसा कवि, कहानीकार, लेखक नहीं होगा जिसकी रचनाओं का प्रसारण इस केन्द्र से नहीं हुआ हो । अपितु अगर हम ऐसा कहें कि चर्चित लेखकों और कवियों की चर्चित रचनाएं आकाशवाणी के इस केन्द्र से प्रसारित हो चुकीं हैं तो गलत नहीं होगा। इसी प्रकार रेडियो नाटक, साक्षात्कार, गीत आदि के भी आलेख स्थानीय रचनाकारों से ही लिखवाए गए हैं और आज सैंकड़ों की संख्या में हिन्दी गीत, नाटक, रूपक, संगीत रूपक आकाशवाणी के इस केन्द्र द्वारा हिन्दी रचनाकारों के तैयार कराए गए हैं। आकाशवाणी का एक और योगदान यह भी रहा है कि राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित विद्वानों और कवियों को आमंत्रित कर श्रोताओं के सम्मुख उनकी रचनाओं के रसास्वादन का अवसर प्रदान करवाना। हिन्दी के चर्चित कवि, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, अजित कुमार, सोम ठाकुर, दुष्यंत, बालस्वरूप राही, कन्हैया लाल नंदन, हुल्लड़ मुरादाबादी आदि के अतिरिक्त नागार्जुन, विश्णु प्रभाकर, अज्ञेय आदि के साथ किए गए साक्षत्कारों को भी प्रसारित किया गया है। इस तरह इस प्रदेश के साहित्यकारों को देश के चर्चित साहित्यकारों के साथ एक सांझे मंच पर लाने का श्रेय आकाशवाणी के इस केन्द्र को जाता है।

श्रीनगर का केन्द्र 21 अक्तूबर 1948 में आरम्भ किया गया। इस केन्द्र से भी समाचारों के इलावा पाकिस्तानी दुष्प्रचार के बदले में अनेक कार्यक्रमों को स्थान दिया गया जिसमें 'वादी की आवाज' बाद में जाकर बहुत मकबूल कार्यक्रम साबित हुआ। इस कार्यक्रम का श्रवण बहुत रहा जहां तक कि सीमा के पार से अनेक पत्र आते रहे हैं। हिन्दी के साहित्यिक कार्यक्रमों को भी प्रसारित किया जाता रहा है। वर्षों इस केन्द्र के साथ हिन्दी के कवि मोहन निराश जुड़े रहे हैं जिन्होंने न केवल स्थानीय रचनाकारों के कार्यक्रमों को प्रसारित किया अपितु इस प्रदेश के बाहर लिख रहे चर्चित विद्वानों के

आलेख, कविताओ और साहित्य की दूसरी विधाओं के प्रसारण का भी प्रयास किया। हिन्दी नाटक, रूपक और हिन्दी प्रहसनों पर यहां काफी कार्य हुआ है।

लेह का केन्द्र जून 1971 में शुरू हुआ। यद्यपि इस केन्द्र के स्थापन का अभिप्राय स्थानीय संस्कृति और लेखन को प्रोत्साहन देना था लेकिन हिन्दी गीतों और गाहे बगाहे हिन्दी वार्ताओं के माध्यम से हिन्दी के प्रचार में इस केन्द्र का योगदान रहा है।

कठुआ का केन्द्र 27 अप्रैल 1990 को आरम्भ किया गया । इस केन्द्र का आधार हिन्दी ही रखा गया है। सारी घोषणाएं हिन्दी में ही होतीं हैं। हिन्दी गीत, वार्ताएं और हिन्दी के नाटक प्रसारित किए जाते हैं । हिन्दी के साहित्यकारों के लिए हिन्दी कविता पाठ और हिन्दी वार्ताओं को प्रसारित किया जाता है। युवाओं के लिए अलग से कवि गोष्ठी का आयोजन रहता है। अभी हाल ही में स्थानीय हिन्दी कवियों द्वारा रचित हिन्दी गीतों को स्वरबद्ध कर प्रसारित किया गया। इन गीतों को इसी केन्द्र के गायकों द्वारा गाया गया था। इनके इलावा अनेक केन्द्रों की साहित्यिक रिकार्डिंग मंगवाकर प्रसारित की जाती है और स्थानीय साहित्यिक संस्थाओं द्वारा आयोजित कार्यक्रमों को रिकार्ड कर उसे प्रसारित किया जाता है।

उपर्युक्त इन चार केन्द्रों के इलावा भद्रवाह और पुंछ में भी आकाशवाणी के केन्द्र तैयार हैं और 1994 में कभी भी ये प्रसारण शुरू कर सकते हैं।

आकाशवाणी के केन्द्रों के इलावा दूरदर्शन के दो कन्द्र भी यहां पर कार्यरत हैं। श्रीनगर में स्थापित दूरदर्शन केन्द्र में सांस्कृतिक और संगीत के कार्यक्रमों के साथ साथ साहित्यिक कार्यक्रम भी प्रसारित होते रहें हैं। हिन्दी में साहित्यिक पत्रिका, 'आवशार' काफी अर्से तक प्रसारित होती रही है जिसमें स्थानीय रचनाकारों के साथ साथ जम्मू से आए रचनाकारों और राष्ट्रीय स्तर के रच[illegible] गौरव रहता है कि 'आवशार' में उन्होंने भाग लिया है। हिन्दी गीत, रूपक और हिन्दी टी0वी0 नाटक इस केन्द्र से प्रसारित होते रहते हैं इनके लेखक और इसमें भाग लेने वाले कलाकार लगभग सभी इसी प्रदेश के ही होते हैं।

जम्मू में अभी हाल ही में दूरदर्शन का एक स्वतंत्र केन्द्र स्थापित हुआ है। यद्यपि वर्षो यह रिले केन्द्र के तौर पर कार्य कर चुका है पर स्वतत्र प्रसारण में यह इस केन्द्र का पहला प्रयास है। अभी मात्र आधे घन्टे का ही प्रसारण शुरू हुआ है जिसमे गीत संगीत के इलावा परिचर्चाएं और बातचीत भी की जाती है।

रियासती कल्चरल अकादमी का योगदान : कल्चरल अकादमी की ओर से शीराज़ा हिन्दी का प्रकाशन 1965 में आरम्भ हुआ। डिमाई साईज़ में इसका प्रवेशांक अप्रैल 1965 में प्रकाशित होकर सामने आया। इस अंक के सम्पादक थे स्व0

नरेन्द्र खजूरिया। 134 पृष्ठीय इस अंक में दस लेख, आठ काव्य रचनायें, दो कहानियां तथा कुछ दूसरी भाषाओं से अनूदित रचनायें प्रकाशित हैं। आरम्भ में डा0 कर्णसिंह, तत्कालीन सदरे रियासत, श्री जी.एम. सादिक, तत्कालीन प्रधानमंत्री जम्मू कश्मीर राज्य एवं तत्कालीन वित्तमंत्री श्री गिरधारी लाल डोगरा द्वारा शुभकामनायें उनके चित्रों सहित प्रकाशित की गईं हैं। इनके इलावा देश के कुछ प्रतिष्ठित हिन्दी लेखकों का साधुवाद भी, हिन्दी शीराज़ा के प्रकाशन पर, 'सम्पादक के नाम' शीर्षक से छपा है। लेखों में धरती की माटी की गंध देते केवल पाँच लेख प्रकाशित हैं– नीलमत पुराण, परमानन्द की हिन्दी कविता, कश्मीर के प्राचीन स्मारक, डोगरी भाषा और प्रदेश तथा हब्बा खातून– एक परिचय। सर्वश्री पृथ्वीनाथ 'मधुप', सुभाष भारद्वाज, रामनाथ शास्त्री, मोहन 'निराश', मनसाराम शर्मा 'चंचल', गंगादत्त 'विनोद' तथा चन्द्र कांत जोशी की काव्य रचनायें प्रकाशित हैं। मोहन यावर एवं पुष्करनाथ की दो कहानियों के साथ साथ बिम्ब प्रतिबिम्ब स्तम्भ के अंतर्गत दीनानाथ नादिम की कश्मीरी कविता, मधुकर की डोगरी कविता एवं सपनमाला की पंजाबी कविता के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित किए गए हैं।

हिन्दी शीराज़ा का दूसरा अंक उसी वर्ष अक्तूबर में प्रकाशित हुआ जिसमें नौ लेख, छः कवितायें , एक कहानी तथा कुछ अनूदित रचनायें प्रकाशित की गईं। इस अंक का भी सम्पादन नरेन्द्र खजूरिया ने ही किया। नरेन्द्र खजूरिया द्वारा सम्पादित शीराज़ा हिन्दी के अंक 1969 तक प्रकाशित होते रहे। उनके उपरान्त केहरिसिंह 'मधुकर' सम्पादक के रूप में कार्य करने लगे। मधुकर द्वारा सम्पादित पहला अंक 1970 में प्रकाशित होकर सामने आया। श्री केहरसिंह मधुकर द्वारा कुछेक अंक ही प्रकाशित किए गए जिनमें अक्सर वही रचनाकार प्रकाशित होते रहे जो डोगरी व कश्मीरी शीराज़ा में प्रकाशित होते रहे थे अक्सर इने गिने लोग लिखने वाले थे जो डोगरी, हिन्दी, कश्मीरी, उर्दू आदि में एक साथ लिख रहे थे। हिन्दी लेखकों की अलग से कोई विशेष पहचान नहीं थी मात्र दो एक रचनाकारों को छोड़कर। इस बीच कुछेक अंक 1971–72 में श्यामलाल शर्मा के सम्पादकत्व में भी प्रकाशित हुए पर हिन्दी शीराज़ा का सही और उचित साहित्यिक रूप 1973 के बाद सामने आया। इस बीच रमेश मेहता, एक युवा हिन्दी कवि, हिन्दी सम्पादक के तौर पर चयनित हुए और शीराज़ा का सम्पादन भार उन्हें सौंपा गया रमेश मेहता के सम्पादकत्व में साहित्य की विभिन्न विधाओं पर विशेषांक प्रकाशित हुए जिनमें से कहानी, कविता, उपन्यास, व्यंग्य, आलोचना, एकांकी आदि विषयों पर प्रकाशित अंक विशेष तौर पर चर्चित हुए। इनके इलावा नई प्रतिभाओं, व्यक्तियों, एवं साहित्यकारों पर भी विशेषांक प्रकाशित किए गए। इस दौर की विशेष उपलब्धि यह रही कि हिन्दी साहित्यकारों का एक कारवां तैयार हो रहा था जो शीराज़ा के माध्यम से उभरकर सामने आया और हिन्दी के लेखकों की पहचान स्थापित हुई। कहानी, कविता, निबन्ध आदि के

साथ साथ पुस्तक समीक्षा, परिचय तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं पर परिचर्चाएं आमंत्रित श्रोताओं के सम्मुख भी आयोजित की गईं– विशेषकर 'हिन्दी उपन्यास दशा, दिशा और सम्भावना' विषय पर आयोजित परिचर्चा अति चर्चित रही। इस परिचर्चा में डॉ0 ओम गुप्त, डॉ0 राजकुमार, निर्मल विनोद तथा इन पंक्तियों के लेखक, डॉ0 अशोक जेरथ प्रतिभागी थे। बाद में इस परिचर्चा का लिप्यन्तरण शीराज़ा के उपन्यास विशेषांक में प्रकाशित किया गया। इसी प्रकार हिन्दी कहानी पर की गई परिचर्चा में डॉ0 ओम गुप्त, डॉ0 अनिल गोयल, डॉ0 उषा व्यास, छत्रपाल तथा डॉ0 अशोक जेरथ ने भाग लिया था। इस रिकार्डिड परिचर्चा का लिप्यंतरण कर शीराज़ा के कहानी विशेषांक में प्रकाशित किया गया। इसी प्रकार एक और परिचर्चा कहानी अंक पूर्णांक 43 में प्रकाशित हुई जिसमें "आवश्यकता है, कहानी का असली चेहरा तलाशने की" विषय पर डॉ0 हरदयाल, हिमांशु जोशी, विजय मोहन सिंह, से0 रा0 यात्री, वेदराही तथा डॉ गंगाप्रसाद विमल प्रतिभागी थे और इसका आयोजन किया अनामिका ने। निश्चय ही यह परिचर्चा दिल्ली में आयोजित की गई होगी और एक निश्चित प्रश्नावली के तहत प्रश्नों के उत्तरों पर आधारित यह परिचर्चा सम्पन्न की गई। इस अंक में कुल छः कहानियां संकलित हैं जिनमें से अलंकार द्वारा 'पंतग' शीर्षक से लिखी गई कहानी एक सशक्त कहानी कही जा सकती है। 'पंतग' के प्रतीक के माध्यम से अपनी धरती से अलग होने की पीड़ा संतसिंह अकेले की पीड़ा नहीं अपितु जनमानस की पीड़ा है जो अपनी धरती से नाता टूट जाने पर बहुत अकेला और असहाय हो जाता है। इस अंक में कहानी विधा पर चार लेख भी हैं जिनमें से एक लेख अनिल गोयल द्वारा रचित जम्मू की हिन्दी कहानी पर भी है जिसमें स्थानीय कहानी संकलनों में से प्रमुख कहानियों को लेकर विश्लेषण किया गया है। यह कहानी विशेषांक स्थानीय कहानीकारों तथा कथा समीक्षकों का एक प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है।

शीराज़ा का उपन्यास विशेषांक (पूर्णांक 53) हिन्दी में प्रकाशित उपन्यासों पर एक दस्तावेज कहा जा सकता है। इस अंक में उपन्यास विधा को लेकर छः लेख संकलित हैं जिनमें सुधि कथा समीक्षकों द्वारा न आने वाला कल, पत्तों की बिरादरी और जिन्दगीनामा नामक चर्चित उपन्यासों का आकलन भी शामिल है। और एक परिचर्चा–आज का हिन्दी उपन्यास–दशा, दिशा और सम्भावना भी संकलित है। इसमें डॉ0 ओम प्रकाश गुप्त, डॉ0 राजकुमार, डॉ0 अशोक जेरथ और निर्मल विनोद प्रतिभागी हैं। उपन्यास पर हुई बहस में आंमत्रित श्रोताओं ने भी खुलकर भाग लिया और बाद में रिकार्डिड सम्वादों के लिप्यंतरण अंश भी प्रकाशित किए गए– कुसुम अंसल द्वारा "अपनी अपनी यात्राएं", छत्रपाल द्वारा रचित "एक घर दो घर" और इन पंक्तियों के लेखक का "एक नई दुनिया" उपन्यास अंश स्थानीय उपन्यास लेखन के लिए आधार का कार्य करेंगे ऐसी सम्भावना है।

विशेषाकों की श्रृखंला में कविता का अंक भी एक चर्चित अंक रहा– । इस अंक (पूर्णांक 47) में कविता की विधा पर विभिन्न विचारों से सम्पन्न पांच लेख समाहित हैं जिनमें अकविता, विचार कविता, लंबी कविता और समकालीन कविता– जैसे आन्दोलनों को व्याख्यायित किया गया है। एक परिचर्चा "आज की हिन्दी कविता दशा, दिशा और सम्भावना" पर डा0 रमेश कुन्तल मेघ, डॉ0 शशिशेखर तोषखानी, डॉ0 रतनलाल शांत, मोहन निराश तथा महाराज कृष्ण संतोषी ने अपने विचार दिए हैं। इनके इलावा विभिन्न स्थानीय और देश के कवियों की 23 कवितायें भी प्रकाशित की गईं। विशेषांकों की श्रृखंला में व्यंग्य अंक (पूर्णांक 66) एक और आकर्षण है। इस अंक में हिन्दी के शीर्षस्थ व्यंग्यकारों मसलन रवीन्द्र नाथ त्यागी, प्रेम जनमेजय, इन्द्रनाथ मदान, विवेकीराय, लतीफ घोंघी, डॉ0 बालेन्दु शेखर तिवारी आदि की रचनायें प्रकाशित हैं। इनके इलावा उर्दू, डोगरी और पंजाबी साहित्य में व्यंग्य को रेखांकित किया गया है। इस अंक की एक और उपलब्धि यह है कि इसमें हिन्दी में प्रकाशित व्यंग्य संकलनों की एक वृहद् सूची भी प्रकाशित की गई है।

"आलोचना के विरुद्ध" अंक (पूर्णांक 70) में कुल तेरह लेख प्रकाशित हैं जिनमें डॉ0 चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, रमेश कुन्तल मेध, अज्ञेय, डॉ0 रामदरश मिश्र के लेख तर्क एव व्याख्या की दृष्टि से सटीक बने हैं। इसी अंक में "हिन्दी साहित्य में आलोचना की अन्त्येष्टि" शीर्षक से रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा रचित व्यंग्य भी छपा है जो सारिका से "साभार" लिया गया है पर इस लेख में सीधी सपाट बात की गई है, व्यंग्य का पैनापन कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता।

अन्य विशेष अंकों में व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर लेख प्रकाशित किए गए हैं मसलन इकबाल विशेषांक, (दिसम्बर 1975– मार्च 1976) में उर्दू के महान कवि इकबाल पर उनके कृतित्व को लेकर अठारह लेख प्रकाशित हैं। इक़बाल की रचनायें बीच बीच में दी गई हैं। कुछ दुलर्भ चित्र भी प्रकाशित किए गए हैं पर एक कमी इस अंक में खलती है कि इकबाल की रचनाओं का ब्योरा और जीवन परिचय नदारद है। अच्छा होता इस ओर भी सम्पादक का ध्यान जाता। या हो सकता है कि समय और स्थितियों के वश ऐसा न हो पाया हो बहरहाल कमी तो है। इसी प्रकार मुंशी प्रेमचंद अंक, अज्ञेय अंक, बंसीलाल सूरी की तस्वीर से जड़ा अंक जिसे नई कलम विशेषांक की संज्ञा दी गई है– शीराज़ा के खास अंकों में लिए जो सकते हैं। साहित्य से इतर इस क्षेत्र के राजनीतिक आकाश पर उदित हुए एक नक्षत्र–शेख अब्दुला पर भी एक विशेषांक प्रकाशित हुआ है। अज्ञेय स्मृति अंक (पूर्णांक 88) अपने में पूरा अंक है इसमें अज्ञेय द्वारा रचित साहित्य का सम्पूर्ण ब्योरा समाहित है। यात्रायें, काव्य , उपन्यास एवं कथासाहित्य का आकलन एवं परिचय करवाती अनेक रचनायें प्रकाशित हैं । बाईस काव्य रचनायें –गीत, कविता एवं ग़ज़ल

रूप में प्रकाशित हैं। यद्यपि कुछेक नाम परिचित से लगते हैं तथापि अधिकांश नए हस्ताक्षर हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विशेषांकों के माध्यम से तत्कालीन सम्पादक ने एक अच्छा प्रयास इस दिशा में किया है।

इस दौर की एक और उपलब्धि है स्थानीय रचनाकारों की रचना प्रक्रिया का आकलन। सुभाष भारद्वाज , मोहन निराश, हरिकृष्ण कौल, रतनलाल शांत , निर्मल विनोद, बलनील देवम् आदि प्रतिष्ठित एवं उभरते हुए रचनाकारों की रचनाओं पर यहीं के विद्वानों से लेख लिखवाये गए और उन्हें विभिन्न अंकों में प्रकाशित किया गया । इनके इलावा जम्मू कश्मीर की हिन्दी कविता, कहानी , उपन्यास , नाटक–एकांकी आदि विधाओं को रेखांकित किया गया। कम से कम चार लेख जम्मू कश्मीर की हिन्दी पत्रकारिता को लेकर प्रकाशित किए गए। इन लेखों के माध्यम से एक इतिहास रचा गया जो अपने आप में सम्पूर्ण है और अनुसंधित्सुओं के लिए मील का पत्थर साबित होगा। शीराज़ा का पूर्णांक 39–40, एकांकी नाटक को समर्पित था। इस अंक में एकांकी, नाटक, रंगमंचीय परम्परा आदि पर चार लेख प्रकाशित हैं और एक लघुनाटक तथा एक रेडियो नाटक भी संकलित है। इसी अंक में 'हिन्दी नाटक उपलब्धि और सम्भावनाएं' शीर्षक से एक परिचर्चा भी प्रकाशित की गई है जिसमें डॉ0 गंगाप्रसाद विमल, डॉ0 ओम प्रकाश गुप्त, श्रीमती रीता जितेन्द्र, डॉ0 सिम्मी गुप्त एवं श्री कविरत्न प्रतिभागी थे। इस परिचर्चा में अनेक मुद्दे उभर कर सामने आए। इस परिचर्चा का संचालन किया शीराज़ा के सम्पादक रमेश मेहता ने।

इस दौर में जहां प्रौढ़ रचनाकार सामने आए वहां एक कारवां नई पीढ़ी का भी उभरा जिसने हिन्दी रचनाकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित की। एक बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि पहले इने गिने रचनाकार ही अकादमी की पत्रिकाओं में स्थान पाते थे– वे डोगरी साहित्य के रचनाकार थे, वही उर्दू एवं हिन्दी साहित्य के रचनाकार थे। इसी प्रकार कश्मीरी , उर्दू एवं हिन्दी के साहित्यकार भी कुछ इने गिने लोग थे। पर इस दौर में विशुद्ध हिन्दी साहित्यकारों की पहचान स्थापित हुई। औपचारिक एवं अनौपचारिक गोष्ठियों , परिचर्चाओं एवं कवि सम्मेलनों का आयोजन किया गया जिसमें रेखांकित हुए रचनाकार विद्वान एवं कवि अपना वर्चस्व स्थापित करने में सक्षम हो सके । यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि इस दौर की कही जा सकती है। 1987 में रमेश मेहता की पदोन्नति के फलस्वरूप शीराज़ा हिन्दी का कार्यभार डोगरी शीराज़ा के सम्पादक ओम गोस्वामी पर आन पड़ा। ओम गोस्वामी डोगरी के प्रतिष्ठित रचनाकार एवं विचारक तो थे ही हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकारों में गिने जाते रहे हैं। समान्तर कहानी आन्दोलन से जुड़े इस रचनाकार ने बावजूद अधिक कार्यभार के, हिन्दी शीराज़ा की गरिमा को कम नहीं होने दिया यद्यपि ओम गोस्वामी हिन्दी शीराज़ा की ओर अपना पूरा

ध्यान नहीं दे सके क्योंकि डोगरी शीराज़ा का सम्पादन ही अपने आप में बहुत बड़ा कार्य था जिसे एक पूरे एकक की आवश्यकता थी पर फिर भी हिन्दी शीराज़ा के कुछेक अंक अच्छे और सुरुचिपूर्ग प्रकाशित हुए। डोगरी और हिन्दी साहित्य की तुलनात्मक रचनाओं पर लेख प्रकाशित किए गए। यद्यपि स्थानीय एवं प्रदेश के बाहर के रचनाकारों के बीच शीराज़ा एक सेतू का कार्य कर रहा था पर इस दौर की सबसे बडी उपलब्धि यही रही कि प्रदेश के बाहर के रचनाकार खूब प्रकाशित हुए। जम्मू कश्मीर की धरती की गंध अपना सौरभ अब उडेलने लगी थी। सांस्कृतिक पहलुओं को लेकर अनेक लेख एवं रचनायें इस दौर में अपना स्थान पाने लगीं। साहित्य के साथ साथ संस्कृति भी परवान चढ़ने लगी। अज्ञेय पर प्रकाशित विशेषांक इस दौर की सबसे बडी उपलब्धि कही जा सकती है। विशेषांक अति चर्चित अंक रहा कि इस अंक की शायद ही कोई प्रति उपलब्ध हो। ओम गोस्वामी के डिक्शनरी प्रोजेक्ट में प्रधान समपादक के तौर पर आसीन हो जाने के फलस्वरूप हिन्दी शीराज़ा का सम्पादन उषा व्यास ने सम्भाला जो उसी विभाग में अनुसन्धान सहायक के तौर पर पहले कार्यरत थीं। शीराज़ा के अंक 96 के सम्पादकीय में ओम गोस्वामी ने लिखा है– "अकादमी की प्रतिष्ठित पत्रिका – श्रृंखला शीराज़ा की हिन्दी कड़ी का सम्पादन स्व0 नरेन्द्र खजूरिया और श्याम लाल शर्मा कर चुके थे। इसलिए शीराज़ा के स्तर को बरकरार रखने की चुनौती भी मेरे समक्ष थी। "उषा व्यास हिन्दी कवियित्री एवं कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हो रही थी। इनकी कुछ रचनायें साप्ताहिक, कादम्बनी आदि देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस लेख लिखने तक डॉ0 उषा व्यास द्वारा छः अंक शीराज़ा के निकाले जा चुके हैं। इन्होने शीराज़ा का कार्यभार 1989 में सम्भाला और पहला अंक (पूर्णांक 97) जून–जुलाई 1989 में सम्पादित किया इस अंक में कुल चार कहानियां, दस काव्य रचनायें और विभिन्न विषयों पर कुछ लेख प्रकाशित हैं। डॉ0 उषा द्वारा सम्पादित दूसरा अंक (पूर्णांक 98) अगस्त सितमबर 1989 किन्हीं कारणों से 1991 में प्रकाशित होकर सामने आया जिसमें अधिकतर लेखों, कहानियों एवं कविताओं की ही सुगन्ध विरचित है। डॉ0 उषा द्वारा सम्पादित अंक 102, अप्रैल मई, 90 में प्रकाशित हुआ जो इनके द्वारा सम्पादित छटा अंक है, चार लेख, एक व्यंग्य रचना, पांच कवितायें, एक उपन्यास अंश , तीन कहानियां और एक परिचर्चा 'रचनात्मक प्रक्रिया और सृजन की ऊर्जा' विषय पर संकलित है। परिचर्चा एक साहित्य की विभिन्न विधाओं को समझने, आकलन करने और सम्भावनाओं को रेखांकित करने के लिए अति सहज और परिणामपरक बातचीत का माध्यम होती हैं। इनका सिलसिला रमेश मेहता के सम्पादकत्व से शुरू हुआ था जिसे उषा जी ने भी सहज रूप से उसे आगे बढ़ाया। इन परिचर्चाओं के माध्यम से विचारकों , चिंतको एवं रचनाकरों के विचारों को सहज रूप से ग्रहण किया जा सकता है। इनकी दूसरी उपलब्धि

रचनाकारों के बीच तालमेल एवं पहचान की बात है। अंक 102, में प्रकाशित परिचर्चा का आयोजन किया था डॉ0 अशोक जेरथ ने और प्रतिभागी थे बटरोही, डॉ0 मधुबाला न्याल, डॉ0 नीरजा टण्डन। परिचर्चा को रिकार्ड कर लिप्यंतरण किया गया और तदुपरांत प्रकाशित किया गया। इस परिचर्चा के माध्यम से अनेक मुद्दे उभरे हैं जो शायद एक लेख में नहीं उभर पाते।

डॉ0 उषा व्यास द्वारा सम्पादित बाकी अंक मिले जुले साहित्यक अंक हैं – सिलसिला जारी है और अभी बहुत से मील के पत्थर पार करने हैं शीराज़ा पत्रिका अब द्विमासिक पत्रिका हो चुकी है। आरम्भ वर्ष में दो बार प्रकाशित की जाती थी और वर्ष में एक बार 'हमारा साहित्य ' नाम से एक संकलन प्रकाशित किया जाने लगा था जिसमें शीराज़ा में प्रकाशित प्रमुख रचनाओं को स्थान दिया जाने लगा। बाद में अनेक अंक ऐसे भी निकाले गए जिन्हें विशेष अंको की संज्ञा दी जा सकती है। इन अंकों में कविता, डोगरी साहित्य , संस्कृति, कश्मीरी साहित्य आदि पर अधिकाधिक लेख प्रकाशित किए गए। हमारा साहित्य का पहला अंक सन् 1964 में स्व. नरेन्द्र खजूरिया के सम्पादन में सम्पन्न हुआ इस अंक में साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर लेख, कविताएं और कहानियां प्रकाशित की गई । पर इस अंक में हमारा साहित्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं हुआ। वास्तव में हमारा साहित्य वार्षिकी के तौर पर प्रकाशित होना निश्चित हुआ था ताकि वर्ष भर की चयनित प्रकाशित रचनाओं को पुनः प्रकाशित किया जाए। 1965 के अंक में सम्पादक नरेन्द्र खजूरिया ने इस ओर संकेत किए हैं –'हमारा साहित्य' में हम प्रकाशित रचनाओं में से अपेक्षाकृत स्थायी मूल्य की कृतियों का चयन करते हैं।''

1965 के 'हमारा साहित्य' के अंक में सात कहानियां छपी हैं सर्वश्री वेदराही, हरिकृष्ण कौल, ठाकुर पुंछी, मोहन यावर, पुष्कर नाथ, चंचल शर्मा तथा नरेन्द्र खजूरिया की। मजे की बात यह है कि इनमें से श्री हरिकृष्ण कौल को छोड़कर कोई भी रचनाकार हिन्दी कहानीकार के रूप में स्थापित नहीं हुआ। वेदराही डोगरी के माध्यम से राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी छपे और बाद में सिने जगत में आने पर उन्हें हिन्दी में भी मान्यता मिली और बाकी कहानीकार–ठाकुर पुंछी, मोहन यावर, पुष्कर नाथ उर्दू में स्थापित हुए तो चंचल शर्मा और स्वयं नरेन्द्र खजूरिया डोगरी के रचनाकार के तौर पर जाने गए। तुलनात्मक दृष्टि से जो बारह कवि इस अंक में प्रकाशित हुए इनमें से श्री वत्स विकल को छोड़कर बाकी सभी हिंदीं के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर सिद्ध हुए। शशिशेखर, मोहन निराश, पृथ्वीनाथ मधुप आदि तो अनेक राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए। इसी अंक में ग्यारह लेख भी संकलित हैं जिनमें डोगरी भाषा और संस्कृति से लेकर कश्मीरी साहित्य तथा संस्कृति पर अधिकाधिक जानकारी प्रस्तुत है। इन लेखों में डॉ0 केदार नाथ शास्त्री कृत संस्कृति, और डॉ0 वेदकुमारी कृत 'प्राचीन संस्कृत साहित्य में डुग्गर भूमि'

विशेष तौर पर इंगित किए जा सकते हैं। जिनमें सटीक जानकारी सन्दर्भों के माध्यम से दी गई है। श्री ज्वाहर लाल हण्डू द्वारा लिखा लेख 'कश्मीर की रानी झांसी कोटा' एक दिलचस्प लेख है। बाकी लेख साधारण हैं।

1966 का ''हमारा साहित्य'' भी तीन भागों में विभक्त है– 'कथा साहित्य' , 'काव्यधारा' और लेख। एक नाटक मोती लाल क्यमू का भी इस संकलन में संकलित है। मजे की बात यह है कि इस अंक में छः कहानियां उन्ही कहानीकारों की हैं जिनकी कहानियां 1965 के अंक में संकलित हैं– ये कहानीकार हैं सर्वश्री वेदराही, हरिकृष्ण कौल, ठाकुरपुंछी पुष्कर नाथ, चंचल शर्मा और स्वयं नरेन्द्र खजूरिया जो सम्पादक भी हैं। घनश्याम सेठी और भगवंतप्रसाद साठे की कहानियां भी संकलित हैं। ये दो कहानीकार भी, बाद में डोगरी के रचनाकार के रूप में ही स्थापित हुए।

काव्यधारा के अन्तर्गत तेरह कविताएं प्रकाशित की गई जिनमें से ग्यारह कवि वही हैं जो 'हमारा साहित्य' के 1965 के अंक में प्रकाशित हुए थे। लेखों के अन्तर्गत सात लेख प्रकाशित हैं जिनमें से दो लेखक श्री शिवनकृष्ण रैणा और भी गंगादत्त विनोद 1965 के अंक में भी प्रकाशित हुए हैं। इस अंक में भी कश्मीरी और डोगरी संस्कृति और भाषा को लेकर अधिकतर लेख लिखे गए हैं। इन लेखों में 'डोगरी राजवंश और संस्कृत ' डॉ0 गंगादत्त विनोद द्वारा रचित लेख विशेष तौर पर लिया जा सकता है जिसमें डोगरा राजनीति, स्थापना और डोगर राजाओं महाराजा रणवीर सिंह, महाराजा प्रताप सिंह आदि के विद्या–अनुराग और संस्कृत ग्रंथों के संरक्षण में किए गए प्रयासों की चर्चा की गई है। इस लेख के अतिरिक्त श्री वेदपाल दीप कृत 'डोगरी कविता पर लेख सुरुचिपूर्ण और गवेषणात्मक लेख है। इस संकलन में ''नंगे'' शीर्षक से एक एकांकी भी प्रकाशित है जिसके लेखक हैं मोतीलाल क्यमू। उपर्युक्त संकलनों का सम्पादन किया था श्री नरेन्द्र खजूरिया ने । कुछेक दूसरे अंकों में भी प्रकाशन का सिलसिला नरेन्द्र खजूरिया के सम्पादकत्व में ऐसा ही रहा। 1974–75 में हमारा साहित्य का सम्पादन रमेश मेहता ने शुरू किया जिनके माध्यम से हिन्दी लेखक, जम्मू कश्मीर में, रेखांकित होना शुरू हुआ। 1975 का अंक जम्मू कश्मीर की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन लिए हुए है। 1977 के अंक में जम्मू कश्मीर के हिन्दी लेख पर सामग्री संकलित है तथा 1978 अंक में जम्मू कश्मीर की हिन्दी कविता और कवियों पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। 1979 का अंक जम्मू कश्मीर के लोक साहित्य पर था तो 1980 का जम्मू कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत पर। 1981 का अंक डोगरी साहित्य की उपलब्धियों को रेखांकित करता है तथा 1982 का अंक कश्मीरी भाषा और साहित्य को। 1983 का वृहद् अंक रजत जयन्ती विशेषांक के तौर पर प्रकाशित किया गया इस अंक में जम्मू कश्मीर के प्रमुख हिन्दी रचनाकारों की रचनाओं को संकलित किया गया है। इस अंक में बारह कहानियां

प्रकाशित हैं जिनके रचनाकार हैं – वेदराही, हरिकृष्ण कौल, नरेन्द्र खजूरिया, महाराज कृष्ण शाह, अशोक जेरथ, अलंकार, संजनाकौल, क्षमा कौल, शक्ति शर्मा, अवतार कृष्ण राजदान, छत्रपाल तथा दीदार सिंह। गत बीस बाईस वर्ष के साहित्यिक अन्तराल में सम्भवतया यही नाम हिन्दी कहानीकार के रूप में उभरे हैं और इन्होंने अपनी पहचान बनाई है। कविता के क्षेत्र में दुर्गादत्त शास्त्री, चन्द्रकांत जोशी, शंकर शर्मा पिपासु पृथ्वीनाथ पुष्प, मनसाराम शर्मा चंचल, गंगादत्त विनोद, मोहन निराश, सुभाष भारद्वाज, रतनलाल शांत , पृथ्वीनाथ मधुप, उषा व्यास छवि, निर्मल विनोद, अग्नि शेखर , आदर्श, अशोक कुमार, उपेन्द्र रैणा, महाराज कृष्ण सन्तोषी , बलनील देवम् ,चंचल डोगरा जवाहर रैणा व इन पंक्तियों के लेखक के नाम कवि के तौर पर उभरे हैं। नाटक में मोती लाल क्यमू तथा सुतीक्ष्ण आनान्दम् की रचनायें प्रकाशित हैं। डॉ0 ओम प्रकाश गुप्त, डॉ0 अनिल गोयल, डॉ0 शशिशेखर तोषखानी, ओम गोस्वामी, धर्मचंद प्रशान्त, छेवांग रिगज़िन, काशीनाथ दर तथा चमन लाल सप्रू के लेख प्रकाशित हैं और ज्योतीश्वर पथिक द्वारा रचित एक रिर्पोताज भी इस संग्रह में संकलित है। मोटे तौर पर जम्मू कश्मीर में हिन्दी साहित्यकारों को रेखांकित करता हुआ यह संकलन अपने आप में एक सन्दर्भ ग्रंथ है। इसका सम्पादन रमेश मेहता ने किया है और अपने सम्पादकीय में उन्होंने कहा है– "पिछले 25 वर्षों में हिन्दी लेखक ने एक लम्बी यात्रा तय की है। इस यात्रा में जहां कई लोग इसमें आकर जुड़े हैं वहीं अनेक लोग चाहे– अनचाहे बिछुड़े भी हैं। पृष्ठ सीमा के कारण भी कई लेखकों को छोड़ना पड़ा है............''। 'हमारा साहित्य' के कुछ विशेषांकों की बात करने के लिए आइये इनका आकलन करें:–1976 का हमारा साहित्य हिन्दी, डोगरी,उर्दू एवं पंजाबी भाषाओं में रचे गए/जा रहे साहित्य पर प्रकाशित किया गया। इस अंक में कुल आठ लेख हैं जो इन भाषाओं के साहित्य का अवलोकन करते हैं। एक लेख जम्मू की रंगमंच परम्परा पर है जो विशेषतर है। कश्मीरी और लद्दाखी साहित्य को रेखांकित करती कोई रचना इसमें संकलित नहीं है– होनी चाहिए थी पर सम्पादकीय में सम्पादक ने इस को स्पष्ट करते हुए लिखा है: "अपने इस प्रयास में हमें केवल डोगरी, हिन्दी, पंजाबी और उर्दू लेखकों से सहयोग मिल पाया है।"

1979 का अंक जो 1981 में प्रकाशित होकर सामने आया जम्मू कश्मीर लोक साहित्य को समर्पित है इसमें कुल तेरह लेख संकलित हैं जो जम्मू कश्मीर के लोक साहित्य का मोटे तौर पर सर्वेक्षण करते हैं। लोकसाहित्य की अनेक विधाओं मसलन लोकगाथा, लोककथा, रीतिरिवाज, लोकविश्वास आदि पर चर्चा हुइ है लेकिन कई पहलू छूट गए हैं जैसे तुलनात्मक अध्ययन, विभिन्न भाषाओं के लोकसाहित्य में हुए कार्य का ब्योरा तथा लोककलाएं आदि लेकिन स्थान और स्थितियों को देखते हुए सम्पादकीय में इस तरह का अभाव आ जाना स्वाभाविक है। हमारा साहित्य का 1980 अंक जो 1982 में छपा जम्मू कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत को इंगित करता है। वस्तुतः इस अंक को

1979 अंक की दूसरी कड़ी कहा जा सकता है। क्योंकि लोकसंस्कृति के कुछ पहलू मसलन डुग्गर के कुल देवता, लोकनाच, कश्मीरी वस्त्राभूषण, लोकगीत, लद्दाख का नववर्षोत्सव लेख आदि इसमें प्रकाशित हैं। कश्मीरी संस्कृति के जुड़े कुछ मुद्दे –शैवदर्शन एवं बुद्धमत का प्रभाव आदि पर भी सामग्री संकलित है। 1982 अंक आधुनिक डोगरी साहित्य का परिचय देता है। इस अंक में डोगरी साहित्य के विभिन्न पहलुओं और विधाओं पर अधिकाधिक लेख प्रकाशित हैं। डोगरी कविता, हास्यव्यंग्य और एकांकी पर भी विद्धतजनों के लेख संग्रहित हैं। उपर्युक्त सभी अंकों का सम्पादन रमेश मेहता ने किया है। 'हमारा साहित्य' अंक 1986 जो मार्च 1989 में प्रकाशित होकर सामने आया जम्मू प्रांत के विभिन्न नगरों और कस्बों का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस अंक में कुल ग्यारह लेख संकलित हैं जो जम्मू प्रांत के मुख्य नगरों और कस्बों की सांस्कृतिक झांकी देते हैं। ये स्थान हैं बिलावर,उधमपुर, भद्रवाह, डोडा, कठुआ, पुंछ, रामनगर, जम्मू रियासी, मीरपुर और राजौरी। इन सभी लेखों में प्रथम लेख–बिलावर एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण अनुसंधान के क्षेत्र में एक मील पत्थर है। सुधी लेखक ने बडे यत्न से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और सबसे ऊपर बिलावर के मनीषियों का ब्योरा संदर्भो सहित दिया है। बिलावर का नामकरण इतिहास, बिलावर से जुड़े विद्वान–इतिहासकार, संगीतकार, स्थान, तथा सांस्कृतिक विवेचना पर विशेष जानकारी इस लेख में मिलती है। लोक साहित्य, लोकजीवन आदि मुखरित होकर सामने आया है। इस लेख के इलावा उधमपुरः सांस्कृतिक अध्ययन,' कठुआ नगरः एक अध्ययन,' 'मीरपुर : एक सांस्कृतिक अध्ययन विशेष तौर पर इंगित किए जा सकते हैं। 'रामनगरः एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण' भी एक अच्छा सूचनाप्रद लेख है। इस अंक का सम्पादन ओम गोस्वामी ने किया था और मूल्य 23/ रुपए है। अपने प्रकाशकीय में सम्पादक ने अपना मंतव्य स्पष्ट किया है।

"संस्कृति एक समुद्र की भांति होती है– अथाह और विस्तृत। इस छोटे से संकलन में हम जम्मू प्रांत की संस्कृति को समूचे रूप से प्रस्तुत करने का दावा नहीं करते, किन्तु यदि इस दिशा में हमारे शोधकर्ता अपने प्रयास जारी रख पाएं तो निश्चित ही संस्कृतिक समुद्र से नवनीत का प्राकल्य होगा।"

हमारा साहित्य 1987 "जम्मू एक आंचलिक परिदृश्य" शीर्षक से क्षेत्रीय सांस्कृतिक झांकी प्रस्तुत करता है। यह अंक 1990 में प्रकाशित हुआ। इस में जम्मू की लोक संस्कृति, पहाड़ी चित्रकला, मूर्ति शिल्प आदि विषयों पर कुल तेरह लेख प्रकाशित हैं। इस अंक का सम्पादन किया था डॉ0 उषा व्यास ने।

इन पत्रिकाओं एवं वार्षिक विशेषांकों के इलावा भी अकादमी का हिन्दी एकक अनेक हिन्दी ग्रन्थों का प्रकाशन करता रहा है। यद्यपि इनकी सूची काफी लम्बी है तथा हम कुछेक चुनी हुई कृतियों की बात यहां करेंगे– 1979 में रमेश मेहता के सम्पादकत्व में

'शब्द जो तुमने दिए' शीर्षक से ललित निबंध पर पहला मौलिक प्रयास किया गया था। इसमें कुल सोलह निबन्ध संकलित हैं जो वैयक्तिक संदर्भों से लेकर समष्टिकरण तक अपना स्थायित्व प्रकट करते हैं। शब्दों का विन्यास बिम्ब तथा प्रतीक योजना बहुत स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई है। मौलिकता के नए आयामों की तलाश निबन्धों के माध यम से प्रकट होती है। 1986 में प्रकाशित ग्रंथ 'आठवां दशक सृजन के संदर्भ" शीर्षक से आठवें दशक के हिन्दी रचनाकारों की वाणगी प्रस्तुत करता है। इनके इलावा 'चीड़ों में ठहरी बयार' ग्रंथ में जम्मू कश्मीर के हिन्दी लेखकों के परिचय सहित उनकी रचनायें प्रकाशित हैं। 'कुहरा और धूप' में उर्दू–हिन्दी रचनाओं को प्रकाशित किया गया है तो 'सहस्रमुखी' में इस प्रदेश के हिन्दी रचनाकार, आन्दोलनकर्त्ता एवं हिन्दी संस्थाओं में सक्रिय भाग लेने वाले श्री बंसी लाल सूरी पर विशद सामग्री संकलित है। डोगरी, पंजाबी, एवं कश्मीरी कहानियों को हिन्दी में रूपान्तरित कर सम्पादन रमेश मेहता ने किया। जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा एक और योजना भी लेखकीय सहयोग के लिए चल रही है जिसके अंतर्गत स्थानीय लेखकों एवं स्थानीय विषयों पर किसी भी लेखक द्वारा रचित चयनित पाण्डुलिपि को प्रकाशित करने के लिए आंशिक आर्थिक सहयोग दिया जाता है। इस योजना के अंतर्गत, ऐसा कहा जा सकता है कि अधिकांश हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन सम्भव हो सका। ऐसी लगभग अस्सी पुस्तकें कल्चरल अकादमी द्वारा दिए गए आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुई हैं जिनका रिकार्ड कल्चरल अकादमी के खातों में मौजूद है। यह रिकार्ड 1965 से शुरू होता है जब शंकर शर्मा पिपासु का अस्सी पृष्ठीय 52 कविताओं का संग्रह बड़े साईज़ में 'दो चाँद' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। अगले वर्ष अर्थात 1966 में ज्योतीश्वर पथिक द्वारा रचित कविता संग्रह 'रुनझुन' के नाम से प्रकाशित हुआ तो 1967 में प्रो0 सुभाष भारद्वाज द्वारा रचित 'रेत का सागर' में कवितायें संकलित ह। अकादमी के रिकार्ड के अनुसार इसी वर्ष डॉ0 ओमप्रकाश गुप्त 'सागर के तीर' तथा 'युद्ध और शांति', शंकर शर्मा पिपासु द्वारा रचित 'समय का पंछी' कृतियां प्रकाशित हुई। उसी वर्ष मोतीलाल क्यमू द्वारा रचित तीन एकांकी भी प्रकाशित हुए। 1963 में ब्रह्मचारी शिवकुमार त्रिपाठी द्वारा विरचित शिवालोक अष्टपदी शैली पर लिखा खंडकाव्य प्रकाशित हुआ जिसमें 85 अष्टपदियां संकलित हैं। इसी वर्ष सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा आनंदम की 34 कविताओं का एक संग्रह 'देखती आकाश आंखें" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। ' रास्ते कांटे और हाथ' शीर्षक के नरेन्द्र खजूरिया द्वारा रचित कहानियों का संकलन भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ। मदनमोहन की डोगरी कहानियों का हिन्दी अनुवाद 'मोती की सीप' प्रो0 सुभाष भारद्वाज द्वारा किया गया । 1969 में प्रो0 लक्ष्मी नारायण द्वारा लिखित पुस्तक 'डोगरी साहित्य चर्चा' तथा चंचल शर्मा द्वारा रचित कविताओं का संग्रह 'किसी से न कहना' शीर्षक से प्रकाशित हुए। 1969 में ही 'हिन्दी इन कश्मीर' नामक पुस्तक पी.एन.राजदान द्वारा प्रकाशित की गई। यह अंग्रेजी हिन्दी का मिश्रण थी ।1970

में प्रकाशित होने वाली पुस्तकें थी– राजशर्मा द्वारा रचित प्रेम कविताओं का संकलन, एच.एल.चोपड़ा द्वारा लिखित हितोपदेश । अगले वर्ष अर्थात 1971 में तीन पुस्तकें अकादमी के सहयोग से प्रकाशित हुई– बी.डी. हंस द्वारा रचित 'भीम' शीर्षक से 168 बड़े आकार के पृष्ठों का खण्डकाव्य, डॉ0 ओमप्रकाश गुप्त द्वारा रचित 'लहर लहर नैया नाचे' काव्य संग्रह तथा रामप्रसाद शर्मा द्वारा लिखित 'श्री मदभागवत् गीता' 1972 में, रमेश मेहता कृत 'खुले कमरे बंद द्वार' काव्य संकलन प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष हिन्दी कहानियों का संकलन 'बदलते शिखर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ जिसे मदन लाल पाधा ने लिखा था। 1973 में न्याय निबन्ध रूप में प्रकाशित हुआ जो बी.के. चंदन द्वारा रचित था इसी वर्ष सोमनाथ कौल द्वारा लिखित एक पुस्तक 'जम्मू कश्मीर का कथांचल' भी प्रकाशित हुई 'खोया चेहरा' शीर्षक से 36 कविताओं का एक संकलन पृथ्वी नाथ मधुप द्वारा प्रकाशित किया गया और दीदार सिंह द्वारा रचित कहानियों का संग्रह 'धुंधलके'। 1974 तथा 75 के दो वर्ष हिन्दी पुस्तको के प्रकाशन के लिए सुखद रहे। इन दो वर्षों में लगभग सात पुस्तकें प्रकाशित हुई। 1974 में राम कृष्ण शास्त्री द्वारा रचित 'गुरु सिद्धांत पारिजात', विजय खजूरिया द्वारा रचित हिन्दी उपन्यास ।शिकायत, सुतीक्षण कुमार आनन्दम द्वारा रचित संग्रह, बोधा का इतिहास , युवा हिन्दी लेखक संघ द्वारा प्रकाशित 'चौराहे पर खड़े बारह चेहरे'–बारह कवियों की पचपन काव्य रचनाओं का संकलन, डॉ0 ओमप्रकाश गुप्त द्वारा लिखित अनुसन्धान प्रबन्ध 'हिन्दी डोगरी परप्रत्यय' आदि ग्रंथ इस वर्ष प्रकाशित हुए। 1975 में प्रकाशित होने वाली पुस्तकें थी आदर्श पियूष द्वारा रचित काव्य संग्रह 'प्रश्न तुम से', धिनेशचन्द्र खजूरिया द्वारा रचित नाटक, 'अपने पराए.' 'भद्रवाह लोकगीत' 'प्रियतम कृष्णकौल द्वारा रचित आदि। 1976 में दो पुस्तकें कल्चरल अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुईं देवराज बाली द्वारा रचित 'मानववाद का परिचय और भारतीय परम्परा', ए.के. राजदान द्वारा रचित 'कश्मोरी ललित' कलायें तथा वशिष्ठ द्वारा रचित उपन्यास 'आतंक'। 1977 में प्रकाशित होने वाली पुस्तकें थी प्रियतम कृष्ण कौल द्वारा रचित 'चन्द्रभागा की तटवर्ती बोलियां'। 1978 में ए.के. रैणा द्वारा रचित काव्य संग्रह 'दीवाने साबित,' डॉ0 ओ. पी. गुप्त द्वारा रचित काव्य संग्रह 'सेतुओं की खोज' तथा देवरत्न शास्त्री द्वारा रचित 'सप्तशती 'नामक काव्य संकलन। इसी वर्ष निर्मल विनोद की पुस्तक 'बयार के पखों में' भी प्रकाशित हुई। इसी वर्ष मधुवोहरा द्वारा सम्पादित 'महाकवि क्षेमेन्द्र विरचित बोधिसत्व अवदान कल्पलता पर आधारित बोध कथाओं को 'अवदान संग्रह' के नाम से प्रकाशित किया गया। इसी वर्ष अनिल सहगल द्वारा सम्पादित छः कहानियों को 'अधूरी कहानी का हीरो' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। 1979 में अशोक जेरथ द्वारा रचित कविताओं का संग्रह 'आहत चीड़ें' प्रकाशित हुआ और अगले वर्ष 1990 में डॉ0 प्रियतम कृष्ण कौल द्वारा लिखित 'पूर्वोत्तरीय पर्वतीय प्रदेश का लोक

साहित्य',डॉ0 सिम्मी गुप्ता द्वारा लिखित 'प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में जनवादी चेतना'—अनुसन्धान प्रबन्ध, अशोक कुमार द्वारा रचित हिन्दी कविताओं का संग्रह 'डूबे हुए सूरज की तलाश,' अशोक जेरथ द्वारा रचित कहानी संग्रह 'चेरी के फूल' प्रकाशित हुए। 1980 में ही अनिल गोयल द्वारा लिखित शोध प्रबन्ध मनु भण्डारी की कहानियों पर प्रकाशित हुआ। 1991 में ओम गोस्वामी कृत बारह कहानियों का संग्रह प्रियतम कृष्ण कौल द्वारा रूपान्तरित वासुकी पुराण, आखरी पड़ाव शीर्षक से तीन नाटकों का प्रकाशन भी इसी वर्ष हुआ। 1982 में 'साक्षी सन्ध्याओं के' शीर्षक से 31 गीतों का एक संग्रह निर्मलविनोद द्वारा , 'स्वप्न माला' शीर्षक से 35 कविताओं का संग्रह सरिता शर्मा द्वारा और श्रीमती कृष्णा गुप्ता द्वारा रचित कविताओं का संग्रह आदि प्रकाशित हुए। 1983 में केदार नाथ शास्त्री द्वारा रचित निबन्धावली और 1984 में प्रतिवेदन शीर्षक से चन्द्र चितम् संस्कृत काव्य का हिन्दी रूपान्तर, डॉ0 सुभाष गुप्त द्वारा रीतिकालीन साहित्य की श्रृंगारेतर प्रवृत्तियां, सुतीक्षण कुमार शर्मा आनन्दम् द्वारा रचित कविताओं का संकलन 'कमल पत्र पर डोलता जल कण,' सुरेश दूबे शास्त्री द्वारा रचित उपन्यासिका और 1985 में दीवाने गालिब का हिन्दी अनुवाद हकीम टेक चंद द्वारा प्रकाशित किया गया। श्रीमती नीलम गुप्ता द्वारा अनुसंधित्सु हिन्दी लेखिकाओं के उपन्यासों पर कार्य किया गया ।

रियासती कल्चरल अकादमी में अपने शैशव काल में डोगरी रचनाकारों को बाह्य जगत से परिचय करवाने के लिए एक योजना तैयार की थी जिसके अन्तर्गत डोगरी के शीर्षस्थ कवियों के परिचय सहित रचनायें विभिन्न व्यक्तियों के सम्पादकत्व में प्रकाशित कीं। ये पुस्तकें अब उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी पांच पुस्तकें प्रकाशित कीं गईं जिनमें से केवल तीन ही मैं उपलब्ध करवा सका हूं। पहली पुस्तक 'अरुणिमा' के शीर्षक से है जो कड़ी की दूसरी पुस्तक है। इसका सम्पादन तारा स्मैलपुरी ने किया है। इस पुस्तक में डॉ0 रघुनाथ सिंह, किशन स्मैलपुरी और परमानन्द अलमस्त की रचनायें परिचय सहित प्रकाशित हुई हैं। इसके सम्पादकीय में निम्नलिखित पंक्तियां मैं ज्यों की त्यों उद्धृत कर रहा है:—

"अकादमी ने अपने जीवन के पहले वार्षिक प्रकाशन कार्यक्रम में डोगरी के कुछ प्रमुख कवियों के जीवन तथा उनकी काव्यसाधना के सम्बंध में पांच काव्यसंग्रह तैयार करने का कार्य हम पांच साथियों को सौंपा था। पुस्तकों का कलेवर अस्सी पृष्ठ तक सीमित था जिससे प्रत्येक पुस्तक में तीन तीन कवियों की काव्य साधना का तथा जीवन का व्यापक परिचय नहीं कराया जा सकता । इन संग्रहों का मुख्य उद्देश्य है डोगरी न जानने वालें पाठकों को डोगरी की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों का परिचय देना।"

'ये पुस्तकें ' डुग्गर कवि और उनकी कविता 'माला' के अन्तर्गत लिखी गईं। इनके नाम हमने कवियों के काल तथा उनकी काव्य प्रवृत्ति के अनुरूप अलग अलग रखे हैं

जैसे नीहारिका,अरुणिमा, प्रातकिरण, मधुकण और मगधूलि''।

ये पांच पुस्तकें 1959 ई0 में छपकर सामने आईं। प्रत्येक पुस्तक अस्सी पृष्ठों तक सीमित थी। इन पुस्तकों के अलग अलग सम्पादक थे। पहली पुस्तक मधुकण का सम्पादन किया था डोगरी के प्रख्यात कवि दीनूभाई पंत ने। अरुणिमा के सम्पादक थे प्रख्यात डोगरी लेखक श्री राम नाथ शास्त्री तो मगधूलि के श्री शम्भुनाथ शर्मा, मधुकण के मधुकर और अरुणिमा के तारा स्मैलपुरी।

''अरुणिमा'' इस श्रृंखला का दूसरा भाग है जिसे तारा स्मैलपुरी ने सम्पादन किया। इस पुस्तक में डोगरी के तीन प्रौढ़ कवि लिए गए हैं– डॉ0 रघुनाथसिंह सम्याल,श्री किशन स्मैलपुरी, परमानन्द अलमस्त। इन तीनों कवियों का जीवन परिचय हिन्दी में दिया गया है और इनकी प्रमुख रचनाओं को डोगरी में बड़े अक्षरों में छापा गया है और प्रत्येक दूसरे पन्ने पर उस कविता का सारांश गद्य में, हिन्दी में, दिया गया है। भाग चार का सम्पादन किया प्रख्यात डोगरी कवि स्व0 श्री दीनू भाई पंत ने। तीन युवा कवि जिनकी रचनायें इसमें संकलित हैं वे हैं– श्री मधुकर , श्री वेदपाल दीप और सुश्री पदमा देवी जो आजकल श्रीमती पदमा सचदेव के नाम से जानी जाती हैं। इस संकलन में मधुकर की सात कवितायें संकलित हैं जिनका हिन्दी में पद्यानुवाद भी स्वयं मधुकर ने ही किया है। इस संकलन के दूसरे कवि हैं श्री वेदपाल दीप और इनकी तेरह काव्य रचनायें संकलित हैं जिनका हिन्दी में गद्यानुवाद भी दिया गया है। सुश्री पद्मा सचदेव की रचनायें भी इसी संकलन में संकलित हैं। श्री वेदपाल दीप और श्रीमती पद्मा सचदेव का परिचय श्री रामनाथ शास्त्री की कलम से दिया गया है।

इस कवि परिचय माला का पांचवा पुष्प 'मगधूलि' पं0 शम्भूनाथ द्वारा सम्पादित किया गया। इस संकलन में सर्वश्री यशशर्मा, ओंकारसिंह 'आवारा' तथा तारा स्मैलपुरी की काव्य रचनायें संकलित हैं।

इस श्रृंखला का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इन पुस्तकों के माध्यम से हिन्दी के पाठकों को डोगरी के महत्वपूर्ण कवियों तथा उनकी रचनाओं को पढ़ने जानने और मनन करने के सहायता मिली है। इनमें प्रकाशित सभी कवियों के छाया चित्र पं0 संसारचंद बढ़ू ने तैयार किए थे।

जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा एक हिन्दी समिति स्थापित की गई थी 1960 के आसपास, जो विभिन्न प्रकाशनों के लिए सम्पादक मण्डल निर्धारित करती थी।, 1961 में इस सम्पादक मण्डल द्वारा दो पुस्तकों का प्रकाशन किया गया– 'पद्यांजलि' और 'गद्यांजलि'। इनके नाम अनुरूप ही पद्यांजलि में काव्य रचनाएं संकलित की गईं तो 'गद्यांजलि' में गद्य रचनाएं। इन दोनों पुस्तकों में केवल स्थानीय रचनाकारों की ही रचनाएं संकलित की गईं।

पद्यांजलिः मे कुल 18 कवियों की 36 रचनाएं संकलित हैं। सम्पादन किया है कवि द्वे सर्वश्री चन्द्रकान्त जोशी और सुभाष भारद्वाज ने। सम्पादक मण्डल ने अपने सम्पादकीय में कविताओं के चयन और वर्गीकरण की बात की है–'' सम्पादन की सुविधा के लिए संकलन को चार वर्गों में प्रस्तुत किया गया है। पहले वर्ग में वे रचनाएं रखी गई हैं जिनकी प्रमुख विशेषता बाह्यप्रवृत्ति–चित्रण है अथवा जिनमें अन्तःप्रकृति का भी आवरण मिलता है........ दूसरे वर्ग में वे कविताएं हैं जिनका सम्वन्ध राष्ट्रचेतना तथा मानववाद से है।। तीसरे में प्रयोगवादी धारा से प्रभावित रचनाएं संजोई गई हैं। आरंभिक वर्ग में वे रचनाएं दी गई हैं जिनमें वेदना के स्वर तथा गीतितत्व का प्राधान्य है''। जिन कवियों की रचनाएं इस संकलन में संकलित हैं उनमें से प्रमुख नाम हैं पृथ्वीनाथ पुष्प, मोहन निराश, शशिशेखर तोषखानी, पृथ्वीनाथ मधुप,रतनलाल शांत, शकुंतला सेठ आदि वे आज भी इस क्षेत्र में उसी उमंग से कविता लेखन की ओर संलग्न हैं।

गद्यांजलिः में आठ कहानियां दो संस्मरण, छ. निबन्ध और एक एकांकी संकलित है। कहानियों में सर्वश्री धर्मचंद प्रशांत,वेदराही, हरिकृष्ण कौल, जवाहरलाल कौल, रतनलाल शांत तथा सत्यावती मल्लिक की रचनाएं संकलित हैं तो निबन्धों में सर्वश्री रमाकांत भारद्वाज, विष्णुदत्त शास्त्री, रामनाथ शास्त्री, पृथ्वी नाथ पुष्प, शकुंतला सेठ,चमनलाल सप्रू की रचनाएं हैं तो शक्ति शर्मा तथा घनश्याम सेठी के संस्मरण संकलित हैं और गोपीनाथ कोशिक का एकांकी । सम्पादक थे डॉ0 बी. डी. शास्त्री और वेद राही। इन दोनों संकलनों के संयोजक थे प्रो. पृथ्वीनाथ पुष्प । सम्पादकीय में सम्पादक मण्डल लिखता है:

''सम्पादन करते समय हमारे सम्मुख अवश्य इस बात की अपेक्षा रही कि सबसे पहले यहां किसने, अथवा किस किस ने लिखा परन्तु प्रत्येक को प्रतिनिधितव देने से निश्चय ही संकलन का स्तर गिर जाता और हम समय का तगाजा पूरा न कर पाते।" लेकिन लगता यह है कि तत्कालीन सभी लेखकों को इस संकलन में संकलित करने की भरपूर कोशिश की गई है।

इन दोनों संकलनों में, अंत में,लेखक कवि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिससे उनके लेखन का प्रारम्भ, उनकी प्रारम्भिक रचना आदि के बारे में पता चलता है। और इस बात की भी सूचना मिलती है कि तब तक उन्होंने कितना कार्य किया था। जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी की ओर से 1964 से लेखकीय प्रोत्साहन के लिए एक और योजना को कार्यान्वित किया गया। इस योजना के अनुसार हर वर्ष हिन्दी, डोगरी कश्मीरी, पंजाबी , अंग्रेजी आदि पुस्तकों पर वर्ष की अन्यतम कृति के तौर पर हर भाषा में, एक पुरुस्कार 1000 रुपये का दिया जाने लगा। वर्ष 1973 से इसे 2000/– रुपये का कर दिया गया पर बाद में 1989 के पश्चात इसकी राशि बढ़ाकर 5000/–रुपये

कर दी गई। और हर भाषा में दो कृतियों को पुरुस्कृत किया जाने लगा।

इस योजना के कार्यान्वित हो जाने पर 1964 में हिन्दी की किसी भी कृति को पुरुस्कृत नहीं किया गया। अगले वर्ष 1965 में श्री नरेन्द्र खजूरिया की पुस्तक 'रास्ते में' पुरुस्कृत हुई अगले वर्षों का ब्योरा इस प्रकार हैः–

वर्ष	कृति	लेखक
1966	1. निर्झरनी और पत्थर	श्रीमती निर्मला देवी
	2. खोटी किरणे	श्री रतनलाल शांत
1967	1. अबुल मवाल और ताजमहल	श्री घनश्याम सेठी
1968	1.रेत का सागर	श्री सुभाष भारद्वाज
	2. तीन असंगत एकांकी	श्री एम.एल. क्यमू
1969	1.दर्पण बन गए इतिहास	डा0 मुहम्मद अयूब
	2. सन्तूर के स्वंर	श्री चमन लाल सप्रू
1970	1. कश्मीर की धरती	श्रीमती क्षेमलता वखलू
1971	1. दरार	श्री वेदराही
	2. और वोह मर गई	श्रीमती सावित्री तलवार
1972	1. कृष्ण मेरा. पर्याय	श्री मोहन निराश
1974	1. आकलन और समीक्षा	डॉ0 संसार चंद
1975	1. बातें ये झूठी हैं	डॉ0 संसार चंद
	2 .पीले चांद के शहर में	डॉ0 अयूब प्रेमी
1976	1. नौका का इतिहास	श्री एस.के. शर्मा
1977	1. कश्मीर ललितकलाएं उद्भव और विकास	श्री अवतार कृष्ण राज़दान

कल्चरल अकादमी की ओर से रियासत में बोली जाने वाली विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठतम लेखकों /रचनाकारों/कवियों को 'रोब ऑफ हॉनर' से सम्मानित करने की योजना बनाई गई थी जिसके अन्तर्गत हिन्दी साहित्य में योगदान के लिए प्रो. सुभाष भारद्वाज को सम्मानित किया गया । यह बड़े खेद की बात है कि स्थानीय भाषाओं के लेखकों में अनेक यह सम्मान पा चुके हैं किन्तु हिन्दी में इस सम्मान का हकदार उन्हें

और कोई दूसरा साहित्यकार नहीं मिला जबकि यह अटल सत्य है कि हिन्दी के लिखने वाले अनेक रचनाकार देश के साहित्यकारों के साथ साथ राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में खूब प्रकाशित हो रहे हैं।

उपर्युक्त ब्योरों से एक बात साफ हो जाती है कि हिन्दी साहित्य के विकास और इतिवृद्धि के लिए जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी का योगदान ठीक ठीक है। इसमें थोड़ा और प्रयत्न करने की आवश्यकता है–उदाहरणार्थ बाकी अकादमियों द्वारा उन प्रदेशों के स्थानीय साहित्यकारों पर विशेष कार्य किया जा रहा है। अच्छा होता ऐसी योजना यह अकादमी भी तैयार कर पाती। शीराज़ा हिन्दी पत्रिका कहने को द्विमासिक पत्रिका है पर वर्ष वर्ष तक इसके अंक नहीं छपते और ध्यान देने की जरूरत है।

समकालीन साहित्य

समकालीन साहित्य के उत्स में तात्कालिकता को तलाशा जा सकता है– यदि आज के साहित्य का विश्लेषण करें तो एक ओर तो परिवेश से जुड़े अनेक छोटे छोटे क्षणों को अनुभवों के रूप में बटोरता रचनाकार दिखाई देता है तो दूसरी ओर उन अनुभवों का विश्लेषण कर अपनी सोच को भी स्थापित करता वह दिखेगा। इन रचनाओं के माध्यम से कुछ 'कॉमन फैक्टर' निकाले जा सकते हैं जिन्हें युगीन प्रवृत्तियां कहा जा सकता है।

अर्थबोध,नैतिक मूल्यों की नई व्याख्या, सामाजिक और पारिवारिक रिश्तों से इतर सम्बन्धों में नए भावबोध की अजस्र धारा का प्रवाह, प्रश्नाकुल परिवेश और तथाकथित परम्परा के विरोध में विद्रोह,नए मूल्यों के प्रति आग्रह और स्थापना, शाश्वत मूल्यों के प्रति सन्देह, धर्म और ईश्वरीय शक्तियों पर प्रश्नचिन्ह, बदलते परिवेशगत अभावों का संसार तथा बहुत अकेले पड़ गए आदमी की कुण्ठित अन्तर्दृष्टि आदि की अभिव्यक्ति समकालीन कविताओं में हुई है। यद्यपि ये भावबोध अपनी अपनी दृष्टि से आंके और परखे गए और अनेक सतहों पर बाद में बंट गए इस दौर की सबसे बड़ी विशेषता अपने परिवेश की पहचान रही है– टूटती– बनती राजनैतिक स्थितियां, सामाजिक आस्थाएं और अर्थ बोध से टूटता आदमी, राशन की लम्बी कतारें, बेकारी और निरर्थकता से क्षुब्ध युवावर्ग आदि समकालीन साहित्य के उत्स में बैठी प्रवृत्तियां हैं।

समकालीन हिन्दी कविता

इन प्रवृत्तियों को आज की कविता में ही आंका जा सकता है ऐसी बात नहीं। बल्कि मध्यकालीन हिन्दी कविता में भी यदा कदा इन्हें देखा जा सकता है पर ऐसे बहुत कम उदाहरण है। कबीर ऐसे अपवाद हैं जिन्होंने न केवल ऊपरी आवरण को उतार फैंका अपितु अपनी बात सार्थक तौर पर कही। अन्यथा कविता सौन्दर्य के धरातल पर रची जाती रही है। जिसे संवार कर भावप्रवण वीथियों के ओसारे पर सजा दिया जाता रहा है, एक तरह से कवि के मानसिक ऐश्वर्य के प्रतीक के रूप में। पर नई कविता की पृष्ठभूमि के साथ साथ ही उन तल्खियों को रचनाकार बड़ी शिद्दत के साथ महसूस करने लगा था जो हमारे परिवेश के वातास में घुली हैं।

इस दौर की रचनाओं में परिवेशगत नए संदर्भो से जुड़ा रचनाकार बहुत आक्रामक हो आया था। निम्न मध्यवर्गीय सामान्यजन की छटपटाहट की असहाय स्थिति, धुंधला भविष्य, धूरी हीनता,जनतत्र में अनास्था, कस्बाई रूढ़ियों और तीव्रता से गतिमान विचारों में संघर्ष , बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और सबसे उपर राजनीति के नाम पर खोखले नारों को बुन कर जीवन में उग आए सूनेपन की अभिव्यक्ति समकालीन रचनाओं में हुई है

मैं अपनी बात ऐसे कवियों को लेकर कर रहा हूं जो कुदरतन अजनबी हैं और इक्का दुक्का कविताएं ही प्रकाशित हुई हैं ताकि नई सोच की धारा को पकड़ा जा सके। एक बात साफ है कि आज का कवि अपने परिवेश के प्रति अति जागरूक है। नियति के चक्र में दोचीदा उसका अस्तित्व बेबसी में डोलता अवश्य है पर उसका स्वर खूब पैना है:

कंगाल की हांडी में
चारा खोजती। अंधी बिल्ली।
एक असीम। निष्फल। आस में लीन–

जगजीत राय शीराज़ा 55 फरवरी पृ.68

इसी अंक में चन्द्रोदय की छन्दोबद्ध पंक्तियां देखें:–

आदर्शो पर जो हो मरता। मर मर कर कैसे जी सकता
इसीलिए इस जग में मुझको जीना बिल्कुल ही न भाता।

'साथ चलने का संगीत' संकलन के लगभग सभी रचनाकार परिवेशगत नियति और विडम्बनाओं की बात करते दीखते हैं–

मुफलिसी का दौर है। जेबों की खनक गायब है
ऐसे में जब/खुददारी के साथ/खरीददारी की बात
आती है तो मैं हंस पड़ता हूं – *पृ0 66 श्रीमती रंजू*

और राजीव शर्मा का स्वर ऐसे दौर में भी कटाक्ष लिए है:

जब लोग परेशान हो जाते हैं
भूख से अपराधों से/ जीवन की इस व्यवस्था से
और चाहने लगते हैं कोई समाधान
तब/लेकर आती है पत्रिकाएं...........
रहस्य रोमांच ... छिछले प्रेम विशेषांक। *शीराज़ा नं 1982*

आपातकालीन स्थिति के मुखौटों में छिपे अनेक चेहरे पाठकों के सामने नग्न हो चुके हैं। कवि जो व्यवस्था के नाम पर विद्रोह की आग बांटते थे हिम बन कर राजरानी के चरणों तले लौटने लगे। बेशर्मी की हद देखें आपातकालीन स्थिति के बाद उन्हीं का

स्वर उस स्थिति को निम्नता प्रदान करने लगा और इलज़ाम सम्पादकों के माथे पर मढ़ दिया गया। यह बात नहीं कि सम्पादक इस आक्षेप से अछूते हैं– रचनाकारों की रचनाओं को तोड़ मोड़ कर प्रकाशित कर व्यवस्था से वाहवाही लूटने का श्रेय उन्हें भी जाता है पर प्रश्न यह है कि उन तथाकथित विद्रोही रचनाकारों ने इन सम्पादकों का मुखौटा उतारा क्यों नहीं –यदि इस डर से कि उनकी रचनाएं प्रकाशित नहीं होंगी तो फिर विद्रोह कैसा ? विद्रोह समझौता नहीं मांगता, विद्रोह क्रान्ति की आवाज है जो व्यवस्था को झकझोर कर उन सभी कुरीतियों,रूढ़ियों को छांट देना चाहती है जिस के पीछे शोषण क्रिया और ऐसे भाव लिपटे हों। इस दृष्टि से विद्रोह का स्वर सुधारवादी कहा जा सकता है। पर क्या आधुनिक पीढ़ी द्वारा घोषित विद्रोह का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा है! साहित्य की शालीनता को आतंक और मोहभंग के नाम पर जितनी गलीज़ भाषा और नंगापन मुहैया किया गया शायद कभी भी हिन्दी साहित्य में नहीं था। रचना को कसौटी पर परखते हुए बाहरी क्षार और पैनापन नहीं देखा जाता–"आन्तरिक अनुशासन का निर्वाह बहुत आवश्यक है–अनुभूति की अद्वितीयता, मार्मिकता, संवेदना की तीव्रता, कलात्मकता और आदमी की गहरी समझ" (गिरिजा कुमार माथुर) कविता मात्र एकांकी सोच की अभिव्यक्ति नहीं अपितु जीवन के संघर्षपूर्ण क्षणों से बटौरे गए अनुभवों का वह रूप है जो वैयक्तिक होते हुए भी सामूहिक भावबोध लिए है।शायद इसीलिए धूमिल ने लिखा है **कविता मांगती है समूचा आदमी अपनी खुराक के लिए** (संसद से सड़क तक) पर वस्तुस्थिति क्या है:

कविता / घेराव में
किसी बौखलाए हुए आदमी का
संक्षिप्त एकालाप है

– धूमिल

रचनाकार को शाश्वत जीवन के पहलुओं को छूना होगा मात्र उनके बाह्य कलेवर को नहीं । जब तक जीवन की गहराइयों तक इसकी पंहुच नहीं हो जाती प्रयास निरर्थक रहेगा मात्र तुकबन्दी तक सीमित ।

कहीं कहीं पर अनुभवों की कड़ुवाहट और परिवेश की तल्खियां पूरी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त हुई है :

यह सच है कि वक्त है तुम्हारी मुट्ठी में कैद
आकाश और धरती के सारे अर्थ
तुम्हारी व्यवस्थाओं को लिए हुए हैं
और करते जा रहे हैं मेरी जिन्दगी के तमाम फैसले।

बलदेव, अंतिम युद्ध की चाह

आवाज़ उठाने वाला हर शख्स यहां मरता है

फिर भी आवाज़ उठाएं हमारा यह दिल करता है।

अनिल कुमार आज़ाद, बादलों में कैद सूर्य

मात्र सीधी अभिव्यक्त और सपाट बयानी ही नहीं अपनी बात को चयनित शब्दों के माध्यम से ठीक तरह से कह पाने की सामर्थ्य कवियों को है:

मेरी उंगलियों के पौरों पर
हारे हुए युद्धों की संज्ञाएं रखी जाती हैं।
मेरे मुंह में अपनी ही हड्डी का ठंडा स्वाद।

शशिशेखर तोषखानी, अपरिचित आकाश

प्रतीकों, बिम्बों और संकेतों के माध्यम से अपनी बात कह पाने की प्रतिभा प्रदेश के इन हिन्दी कवियों में है:

यह सच है इस नदी ने/ मुझे कभी नहीं दिया
सुख नौकायन का/ मगर इसी की प्रबल धार ने
सुदृढ़ किए है मेरे पांव *–संतोषी, पृ.48, बर्फ पर नंगे पांव*

गुलाब प्रतीक को चरमराती हुई अवस्थाओं के उत्स में तलाशते हुए रमेश मेहता कह उठते हैं:

व्यवस्था का स्वास्थ्य ठीक रहे
इसीलिए खोज रहा है सारा देश
एक काला गुलाब *–पृ. 33, तिनका तिनका घोंसला–*

आशा और निराशा के बीच स्थित नियति की सीढ़ियों को पार करते ओम गुप्त कह उठते हैं–

नए सूरज की रंगीन किरणों में
सांस लेने की कोशिश/जब जब हमने की
अजनबी हवाओं का शोर हमारे सीनों में जहर भर गया

चरमराती व्यवस्था के बोध से ही व्यक्ति दबा हो ऐसी बात नहीं वस्तुतः वह स्वयं ही लिज–लिजा हो आया है जहां व्यवस्था उसे मजबूर नहीं करती अपितु वह स्वयं ही अपने मूल्यों को स्थापित करता दीखता है:

हर शाम / सात बजे के बाद
मैं उधार की पीकर/ प्रायः शराब की बुराई करता हूं
एक पात्र का नाटक मैं/ देखो कितनी खुदाई करता हूं

ज्योतीश्वर पथिक, ड्राइंग रूम में कैक्टस

मोहभंग की स्थिति को झेलता आज का कावि परिवेशगत बिडम्बनाओं से कितना अवश हो जाता है :

.....और वह मधुर स्वप्न। टूटे हुए खिलौने सा
मानस के जाग्रत तल पर
खण्ड –खण्ड पड़ा रहा।

आदर्श ,एक आयास अनायास

आस्थाओं की चरमराहट और बेकारी का दर्द आम व्यक्ति की नियति बन चुके हैं। डिग्रियों का मूल्य मात्र कुछ कागज़ के टुकड़े भर रहा गया है:

उसके कान में कभी कभी। ऐतिहासिक स्लोगन फूट पड़ता
''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हे आज़ादी दूंगा''
रवि सोचता–यदि मैं रक्त द्वारा सींचित डिग्रियां दूं
तो बदले में क्या पाउंगा!
एक बार फिर कांटा घूमते घूमते/ आहत पक्षी की तरह
फड़फड़ा कर/ एक घर में खड़ा हो गया
किन्तु रवि का घर अभी भी खाली था।

अशोक जेरथ, आहत चीड़ें

प्रो. सुभाष भारद्वाज ने, नई कविता को इस प्रदेश में मुखरित किया इसकी ओर उन्हीं की पंक्तियों में संकेत देखे जा सकते हैं:

लौट आ गई फिर से/ कविता मेरी
अलबेले राज कुमारों की राजसी महफलों से
कि अब यह मुक्त हो गई................
घिसे पिटे लय,ताल/छन्द बन्धन से।

यथार्थ का एक और पहलू भी है कि भावप्रवण स्थितियों के माध्यम से अपनी अनुभूतिओं को इस प्रकार खूबसूरती के साथ अभिव्यक्त करना जो वैयक्तिक होते हुए भी पाठकों को अपनी लगे। निर्मल विनोद के गीत और उषा व्यास के शब्दों में मार्मिकता इस ओर एक महत्वपूर्ण प्रयास है:

रंग बड़े वैसे कि छूटते नहीं
माने भी ऐसे की रूठते नहीं

–निर्मल विनोद

मन होता है थोप लूं जी भर पैरों में महावर

और फिर टांक दूं उसके साथ बसंत में उगे कांटों की कथई चुभन
लाल लहु बहेगा पीर चाहे मन नहीं सहेगा
किन्तु कम से कम रंगों का मेल तो होगा

—उषा व्यास

कथ्य में समकालीन कविता अपने परिवेश, व्यवस्था और राजनीति के प्रति जागरूक है—परम्पराओं को तोड़ती है पर मिथकों के माध्यम से बांधती भी है। शिल्पगत नवीन प्रयोगों, शब्द चित्रों, प्रतीकों और विम्बों के सटीक चयन में और उनके प्रयोग में बहुत आधुनिकता है। शायद इसीलिए इसे नई कविता से अलगकर समकालीन कविता की संज्ञा दी गई है। समकालीन कविता ने सम्पूर्ण परिवेश से वह सबकुछ ग्रहण किया है जो कवि को संवेदित कर जाता है। दुरूह स्थितियों, दोगले वक्तव्यों, चरमाराती व्यवस्था और अंश होकर बिखरते मूल्यों की अभिव्यक्ति के लिए नए प्रतीक और बिम्ब तलाशे हैं,तराशे हैं आज के कवि ने। रक्तपिपासु कैक्टस का बिम्ब सत्ताधारियों के पैंतरों और तथाकथित धर्म के ठेकेदारों के आडम्बरों की अभिव्यक्ति करता है:

दोस्त ! मेरे यहां सामने,तंग ऊंची खिड़की के
कैक्टस बेशुमार हैं। काश, मैं इन हाथों से हाथ मिला सकता
कि ये कांटे चुभने पर जान लेता क्या मुझमें जान है

मोहन निराश, शीराज़ा पूर्णांक 74

निर्मल विनोद ने इसे नागफनी के रूप में प्रयोग किया है:

जिसने मारा। कौन पराया रहा। खुदाया!
अपनी नागफनी ही आखिर
हमें गई/ डस

साक्षी सन्ध्याओं के

ज्योतीश्वर पथिक तो कैक्टस को ड्राईंग रूम में ले आए हैं क्योंकि उनके लिए कैक्टस रक्तजीवी नहीं अपने कांटों के कारण स्वयं रक्षक है:

कैक्टस
अपनी कंटीली काया के कारण
अपनी रक्षा स्वयं कर सकते हैं।

इधर आज की कविता में 'सूरज' के प्रतीक को खूब प्रयोग किया है जीवन्तता, दूरी, गर्माहट, उन्नायक आदि के तौर पर। सफलता की उड़ान में सूरज को अपनी पक्तियों में बीनता मनोज शर्मा कह उठता है

मेरी मुझ से सूरज तक की यात्रा में/ एक अंधी सुरंग पड़ाव बन गई है

जिसमें मुझे रहना होगा/ कुछ कहे बिना/ अंधेरा सहना होगा

जीवन का प्रतीक सूरज अनहोनी आधुनिक स्थितियों में दम तोड़ रहा दीखता है:

"सलाखों के पीछे से
पखुंड़ी पंखुड़ी मरते सूरज को
चुपचाप देखने के अतिरिक्त तुम कर ही क्या सकते हो!

—शशि शेखर तोषखानी, हमारा साहित्य, 77

और नियति देखें इसी सूरज को कवि नकारता दीखता है क्योंकि जीवन के प्रति उसका विश्वास उठ गया है:

झूठा है/ सुबह का सूरज/ क्योंकि
मुझे इसने आज तक
कभी रोशनी नहीं दी

—सुभाष भारद्वाज, चौराहे पर खड़े बारह चेहरे

लेकिन सूरज आशा का प्रतीक है, वह उभरता है ओर कवि के मानसपटल पर छा जाता है:

तुम—जिनके लिए हर डगर पर दिशा
अपनी टोकरी में ताज़ा सूरज लिए आती है।

—शशि शेखर तोषखानी

सूरज के साथ साथ आकाश की व्यापकता को भी जीवन के खुलेपन के तौर पर लिया गया है। अनेक कविताओं में आकाश का प्रतीक बहुत सुन्दरता के साथ उजागर हुआ है। अन्धकार भरा आकाश,उज्जवल आकाश,कुहरिल आकाश आदि बिम्ब कविताओं में उभरें हैं:—

आकाश जैसा भी है
मेरे लिए मनोरम है/ इन ढहते घरों के गम में
मेरा गम क्या है।

—डा. ओम गुप्त

आकाश का अर्थ कई मानों में वह बुलन्दी भी है जिसे नाप सकना अति कठिन है:—

तुम चढ़े मेरे ऊपर के आकाश में
दुमतारे की तरह/ और जगाया
सोई लालसाओं को

—क्षमा कौल, शीराज़ा, पूर्णांक 74

आकाश का प्रतीक अनहोनी उपलब्धि के रूप में भी प्रयोग हुआ है। कुमार पुष्कर की ये पंक्तियां देखें

मैं आकाश बनाता हूं/ और उसमें सहेजता हूं धरती
ठीक वैसे/जैसे रेत से खेलते बच्चे। मुट्ठी में बार बार भरते हैं रेत।

–शीराज़ा, पूर्णांक 59

तो दूसरी ओर अशोक कुमार आकाश की व्यापकता की अन्तहीन सीमा की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं:–

वह उड़ता रहा........ आकाश कभी खत्म नहीं हुआ........
बरसात में गीले पंख लिए। वह देख रहा था नीचे धुले–
हुए नीड़ को

–डूबे हुए सूरज की तलाश

आकाश का एक और प्रयोग पृथ्वी नाथ मधुप की कविता में उभरा है:–

ऐसा नहीं/ कि यहां का आकाश/ उगलता है केवल आग
इस पर भी/ झुण्ड के झुंड/ छा जाते हैं बादल।

–साम्प्रतिक हिन्दी कविता, पृ0 58 1978

आकाश व्यापकता के साथ साथ एक सीमा का भी अर्थ देने लगता है:

यह सच है/ कि वक्त है तुम्हारी मुट्ठी में कैद
आकाश और धरती के/ सारे अर्थ
तुम्हारी व्यवस्थाओं को लिए हुए हैं।

–बलनीलदेवम्, अंतिम युद्ध की चाह

झपसा हुआ वातावरण और डूबते परिवेश तथा अन्धे हो गए वातास को उभारने के लिए कोहरा,कुहरिल आकाश आदि के प्रतीक भी आज की कविता में खूब उजागर हुए हैं:

मुझे कोहरे में लिपटा
गुब्बारे सा सूरज
जोर से गर्दन अकड़ाकर/ बांग देता हुआ
एक मुर्गा लग रहा है

–अग्निशेखर, शीराज़ा पूर्णांक 74

और शशिशेखर तोषखानी स्मृतियों के आगे पड़े झीने पर्दे को कोहरे की परत के प्रतीक से बान्धते हैं:

कुछ अनाम फूलों और पत्तियों ने
चीर दिया है घने कोहरे की परत को
और हमारे लिए खोल दिया है
Fkksm+k lkvkdk'kA

—थोड़ा सा आकाश

कहीं कहीं पर कोहरे का रूप कुहासे में उभर आया है:

अजीब किनारे पर आ पहुंचा हूं / इस पार दलदल है
उस पार दल दल है / कुछ आगे / मौत की गहरी खाई है
ऊपर कुहासे से भरा आसमान।

डॉ0 ओम गुप्त, चौराहे पर खड़े बारह चेहरे

अवशता, विवशता और आक्रोश की अभिव्यक्ति के लिए बन्द मुट्ठियां, खुलते बंद होते हाथ, कडकड़ाती उंगुलियों के प्रतीक आज की कविता मे खूब उभरे हैं:

नहीं कुछ नहीं होगा
बन्द मुट्ठियों में
उबलता आक्रोश जेबों में पड़ा सड़ जाएगा

—शशिशेखर तोषखानी , एक अपरिचित आकाश

इसी प्रकार सड़ी गली व्यवस्था, खाली कनस्तरों का बजना, अपने अस्तित्व को टुकड़े टुकड़े होकर अंशों में बिखरते हुए देखने की प्रक्रियाएं यद्यपि निराशा की ओर संकेत करती हैं तथापि युगबोध की ध्वनियों को भी मुखरित करती हैं। अपने होने और न होने की आवशता में आज का कवि दोचीदा है। सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् की कविता में यह बोध खूब उभरा है :

जीवन जो उसका था कभी
अब रहा नहीं है उसका/
फिर किसी ओर का हो गया है/
कल किसी और का हो जाएगा/

और आर्थिक अभाव तथा व्यवस्था की गन्धहीन तंग गलियों में गुजरते हुए अशोक जेरथ कह उठते हैं:

सरकारी दूकान के बाहिर / आठ घण्टे खड़ा रहने के बाद/ खाली टीन बजाता / लौट आया हूं

व्यक्ति के पतन की बात महाराज कृष्ण सन्तोषी की इन पंक्तियों में बखूबी उभरी है:

अस्तित्व / एक मृत घोड़े की तरह। लुढ़क गया है
पहाड़ी ढालान से।

लोहे की किरचें, कंकरीट के जंगल, धुआं धुआं होते जिस्म और मन, कोलाहल आदि प्रतीक और बिम्ब आज की कविता में अभिव्यक्ति को प्रखर बनाते गए हैं।

इधर लोकसंस्कृति एवं अपने परिवेश से प्रतीकों के माध्यम से जुड़ने की बात भी आज की कविता में खूब हुई है। पत्थरों का शहर, जम्मू , तवी, वितस्ता, चिनार, चीड़ , कांगडी, डल, संतूर का स्वर आदि का प्रयोग खूब हुआ है। ज्योतीश्वर पथिक यादों के कारवां को ठेलते हुए प्रतीक्षा के सुमधुर क्षणों से दोचीदा हैं:

लहरों से लहरें हैं जूझती अनन्त/ एक लम्बे सफर का थका हुआ
अन्त / और तुम......../ चार चिनारी पर वादा करके नहीं आये

और प्राकृतिक छटा से अभिभूत होता कवि कह उठता है:

चीड़ों का रसविभोर हो सिर हिलाना
पत्रों का दाव देते ताली बजाना
मूझे बहुत भाता है।

–पृथ्वी नाथ मधुप, हमारा साहित्य

देवदार और चीड़ का मानवीकरण इन पंक्तियों में हुआ है।

.........चीड़ की हवा/ उड़ा कर जिसे/ चारों ओर फैलाती है
और देवदार / देखता है/ नयन उघाड़ उघाड़।

–सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्

और ओक, देवदार तथा चीड को आभिजात्य वर्ग के रूप में देखते हुए अशोक जेरथ कह उठते हैं:

ओक के पत्ते झड़कर/ देवदार की फर पर बैठ गए है
देवदार ने झुक कर चीड़ को छूना शुरू कर दिया है
चीड़ देवदार के भार से/ बार बार गर्जन करते हैं।

– आहत चीड़ें

युवा कवि उपेन्द्र रैणा की रचना में चिनार का प्रयोग ,सुंदरता के साथ हुआ है–

अन्ततः तुम्हारे आंगन में खड़े चिनार की शाखाएं मेरे घर तक पहुंच चुकी हैं

....

तुम्हारे चिनार का कद मुझ से बहुत ऊंचा है।

और हांगुल, बर्फ और देवदारों के माध्यम से अपनी बात कहने की सामर्थ्य अग्निशेखर की पंक्तियों में देखी जाती है:–

कोई नहीं सुनता/ कि हांगुल मर रहा है और अब यहां
बर्फ के बागीचों में/ देवदारों के रास्ते आतीं
सूरज की सुनहली चिट्ठियां गुम हो जाएंगी।

इसी रचनाकार की एक कविता में मानसबल के सौन्दर्य से प्रेयसी की तुलना भी खूब हुई है:–

........पर्वतों के दामन में/ जहां कोहरे से छनकर आती धूप में
तुम मुझे प्रतीक्षा में लेटी/ मानसबल झील सी लगती हो।

केसर के सुर्ख फूलों में श्रमजीवियों के रक्त की कल्पना इन पंक्तियों में देखें

केसर की बहार आई/ और खेतों में/ आज फिर
श्रमजीवियों का/ लाल रक्त अंकुरित हुआ।

डाक्टर सोमनाथ कौल

सर्वश्री अग्निशेखर , महाराज कृष्ण संतोषी , सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् , ज्योतीश्वर पथिक आदि की रचनाओं में अपने परिवेश से जुड़े बिम्बों प्रतिबिम्बों का खूब प्रयोग हुआ है।

इधर पौराणिक घटनाओं और कथानकों के माध्यम से आज की बात कहने का भी रुझान बढ़ा है। कविता में मिथकों का प्रयोग भी खूब होने लगा है–

तो आज/ जो द्रोपदी नंगी हो गई
अपमान में कोई पांडव न उठा/ कोई शाप न गूंजा
कोई मुट्ठी न कसी

– अग्निशेखर

महाभारतीय सोच और मिथक के रूप में आज के संदर्भ जोड़ने की एक परम्परा आज की कविता में चल पड़ी है–

कृष्ण! तुम एक बार फिर देख लो/ आज के महाभारत में
तुम जिसके सारथी बने हो/ वह अर्जुन ही है या शिखंड़ी/

–अजय "नाकिब " नीलजा–4

निर्मल विनोद ने महाभारत और रामायण के मिथकों का समन्वय अपनी कविता 'दर्पीले तेवर', शीराज़ा पूर्णांक 65 में कुछ इस तरह किया है–

निरीह मारीच को/ अपनी। हविस की पूर्ति के लिए इस्तेमाल में लाने वाले/
रावण हो कि दुर्योधन–समय के हाथों, युधिष्ठिर–सत्य।
को निर्वासित करने के लिए। पासा फैंकते– मामा शकुनि/

• और 'शेषशयी' के मिथक का एक रूप रतन लाल 'शांत' की रचना में देखें :

मुझको लगता मैं पड़ा बेंच पर नहीं
बल्कि मैं शेषशायी/ एक क्षण मैंने भी दिया–
जन्म विधाता को।

–शीराज़ा ,पूर्णांक 69

कविताओं के शीर्षक और कृतियों के नामकरण में भी इन मिथकों का प्रयोग हुआ है– कृष्ण मेरा पर्याय–मोहन निराश कृत कृति में।

नई कविता में लय कहीं कहीं पर आंतरिक तौर पर उभरी है। नवगीतों में तात्कालिकता उभरी है। निर्मल विनोद के स्वर में मार्मिकता के साथ साथ समय की कृतियों की पहचान भी है:

गुलमुहरों की/ उदास उंगलियां/ सरुओं में/ धुंध के निशां हुई कितनी संवेदनाएं इस तरह। गूंगे की आंख का। बयां हुई।

एक और बिम्ब देखें:

काश! गुदगुदाया मृदुल घास
शाम/ और भी हुई उदास

– निर्मल विनोद

उषा व्यास के स्वर में कल्पना शीलता और उचित शब्द चयन की प्रतिभा है जिसके माध्यम से वह सटीक बात कहने में समर्थ हैं:

दिवस काला हो गया है
कच्ची नींद से जागे शिशु की तरह
रात के कन्धे लगा/ कुनमुनाकर सो गया है।

शब्द और दृश्य बिम्ब में प्रतिभावान उषा व्यास इन्हीं के माध्यम से परिवेश में वैयक्तिक अनुभूतियों को बुनने में समर्थ है:

सोनाली सांझ के/ गंध डूबे आमंत्रण में/ खोजते रहे चुपचाप
लहके लहके रोशनी बिंधे बादल/ झनकते नूपुरों के अर्थ/ और
शापित आकाश की रगों में। टीसता रहा। धुआं धुआं। दर्द ।

–शीराज़ा, पूर्णांक 35

अभाव की कसक को वैयक्तिक अनुभूतियों में पिरोती चंचल डोगरा का स्वर देखें:

बंजर थी धरती/ पर नदी उफनती/ आंगन में मेरे
अनजाने रोपा/ तुमने एक विरवा/ खुले। असंख्य अनुत्तरित प्रश्न
कोंपलों में

................हमारा साहित्य 83

एक और बात जो आज की कविता में उजागर होती है वह है उधार की भाषा, बैसाखियों पर चढ़ते सोच के आयाम और नाराकशी से तोबा। आज का कवि आज

प्रतिबद्ध होने की बात नहीं करता–कुछ करते होंगे पर अब खेमे विशेष से बाहर आकर उनकी सोच का विस्तार हुआ है और कविता सहज हो आई है बावजूद रचनाकार के कहने कि वह सहज कविता नहीं कर पाता

आंख मूंद कर/ सहज हो जाना/ बहुत आसान है/ इस देश में
और सहज कविताएं/ हाशिए पर छप कर/ नाम कमाती हैं
अलाव, आदमी और भेड़ को एक कर जाती है।

......शीराजा, हिन्दी पूर्णांक, 104

डॉ0 राजकुमार ने इस वक्तव्य में अनुभूतिपूर्ण कविताओं पर छीटें कसे है। पर अपनी ही रचना को सहज कर जाते हैं पाठकों के लिए जो इसे समझ पाते हैं , क्लिष्ठता से परे।

रतन लाल शांत की एक कविता देखें

समय/ अनजाने नहीं/ चेता के गुजरता है/ हर रोज।

..........शीराज़ा, पूर्णांक 36

इन कविताओं में छन्द ,अलंकार बिम्ब, प्रतीक आदि का कहीं कोई बंधन नहीं। अशोक कुमार की एक कविता की कुछ पंक्तियां देखे:

मेरे शहर में/ हवा हुई/ गुम/ टिड्डी दल मंडराता लहराया
पल में कर गया/ चट/ खेत की शक्ति और मिट्टी की मेधा।

.........शीराज़ा, पूर्णांक– 105

शिल्पगत पेचीदगियों से आज की कविता में यद्यपि जटिल बिम्बों का स्वागत होता रहा है पर इधर इन जटिल प्रयासों और सायास बुनती हुई सोच से परे सहज स्फूर्त कविता का रूप भी सामने आया है। इसे आप सपाट बयानी कहलें या नाराकशी पर यह सच है सपाटबयानी और नाराकशी से इतर भी अब रचनाकार के पास शब्द हैं, सोच है और अपनी बात को सहज ही कह देने की सामर्थ्य है जहां सायास प्रयास नहीं दीखता।

आज का कवि अति जागरूक रचनाकार है केवल अपने ही परिवेश तक महदूद न रहकर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनों से न केवल वाकिफ है अपितु उन्हें समग्रता के साथ अपनी रचनाओं में ढालता भी रहा हैं। नामीबिया की स्वतंत्रता का समाचार सुनकर निर्मल विनोद की लेखनी प्रशस्त हो उठती है :

साथी ! एक अंधी कारा से छूट रहे हो,
नये कैदखाने में भूल से पांव न धरना *.........शीराज़ा, पूर्णांक 97*

अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर हुए दो विस्फोटों से चरमराती आस्थाएं, टूटती ईजार–दारियां, डगमगाती हुई बैसाखियों के साथ काफूर होती उधार की भाषा तो दूसरी ओर अपने ही घर में अजनबी हो गए संवेदित व्यक्ति की छटपटाहट और बहुत अकेले

पड़ जाने का दर्द, कोंधती स्मृतियों की बात बहुत आवश्यक हो जाती है। सोवियत रूस के टूटने से एक सांस्कृतिक विस्फोट हुआ है– इस दशक की सबसे बड़ी घटना जिसने बुद्धिजीवियों को हिलाकर रख दिया है–सोच में अनेक परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होते दिख रहे हैं इनकी चर्चा हमारी कविताओं में बहुत नगण्य हुई है। पता नहीं क्यों अस्पृश्य हैं अंतराष्ट्रीय इन परिवर्तनों से हम। पर कश्मीर में विस्थापित होने का दर्द उसकी पीड़ा की अभिव्यक्ति कविताओं में हुई है। मधुप द्वारा सम्पादित 'आज की कविताएं ' संकलन में न केवल विस्थापित पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है अपितु दूसरे व तीसरे व्यक्ति के तौर पर उसे महसूसने वाले की कसमसाहट भी इसमें मुखरित है।

'आज की कविताएं' का नवम्बर दिसम्बर, 1992 अंक कश्मीर अंक कहा जा सकता है जिसमें विस्थापितों का दर्द अपने घर से अलग हो जाने की पीड़ा बही है और खूब बही है:

बड़े धीर हो कश्मीर : ठीक भूकम्प के समय
लोहे और आग का खेल देखने/ भूमिगत हो गए।

......रतन लाल शांत

और अर्जुन देव मजबूर की पंक्तियां देखें :

अवशता के कगार पर खिसकती रही पैरों तले। गजभर भूमि मेरी मैं
ताकता रहा आकाश। कि दो में से एक हो मेरा।

रमेश मेहता उक्त सहमे हुए वातावरण की ओर संकेत करते हैं–

सहमी हुई हवा। रुक रुक कर कदम रखती
एक घर से दूसरे घर की। दूरी नाप रही है।

और निर्मल विनोद का स्वर विस्थापितों के दंभ को उभारता हुआ कहता है।

अगर खुश्बू बेदखल करता है धुआं
तो किसी तावनजद के पेट में/ दर्द क्यों उठता है
यह हमारा आपसी मस्हला है
सुलझा लेंगे/ हम खुद ही।

इन संग्रहों से इतर भी कुछ रचनाकारों ने इस पीड़ा की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की है।

वस्तुतः अस्सी के दशक के बाद की कविता में समकालीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जा सकता है। इस ओर पत्र पत्रिकाओं में तो प्रदेश के कवि कुल हिन्दी कविता के रचनाकारों के साथ साथ प्रकाशित होते रहे हैं,कवि सम्मेलनों में आमंत्रित किए जाते रहे हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के संग्रह प्रकाशित करवाए हैं– यह सभी प्रयास महत्वपूर्ण

कहे जा सकते हैं पर इनसे भी महत्वपूर्ण प्रयास कविता संकलनों के माध्यम से हुए हैं जिनमें प्रदेश के कवियों की रचनाओं को संकलित करने का प्रयास किया गया है। पर ये प्रयास प्रदेश को दो हिस्सों में बांटते रहे हैं, जम्मू की हिन्दी कविता और कश्मीर की हिन्दी कविता। कश्मीर में 'एक अपरिचित आकाश' 'वितस्ता के वातायण' 'नीलजा' आदि संकलनों और पत्रिकाओं के कविता विशेषांक निकाले गए हैं तो जम्मू में –'मधुरिमा' प्रतिभा, पुष्प 3, 'चौराहे पर खड़े बारह चेहरे' तथा 'साथ चलने का संगीत', आदि महत्वपूर्ण संकलन कहे जा सकते हैं। इधर जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी की ओर से प्रयास किया गया है– कविता का शीराज़ा विशेषांक निकालकर और 'चीड़ों में ठहरी बयार,' तथा दूसरे वार्षिक अंकों के माध्यम से पर अभी आकलन बहुत कम हुआ है।

समकालीन हिन्दी कहानी

समकालीन की व्याख्या हम पहले कर चुके हैं। कविता की तरह कहानियों के रचनाकारों ने भी धीरे धीरे वादों के विवाद को छोड़कर अपने परिवेश को समझने और उस समझ की सटीक अभिव्यक्ति का प्रयास करना शुरू कर दिया था। यद्यपि यह परिवेश बहुत जटिल, अभावग्रस्त, संघर्षमय आर्थिक और मानसिक टूटन से युक्त मुल्यहीन तथा आडम्बरमय है तथापि आज का कहानीकार पूरी ईमानदारी के साथ न केवल इन समस्याओं को देखता है, समझता है अपितु इसकी अभिव्यक्ति भी उसी ईमानदारी के साथ करने में सक्षम है।

बनते बिगड़ते मूल्यों की पहचान, नई मान्यताओं को तर्क की दृष्टि से देखने की आकांक्षा नगरीय तथा महानगरीय परिवेश में एकान्त में अपने को उधेड़ते व्यक्ति की छटपटाहट, रिश्तों के नए संदर्भ और उनकी प्रामाणिक अनुभूतिपूर्ण व्याख्या और अभिव्यक्ति इस दौर की कहानियों का आधार रही है। सर्वांगीन जीवन की झांकी इन कहानियों में हमें मिलेगी–ग्रामप्रान्तर परिवेश से लेकर कस्बाई और महानगरीय परिवेश तक, सामाजिक चेतना से उद्भद होकर वैयक्तिक पहचान तक का इन कहानियों का सफर सामूहिक चेतना से होता हुआ बहुत सूक्ष्म हो आया है। चूंकि नई कहानी में भी यह सब था पर समय के साथ साथ इसमें एक नई पहचान स्थापित होना शुरू हो चुकी थी।

नई कहानी से जो कथ्य का विकास शुरू हुआ था समकालीन कहानी में आकर उसे विशदता और विशालता मिली है। आज की कहानियों के विश्लेषण से कुछ सामान्य मुद्दे पकड़े जा सकते हैं जो अनायास ही कहानी में बुने गए है। और इनकी अभिव्यक्ति अति सरल और सहजता के साथ हुई है। वहीं पर कुछ रचनाकारों ने सायास प्रयास से इसे क्लिष्ट शिल्प में बांधने की कोशिश भी की है।

आधुनिक स्थितियों और परिवेशगत दुरूहताओं का सूक्ष्म विश्लेषण और उनकी सटीक अभिव्यक्ति समकालीन कहानियों में हमें मिलती है। बनते टूटते रिश्तों की कसमसाहट, पारिवारिक रिश्तों से इतर व्यक्ति की अपनी पहचान और सामाजिक दीर्घाओं से परे नए अनाम, रिश्तों की खुशबू , आर्थिक रूप से शोषित व्यक्ति की छटपटाहट, बेकारी, अभाव और नियति से जूझते जुझारू घटकों का बकालतनामा संघर्षरत व्यक्ति पर थोपे हुए मूल्यों का कच्चा चिट्ठा, मनोवैज्ञानिक दबावों का व्यक्ति पर प्रभाव, अपने ही रिश्तों के बीच बहुत अकेले पड़ गए व्यक्ति की त्रासदी और परम्पराओं के नाम पर नारी के बंधन और उन बन्धनों से मुक्त होते लहुलुहान स्त्री पात्र इन में कहानियों में बड़ी शिद्दत के साथ उभरे हैं।

व्यक्ति को अपने परिवेश से मिले बंधनों से मुक्त होने की तड़प मनोवैज्ञानिक स्तर पर उभरी है। जगमोहन द्वारा रचित कहानी 'एक फैला हुआ बरगद, एक घुटी हुई सांस' इस मुद्दे पर लिखी गई एक सशक्त कहानी है कहानी का नायक पिता के सशक्त व्यक्तित्व के नीचे इतना घुटा है कि उसे अपने अस्तित्व की पहचान ही नहीं हो पाती।

बलनील देवम् कृत 'भरा पूरा पुरूष' , देवदार की छाया तले, में अपने वजूद की लड़ाई बहुत प्रखर होकर उभरी है। वैयक्तिक चेतना पर बड़ों का आतंक व्यक्ति के उत्थान में एक बहुत बड़ा आघात है।

"लेकिन कमरे में पहुंचते ही चाचा जी ने किसी बाज की भांति झपटा मारकर उसके अंतर में प्रकाशित खुशी को नोच लिया। पोर–पोर में रची बसी गंध हवा हो गई और उसका स्थान ले लिया आतंक की दुर्गन्ध ने। वह सहमा– सहमा जड़वत् सा वहीं खड़ा हो गया।" टूटते परिवार, अपनों के ही बीच बहुत अकेला पड़कर अजनबी होने की त्रासदी और महिलाओं के शोषण तथा परिवार पर भार के रूप में देखने की अभिव्यक्ति इन कहानियों में हुई है।

संजना कौल कृत 'सतहें' शीराज़ा, पूर्णांक 76, व्यक्ति स्वतंत्रता की ओर संकेत करती है। इस कहानी में दो किनारे हैं। एक तो रीमा नामक घरेलु किस्म की लड़की ने थाम रखा है जो अपने माता–पिता के इशारे पर कहीं भी शादी करने को तत्पर हो जाती है तो दूसरी ओर सरिता दबंग किस्म की लड़की है जो घर–परिवार में आने वाले दबावों का डटकर सामना करती है और अपने को नगण्य समझने वाले रिश्तेदारों के सम्मुख झुकती नहीं अपितु उन्हें यह सोचने पर मजबूर कर देती है कि सरिता का भी अपना अस्तित्व है। सरिता का स्नेह एक लड़के के साथ होता है जिसके विचारों से वह अति प्रभावित हो जाती है पर इस अवसर पर और बाद में उस लड़के के मुखौटे उतरने लगते हैं तो वह वापिस मुड़ आती है यद्यपि इससे उसकी काफी बदनामी होती है पर वह अडिग है।

दीदार सिंह की कहानियों में पारिवारिक टूटन और अपने अनुजों के बीच ही बहुत अकेले पड़ गए आदमी की त्रासदी उभरी है। 'उसका दर्द' योजना फरवरी 84, में कुछ ऐसा ही दर्द उभरा है जब बहुत दिनों बाद पिता अपने बेटे के घर आता है तो उसकी बहु और बेटा मात्र औपचारिकता निभाते हैं कहीं पर भी आत्मीयता नहीं दिखाई देती जबकि बेगाने उसे चाहते हैं। वह वापिस चल पड़ता है। इससे मिलती जुलती कहानी मनोज शर्मा की है (शीराज़ा, पूर्णांक 105) सास बहुओं को एक एक कर निकाल देती है। और बहुएं सास को धिक्कारती रहती हैं। बेटा अपने लड़के काके की मार्फत अपने पिता को अनाज और सौ रुपये भेजता है इसताकीद के साथ कि यह किसी को भी पता न चले और वह पैसे जाकर अपने दादा के हाथ में ही दे। रास्ते में काका अपने खर्चे के पैसे निकाल लेता है और बीयर पीने के पैसे भी जोड़ देता है और पचास रुपये का टांका लगाकर केवल पचास रुपये ही दादा को थमा कर संतोष कर लेता है। एक ओर आर्थिक अभाव की बात है तो दूसरी ओर पारिवारिक कलह की।

इस मुद्दे पर अंलकार कृत 'पंतग' शीराज़ा, 43, एक सशक्त कहानी है। संत सिंह एक मुद्दत के बाद घर आया है शादी में शरीक होने पर घर पर उसका स्वागत बहुत ठण्डा होता है– मां के मन में चाव जरूर है पर छोटा भाई और पिता मात्र औपचारिकता निभाते हैं। वह अंदर ही अंदर टूट जाता है। उसकी प्रेमिका देवेन्द्र की शादी हो चुकी है वहां भी उसे तटस्थ भाव से देखा जाता है। दुःखी हो कर वह समय से पहले ही घर से वापिस हो लेता है। रास्ते में एक पंतग एक पेड़ की शाखाओं में उलझी देखता है जो स्थान स्थान पर टूट गई है– संतसिंह का अपना अस्तित्व।

टूटते बनते रिश्तों में एक नई पहचान भी आज की कहानियों में बड़ी शिद्दत के साथ उभरी है। दीदार सिंह कृत 'अग्निपरीक्षा' शीराज़ा पूर्णांक 103, में सुधा और सुमीत एक दूसरे को चाहते हैं और शादी करना चाहते हैं पर सुमीत अभी बेकार है फलस्वरूप सुधा के माता पिता ज्यादा इंतजार न कर सुधा की शादी कमल से कर देते हैं। बाद में कमल और सुमीत मित्र बन जाते हैं और दोनों परिवार एक ही मकान में रहने लगते हैं। सुमीत की शादी आरती के साथ हो जाती है। सुमीत और सुधा में अभी भी वह आकर्षण है। मन ही मन वे इस मौके की तलाश में रहे हैं कि कब मिला जाए, पर अपनी स्थिति का भान उन्हें है। पास पास रहते हुए भी अग्निपरीक्षा में वे सफल होते हैं। तो दूसरी और श्रीमती किरण बख्शी कृत 'कोई दूसरा' में तीन परिवारों के कथानक एक ही धारा में मिलते दीखते हैं। मैताली की बहन गुड्डू को नाटक आदि में भाग लेना छोड़ना पड़ता है। वह उमर से शालीनता का मुलम्मा चढ़ाए है पर बीच में कहीं टूट गई है। तो मैताली की पहचान और जुड़ना एक इन्जीनियर जीतू से होता है पर बाद में अहं की टकराहट द्वन्द्व और परिणाम परिवार के टूटने से होता है तो तीसरी ओर मैताली की नौकरानी

कमला हर रोज़ अपने शराबी पति की मार खाकर भी चुप है तो मैताली उससे पूछती है कि तुम उससे अलग क्यों नहीं हो जाती तो कमला उत्तर देती है कि वह दूसरी कर लेगा तो मैताली के मन में अचानक प्रश्न उठता है कि वह भी कोई दूसरा करले। पर अपनी स्थिति जानकर वह स्वयं से ही कहती है कि उसी ने दूसरा क्यों नहीं किया? इस दृष्टि को संकुचित रूप से ईर्ष्या के धरातल पर बंसीलाल कृत कहानी 'कस्तूरी' शीराज़ा 91, में कथानक उभरा है। नायक वर्षो से अपने परिवार से अलग दूसरे नगर में कार्यरत है। बीच बीच में उसकी पत्नी सरणा की चिट्ठी आती रहती है। कहीं कहीं अकेलेपन की खीझ और भावुकता इन चिट्ठियों में व्याप्त रहती है। अंतिम चिट्ठी में उसने लिखा है वह तंग आ गई है अकेलेपन से और किसी कस्तूरी से प्यार करने लगी है जो उसको भी खूब चाहता है। नायक के अंतर में ईर्ष्या का सांप लौटने लगता है और वह तुरन्त अपना बिस्तर बांधकर घर की ओर चल पड़ता है जहां उसका स्वागत ठण्डेपन से होता है पर तुरन्त वातावरण गरमा जाता है तभी गाय की रम्भाने की आवाज़ आती है तो सरणा उसे गाय के पास ले जाती है और पास में खड़े बछड़े कस्तूरी से प्यार से लिपट जाती है तो नायक धत् करके रह जाता है।

अंलकार कृत 'धुंध', शीराज़ा पूर्णांक 62, में अनाम रिश्तों का स्वरूप उभरा है। एक 15–16 वर्षीय सुन्दर हमीदा पड़ोस में एक पोलियो ग्रस्त लड़की के उपचार में लगे लड़के रतन से स्नेह रखती है जो रफ़्ता रफ़्ता प्रणय में बदल जाता है। रतन आर्थिक अभाव में पल रहा है जो हमीदा के आह्वान कि दोनों भागकर कहीं ओर स्थान पर जीवन शुरू करें को नकार देता है। यह अपनी है, जानता है अतः हमीदा रतन से बोल उठती हैः "मुझे तो लगता है तेरे जिस्म के अंदर भी पोलियो के निशान हैं जो तुझे दिख नहीं रहें।"

बेकारी की पीड़ा और आर्थिक अभावों से बिखरती वयक्ति की अस्मिता का वर्णन भी इन कहानियों में हुआ है। इन्द्रजीत सिंह 'पुजारी' की कहानियां इस मुद्दे को बहुत शिद्दत के साथ उभारती है। 'एक दिन सूर्य का, देवदार की छाया तले में, भूख से तड़पती राधा का चरित्र बखूबी से उभरा है। दरिद्रता का दुःखद मन्ज़र देखेः

"भूख फिर जोर पकड़ने लगी है, पेट की एक आंतड़ी दिमाग के कीड़े से कहती है– सोचकर या उलटा लेटकर हमें बहलाओ मत, कुछ ऐसा करो हम सिकुड़ने से बच जाएं। एक कीड़ा दूसरे से कहता है और दूसरा तीसरे से और सब कीड़े दौड़ने लगते हैं।"

महाराज़ कृष्ण शाह कृत 'उखड़ा हुआ प्रत्यावर्तन' शीराज़ा, पूर्णांक 41, में रिश्तों की गंध के अभाव में काफूर होते देखा जा सकता है जब मुख्य पात्र बोल उठता है :मुर्दे को कब्र से गर्ज है जमीन कोई भी हो। महाराज कृष्ण शाह की एक और कहानी 'आधे कोस का चांद', शीराज़ा पूर्णांक 44, में बेकारी और अभाव अपनी शिद्दत के साथ उभरा है।

कश्मीरी लोग अपनी आजीविका के लिए कश्मीर से बाहर जाकर मेहनत मजदूरी का कार्य करते हैं पर फिर भी पूरी तरह से गुज़र नहीं हो पाता। मुख्य पात्र का पिता अब बूढ़ा हो आया है उसे आराम की जरूरत है पर वह अभाव ग्रस्त जीवन से तंग आकर एक बार फिर बाहर जा कर मेहनत करने की बात करता है। पहले इसे 'बेगार' कहा जाता था क्योंकि इन्हें मजबूरन बाहर ले जाया जाता था पर अब तो यह भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि अब तो यह अपनी मर्जी से बाहर जाते हैं।

ओम गोस्वामी की कहानियों में आर्थिक अभाव में जीते घटकों और उनका शोषण करते हुए राजनेताओं और समाज के ठेकेदारों का सजीव चित्रण हमें मिलता है। 'बुर्जुया' और 'फरिश्ते की मौत' उदाहरण स्वरूप जी जा सकती हैं। शोषण का जो रूप 'बुर्जुया' कहानी में उभरा है वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलता– "हम सब समुद्र के अंधेरे तल की मछलियां हैं जो एक दूसरे के भक्षण को आतुर हैं। हमारा जीते रहना मात्र एक संयोग है।" महानगरीय बोध, कस्बाई ज़िन्दगी में बनते बिगड़ते मूल्यों का कारवां और गावों में अभाव की ज़िन्दगी भी इन कहानियों में मुखरित हुई हैं।

अंलकार और अशोक जेरथ की कहानियों में नगरीय और महानगरीय बोध को आंका जा सकता है। अंलकार की कहानी 'धुंध' में इस बोध को पकड़ा जा सकता है। मातापिता का अपनी संतान के प्रति तटस्थ व्यवहार परिणाम स्वरूप बच्ची का पोलियोग्रस्त हो जाना और अशोक जेरथ की कहानी 'एक बिखरी हुई शाम', देवदार की छाया तले, में महानगरों में बनते रिशतों और नगरीय जीवन में उनका प्रवेश शिद्दत के साथ हुआ है जब एक पाश्चात्य महिला मुख्यपात्र को डिग्री में जीते रिश्तों की बात समझाती है तो वह बिखर जाता है।

अशोक जेरथ की एक और कहानी 'अंतराल', साप्ताहिक हिन्दुस्तान 21 फरवरी, में डिग्री में बनते, टूटते रिश्तों की बात बड़ी शिद्दत के साथ उभरी है। जब युलरीक कहती है: "हमारे यहां ऐसा नहीं चलता। तुम लोग इस तरह इकट्ठे कैसे जी लेते हो। हम इकट्ठे रहते हैं, कुछेक घंटों के लिए मेरी मां जब मुझे बुलाती है तो मैं होस्टल से मिलने चली आती हूं।" संबधों को एक नवीन दृष्टि से देखती युलरीक कह उठती है–"मैं एक से जुड़ी हूं। दूसरे को चाहती हूं और तीसरे से सर्म्पक रखती हूं। तीनों के साथ मेरे सम्बंध हैं, पर बंधकर नहीं, खुलकर। ये सम्बंध उन्मुक्त होते हैं। यकीनन सनद नहीं मांगते। " इसके अतिरिक्त शरीरिक तौर पर पंगु हो आए व्यक्ति के दुःखद और पीड़ाजनक जीवन की झांकी भी इन कहानियों में अभिव्यक्त हुई है। कुछ रचनाकारों ने इस यथार्थ को भोगा है। अतः उनकी कहानियों में यह मुद्दा सत्य के धरातल पर उभरा। छत्रपाल की कहानी 'रोशनी से दूर' इस बात की गवाह है। इसी प्रकार कश्मीर के रचनाकार श्री अवतार कृष्ण राज़दान की कहानी 'कीमती चीज', शीराज़ा सितम्बर 73,

में वह त्रासदी उभरी है। घर की खिड़की के पास बैठा मुख्यपात्र सड़क पर जाने वाली एक महिला के संकेतों से अभिभूत हो जाता है जो उसे बाहर आने के लिए उकसाती है पर वह शरीरिक तौर पर पंगु है, चलने में असमर्थ। रोज वह उस लड़की को देखता है और संकेतों में ही बातें होती हैं और एक रोज़ चलने की कोशिश में वह गिर पड़ता है और उसे हस्पताल ले जाया जाता है– व्हील चेयर पर। रास्ते में वह उसी लड़की को देखता है तो अपनी सूखी टांगों को पूराने शाल से ढकने का प्रयास करता है ताकि वह उन्हें न देख सके। अवशता का यह मंजर उषा व्यास की कहानी 'सलाखों के आरपार', सारिका जून, 1975 में उभर कर सामने आता है जबकि मुख्य पात्रा शारीरिक तौर पर पंगु हो आई है और उसका पति उसके साथ औपचारिकता निभाता हुआ एक अन्य महिला के साथ आबद्ध हो जाता है जो उसके कार्यालय में कार्यरत है। वह मन मसोसकर रह जाती है।

बंद, हड़ताल, हर रोज़ की स्ट्राइक का भी आंशिक प्रभाव इन कहानियों में हमें मिलता है। चन्द्रकांता की एक कहानी 'प्रदेशबंद', शीराज़ा पूर्णांक 86, में मंत्री की मुत्यु पर बाजार बंद करवा दिया जाता है। दिहाड़ी वाले मुश्किल में पड़ जाते हैं कि एक लड़का विरोध करता है कि हर रोज़ हज़ारों मरते हैं, पंजाब, बिहार आसपास आदि में लोग रोज मर रहे हैं पर तब बंद नहीं होते –गरीब आदमी कुत्ता है क्या? लोग खड़े हो जाते हैं और एक पुलिस वाला आकर उसे धर दबोचता है। हड़ताल और बंद की सामयिक समस्या है पर इस पर बहुत कहानियां नहीं लिखी गई। अच्छा होता इनके प्रभाव को आम आदमी, मजदूर, किसान, हांजी और दूकानदार आदि को लेकर आंका जा सकता। बाद में तो ऐसी घटनाएं आए रोज़ सुनने को मिलने लगी हैं। इधर कहानियों में सीधी और सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से मानवीय अनुभूतियों और सुमधुर रिश्तों की भी बात उभरी है ।

वेदराही कृत 'बासंती नाला' में एक अति भोले गोपी की कथा है जो अपनी बहन को बहुत प्यार करता है और बहुत चाव से उसके ससुराल मिलने जाता है। उसके मन में है कि बहन उससे उसी तरह प्यार करे जैसे शादी से पहले करती थी। वह उसे थपकी देकर अपने पास सुलाए। रात्रि को वह इसी की अपेक्षा करता रहा कि उसकी बहन के दो छोटे देवर आपस में लड़ने लगे तो उसने दोनों को अपने आसपास सुला लिया और गोपी तरसता रहा अतः दूसरे रोज ही बहन के घर से अपने घर आ गया।

निर्मल चोपड़ा कृत 'दिशाहीन', शीराज़ा पूर्णांक 77, और 'किस के लिए' शीराज़ा पूर्णांक, 83, कहानियों में एक ओर अभावग्रस्त जीवन और त्रासदी है तो दूसरी और संघर्ष में जीवन और स्नेहिल क्षणों को पकड़ने की अदम्य इच्छा। 'किस के लिए' वस्तुतः एक अदम्य साहसी मीरा की कहानी है जो अभावों के बावजूद ऊंचे पद पर पहुंच जाती है

जहां तक कि अपने प्रणयी –विवेक को भी छोड़ देती है पर ऊंचे पद पर पहुंच कर अकेलापन महसूस करने लगती है और विश्लेषण करती है कि आखिर उसने पाया क्या है। इधर हलके फुलके अंदाज में लिखी गई कहानियों में हास्य व्यंग्य और कटाक्ष के माध्यम से जीवन के सही अर्थों को पहचाना गया है। यह शिल्पगत प्रक्रिया है जब सहज भाषा में वैयक्तिक और सामाजिक आडम्बरों का पर्दाफाश किया गया है।

इन हलकी फुलकी कहानियों में शिवरैणा सिद्धहस्त हैं। इन की कुछ कहानियां शीराज़ा में प्रकाशित हुई हैं। 'मशीनु मामा', शीराज़ा पूर्णांक 98, में वजीरचंद का मुखरित चरित्र उभारा गया है जो एक मैकेनिक है और हर किसी की सहायता करता है पर उसकी स्त्री रमिया अभाव में रहने की बजाए उससे अलग होना ज्यादा ठीक समझती है पर समय रहते वापिस उसके पास आ जाती है। इसी प्रकार 'मधुवन' शीराज़ा पूर्णांक 52, 'दांसू साहब', शीराज़ा पूर्णांक 106, आदि कहानियां प्रकाशित हुई हैं जो विभिन्न रूपों में सामाजिक आडम्बरों पर चोट करती हैं। शिवरैना की एक कहानी 'कलाकार', शीराज़ा सित. 73 इस और एक अच्छा प्रयास है जब रामलीला के मंचन के लिए आधुनिक लिबास पहन कर चरित्र अभिनय करते हैं। हनुमान जब मंच पर चढ़ता है तो उसकी पूंछ नहीं होती हो दर्शक शोर मचाते हैं तो आयोजक उत्तर देते हैं कि हनुमान की पूंछ ड्राईक्लीन होने गई है अभी आई नहीं। इस संदर्भ में प्रो0 हरिककृष्ण कौल कृत 'अवतार' कहानी उद्धृत करना चाहूंगा जो शीराज़ा पूर्णांक 79 में प्रकाशित हुई है। कहानी में कोई दुरूह शिल्प नहीं अपितु व्यंग्य के माध्यम से पल पल बदलते, बनते मूल्यों का यथार्थ रूप मुखरित हुआ है। एक लड़का परीक्षा देता जेबों में हाथ डालता पकड़ा जाता है और कालेज की अनुशासन ससंद के सदस्य रज़ाक रैणा, शाह, बंसीलाल आदि लड़के को पीटने में अपना अधिकार मानते हैं। पर ज्योंही ये उसके हाथ के अंगूठे पर तारे का निशान देखते हैं तो भीगी हुई बिल्ली बन जाते हैं। वस्तुतः उन्हें उसकी जेब से एक प्रेम पत्र प्राप्त हुआ था जो एक निर्मला नामक एक लड़की ने लिखा था। रैणा को लगने लगा कि उसकी इज्ज़त मिट्टी में मिल गई है और रज़ाक को लगने लगा कि उसने ग़लत किया है तो दूसरी ओर बंसीलाल घबराया कि अब क्या होगा पर लड़का नाम नहीं बताता। उसका फार्म लाया जाता है जिसमें उसका तथा उसके बाप का नाम लिखा होता है। –अवतार कृष्ण टिकू, पिता जगन नाथ टिकू तो सभी शेर हो जाते हैं और दो एक हाथ उस पर झाड़ देते हैं और रैणा साहब सुख की सांस लेते है कि वस्तुतः भगवान ने अवतार लिया है और उनकी इज्जत बच गई थी।

कहानी पढ़े लिखे समाज पर एक बहुत बड़ा कटाक्ष है और बौने हो गए व्यक्ति के आस्तित्व पर एक यथार्थ आक्षेप है जो हमारे समाज के दुमुहापन की ओर संकेत करता है। समकालीन कहानी में कथ्य से इतर शिल्प में भी अनेक प्रयोग हुए हैं। प्रतीकात्मक

शैली से लेकर अति सहज और सरल ढंग से कहानी कहने के स्तर तक।

प्रतीकात्मक शैली में अपनी बात कहने की सामर्थ्य सर्वश्री वेदराही, हरि कृष्ण कौल, ओ. पी. शर्मा सारथी, अशोक जेरथ, अलंकार, छत्रपाल, जगमोहन, सुभाष शर्मा और इन्द्रजीत सिंह पुजारी की लेखनी में है। इनकी कहानियों में कथ्यों को प्रतीकों के माध्यम से खोला गया है। ओ.पी. शर्मा सारथी कृत 'सड़क की यातना', देवदार की छाया तले, उदाहरण स्वरूप ली जा सकती है जिसमें सड़क के प्रतीक को एक पागल औरत के रूप में खोला गया है और चौराहे के प्रतीक को एक बूढ़े के रूप में। दोनों का मानवीकरण करके कहानी को बुना गया है। सड़क और चौराहा अपनी अपनी व्यथा सुनाते प्रतीत होते हैं।

सुभाष शर्मा कृत 'जेम्स एक पैथेटिक करेक्टर', देवदार की छाया तले, भी एक प्रतीकात्मक कहानी है। जेम्स का समय अक्सर पुराने गेंदों की तहें उधेड़ने में लगा रहता है– ये तहें यादों की हैं, स्मृतियों की हैं और जीवन की उन सन्ध्ययाों की हैं जिन्हे जेम्स भोग चुका है।

अलंकार की कहानियों में बात को संक्षिप्त रूप में समझाने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया जाता है। 'पंतग' कहानी में संतसिंह जब अपने घर से बैरंग लौटता है तो देखता है कि एक पंतग कटकर वृक्ष में उलझकर जख्मी हो आई है। पंतग के प्रतीक से रचनाकार ने बहुत सटीक बात कही है।

इन्द्रजीत सिंह की कहानियों में ध्वनियां और संकेत प्रतीकों पें लिए गए हैं। 'मजबूरी' मधुरिमा, प्रतिभा–6 में रूपा को पता है कि वह ऊंची हवेली वालों के द्वार पर दो बार ठ्क ठ्क करेगी तो दरवाज़ा खुल जाएगा फिर कुछ क्षण कपड़े उतारने में और फिर बीस का नोट। दलित वर्ग जीवन लीला का ऐसा भयंकर अंत कि रूपा हरिया के जीते जी अपने जिस्म को देने की पापानुभूति को स्वीकार करने को तैयार नहीं वही रूपा मजबूर होकर हरिया की मृत्यु पर उसके दाहसंस्कार के लिए अपना जिस्म दे देती है। संकेतों के माध्यम से भाषा के नंगेपन को बखूबी छुपा दिया गया है और अपनी बात कहने में भी लेखक समर्थ हो सका है।

हरिकृष्ण कौल कृत 'यक्ष और टोपी' गद्यांजलि में मुख्यपात्र के आंतरिक्त द्वन्द्व को प्रतीकों के माध्यम से खोला गया है। अंत में कहानी सम्पन्न करने पर मुख्य पात्र का यह कहना टोपी कोई मामूली चीज़ नहीं, इज्जत की नीशानी होती है, और अपनी इज्जत बचाने के लिए कौन प्राणी प्रयास नहीं करता"–'यक्ष और टोपी ' के मिथक को खोल देता है और घर की बहु को कुछ कुछ समझ में आने लगता है कि उसके पति अपने चाचा से क्यों इतने आंतकित रहते हैं।

डाक्टर ओम गुप्त ने भी अपनी कहानियों में संकेतों के माध्यम से कथानाकों को खोला है। 'माथे की रेखाएं', प्रिज्मों में बटी किरणें , कहानी में 'नैट' और 'गद्दार' शब्दों के दोधारी अर्थों के आधार पर कुतूहल उत्पन्न किया है और कहानी दिलचस्प बन गई है। इसी संकलन में संकलित सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम्' द्वारा रचित 'तेन्दुआ' कहानी में तेन्दुए का प्रतीक बांधा गया है जो हर समय मुख्यपात्र के मन में बसा उसे आतंकित करता रहता है। इसी संकलन की कहानी एक 'घुटी हुई सांस', जगमोहन कृत, में बरगद के प्रतीक को बहुत अच्छे रूप में प्रस्तुत किया गया है। बरगद के नीचे पनपने वाले पौधें अक्सर धूप और हवा के ठीक तरह से न मिलने पर मुर्झा जाते हैं इसी प्रकार परिवार का मुखिया अगर परिवार के घटकों को स्वतंत्र रूप से जीने नहीं देता तो उसकी छाया में वे अपना अस्तित्व भूल जाएगें।

अनिल सहगल ने अपनी कहानी 'कोहरे में से' में सोच के कोहरे में धूप होने की बात कही है।

महाराज कृष्ण शाह व संजना कौल की कहानियों में भी कहीं कहीं पर हल्के फुल्के प्रतीक उभरते हैं। छत्रपाल की कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक होते है– रौशनी से दूर, टापू का आदमी, गांठदार धागे। बेदराही की कहानियों में प्रतीक सहज ही कथानक के अंश बन जाते हैं। 'चार पैरों वाली लोथ' कहानी इसकी गवाही देती है।

समकालीन कहानियों को बिना प्रतीकों, बिम्बों, संकेतो आदि को अति सहज और सरल भाषा में भी बुना जाता रहा है। कहीं कहीं पर तो यह शिल्प किस्सागोई तक सीमित हो आया है। डा. गंगादत्त विनोद कृत 'दादी', देवदार की छाया तले, और दुर्गादत्त शास्त्री कृत 'प्रायश्चित' 'प्रिज्मों' ,में बटी किरणें', इस शिल्प का उदाहरण कही जा सकती है। सुश्री शकुन्तला सेठ और श्रीमती राज भल्ला की कहानियां भी अति सहज और सरल भाषा लिए हुए हैं। डा. बिमला कुमारी मुंशी कृत 'रूपसी' कहानी किस्सागोई का एक अच्छा उदाहरण है।

क्षण क्षण बदलते हुए भावों, अन्तर्द्वन्द्व, आंतरिक उहापोह और अनेक मनोवैज्ञानिक पहलुओं से दोचीदा पात्रों की अंतर्व्यथा को 'फ्लैशबैक' और पूर्वदीप्ति द्वारा भी इन कहानियों में खोला गया है। रमेश मेहता कृत 'सन्दर्भहीन' आत्म विश्लेषण और भौतिक समय से परे अतीत और भविष्य को एक ही समय अर्थात वर्तमान में पकड़ने का प्रयास किया गया है। अशोक जेरथ की अधिकतर कहानियां पूर्वदीप्ति और फ्लैशबैक शिल्प पर आधारित हैं जब पात्र भविष्य और अतीत को वर्तमान में उलीचते लगते हैं। 'एक दिन' 'घरौन्दा' 'अनजाने क्षितिज' उदाहरण स्वरूप ली जा सकती हैं। छत्रपाल कृत अधिकतर कहानियां मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी गईं हैं। मनोवैज्ञानिक धरातल पर बनते टूटते मानवीय रिश्तों से लेकर वैयक्तिक समस्याओं का ताना वाना मनोवैज्ञानिक है।

इधर समकालीन कहानियों में लोक संस्कृति, आंचलिकता और अपने परिवेश की पहचान बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की जा रही है। राजऋषि शर्मा कृत'गुम हुए वृक्षों', के बीच 'देवदार की छाया तले,' में दसालिए की भूमिका और जंगलों के कटाव की बात की गई है।

अशोक जेरथ कृत 'अपराजेय' ,जम्मू कश्मीर की श्रेष्ठ कहानियां, में 'घराट', पनचक्की, का बनना टूटना और माता वैश्णों के प्रति मुख्य पात्र का नतमस्तक होना आदि आंचलिकता की ओर संकेत करते हैं। अर्जुन रैणा के संग्रह 'केसर के फूल' में झीलें, फूल, नदियां, पहाड़, केसर की क्यारियां आदि कहानियों में मुखरित हुए हैं। छत्रपाल की कहानी 'पिघला हुआ गुस्सा' में आंचलिक धरातल पर उजागर होती वैयक्तिक समस्याओं का यथार्थ रूप उभरा है। ढाबे में नौकर ट्रक ड्राईवरों को खाना खिलाते चुक जाता है और गई रात घर पंहुचता है तो पाता है कि उस की पत्नी बलात्कार की शिकार हो आई है। वह मन मसोस कर रहा जाता है, चाहकर भी अपना गुस्सा नहीं निकल पाता। चीड़ के वन, गांव की पगडंडी आदि आंचलिकता की ओर संकेत करते हैं।

इधर कहानी के शिल्प में कुछ नए प्रयोग भी हुए हैं–मसलन कथोपकथन शैली में कथानक को बुनना और इन्हीं संवादों द्वारा कहानी के उत्स तक पहुंचना। अंलकार द्वारा रचित कहानी 'टूटे हुए रास्ते टूटे हुए लोग', मधुरिमा, प्रतिमा पुष्प 6, में चार पात्रों के संवादों के माध्यम से कथानक आगे बढ़ता हैः

तुम कौन हो! कोई एक पूछता है।

"पहले बहुत था अब सिर्फ पति बन गया हूँ"।

"हां, दिन मेरे साथ रहता है। रात बीच में ही कहीं कट जाती है"

"इसलिए कि रात मेरी नहीं रहती, मेरे सामने ही किसी और की हो जाती है।

कहानी संवादों के माध्यम से ही सम्पन्न होती है

इधर इक्का दुक्का प्रयास कहानी में 'फन्तासी' बुनने के भी हुए हैं। ओम गोस्वामी कृत 'मायावी पेड़' शीराज़ा पूर्णांक 80, एक ऐसी कहानी है जिसमें जानवरों के माध्यम से लेखक की दुगर्ति की गई है। जानवर उसे मौत की सजा देते हैं और उसकी चिता उसके द्वारा लिखी पुस्तकों से सजाई जाती है और उसे फसाने वाला गडरिया और कोई नहीं स्वयं प्रकाशक था पर इस ओर बहुत कम प्रयास हुए हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर कुल भारतीय हिन्दी कहानी के साथ साथ यहाँ के कहानीकार भी चर्चित हुए हैं। सर्वश्री वेदराही, हरिकृष्ण कौल, ओम गोस्वामी, छत्रपाल, अशोक जेरथ, उषा व्यास, अंलकार आदि द्वारा रचित कहानियां देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं सारिका, साप्ताहिक हिन्दोस्तान, धर्मयुग, मधुमती, जागृती हरियाणा संवाद, आजकल तथा हिन्दी के समाचार पत्रों के संस्करणों जैसे नवभारत टाईम्स, दैनिक हिन्दुस्तान, जनसत्ता, दैनिक

ट्रिब्यून, आज, स्वतंत्र भारत , अमर उजाला, दैनिक जागरण आदि में प्रकाशित होती रही हैं और हो रही हैं। अनेक राष्ट्रीय स्तर के संकलनों में भी यहां के कहानीकारों की अनुगूंज सुनाई देती रही है।

समकालीन कहानीकारों में जो अपने परिवेश से पूरी तरह से जुड़े हुए हैं और उसकी अभिव्यक्ति करने में समर्थ हैं में सर्वश्री वेदराही, हरिकृष्ण कौल, ओम गोस्वामीः छत्रपाल, उषा व्यास, अशोक जेरथ, अंलकार, इन्द्रजीतसिंह, रमेश मेहता, संजना कौल, महाराज कृष्ण शाह, बलनील देवम् आदि मुख्य रूप से लिए जा सकते हैं। इधर महिला महानिकारों श्रीमती राज भल्ला, सुश्री शंकुतला सेठ आदि ने भी परिवेश से जुड़ी कहानियां लिखी है पर अभी इनका आकलन बाकी है।

यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि जम्मू कश्मीर की हिन्दी कहानी किसी भी स्तर पर कुल देश की हिन्दी कहानी से पीछे नहीं अपितु शाना व शाना उसके साथ साथ चल रही है जबकि देश की राजधानी में बैठे साधारण कहानीकार देश के प्रबुद्ध कहानीकार माने जाते हैं। यह एक बहुत बड़ी बिडम्बना है।

हिन्दी उपन्यास

जम्मू कश्मीर में हिन्दी उपन्यास पर बहुत कम काम हुआ है। जहाँ कविता, कहानी, निबन्ध आदि में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है वहां उपन्यास के क्षेत्र में बहुत खोजने पर भी इने गिने उपन्यास मिलते हैं। कुल मिलाकर इस ओर स्थिति बहुत गम्भीर है। कारण कुछ भी रहा हो लेकिन यह सच है कि उपन्यास लेखन की ओर यहां के हिन्दी लेखकों की रूचि नहीं रही।

इस प्रदेश के लेखकों द्वारा लिखित उपन्यासों में सर्व प्रथम उपन्यास 'उज्जवल अतीत' लिया जा सकता है जिसका प्रकाशन पांचवे दशक के आसपास माना गया है। जो प्रति मुझे मिली है इसके पहले पन्ने गायब हैं। आचंलिकता के अनेक सोपानों को समेटता हुआ यह उपन्यास सामाजिक दीर्घाओं में पूरा उतरता है। उपन्यासकार बंसी लाल गुप्ता स्वयं पर्वतीय अंचल में बास करते थे। इनका गांव जगांनू , उधमपुर के पास, प्राकृतिक सम्पदा से ओतप्रोत है अतः पर्वतीय सौंदर्य और गांव की मिट्टी की गंध इस उपन्यास में हमें मिलती है। कथानक रोमांस की धारा को पकड़ता हुआ बहता है जिसमें मुख्य पात्र कर्मठ तो है पर साथ ही रसिक भी। एक ओर मेहनत के बल पर वह अपने को उभारता है तो दूसरी ओर गांव के समाज की रूढ़ियां उसे बांधती हैं लेकिन मधुर क्षणों की यादें उसे ताज़ा दम कर आगे बढ़ने को प्रेरित करती रहतीं हैं। सामाजिक दीर्घाओं में फसा हुआ, नैतिक आधार उसे कभी तो आगे बढ़ने के लिए बल प्रदान करता है तो कभी बीच में ही दम तोड़ देता है। दो तीन त्रासदियों को पारकर अन्ततः वह अपना

अभीष्ट पा लेता है। इस तरह कथा का अंत सुखान्त होता है। उपन्यास की भाषा सरल, सहज और प्रवाह लिए हुए है। कथा सूत्र स्वाभाविक है। कहीं पर भी कोई ड्रामा नहीं लगता। अति सहज स्थितियां उभरती हुई जुड़ती हैं और सहज गति से आगे बढ़ जाती हैं। उपन्यास का फलक अनेक उपकथाओं को साथ लेकर चलता है और अन्ततः एक धारा में बहकर सम्पन्न होता है। अनेक छोटे मोटे पात्र अनेक घटनाओं को जन्म देते हुए चुक जाते हैं पर मुख्य कथा ही निरन्तर चलती रहती है।

'प्रतिदिन' शीर्षक से एक उपन्यास मार्च 1968 में प्रकाशित होकर सामने आया। इसकी लेखिका हैं उषा व्यास 'छवि'। यह उपन्यास करूणासिक्त श्रृतु की कहानी है जो अपने बास को खुश करने की हर मुमकिन कोशिश करती है। बचपन में अनाथ हो जाने का दर्द नगरीय परिवेश में बहती कटुता लील लेती है। ईर्ष्या और डाह की अग्नि में झुलसती ताप्ति भाई बहिन के स्नेहिल क्षणों में ज़हर घोल देती है। परिणामस्वरूप श्रृतु अपने प्रिय भाई श्यामल का घर छोड़कर अंधेरे में गुम हो जाती है। कुछ देर के लिए वह विक्की के माध्यम से उसके पिता राजेश में उजाला ढूंढ लेती है पर उसके भाग्य में सुख कहां ! वह देश की बलीवेदी पर बलिदान होते सैनिकों के लिए रक्तदान देने हस्पताल पहुंच जाती है। जहां से वह फिर कभी वापिस नहीं लौटती और मरते मरते भी वह अपने भाई श्यामल को उसकी पत्नी ताप्ती से मिला देती है। अंत आंसुओं से भरा है।

उपन्यास में सबकुछ नाटकीय ढंग से घटता है। श्यामल ताप्ती को पसंद नहीं करता पर ताप्ती उसे चाहती है। वह घर लौटता है तो उसकी शादी की तैयारी होने लगती है। उसी समय उसे ताप्ती का पत्र मिलता है जो आत्मनिवेदन से अप्लावित है। श्यामल किचिंत दुविधा में फंस जाता है। बाद में अपना ध्यान बटाकर शादी की तैयारियों में लग जाता है। शादी हो जाने पर मधुर मिलन की घड़ियों से पहले श्रृतु श्यामल से भाभी की सुन्दरता का बखान करती है तो श्यामल अंतर से आंदोलित हो उठता है और एकान्त क्षणों में जब दुल्हन का अवगुण्ठन खोलता है तो अवाक् रह जाता है– ताप्ती का सुन्दर मुस्कुराता चेहरा उसके सामने प्रकट होता है। इसी प्रकार उपन्यास के समापन के समय फिलमी कहानी की तरह श्यामल, श्रृतु और ताप्ती का मिलन और अनजाने में ही श्रृतु का श्यामल के प्रति निःसर्ग होना सब नाटकीय अंदाज में होता है। उपन्यास के कथानक में कुछ भ्रातियां भौगौलिक स्थितियों को लेकर पनपती हैं– मसलन भीमताल में देवदार वृक्षों का होना, पृ0 135 और हिमाच्छादित पर्वतमालाओं का दिखाई देना तिलस्मी लगता है क्योंकि भीमताल की ऊंचाई सतह समुद्र से मुश्किल से 3200 फुट होगी जबकि देवदार 5000 फुट की ऊंचाई पर दीखने लगते हैं और भीमताल से हिमाच्छादित श्रृंखलाएं कहीं भी दिखाई नहीं देतीं। तकनीकी दृष्टि से भी कहीं कहीं

त्रुटियां दिखाई देती हैं जैसे रक्तदान के समय मात्र कुछेक घन्टों के आराम की जरूरत होती है और निकाले गए रक्त की मात्रा दो तीन दिन में ही शरीर पूरी कर लेता है। इतनी कमजोरी नहीं होती कि शरीर समाप्त हो जाए। अगर कहीं ऐसी स्थिति हो तो डाक्टर रक्त ही नहीं लेते। उपन्यास में अनचाहे सम्वाद कहीं कहीं पर ऊबा देते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य और भावुक स्थितियां खूब उभरीं हैं। पर संस्कृतनिष्ठ भाषा उपन्यासकार की समृद्ध शब्द शक्ति की ओर संकेत करती है। कथानक को आगे धकेलने के लिए बार बार "दिन बीतते रहे" शब्दों का प्रयोग थोड़ा अटपटा लगता है। कहीं कहीं पर किशोरावस्था का भावुकमन अपने पूर्ण वेग के साथ उभर आया है। उपन्यास का गैटअप और आवरण सुन्दर बना है।

फरवरी 1970 में 'उपासना' नाम से एक और उपन्यास सामने आया। इसके लेखक हैं प्रेम भारती। यह उपन्यास भी सामाजिक दीर्घाओं को छूता खुलता है। दहेज प्रथा का उन्मूलन तथा उसके विरुद्ध उभरने वाले स्वरों को इस उपन्यास में मुखरित किया गया है। मुख्यपात्र त्रिलोकी नाथ दहेज प्रथा के विरुद्ध एक युद्ध छेड़ देता है। इस यज्ञ में वह पहली आहुती अपनी डालता है जब रेणु को बिना दहेज के व्याह लाता है। इसके पहले वह अपनी बहन की शादी पर दहेज का कुप्रभाव देख चुका था। उसके पिता उसकी बहन की शादी में बीस हज़ार रु0 दहेज के रूप में देने के लिए अपने कार्यालय से बिना किसी से पूछे उठा लाए थे। इसका सदमा उन्हें इतना था कि लड़की की शादी के बाद उन्होंने ज़हर खा लिया था। त्रिलोकी नाथ आत्म सम्मान से ओतप्रोत एक ऐसा व्यक्ति था जिसे किसी के आगे हाथ फैलाना नहीं आता था। जब सेठ ने उसे उसके पिता जी द्वारा रु0 चुराने की बात कही तो वह किसी तरह उससे पचा गया था। उसने सेठ को वचन दिया था कि वह मेहनत करके सेठ की एक एक पाई चुका देगा। भाई की शादी पर सोमा तो आई पर उसका पति नहीं आया अपितु उसने सोमा को तुरंत वापिस बुला लिया। जब वह खिन्न मन से अपने ससुराल पहुंची तो देखा कि उसका पति अपने दोस्तों के साथ शराब पी रहा है। दीनदयाल अपनी पत्नी को देखकर भड़क उठा और अनाप–शनाप बकने लगा जहां तक कि वह उसके चरित्र पर भी आक्षेप करने लगा उसे साकी बनने और उसके मित्रों की गोद में लेटने के लिए कहने लगा। यह सोमा को कतई स्वीकार नहीं था परिणामस्वरुप उसे घर से निकलना पड़ा। दीनदयाल ने उसे बच्चे नहीं ले जाने दिए। सोमा अपने भाई के घर आ गई। एक दिन सोमा ने अपने भाई और भाभी के सम्वाद सुन लिए, भाभी उसकी आजीविका की बात कर रही थी। यह सोमा को सह्य नहीं था वह घर से भाग खड़ी हुई और एक माली के हाथ में पड़ गई जो उसे खराब करना चाहता थ। उससे भागी तो श्वानपाल के घर कुत्तों की रखवाली करने लगी। यह काम उसे रास नहीं आता अन्ततः वह एक आनाथालय में आश्रय पाती है। वह अपने साथ

श्वानपाल की लड़की सविता को भी ले जाती है और उसका पालन पोषण बड़े मनोयोग से करती है कि वह लड़की कुत्तों के बीच रहकर समेटी हुई कुण्ठाओं को त्याग देती है। दूसरी ओर त्रिलोकीनाथ और रेणु सोमा को ढूंढते हुए थक जाते हैं। त्रिलोकीनाथ देवराज की सहायता से एक अच्छी नौकरी पाकर सुख से रहने लगता है पर वह दहेज विरोधी अभियान नहीं छोड़ता वह अपने मित्र देवराज की शादी बिना दहेज लिए मालती से करवाता है। तीसरी ओर दीनदयाल अपने लड़के को शराबी बना डालता है जो धीरे धीरे व्यसन में पड़कर गलत काम करने लगता है और पाकेटमार बन जाता है। उसकी बहन मुन्नी घर से भाग जाती है और एक गिरोह के हाथ पड़ जाती है जो उसे अंधा बनाकर भीक्षा मंगवाने पर आमादा थे पर बीच में शबु नाम का लड़का गिरोह के मुखिया से लड़ पड़ता है कि इतने में लड़की को बेहोश कर एक बदमाश निकल भागना चाहता है कि उसे पुलिस आ दबोचती है। लड़की को एक वकील अपनी बेटी की तरह पालने लगता है। बाद में वह वकील ही उस गिरोह में मुखिए के रूप में शिबु के माध्यम से पकड़ा जाता है। दूसरी ओर सोमा अपने पति का उद्धार करती है। उसे अपने दोनों बच्चे भी मिल जाते हैं। इस तरह अंत सुखद होता है।

कहीं कहीं पर संवाद बड़े ढीले हैं और भाषणबाजी इन्हें और कमजोर बना देती है। उपन्यास के अंत में सभी को अपने अपने हिस्से का सुख मिल जाता है मानों गुमे हुए सुख लौट आए हों। भावुक स्थितियों में लिखा गया यह उपन्यास पाठकों पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ता।

प्रेम सागर का ही लिखा एक और उपन्यास 'आस्था' इस उपन्यास से पहले प्रकाशित हो चुका था। इस उपन्यास में सामाजिक दीर्घाओं में जासूसी प्रक्रिया पर आधारित कथानक एक दिलचस्प मोड़ लेता हुआ चुक जाता है।

1978 में प्रकाशित 'न टूटने वाले पंख' एक और उपन्यास मानवीय धरातल पर संवेदनात्मक क्षितिज तलाशता दीखता है। इसके लेखक हैं अशोक जेरथ। 1991 में यह दूसरी बार छपकर सामने आया। कहानी एक ऐसे रहस्यात्मक व्यक्ति के आसपास घूमती है जो कभी अपराध जगत के साथ जुड़ा हुआ था वस्तुतः उसे अपराध जगत की ओर धकेल दिया गया था। उसका उद्धार गांव का मुखिया करता है और उसे अपराध जगत से विमुखकर सामाजिक कार्यों की ओर उन्मुख कर देता है। परिणाम स्वरूप उसकी ध ारणाएं बदल जाती हैं और वह हर गिरे हुए व्यक्ति के उत्थान में लग जाता है। धीरे धीरे उसका कारोबार भी बढ़ने लगता है जिसे वह उन्हीं लोगों में बांट देता है। जो कभी समाज द्वारा नकारे गए थे। पर अब वे सम्मानपूर्वक जीवन जी रहे थे। उसके जीवन के बारे में वे लोग कुछ नहीं जानते कि अचानक एक दिन एक दुर्घटना में वह ज़ख्मी हो जाता है और उसकी डायरी के माध्यम से परतें खुलने लगतीं हैं।

उपन्यास भावुक स्थितियों पर बुना गया है और अति आदर्शवाद यथार्थ को उभरने नहीं देता। अपने ही उपन्यास को जब एक उम्र के बाद उपन्यासकार पढ़ता है तो उसे लगता है कि किशोरावस्था की भावुकता इसमें प्रवेश पा गई है।

1974 में प्रकाशित 'शिकायत' उपन्यास विजय शर्मा द्वारा रचित एक सामाजिक उपन्यास है। बिछलते समाज का एक यथार्थ ख़ाका इस उपन्यास के कथानक के माध यम से उभरा है। पर भावुक स्थितियां हावी होकर इसके कथानक को कमजोर बना देतीं हैं।

1984 में प्रकाशित 51 पृष्ठीय एक उपन्यासिका 'यार का सपना' नाम से सामने आई। इसके लेखक हैं सुरेश दूबे शास्त्री । वही किशोरावस्था की भावुकता के तानेबाने और समाज के उत्थान के लिए कटिबद्ध पात्र और कटोरी भर कर आंसू।

अस्सी के दशक में एक और लघु उपन्यास 'धरती बोलती है' प्रकाशित होकर सामने आया । इसमें प्रकाशन की तिथि नहीं दी गई। श्रीमती सुदर्श त्रिलोचन द्वारा प्रकाशित यह लघु उपन्यास आरती नामक नायिका के आसपास घूमता है जो अजित की व्याहता है। अजित अपने व्यक्तित्व के प्रति अहंमवादी चरित्र है जो दूसरों की अस्मिता को अपने दंभ से कुचलता है। आरती की संवेदना के प्रति वह अनभिज्ञ है पर आरती भारतीय नारी की गरिमा बनाए रखती है। आरती के दो बच्चे हैं जों पिता के व्यवहार से क्षुब्ध हैं पर कुछ कर नहीं पाते। बेटी होस्टल में रहती है जहां उसका संपर्क राकेश नामक एक लड़के से हो जाता है। वह उससे प्यार करने लगती है। तो दूसरी ओर उसका भाई राजीव पिता के प्रति विद्रोही हो जाता है। अजित इन सब की परवाह न कर शराब पीता है और घर में आतंक फैलाता है। वह जुए में रेणु के गहने होम कर डालता है जो उसने अपने इलाज के बहाने रेणु से लिए थे। बाद में वह सच में ही बीमार हो जाता है और बच्चे उसकी परवाह नहीं करते पर आरती उसकी खूब सेवा करती है। उसकी लड़की रेणु राजीव से शादी करना चाहती है पर अजित को यह स्वीकार नहीं फलतः दोनों अदालत में जाकर शादी कर लेते हैं। आरती अपनी लड़की रेणु से मिलने को लालायित है और अजित को उसे ढूंढकर बुला लाने के लिए कहती है। अजित उसे लिवा लाने की बात कहकर जब शाम को लौटता है तो नशे में धुत होता है और बीमार पड़ जाता है। आरती एक बार फिर अजित की सेवा में लग जाती है और अजित को पहली बार आरती की संवेदनाओं का अहसास होता है वह उसे अपने वक्ष में छुपा लेती है। उपन्यास के संवाद कहीं कहीं पर चुस्ती लिए हुए हैं। पर कथानक अनेक बार बिखर जाता है और पाठकों को तारतम्य पकड़ने के लिए प्रयास से शब्दों को बीनना पड़ता है। 96 पृष्ठीय इस उपन्यास का गेट अप अच्छा बना है।

इसी श्रृखंला में दीदार सिंह दवारा रचित हिन्दी उपन्यास 'परतें' सम्भवतः 1994 में प्रकाशित होकर सामने आया। इस उपन्यास में भी इसके प्रकाशन की तिथि नहीं दी

गई है। तथापि इनकी अन्य पुस्तकों में दिए गए ब्योरों के माध्यम से इस उपन्यास के प्रकाशन की तिथि को निश्चित जा सकता है।

उपन्यास का मुख्य पात्र अनेक अनुभवों को बटोरता हुआ, रोमांस के अनेकायामी पुलों को पार करता हुआ अंततः गृहस्थ हो जाता है। मुख्यपात्र यानिकि विनोद ने अपनी जिंदगी में अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। वह अनेक स्थानों पर अपनी आजीविका के लिए प्रयत्नशील रहा है साथ ही उच्चशिक्षा के लिए भी यत्न करता रहा है। अर्थात एक मेहनती और महत्वकांक्षी युवक की दास्तां। दूसरी ओर वह नारी प्रिय भी है। अनेक महिलाओं के साथ एक एक कर जुड़ता है– आशा, उसकी सहेली अरुणा, रेखा, जूही, सपना आदि सभी को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि वह उसी से प्यार करता है। वस्तुतः वह हृदय से साफ है पर लड़कियों को देखकर वह अवश हो जाता है। कईयों की वह सहायता करता है और कईयों से वह आर्थिक सहायता लेता है। हर लड़की की अपनी दास्तां है– मसलन सपना का कहना है हर शक्स ने उसे लूटना चाहा है अतः "जिंदगी में और कुछ खेलने के लिए नहीं रह गया था। मुझे जिंदगी से, अपने आप से और दुनिया से नफरत हो गई है।" उपन्यास के अंतिम पृष्ठों में विनोद का यह कहना "अजीब संयोग है–कोई सच्चा प्यार पाने को तरसता है तो कोई लुटाने को। हम गलत स्थान पर ग़लत लोगों से मिल जाते हैं। जब हम ठीक स्थान पर पहुंचते हैं तो हम बहुत कुछ लुट–पुट चुके होते हैं।" इस उपन्यास का उत्स कहा जा सकता है। यह विडम्बना इस उपन्यास के हर पात्र के साथ जुड़ती हुई है। इसी प्रकार मुख्य पात्र की सोच "ऊपर से हम कितने ही आदर्शवादी अथवा पुरूषार्थी बने फिरें लेकिन भीतर से हम सभी स्वार्थी हैं।" वस्तुतः मुख्यपत्र की आंतरिक कुण्ठा को उजागर करती है। उपन्यास के पन्नों में उपन्यासकार की सोच और जीवन दर्शन को पकड़ा जा सकता है–"वासना भी प्यार का एक रूप है, अपितु मैं तो कहूंगा कि एक सशक्त रूप है। भले ही आप इसे स्थूल रूप कह लें"। पृ0 21

उपन्यास यद्यपि भावुक स्थितियों से गुजरता हुआ अनेक अस्थाई जोड़ों के नेह को सहलाता हुआ आगे बढ़ता है पर जीवन की कड़वी सच्चाईयों की ओर भी उपन्यासकार ने संकेत किए हैं। इसके पात्र हाड़ मांस के पात्र हैं जो अनेक कुण्ठाओं में से गुजरते हुए अपना उत्स तलाशते हैं। कोई भी पात्र आदर्श का चोला पहनकर यथार्थ से अलग होकर भाषण नहीं देता यह इस उपन्यास की सबसे बड़ी खूबी कही जा सकती है। कथानक घटनाओं के माध्यम से खुलता है और उन्हीं के माध्यम से प्रवाह पाता है।

इन उपन्यासों के माध्यम से यदि हम जम्मू कश्मीर उपन्यास साहित्य का विश्लेषण करें तो लगेगा कि अभी हम कुल हिन्दी उपन्यास धारा से बहुत पीछे हैं। वहां तो हर नया साहित्यिक उपन्यास नई सोच और नई शैली को लेकर आता है। भावुकता बहुत पीछे छूट गई है, वहीं पर उभरती है जहां इसकी निहायत जरूरत हो। हमारे यहां आसुओं

से कई कटोरे भर गए हैं आईए कहीं दूसरे भाव भी तराशें।

कश्मीर में हिन्दी उपन्यास पर कार्य हुआ हो इसके बहुत कम ब्योरे मिलते हैं। कुछ रचनाकार कश्मीर में रहते थे अब प्रवासी हो आए हैं। ऐसे दो नाम लिए जा सकते हैं जिन्होंने उपन्यास साहित्य पर कार्य किया हो। विमला रैणा कृत 'प्यासा पानी' नामक एक सामाजिक उपन्यास का संदर्भ, विश्व के मानचित्र पर हिन्दी–विश्व हिन्दी सम्मेलन की स्मारिका 1983, मिलता है पर बहुत खोजने पर भी कोई प्रति नहीं मिली।

इस क्षेत्र में दूसरा नाम है चंद्रकान्ता का। चंद्रकांता एक प्रतिष्ठित कथाकार हैं। इनकी कहानियां और उपन्यास अंश अनेक राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और चर्चित भी। चंद्रकान्ता द्वारा रचित दो उपन्यासों के ब्योरे मिलते हैं।

बाकी सब खैरियत है :– संस्कारगत संयुक्त परिवारों में व्याप्त घुटन और एक दूसरे से कटे, अलग, अकेले पात्रों का कथाफलक लिए उपन्यास 'बाकी सब खैरियत है' 1983 में प्रकाशित होकर सामने आया। आर्थिक दृष्टि और संस्कारों के भार को झेलती एक पीढ़ी और उससे विद्रोह करती दूसरी पीढ़ी की कथा भी समानान्तर चलती है। प्रौढ़ पात्र हर स्थिति के साथ समझौता करते दीखते हैं जो युवापीढ़ी को तर्कसंगत हीं लगता। श्रुता का मां से प्रश्न, "यह सब करने के बाद भी क्या तुम ऐसे व्यक्ति का नाम बता सकती हो जिसे तुमसे शिकायत नहीं है। अपनी पहचान खोकर दूसरों के सुझाए रास्ते पर तुमने अपने साथ और हमारे साथ भी अन्याय किया है।" नई पीढ़ी का इस द्वंद्व में से निकलने का संकेत है तो दूसरी ओर उसे अपनी और अपने वजूद की भी चिंता है, "मुझे ऐसा घर चाहिए जहां मेरी आइडेंटटी बनी रहे" श्रुता के ही नहीं आज की नई पीढ़ी के भी यही प्रश्न हैं। नई पीढ़ी इतनी चेतनशील है कि समझौता करने को तैयार नहीं। मैं समझता हूं कि उपन्यास का केन्द्रीय फलक इसी धूरी पर चलता है। चंद्रकान्ता द्वारा रचित एक ओर उपन्यास *'ऐलान गली जिन्दा है'* भी आर्थिक और सामाजिक वर्जनाओं का जीता जागता एक ख़ाका है जिसमें संकेतो द्वारा आज प्रदूषित हो आई व्यवस्था और इसके कारिदों पर चोट की गई है।

क्षेमलता वाखलू : राजनिति के क्षेत्र के साथ साथ साहित्यिक क्षेत्र के साथ जुड़ी हुई क्षेमलता वाखलू द्वारा लिखी अभी तक तीन चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकीं हैं। 'कश्मीर की धरती', 'झील और कमल' आदि इधर इन्द्रा पेशन का भी एक उपन्यास 'तडपते पंछी' नाम से छपा है। 'तड़पते पंछी' एक सामाजिक उपन्यास है– उस समाज का ख़ाका जिसके घटक कुण्ठाओं और अभावों में पलते हैं और अपने आसपास के वातावरण से एकदम उदास हैं। कथानक में कोई चौंकाने वाली बात नहीं। सीधी सादी भाषा में लिखा गया यह उपन्यास चर्चित क्यों नहीं हुआ? एक प्रश्न चिन्ह छोड़ता है।

इस अध्याय को समेटने से पहले शीराज़ा के उपन्यास अंक, पूर्णांक 53, पर एक नजर डालना जरूरी हो जाता है। इस अंक में 'न आने वाला कल' 'पत्तों की बिरादरी' और 'जिंदगीनामा' जैसे चर्चित उपन्यासों का आकलन सुधि कथा समीक्षकों द्वारा किया गया है। इसी के साथ एक परिचर्चा, 'आज का हिन्दी उपन्यास—दशा, दिशा औ सम्भावना' भी संकलित है। इस बहस में आमंत्रित श्रोताओं के सामने डॉ0 ओम गुप्त, डॉ0 राजकुमार, डॉ0 अशोक जेरथ और निर्मल विनोद ने भाग लिया था और बहस के बाद आंतत्रित श्रोता भी इस बहस में प्रतिभागी थे। बाद में इसी का लिप्यंतरण कर इसे प्रकाशित किया गया। इसी अंक में तीन उपन्यास अंश भी संकलित हैं। कुसुम अंसल कृत 'अपनी अपनी यात्राएं' छत्रपाल कृत 'एक घर, दो घर' और डा0 अशोक जेरथ कृत 'एक नई दुनिया' में से स्थानीय लेखकों के उपन्यास अंशों पर ही हम बात करेंगे।

छत्रपाल कृत 'एक घर, दो घर' उपन्यास अंश में सामाजिक दीर्घाओं में उभर रही भटकन और वैयक्तिक कुण्ठाओं के साथ साथ सामूहिक चेतना के टकराव की बात कही गई है। ठाकुर साहब के यहां केशी आंटी आने लगी थी तो मुख्यपात्र, ठाकुर साहब के बेटे, की मां का चेहरा बुझता चला गया था। वह उस छोटी उम्र में भी समझने लगा था कि केशी आंटी का उनके यहां आना ठीक नहीं अगरचे केशी आंटी उसे रिझाने के लिए मिठाईयां और खिलौने लातीं थी। एक दिन उसने आंटी द्वारा लाया गया खिलौना जमीन पर पटक कर तोड़ दिया और उसे उनके यहाँ न आने के लिए कहा तो उसकी जमकर पिटाई हुई पर वह रोया नहीं अपितु सब सहता गया। वह बचपन में ही परिपक्व हो आया था। कहीं कहीं पर कथानक को संकेतों के सहारे खोला गया है।

डा0 आशोक जेरथ कृत 'नई दुनिया' उपन्यास अंश में बहुत अकेले पड़ गए आदमी की व्यथा कथा है जो अपने घर से विस्थापित हो चुका है और निस्सहाय सा अकेले ही ज़िन्दगी काट रहा है जो उसे बोझ सी लगती है। वह चाहता है कि कोई उसके साथ जुड़े और उसका दर्द बांटे पर सभी पात्र जैसे अपने अपने घरौंदे की तलाश में एकांत में विचरने लगते हैं। कब्रिस्तान का निर्जन वातावरण, वृक्षों से अलग हुए पत्तों का चरमराना और सन्नाटे का पक्षियों के चहचहाने से टूटना आदि बिम्ब मौन और अकेलेपन को और गहरा देते हैं और मृत्युबोध में से जीवन का अहसास होने लगता है।

शीराजा पूर्णांक 112 में चंद्रकांता कृत एक और उपन्यास अंश 'अपने अपने काणार्क' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। कथानक उड़ीसा के सम्बलपुर, चिलका, भुवनेश्वर आदि के भौगोलिक धरारतल को पकड़ता हुआ सामाजिक परिवेश में सेंध लगाता वैयक्तिक उहापोह में सिमट जाता है जहां कुनी नामक एक पात्रा सिद्धार्थ से जुड़ी है जो जार्डन गया हुआ है। एक वर्ष हो आया उसे उसका कोई पत्र नहीं मिलता। वह बच्चों के साथ चिलका में पिकनिक मनाने आई है पर वह वहां बच्चों के बीच रहते हुए भी मन

से सारे परिवेश से कटी सिद्धार्थ से जुड़ जाती है और उसकी सोचों के साथ साथ ही कथानक खुलता चला जाता है। दोनो एक दूसरे के होना चाहते हैं पर नियतिवश वे एक दूसरे से भौतिक तौर पर सैंकड़ों मील दूर हो गए हैं। वहीं पर कुनी को प्रियंवद मिलता है जो उन दोनों में एक सेतू था। प्रियवंद के माध्यम से उसे सिद्धार्थ के बारे में ढेर सी सूचनाएं मिलतीं हैं कि लड़ाई के दौरान, एक दुर्घटना में उसकी टांग जाती रहती है और यह कि हस्पताल में उसकी सेवा नासिरा नामक नर्स खूब मनोवेग से करती है फलस्वरूप दोनों करीब आ जाते हैं और दोनों शादी कर अपना घर बसा लेते हैं। सब सुनकर कुनी के भीतर कुछ ढरकने लगा था और उसे लगा है कि उसका संसार बदल गया है और उसके मनोमस्तिष्क पर छाया सिद्धार्थ अब उसके लिए एक खालीपन बो गया है। टूटते रिश्तों की एक आम सी कहानी लिए यह उपन्यास चुक जाता है।

बस इतना ही है सफर जम्मू कश्मीर के उपन्यास साहित्य का।

इस अध्याय के सम्पन्न करते करते दो एक बातें हिन्दी में अनूदित उपन्यासों की भी होनी चाहिए। ओ0पी0 शर्मा सारथी कृत 'नंगा रुक्ख' (डोगरी) उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर इसी नाम से डा0 अशोक जेरथ द्वारा किया गया। इसी प्रकार नरसिंह देव जम्वाल कृत 'सांझी धरती बखले मानु' 'धरती अपनी अपनी' नाम से हिन्दी अनुवाद कर उपन्यास के लगभग 400 पन्नों को 200 पन्नों में लाकर ने केवल न्याय ही किया अपितु इन पंक्तियों के लेखक द्वारा किया गया यह अनुवाद चर्चित भी हुआ। लघु उपन्यासों के रूप में हिन्दी में ओ0 पी0शर्मा द्वारा दो एक प्रयास हो चुके हैं। इनमें से 'उलटा आदमी' प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई उपन्यासिका संदर्भ के तौर पर ली जा सकती है।

यात्रावृत्त एवं रिपोर्ताजः

साहित्य की अनेक विधाओं में एक यात्रावृतांत या यात्रा वृत्त भी है– यद्यपि इसे निबंध के अंतर्गत लिया जा सकता है लेकिन यात्राएं करते हुए और उन्हें बाद में स्मरण कर कलमबद्ध करते एक विशेषप्रकार की मानसिकता में से गुजरना पड़ता है जो नितान्त वैयक्तिक होती है। इसके दर्द को कुछ लोग ही जी पाते हैं अन्यथा बहुत महत्वपूर्ण स्थलों के बीच में से गुजरते हुए भी अकसर लोग सामान्य स्थिति में होते हैं नित्यकर्म की तरह इस स्थिति को भी झेल लिया जाता है। आम जिंदगी के सामान्य दिन की तरह पर संवेदनशील हृदय के लिए ये यात्राएं अनेक अनुभवों का स्रोत साबित होती हैं।

इस प्रदेश के हिन्दी लेखकों द्वारा छुटपुट प्रयास संस्मरणों के माध्यम से इस ओर हुए हैं– 'रिर्पोताज' के माध्यम से ज्योतीश्वर पथिक, शिव रैना, आदि लेखकों ने इस ओर प्रयास भी किए है लेकिन पुस्तकाकार में इस ओर कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं है। जो दो एक प्रयास इस ओर हुए हैं वे नाकाफी है। 1991 में प्रकाशित *'रजतशिखरों'* *के*

"रूपहले स्वर" के माध्यम से डा0 अशोक जेरथ द्वारा हिमालयी प्रदेशो की यात्राओ पर आधारित 200 पृष्ठों की 22 X18 / 8 साईज में पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में कुमाऊं गढ़वाल के हिमालयी क्षेत्रों की यात्रा करके क्षेत्रीय संस्कृति को उजागर किया गया है। इस कृति में आठ बहुरंगीय और लगभग पचास के करीब एक रंगीय चित्र भी संकलित हैं जो इसे प्रामाणिक कृति बनाते है। पुस्तक की छपाई, कागज तथा आवरण बहुत सुन्दर बने हैं। पुस्तक का विमोचन श्री शंकर दयाल शर्मा ,वर्तमान राष्ट्रपति के करकमलों द्वारा फरवरी 1992 मे दिल्ली में किया गया था जब हिन्दी के जानेमाने साहित्यकार उपस्थित थे। यह पुस्तक उतरांचल क्षेत्र की संस्कृति की तस्वीर प्रस्तुत करती है। इसकी समीक्षा देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं तथा पत्रों में हो चुकी है। पुस्तक के सम्पादकीय में लेखक ने अपनी यात्राओं का संक्षिप्त विवरण लिखा है: —"उत्तराखण्ड के इस पर्वतीय क्षेत्र में गत दो वर्षो में अनेक स्थितियों में लोगों एवं दुरूहताओं ने प्रभावित किया है। ये चहुंमुखी प्रभाव मेरे व्यक्तित्व को छीलते गए हैं। माणा यात्रा के दौरान जोशीमठ तथा लगभग 10000 फुट की ऊंचाई पर स्थित बर्फ की खेलों का घर औली. ....जागेश्वर में शिवरात्री एवं सावन में पार्थिव पूजा, द्वाराहाट में बैसाखी पर स्यालदे का अद्भुत मेला, देवी धूरा में बाग्माल तथा अल्मोड़ा में नंदादेवी के मेंलों का अद्भुत मंजर और दशहरे के दौरान रात रात भर जागकर पुतलों का निर्माण करते युवाओं के दल मानो सभी कुछ जीवंत न हो कर परी कथाओं सा है।"

पीछा करते सफर: यात्राओं पर लिखे गए संस्मरण के रूप में एक और कृति श्रीमती शामा की पीछा, 'करते सफर' 1992 में प्रकाशित हुई है। 103 पृष्ठीय इस पुस्तक में 15 यात्रा संस्मरण संकलित हैं। इनका फलक बड़ा विशद है— एक ओर तो लंदन, रोम, बैंकाक, स्टाकहोम, स्वीट्ज़रलैंड़, न्यूयार्क, नाइजीरिया, म्यूनिक आदि के पाश्चात्य देशों की झलकियां हैं तो दूसरी ओर अमरनाथ, लेह—लद्दाख, श्रीनगर, कश्मीर घाटी तथा माहबलिपुरम् आदि प्रदेशों की भारतीय परिवेश में ढली झांकियां हैं। भाषा सहज एवं प्रवाहमान है जिसमें सफर के तारतम्य में कहीं कहीं पर वैयक्तिक चिंतन उभर आता है जो स्वाभाविक है। लंदन की यात्रा करते लेखिका अनायास अपने देश की यादों के साथ जुड़ जाती है— "हम कहीं भी रहें अमरीका, योरुप या अफ्रीका, अपने देश की माटी का मोह हमारी आत्मा से लिपटा ही रहता है।" पृ0 27; इसी प्रकार 'स्टाकहोम की कुछ शामें' संस्मरण में लेखिका तुलनात्मक दृष्टि से सोचने लगती है— "हम हिन्दुस्तानियों को अपनी त्वचा के कारण कितना हीन भाव है और इन्हें हमारे गेहुएं रंग के प्रति कितना चाव है। जो इसके पास है वह उसमें खुश नहीं है— उसी की तलाश" पृ0 35

इन यात्रा संस्मरणों के बहाने विभिन्न देशों की संस्कृति इतिहास, भूगोल और दर्शनीय स्थलों की चर्चा की गई है जिससे उनके बारे में विशद जानकारियां पाठकों को

उपलब्ध होतीं हैं।

संस्मरण पर बहुत कम कार्य हुआ है। छुटपुट प्रयास इस ओर किए गए हैं पर नाकाफी है। डॉ0 आदर्श कृत 'कश्मीर में सात दिन,' शीराज़ा पूर्णांक 105, कश्मीर में आयोजित भाषा शिविर में भाग लेने गए संस्मरण इसमें समोए गए हैं।

साक्षात्कार

साहित्य की एक विधा साक्षात्कार भी है। वस्तुतः यह विधा आकाशवाणी के कार्यक्रमों की एक सशक्त माध्यम है जिसका आधार बनाकर विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत अनुभवी विद्वानों के वैयक्तिक और कार्यक्षेत्र में हुए कार्य की वास्तविकताओं, कमियों , उपलब्धियों और संवेदनाओं को श्रोताओं अथवा पाठकों के सामने उजागर करती है।साक्षात्कार के विभिन्न पहलू नजर में रखने पड़ते हैं। यदि किसी व्यक्ति की,, किसी क्षेत्र में उपलब्धि को उभारना हो तो व्यक्ति विशेष द्वारा उस क्षेत्र में हुए कार्य को देखते हुए प्रश्नों के माध्यम से साक्षात्कार को उस स्तर तक ले जाना पड़ता है। एक पहलू यह भी है कि क्षेत्र विशेष में कार्यरत व्यक्ति के अनुभवों एवं उस क्षेत्र में ही रहे कार्य की सूचना देनी जैसे साहित्य, विज्ञान, स्थापना, कला, लोक संस्कृति आदि। लेकिन साहित्य में साक्षात्कार अधिकतर वैयक्तिक उपलब्धियों और व्यक्ति विशेष को लेकर ही हुए हैं।

इस ओर कोई विशेष कार्य इस प्रदेश में नहीं हुआ। हां छुटपुट प्रयास अवश्य हुए हैं। हिन्दी साहित्य मंडल की पत्रिका मधुरिमा में एक स्थाई स्तम्भ ही साक्षात्कार को लेकर था जिसमें स्थानीय चर्चित साहित्यकारों से भेंट वार्ता कर उनकी रचना प्रक्रिया के साथ साथ प्रदेश की साहित्यिक गतिविधियों को आंका जाता रहा है। इन पंक्तियों के लेखक द्वारा ऐसी दो भेंट वर्ताएं की गईं हैं एक डोगरी साहित्य के चर्चित साहित्यकार पद्म श्री राम नाथ शास्त्री से, प्रतिभा पुष्प 13 जनवरी, 1973, और दूसरी सुतीक्षण कुमार आनन्दम् से जो स्थानीय हिन्दी कवि हैं। उसी प्रकार योजना में पत्रिका के सम्पादक श्री शिवरैण ने पैन्थल के कविरत्न वैधराज से भेंट वार्ता कर उनका साक्षात्कार प्रकाशित किया । पर ये छुटपुट प्रयास थे। डॉ0 गंगादत्त विनोद ने इस ओर एक प्रयास किया था हिन्दी के विभिन्न विद्वानों, कवियों, समीक्षकों और प्रबुद्ध बुद्धिजीवियों से भेंटवार्ताओं के माध्यम से। उनकी पांडुलिपि इन साक्षात्कारों को लेकर 1975–76 में तैयार हो गई थी और वह इन्हें मंडल की गोष्ठियों में सुनाया करते थे। पद्म भूषण डॉ0 सिद्धेश्वर वर्मा, प्रख्यात हिन्दी लेखक विश्णुप्रभाकर, प्रख्यात कवि अज्ञेय आदि से इन पंक्तियों के लेखक की भेंट वार्ताएं प्रसारित और प्रकाशित हो चुकी हैं। दैनिक कश्मीर टाईम्ज़ के पन्नों पर सुश्री आशा अरोड़ा ने स्थानीय डोगरी के चर्चित साहित्यकारों से भेंटवार्ता कर क्रम से अनेक साक्षात्कार प्रकाशित किए। इनमें प्रो0 रामनाथ शास्त्री, प्रख्यात डोगरी कवि वेदपाल दीप,

मोहन लाल सपोलिया, डोगरी के गद्यकारों में प्रो0 नीलाम्बर देव शर्मा , प्रो0 मदन मोहन शर्मा, श्री ओ.पी.शर्मा, श्री विश्वनाथ खजूरिया और आकाशवाणी जम्मू की प्रसिद्ध आवाज महमूद अहमद से भेंट वार्ताएं दैनिक कश्मीर टाईम्स के रविवारीय संस्करण में छपती थीं और जम कर चर्चा होती थी। बाद में अनेक भेंटवार्ताएं इतनी विवादस्पद हो गई कि सम्पादक महोदय ने कुछ समय के लिए इन्हें रोक दिया। पर ये भेंटवार्ताएं चर्चा का विषय रही हैं।

श्रीमती पदमा सचदेव ने इस ओर निरन्तर प्रयास किया है। इधर उनकी दो पुस्तकें बुद्धिजीवियों, कलाकारों, साहित्यकारों और शीर्षस्थ नेताओं के साथ किए गए साक्षात्कारों पर आधारित प्रकाशित हुई हैं–

दीवानखाना : 1987 में राजकमल द्वारा प्रकाशित यह सुरुचिपूर्ण पुस्तक 15 व्यक्तियों को उन से किए गए साक्षात्कारों के माध्यम से उजागर करती है। जिनमें सर्वश्री अमृत लाल नागर, हरिवंशराय बच्चन, राजेन्द्र सिंह बेदी, इस्मत चुगताई, रामधारी सिंह दिनकर, अमृता प्रीतम, कजलवाश और इब्वे इंशा जैसे प्रतिष्ठित कलमकार हैं तो पं. रवि शंकर, उस्ताद अल्लारक्खा, सितारादेवी, लता मंगेशकर, पं. शिवकुमार शर्मा और रेशमा जैसे संगीत से जुड़े कलाकार तथा पत्रिकारिता में प्रतिष्ठित पत्रकार मुल्कराज सराफ तथा राजनीतिज्ञ शेख अब्दुला के अंतरग क्षणों को उलीचा गया है। वस्तुतः से सब साक्षात्कार नहीं दीखतें अपितु आत्मीय हो जाने की प्रक्रिया में ये क्षण घुलते से प्रतीत होते हैं जहां कोई औपचारिक प्रश्न नहीं अपितु बहुत सहज भाव से सब कुछ स्वयं ही प्रवाहमान हो जाता है। पाठक मुग्ध सा इन क्षणों को उलीचता आगे बढ़ जाता है। एक क्षण के लिए भी यह ख्याल नहीं आता कि हम किसी के साथ भेंट वार्ता करनें में मसरूफ हैं।

इन साक्षात्कारों के माध्यम से इन कलाकारों, संगीतज्ञों और साहित्यकारों के वे क्षण मुखरित हुए हैं कि शायद उनकी जीवनी में भी कभी उजागर न होते और पाठकों को वैयक्तिक सम्बंधों के साथ साथ आंतरिक अनुभूतियों तक के दर्शन स्वतः ही हो जाते हैं। इन साक्षात्कारों की यही सबसे बड़ी खूबी भी है।

मितवाधरः इसी सिलसिले की दूसरी कड़ी है 'मितवा घर'। इस ओर रचनाकार ने अपने वक्तव्य में संकेत भी दिए हैंः–

'दीवानखाना' में अतीत की बावड़ी में कईयों ने झांका है। उन्हीं की हौसला–अफजाई से मैं अब उन्हें मितवाघर में आने का निमंत्रण देती हूँ.................ये संस्मरण मेरे लिए वो रास्ते हैं जिन पर मैं अपने पात्रों के संग चली हूँ" ।

मितवा घर में कुल चौदह साक्षात्कार हैं–विविधा को लिए हुए । इनमें साहित्यजगत

के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर हैं– महादेवी वर्मा , अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार, भारती, दीना नाथ नादिम तो शरण रानी, आशा भौंसले जैसे कला साधक भी हैं और बेगम शेख अब्दुल्ला और यशोराज्य लक्ष्मी सरीखी महिलाएँ भी हैं जिन्होंने राजनीति के क्षेत्र में खिलौनों की भांति स्वरूपों को बनते टूटते देखा है पर वे मौन दर्शक रहीं हैं अपने स्नेहीजनों की ख्याति का एक अंग मात्र पर उस सारी प्रक्रिया में उनका योगदान अति प्रबल रहा है जो संसार नहीं जानता। बहुत आंतरिक क्षणों को पद्मा जी ने अपने लेखन के माध्यम से संजोया है। कवितामय तो जीवन उन्होंने पाया ही है पर जिस सहजता से इन प्रबुद्ध व्यक्तियों, राजनीतिज्ञों और कलाकारों को अपने आंतरिक जीवन में झांकने के लिए मजबूर किया है यह उन्हीं के समर्थ प्रयास से सम्भव हो सका है। पद्मा जी का यह प्रयास हिन्दी जगत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण कला जगत के लिए एक स्तुत्य प्रयास है इसमें कोई संदेह नहीं है।

नीलजा के अंक दस, दीनानाथ नादिम अभिनन्दन ग्रंथ, में कश्मीर के चर्चित कवि दीनानाथ नादिम से किए गए दो साक्षात्कार प्रकाशित हैं। 'हरेक को हंसता हुआ देख' शीर्षक से श्री जफर अहमद ने दीनानाथ नादिम से उनकी रचनाप्रक्रिया पर बातचीत की थी। इसी प्रकार 'वितस्ता के समान शाश्वत जीवन में विश्वास', शीर्षक के अंतर्गत प्रो. चमन लाल सप्रू ने कश्मीरी कविता पर बात चीत की थी।

'साहित्य में शाश्वत की पहचान'..........शीर्षक के अंतर्गत (शीराज़ा) डॉ0 आदर्श द्वारा बंगला के प्रसिद्ध एवं चर्चित उपन्यासकार के साथ किया गया साक्षात्कार प्रकाशित किया गया है। इसमें साहित्यिक दृष्टि से लेखक का कृतित्व तो उभरा है पर व्यक्तित्व का एक पक्ष– उनका आंतरिक जीवन खुला नहीं है। पद्मा के साक्षात्कारों में यह खूबी थी जो इस साक्षात्कार मे नदारद है।

अनुवाद साहित्य :

किसी भी भाषा के साहित्य की स्मृद्धि के लिए यहां उस भाषा में लिखा गया साहित्य बहुत आवश्यक हो जाता है वहीं पर अन्य भाषाओं में लिखे गए अन्यतम साहित्य का रूपान्तरण एवं अनुवाद एक अच्छा आधार बन सकता है। जम्मू कश्मीर प्रदेश की तीन प्रमुख इकाईयों कश्मीर, जम्मू और लद्दाख की अपनी भाषाऐं हैं। कश्मीर में कश्मीरी, जम्मू में डोगरी और लद्दाख में लद्दाखी भाषाएं बोली जाती हैं और इन भाषाओं का अपना स्मृद्ध साहित्य भी है। इन भाषाओं के साथ साथ इस प्रदेश की राज्य भाषा उर्दू है जिसमें प्रचुर साहित्य रचा गया है। इन भाषाओं में रचे गए साहित्य को अनूदित कर देश के पाठकों तक पहुंचाने का श्रेय यहां के हिन्दी लेखकों को जाता है।

श्री वेद राही के संपादन में राज्य के सूचना विभाग की हिन्दी पत्रिका 'योजना' में

एक स्तम्भ निरन्तरता लेकर चला जिसके अंतर्गत डोगरी, कश्मीरी और उर्दू में रचे जा रहे अन्यतम साहित्य का अनुवाद छापा जाता था। उर्दू के श्रेष्ठ कहानीकारों, श्री मोहन यावर, श्री पुष्कर नाथ, श्री ठाकुर पुंछी, श्री कृष्ण चन्द्र, मालिक राम आनन्द आदि और दूसरे रचनाकारों, श्री हकीम मंजूर, प्रो० जगन्नाथ आजाद, श्री अर्श सहबाई, श्री आबिद मनावरी तथा कश्मीरी के श्रेष्ट रचनाकारों , श्री अली मु० लोन, हृदय कौल भारती, श्री नादिम, महजूर, श्री गुलाम रसूल नाजकी, श्री रहमान राही, श्री मु० अमीन कामिल, श्री चमन लाल चमन, मोती लाल साकी, तथा कश्मीरी नाटककारों में सर्वश्री अख्तर मुहीउद्दीन, पुष्कर भान, मोती लाल क्यमू, अली मु० लोन, हरि कृष्ण कौल आदि की रचनाओं का हिन्दी रूपान्तरण और अनुवादक के तौर पर श्री वेद राही, सुतीक्षण कुमार आनन्दम्, ज्योतीश्वर पथिक, शिव रैना, प्रो० रतन लाल शांत, श्री शशि शेखर तोषखानी, प्रो० हरि कृष्ण कौल आदि चर्चित रहे हैं।

डुग्गर के कवि और उनकी कविता : इस श्रृंखला के अंतर्गत कल्चरल अकादमी जम्मू कश्मीर की ओर से डोगरी के शीर्षस्थ कवियों की रचनाएं और उनके हिन्दी अनुवाद छाया करने का कार्यक्रम तय किया था। इस कार्यभार को तत्कालीन डोगरी रचनाकारों, सर्वश्री दीनू भाई पंत, राम नाथ शास्त्री, शम्भुनाथ शर्मा, मधुकर और तारा समैलपुरी को सौंपा गया। से पांच काव्य संकलन थे जिनमें से प्रत्येक में तीन कवियों की रचनाओं को छाया किया गया और पांचों संकलन 1959 को होली के दिन प्रकाशित होकर सामने आए। इन पांचों संकलनों को अपने नाम भी दिए गए– नीहारिका, अरुणिमा, प्राताकरण, मधुकण, मगधूलि। ये संकलन अब उपलब्ध नहीं हैं बहुत खोजने पर केवल तीन संकलन ही पाए जा सके। ये संकलन हैं अरूणिमा, मधुकण और मगधूलि।

अरुणिमा: अरुणिमा का संपादन तारा स्मैलपुरी ने किया है। इस संकलन में तीन डोगरी कवियों –ठा० रघुनाथ सिंह, किशन स्मैलपुरी और परमानन्द अलमस्त की रचनाओं को हिन्दी अनुवाद सहित संकलित किया गया है। कवि की रचनाओं से पहले, उनका परिचय उनकी तस्वीर के साथ दिया गया है। डोगरी में रची गई रचनाओं के साथ साथ उनका हिन्दी अनुवाद चुभता है। और संपादक के सीमित अनुभव की ओर संकेत करता है।

मधुकण: इस संकलन में भी डोगरी के तीन प्रतिष्ठित हस्ताक्षरों की रचनाओं को संकलित किया गया है। ये कवि हैं– मधुकर, वेदपाल दीप, और पद्मा देवी संप्रति पद्मा सचदेव। इसके संपाकद हैं श्री दीनू भाई पंत। मधुकर की डोगरी कविताओं का हिन्दी में पद्यानुवाद स्वयं मधुकर ने ही किया है लेकिन बाकी के दो डोगरी कवियों की रचनाओं के हिन्दी में किए गए गद्यानुवाद चुभते हैं। अच्छा होता उनकी रचनाओं का

भी पद्यानुवाद प्रकाशित किया जाता। मधुकर का परिचय तो श्री दीनूभाई पंत की कलम से दिया गया है और बाकी दो कवियों के परिचय श्री राम नाथ शास्त्री ने दिए हैं।

मगधूलि: पं0 शम्भूनाथ द्वारा संपादित यह कविता संकलन डुग्गर के तीन चर्चित कवि यश शर्मा, ओंकार सिंह 'आवारा' और तारा स्मैलपुरी की डोगरी रचनाओं और उनके गद्यानुवादों को संकलित किए हुए है। अन्य संकलनों की तरह इस संकलन के कवियों के भी परिचय चित्रों सहित दिए गए हैं। इन सभी कवियों के चित्रों को तैयार किया था जम्मू के प्रसिद्ध चित्रकार पं0 संसार चंद बड़ू ने। इन संकलनों के माध्यम से हिन्दी जगत हो डोगरी के प्रतिष्ठित और चर्चित कवियों का परिचय मिलता है।

हिन्दी शीराज़ा: हिन्दी शीराज़ा के आरम्भिक काल में 'बिम्ब प्रतिबिम्ब' के अंतर्गत स्थानीय भाषाओं के प्रतिष्ठित रचनाकारों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाता रहा है। शीराज़ा के प्रवेशांक अप्रैल,1965 में इस स्तंभ के अंतर्गत दीना नाथ नादिम की कश्मीरी कविताओं के अनुवाद प्रकाशित किए गए थे। जहां तक कि मोहन यावर और पुष्कर नाथ की उर्दू कहानियों को भी ज्यों का त्यों हिन्दी कहानी के तौर पर प्रकाशित किया गया था। यह स्तंभ शीराज़ा में वर्षों तक चला। इसके माध्यम से हिन्दी पाठकों को इन भाषाओं में रचे जा रहे श्रेष्ठ साहित्य का परिचय मिलता रहा है। वैसे भी शुरू में, अक्सर हिन्दी लेखकों के नाम से उर्दू, कश्मीरी और डोगरी के रचनाकारों की रचनाएं ही प्रकाशित होती रहीं हैं। ये रचनाकार अपनी रचनाओं को अनूदित कर हिन्दी में छपवाते थे। ऐसे कई नाम गिनाए जा सकते हैं।

हमारा साहित्य: वर्ष 1964 से वार्षिकी के तौर पर हमारा साहित्य प्रकाशित होना शुरू हुआ था। 1965 में इसका दूसरा अंक प्रकाशित होकर सामने आया। इसमें ठाकुर पुंछी, मोहन यावर, पुष्कर नाथ, चंचल शर्मा, नरेन्द्र खजूरिया आदि की प्रकाशित कहानियां इस बात की गवाह हैं कि हिन्दी में डोगरी अथवा उर्दू आदि से अनूदित साहित्य इन अंकों में प्रकाशित होता था। इससे अगले वर्ष अर्थात 1966 में प्रकाशित होने वाले हमारा साहित्य में भी लगभग यही कहानीकार छपे हैं।

डुग्गर समाचार: फील्ड सर्वे आर्गेनाइजेशन की ओर से प्रकाशित इस हिन्दी पत्रिका में भी गाहे–बगाहे डोगरी और कश्मीरी के रचनाकारों की हिन्दी में अनूदित रचनाएं प्रकाशित की जातीं थीं। 15/8/72 में प्रकाशित स्वाधीनता अंक में श्री किशन समैलपुरी की डोगरी से अनूदित हिन्दी कविता 'भारतीय चित्रकारों से' और प्रो0 मदन मोहन शर्मा की डोगरी से अनूदित कहानी 'कूक' भी इसी अंक में प्रकाशित की गई थी। डुग्गर समाचार के 3/9/72 के अंक में श्री रामकुमार अबरोल की एक कहानी हिन्दी में अनूदित कर 'दोष' शीर्षक से प्रकाशित की गई थी।

योजनाः योजना के पहले दौर की हम बात कर चुके हैं कुछ वर्षों के विराम के बाद योजना का प्रकाशन श्री चंचल के संपादन में एक बार फिर से शुरू किया गया था। इसमें भी कभी कभी डोगरी की श्रेष्ठ रचनाओं का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाता रहा है। बाद में श्री शिव रैना के संपादकत्व में तो प्रो0 मदन मोहन शर्मा की अनेक डोगरी कहानियों का अनुवाद प्रकाशित किया गया। यह अनुवाद स्वयं शिव रैना करते थे या यदाकदा मूल लेखक भी इनका अनुवाद स्वयं करते थे।

सारिकाः कहानियों की प्रतिष्ठित पत्रिका में भी डोगरी के प्रतिष्ठित कहानीकारों की रचनाओं को अनूदित कर स्थानीय हिन्दी और डोगरी लेखक भेजते रहें हैं। सारिका की ओर से 1972 में एक डोगरी विशेषांक भी प्रकाशित किया गया था जिसमें स्थानीय रचनाकारों की डोगरी रचनाओं के हिन्दी अनुवाद भी स्थानीय लेखकों ने ही किए थे।

अनुवाद कार्य की श्रृंखला में जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी की ओर से कुछ महत्वपूर्ण विषय भी प्रोजेक्ट के तौर पर लिए गए हैं। डोगरी, उर्दू, पंजाबी कहानियों, कविताओं और नाटकों के इलावा डोगरी और कश्मीरी में संकलित लोकगीतों, लोक कथाओं तथा इन भाषाओं के महत्वपूर्ण रचनाकारों और ऐतिहासिक व्यक्तियों की महत्वपूर्ण रचनाओं को भी हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशित किया गया है।

डोगरी काव्य सुषमाः 1972 में डोगरी के 27 चर्चित और प्रतिष्ठित कवियों की रचनाओं को हिन्दी में प्रकाशित किया गया। इन कविताओं का हिन्दी अनुवाद किया था श्री श्याम लाल शर्मा ने। इस संकलन में सर्वश्री हरदत्त शास्त्री, रघुनाथ सिंह सम्याल, बंसत राम बंसत, किशन समैलपुरी आदि से लेकर आधुनिक डोगरी कवियों की रचनाएं भी संकलित हैं। इस संकलन में संकलित तारा समैलपुरी की रचना 'अनसंभे गीत' का अनुवाद श्री लक्ष्मी नारायण ने किया था। बाकी की रचनाएं श्री श्याम लाल शर्मा द्वारा ही अनूदित की गई।

सरपंचः 1973 में दीनू भाई पंत द्वारा रचित सरपंच नामक नाटक का अनुवाद हिन्दी में स्वयं लेखक ने किया और इसे राज्य की कल्चरल अकादमी ने प्रकाशित किया। चूंकि लेखक स्वयं भी हिन्दी रचना करते थे अतः अनुवाद साधिकार और यथोचित हुआ है।

डोगरी और कश्मीरी लोक कथाएँः श्री श्याम लाल शर्मा द्वारा चुनी हुई डोगरी और कश्मीरी लोक कथाओं का हिन्दी में अनुवाद कर दो पुस्तकाकार पांडुलिपियां तैयार कीं गई थीं जिन्हें कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया।

प्रतिनिधि कश्मीरी कविताः डॉ0 अयूब प्रेमी द्वारा प्रतिष्ठित 35 कश्मीरी कवियों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद किया गया जिसे कल्चरल अकादमी ने 1975 में प्रकाशित किया। इस संकलन में लल्लेश्वरी, नुन्द ऋषि , हब्बा खातून, अरिन्यमाल की रचनाओं

से लेकर आधुनिक कश्मीरी कवियों की रचनाओं को भी संकलित किया गया है। आरम्भ में एक लम्बी भूमिका में कश्मीरी कविता के विकास को तलाशा गया है।

वाणी वितस्ता की: श्री पृथ्वी नाथ मधुप द्वारा कश्मीरी लोकगीतों को हिन्दी में अनूदित किया गया और इस संकलन को कल्चरल अकादमी द्वारा 1975 में प्रकाशित किया गया। इस संकलन को छः भागों में बांटा गया है जिनमे भिन्न भिन्न अनुष्ठानों, पर्वों और ऋतुओं के गीतों को संजोया गया है। इन गीतों में लोरियां, महिला नृत्यगान, कृषक गीत , हास्य वयंग्य के गीत, विवाह गीत और मंगलगान आदि हैं। पूर्व पीठिका में कश्मीरी लोकगीतों का परिचय देते हुए संकलनकर्त्ता लिखतें हैं:

"कश्मीरी लोकगीतों की परम्परा अति प्राचीन एवं विशाल है। 'ये विभिन्न रूपों में प्राप्य हैं। इन विभिन्न रूपों में शुर्य बा'थ, बालगीत, रोव–महिला नृत्यगान, कमिल्य बा'थ कृषकरान, लड़ीशाह– हास्य व्यंग्य गीत, छकरी बा'थ– शादी ब्याह पर सवाद्य गाए जाने वाले गीत तथा वनुवुन मंगलगीत प्रमुख हैं।"

इन गीतों के अनुवाद की सबसे बड़ी खूबी यह है कि लय और छन्द को बरकरार रखा गया है और पद्यानुवाद ही प्रस्तुत किया गया है।

छाया नाटक: श्री मोती लाल क्यमू कृत कश्मीरी नाटक त्शे का हिन्दी अनुवाद छाया के शीर्षक से प्रो0 हरि कृष्ण कौल ने किया था जिसका प्रकाशन 1975 में कल्चरल अकादमी के सौजन्य से हुआ।

ललदयद: प्रसिद्ध रहस्यवादी कवियित्री लल्लेश्वरी के कश्मीरी वाखों को हिन्दी में अनूदित करवा कर 1976 में अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया। इन वाखों का हिन्दी अनुवाद किया था श्री शंभुनाथ भट्ट 'हलील' ने। पहले कश्मीरी में देवनागरी के शब्दों में इसे उतारा गया तद्पश्चात इनका हिन्दी गद्यानुवाद किया गया। बीच बीच में टिप्पणियां भी दीं गई। अच्छा होता इनका पद्यानुवाद प्रकाशित किया जाता।

पोशिमाल: कश्मीर के प्रसिद्ध कवि रसूल मीर की 14 कविताओं और 30 गज़लों का पद्यानुवाद हिन्दी में 1977 में किया गया और इन्हें पोशिमाल का नाम दिया गया। यद्यपि पद्यानुवाद का प्रयास प्रशंसनीय कहा जा सकता है पर कहीं कहीं पर छन्द बीच में टूटते से लगते हैं।

परमानन्द प्रवाह: भक्तिकालीन प्रसिद्ध कश्मीरी कवि परमानन्द की रचनाओं का हिन्दी रूपान्तर 'परमानन्द प्रवाह' के अंतर्गत विद्वान श्री पृथ्वी नाथ पुष्प द्वारा किया गया जिसे कल्चरल अकादमी ने 1981 में प्रकाशित किया। भूमिका में विद्वान अनुवादक ने न केवल परमानन्द की रचनाओं का परिचय दिया है अपितु कश्मीरी कविता के प्रारम्भिक काल के इतिहास की भी तलाश की गई है।

प्रतिनिधि कहानियां : इस श्रृंखला के अंतर्गत श्री रमेश मेहता के सम्पादन में डोगरी, कश्मीरी और पंजाबी भाषाओं में लिखी गई चर्चित कहानियों का हिन्दी अनुवाद तीन अलग अलग पुस्तकों के रूप में सामने आया। विभिन्न कहानियों का अनुवाद भिन्न भिन्न विद्वानों द्वारा किया गया।

प्रतिनिधि डोगरी एवं कश्मीरी एकांकी : छ डोगरी एकांकी और पांच कश्मीरी एकांकियों का चयन कर भिन्न भिन्न विद्वानों द्वारा अनुवाद करवाया गया। डोगरी एकांकियों में पुराना बरगद, नई सड़क, ग्रथियां, आशा, बदलु , अपने पराए, के रचनाकार थे क्रमशः सर्वश्री रामनाथ शास्त्री, विश्व नाथ खजूरिया, नरसिंह देव जम्वाल, मदन मोहन शर्मा , नरेन्द्र खजूरिया और जितेन्द्र शर्मा । और इन एकांकियों के हिन्दी अनुवादक हैं क्रमशः सुतीक्षण कुमार आनन्द्म , ज्योतीश्वर पथिक, छत्रपाल और स्वयं जितेन्द्र शर्मा। और कश्मीरी एकांकी हैं अली मु0 लोन कृत आदम और हब्बा, सजूद सैलानी कृत लकड़ी का फाल, मोती लाल क्यमू कृत तकादा, सोमनाथ जुत्शी कृत नदी के किनारे और फारूख मसूदी कृत कालेज में नाटक। और इन एकांकियों के हिन्दी अनुवादक हैं सर्वश्री नरेन्द्र शर्मा, शशि शेखर तोषखानी, वही, वही, और नरेन्द्र शर्मा।

कोहरा और धूप: उर्दू की रचनाओं को हिन्दी में लिप्यन्तरण कर रमेश मेहता के सम्पादन में प्रकाशित किया गया। इसमें इस प्रदेश के चर्चित उर्दू रचनाकारों की रचनाएं संकलित हैं। यह भी कल्चरल अकादमी का ही प्रकाशन है।

थिरके पत्ता पीपल का : डॉ0 ओम गुप्त द्वारा संकलित डोगरी लोकगीतों का हिन्दी पद्यानुवाद दो अंको में प्रकाशित किया गया। सटीक अनुवाद इन्हीं गीतों की लय और छन्द के साथ इन्हें मौलिकता के करीब ले आता है। यही इस भावानुवाद की खूबी है।

सुय्या: श्री अली मु0 कृत कश्मीरी नाटक का हिन्दी अनुवाद सुय्या नाम से कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित किया गया।

श्रेष्ठ कश्मीरी लोकगीत: कश्मीरी लोकगीतों का संकलन, अनुवाद और परिचय इस संकलन में हमें मिलता है। डॉ0 जिया लाल हाण्डू द्वारा संकलित और अनूदित इन गीतों का मात्र हिन्दी पद्यानुवाद ही संकलित किया गया है। प्रारम्भ में एक लम्बी भूमिका के माध्यम से अनुवादक कश्मीरी लोकगीतों के प्रारूप और ऋतुपरक गीतों का ब्योरा देते हुए अनेक सूचनाएं इन गीतों पर देता है जो काफी ज्ञान बढ़ातीं हैं।

नीलजा: नीलजा के अनेक अंकों में 'कविता लहर' स्तंभ के अंतर्गत कश्मीरी कवियों की चर्चित रचनाओं का हिन्दी रूपान्तरण दिया गया है। नीलजा अंक ग्यारह में ऐसी चार कश्मीरी कविताओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किए गए हैं। हब्बा खातून की दो कविताओं के अनुवादक हैं प्रो0 लक्ष्मी नारायण सप्रू और श्रीमती जयकिशोरी, अहद

ज़फर की कश्मीरी कविता का अनुवाद किया था मोती लाल प्रमोद ने और श्री माखन लाल बेकस की कश्मीरी कविता का रूपान्तरण डॉ0 शशि शेखर तोषखानी द्वारा किया गया।

सतीसर और अनुगूंज: जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से प्रकाशित पत्रिका सतीसर में 'अनुगूंज' के अंतर्गत स्थानीय और भारतीय साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं को हिन्दी में अनुवाद कर प्रकाशित किया जाता रहा है। जुलाई –सित0 1991 के अंक में मखन लाल बेकस की कश्मीरी कविता का हिन्दी अनुवाद प्रो0 चमन लाल सप्रू द्वारा किया गया। इसी प्रकार जन0–मार्च 1992 के अंक में स्व0 दीना नाथ नादिम की कश्मीरी में लिखी गई कविता का हिन्दी अनुवाद 'अभी आज सुबह देखा मैनें' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। इसका अनुवाद भी प्रो0 सप्रू ने ही किया है।

भाषा और समकालीन भारतीय साहित्य: केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भाषा पत्रिका में स्थानीय कश्मीरी और डोगरी रचनाकारों की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होते रहे हैं इसी प्रकार समकालीन भारतीय साहित्य नामक पत्रिका जो साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित की जाती हैं दो वर्ष पहले, इस पत्रिका का एक डोगरी अंक प्रकाशित किया गया था जिसमें डोगरी रचनाओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किए गए थे।

नंगा रुक्ख एवं धरती अपनी अपनी:: 1979/80 में डोगरी के दो पुरस्कृत उपन्यासों –नंगा रुक्ख और सांझी धरती बखले मानू को रूपान्तरित करके प्रकाशित किया गया।

ओ0 पी0 शर्मा सारथी कृत 'नंगा रुक्ख' सौ पृष्ठीय प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। इस शैली में लिखे गए साहित्य को अनूदित करना एक जोखिम भरा कार्य था पर अनुवाद, प्रकाशित टिप्पणियों के हवाले से, मौलिक रचना के न केवल करीब हुआ है अपितु इसकी शैली और इसमें व्याप्त वातावरण को भी बरकरार रखा गया है। बाद में इसी हिन्दी अनुवाद के आधार पर दूसरी भाषाओं में भी इसका अनुवाद किया गया। मलयालम में अनूदित इस उपन्यास के प्रारम्भ में विद्वान अनुवादक ने इस ओर संकेत किए हैं और हिन्दी अनुवादक का भी परिचय दिया गया है। इस अनुवाद को साहित्य अकादमी ने प्रकाशित किया था। इसका हिन्दी अनुवाद किया था अशोक जेरथ ने और इसे प्रकाशित किया था राजपाल और संज ने।

श्री नरसिंह देव जम्वाल कृत डोगरी उपन्यास सांझी धरती बखले मानू का रूपान्तरण हिन्दी में 'धरती अपनी अपनी' के नाम से किया गया । लगभग चार सौ पृष्ठीय डोगरी उपन्यास की छंटाई करके लगभग आधे कलेवर में इसका हिन्दी संस्करण निकाला

गया जिसे वाणी प्रकाशन ने प्रकाशित किया। इस बात का ध्यान रखा गया कि छंटाई करते हुए उपन्यास के कथानक और आधार को कोई क्षति न पहुँचे। इस प्रकार इसे हिन्दी में एक तरह से पुणर्जीवित किया गया। बाद में इसी हिन्दी संस्करण को केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने उत्तम कृति के तौर पर पुरस्कृत भी किया । इसके रूपान्तरकार भी अशोक जेरथ ही थे।

दैनिक ट्रब्यून, जनसत्ता, नवभारत टाईम्ज़, उत्तरप्रदेश, विपाशा, सोमसी आदि समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणों और पत्रिकाओं में गाहे बगाहे स्थानीय साहित्यकारों के अनुवाद और अनूदित रचनाएं छपती रहती हैं। न ही इनके ब्योरे उपलब्ध हैं और न ही सब अनुवादों की सूची तैयार की जा सकती है। हां मोटे तौर पर हुए कार्य के ब्योरे दिए गए हैं। साहित्य अकादमी द्वारा भी डोगरी के रचनाकारों की रचनाओं का अनुवाद प्रकाशित किया गया है। बहुत पहले नरेन्द्र खजूरिया की कहानियों का अनुवाद श्री देवरत्न शास्त्री ने किया था। इस ओर छोटे मोटे कार्य होते रहे हैं।

सबदमिलावा: 1987 में प्रकाशित पद्मा सचदेव का कविता संग्रह 'सबद मिलावा' इस ओर एक और अंच्छा प्रयास कहा जा सकता है। इसमें डोगरी की प्रतिष्ठित और चर्चित कवियित्री, श्रीमती पद्मा सचदेव की 76 डोगरी कविताओं को हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशित किया गया है। न केवल इन कविताओं का हिन्दी अनुवाद ही दिया गया है अपितु इनके सृजन की पीठिका में प्रेरणा स्रोत और अनुभूत सत्य को भी तलाशा गया है अतः हर कविता के बाद रचना के सृजन की प्रक्रिया में संलग्न घटनाओं , उपघटनाओं और उत्प्रेरित पृष्ठभूमि को भी इंगित किया गया है। यही कारण है कि ये कविताएं हिन्दी पाठकों के लिए न केवल नवीन लगेंगी अपितु पाठक रचनाकार के सृजन के समय उठने वाले मानसिक उहापोह के साथ एकाकार हो जाएंगे। इस ओर प्रकाशकीय में संकेत भी दिए गए हैं–

"सबद मिलावा हिन्दी में अनूदित उनका नया कविता संग्रह है। नया इस नाते भी कि यहां संग्रहीत प्रत्येक कविता के साथ उसके अनुभूत सत्य, प्रेरणा बिन्दु, पृष्ठभूमि अथवा वस्तु तत्व पर भी टिप्पणी की गई है।"

कवियित्री ने अपनी डोगरी रचनाओं के हिन्दी अनुवाद स्वयं किए हैं। पद्मा सचदेव डोगरी और हिन्दी भाषा में समान अधिकार रखती है। अतः इन कविताओं को यदि अनूदित कविताएं न कहकर हिन्दी पाठकों के सामने रखा जाए तो निश्चय ही ये मौलिक लगेंगी हीं ताज़ेपन का आभास भी देंगी इसके उत्स को पकड़ने के लिए इस संग्रह की प्रथम रचना 'चम्पा की टहनी' का मैं संदर्भ देना चाहूंगा। कविता में नई नवेली दुल्हन की व्यथा कथा व्यक्त हुई है जिसे उसका पति छोड़ गया है और वह अपनी दुखभरी दास्तां चम्पा की टहनी को सुनाकर अपना मन हल्का करती है।

मर्दों की यही रीत है रोती छोड़ जाते हैं
सास ननद पीछे बुरा व्यवहार करतीं हैं
ज्यादा गुस्सा मुझे इस बात का है कि वह मुझे बता कर नहीं गया
हे चम्पा की टहनी।

इस रचना का महत्व पद्मा जी के लिए और भी बढ़ जाता है क्योंकि उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में से इसी कविता ने उनमें विश्वास जगाया था। वस्तुतः इस कविता का उत्स प्रसिद्ध डोगरी लोकगीत–

चम्बे दिए डालिए मोइये तू दुआस नि हो

में तलाशा जा सकता है, इस ओर कवियित्री ने भी संकेत किए हैं।

इधर हमारा साहित्य 1989, डॉ0 उषा व्यास द्वारा संपादित, में भी कुछ हिन्दी में अनूदित रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। विरह का गीति स्वरः अरिनीमाल, मूलः मोतीलाल साकी, का अनुवाद हिन्दी में डा0 रतन लाल शांत ने किया था। इसी प्रकार सुखदेव मैनी द्वारा उर्दू में रचित लेख बुआदित्ती बनाम दित्तू वजीरनी का हिन्दी अनुवाद नरेन्द्र शर्मा ने किया। पंजाबी में उजागर सिंह 'महक' द्वारा रचित लेख का हिन्दी अनुवाद मनोज शर्मा ने किया था।

अनुवाद साहित्य में इधर अनेकों छुटपुट प्रयास भी हुए हैं और निरन्तर हो रहे हैं जिससे यहां का हिन्दी साहित्य स्मृद्ध हो रहा है।

अनुसंधान कार्य

वैसे तो वैयक्तिक स्तर पर अनुसंधान के लिए अनेक विषय चुने गए और इन पर कार्य हुआ और बाद में अनेक ग्रंथ प्रकाशित होकर सामने भी आए लेकिन निरन्तरता लिए इस ओर जम्मू विश्वविद्यालय के दो परिसरों के हिन्दी विभाग, संस्कृत और दूसरे विभागों के अनुसंधान एककों द्वारा अनेक प्रोजेक्ट हाथ में लिए गए। बाद में जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय दो विश्वविद्यालयों में बंट गया इस तरह दोनों विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के लिए अनेक विषय और उपविषय चुने गए।

1983 तक हुए कार्य का लेखा वितस्ता 1982, शिशिर अंक में दिया गया है। यह ब्योरे कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा किए गए अनुसंधान कार्य को लेकर हैं। लेकिन सामूहिक तौर पर भी देखा जाए तो जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय के प्रथम शोधार्थी डॉ0 अयूब प्रेमी रहे हैं जिन्होने पं0 जगन्नाथ तिवारी के निर्देशन में 'निराला' के काव्य में दार्शनिकता' विषय पर अपना शोधकार्य 1966 में सम्पन्न किया। इन्हीं के साथ साथ डॉ0 मोहिणी कौल ने भी आचार्य तिवारी जी के निर्देशन में 'लल्लेश्वरी और कश्मीर का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर 1968 में ही कार्य सम्पन्न किया। 1983 वर्ष के अंत

तक 24 शोधार्थी डॉक्टरेट कर चुके थे। इन विषयों में लद्दाखी, कश्मीरी भाषा, साहित्य एवं लोक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर शोधकार्य हुआ है। क्रमशः एक लद्दाखी, आठ कश्मीरी और 15 अन्य विषयों पर यह शोधकार्य सम्पन्न हो चुका है। 20 से 25 शोधार्थी ऐसे हैं जिन के द्वारा अभी इस ओर कार्य किया जा रहा है। इनके इलावा हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों द्वारा शोध परियोजनाएं भी चल रही हैं जिन पर अभी कुछ कार्य हुआ है पर बीच में व्यवधान आ जाने पर कार्य वैसा ही रुका पड़ा है।

उपर्युक्त शोध कार्य के इलावा कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा वर्षों तक एक शोध पत्रिका 'वितस्ता' के प्रकाशन के साथ साथ इसके कुछ विशेषांक भी निकाले गए हैं। विभाग द्वारा अनेक शोधग्रंथों का प्रकाशन भी किया गया है। एम0 फिल0 तथा एम0 ए0 अंतिम वर्ष के लिए भी छात्रों और शोधार्थियों को चयनित विषय दिया जाता रहा है जिस पर वे अपना कार्य करते रहे हैं।

उपर्युक्त कार्य में से अधिकतर प्रकाशित हो चुका है। पर अभी बहुत सा कार्य प्रकाश में आने के लिए आतुर है, अगर नहीं आया तो सारी मेहनत बेकार जाएगी।

जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की स्थापना 1965 में आचार्य जगन्नाथ तिवारी जी के प्रयासों से हुई थी। तब से लेकर आज तक निरन्तर यह विभाग प्रगति के पथ पर अग्रसर है। इस विभाग द्वारा अभी तक दो व्यक्ति डि0 लिट0 की डिग्रियां प्राप्त कर चुके हैं डॉ0 ओम प्रकाश शर्मा, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी गद्य साहित्य में व्यंग्य विषय पर और डॉ0 चन्द्र शेखर का विषय था समकालीन हिन्दी नाटक कथ्य चेतना । इनके इलावा लगभग बीस के आसपास डी0 लिट0 के लिए पंजीकृत विषय हैं। जिनमें से अधिकांश का कार्य लगभग पूरा हो चुका है। पी0 एच0 डी0 में लगभग तीस शोधार्थी अपना कार्य पूरा कर पी0 एच0डी0 हासिल कर चुके हैं और इतने ही शोधार्थी इस कार्य में संलग्न है।

उपर्युक्त शोधग्रंथों में से अनेक प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु अभी कई पाण्डुलिपियां प्रकाशन की अपेक्षा में पड़ी हैं।

जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा एक शोध पत्रिका 'मंतव्य' का भी प्रकाशन किया गया है जिसके अभी तक केवल दो अंक ही प्रकाश में आए हैं मंतव्य --1 (1977–78) और फिर पंचवर्षीय योजना पूरी करते हुए दूसरा अंक मंतव्य–2 (1983) में प्रकाशित हुआ था। तीसरे अंक की अपेक्षा में दो पंचवर्षीय काल बीत गए हैं पर अभी प्रतीक्षा है। वैयक्तिक स्तर पर अनुसंधान का कार्य जारी है।

डोगरी लोकगाथाओं में अभिप्राय : डॉ0 परमेश्वरी शर्मा और कु0 सुरेखा द्वारा लिखित एक शोध पुस्तिका में स्थानीय परिवेश से जुड़ी लोकगाथाओं का अध्ययन और विभिन्न लोकगाथाओं में प्रयुक्त अभिप्रायों का विश्लेषण किया गया है। इस शोधकार्य के

लिए आर्थिक योगदान भी अनुंधित्सुओं को मिला है इसकी ओर परियोजना अध्यक्ष डॉ0 ओम गुप्त ने संकेत किए हैं। कार्य पद्धती की ओर संकेत करते हुए डॉ0 ओम गुप्त ने संकेत किए हैं। पद्धती का आश्रय लिए कार्ड के कालम थेः। लोकगाथा का नाम 2. लोकगाथा का भेद 3. प्राप्ति स्थान 4. सूचक 5. मुख्य घटना 6. गौण घटनाएं 7. विशेष टिप्पणी। कुल पैंतालीस लोकगाथाओं के विश्लेषण पर आधारित यह कार्य था। लेकिन पुस्तिका का अध्ययन करने पर पता चलता है कि निर्धारित पद्धती पर नहीं चला गया है। मसलन कालम 3 के अंतर्गत प्राप्ति स्थान तो बहुत लोकगाथाओं का दर्शाया ही नहीं गया। "डुग्गर भूमि का मुख्य स्वरः वीरपूजा" लेख में कहीं पर भी कोई संदर्भ इस विषय पर नहीं दिया गया। जिन गाथाओं के संदर्भ दिए गए हैं ये कहां से आई, इनका प्राप्ति स्थान क्या है और अगर कहीं से प्रकाशित हुई लीं गई हैं तो उसका संदर्भ अवश्य दिया जाना चाहिए था। यह तो शोध कार्य का सर्वप्रथम नियम भी है। यदि कहीं से रिकार्ड की गई हैं तो इसके ब्योरे दिए जाने चाहिए थे। परियोजना निदेशक का यह धावा भी कि "प्रकाशित लोकगाथाओं के अतिरिक्त लोकगायकों से सम्पर्क करके इनके प्रारूप रिकार्ड भी किए गए" पर प्रश्न चिन्ह लगाने का यथेष्ठ कारण है कि जितने भी संदर्भ लोकगाथाओं के दिए गए है वे सभी लोकगाथाएं पूर्वप्रकाशित हैं।

हां एक बात अवश्य है कि शोध कार्य की पद्धति विशेषकर लोक साहित्य के क्षेत्र में देने का और प्रथम होने का श्रेय अवश्य उन्हें जाता है।

हिन्दी साहित्य में देवी पूजा के विविध रूपः युवा हिंदी लेखक संघ द्वारा प्रकाशित डॉ0 परमेश्वरी शर्मा द्वारा रचित 72 पृष्ठीय यह पुस्तिका 1993 में प्रकाशित होकर सामने आई। इस शोध पुस्तिका में निराला के साहित्य के संदर्भ में कार्य किया गया है। चार अध्यायों में बटी इस कृति में देवी की उत्पत्ति, शक्तिपूजा उद्‌भव और विकास, हिन्दी कवियों की देवी परिकल्पना और निराला साहित्य में देवी परिकल्पना आदि विषयों पर विश्लेषणात्मक कार्य हुआ है। इस ओर एक अच्छा प्रयास कहा जा सकता है।

उपसंहार

इस सारे कार्य के दौरान बहुत सी बातें उभरकर सामने आई हैं कि साहित्य की तीन मुख्य विधाओं कविता, कहानी और निबंध पर ही अधिकतर कार्य हुआ है। आठवें दशक के बाद आलोचना को भी तरह मिलनी शुरू हुई है। पहले केवल लिखा गया था और क्या लिखा जा रहा है इसका आकलन नही हो रहा था पर अब पुस्तक समीक्षाओं के साथ साथ साहित्य की विभिन्न विधाओं में हो रहे कार्य का भी विश्लेषण शुरू हुआ। इस कार्य में शीराज़ा की भूमिका प्रमुख रही है। विभिन्न विधाओं पर विशेषांक निकाले गए, परिचर्चाएं आयोजित कीं गई और खूब खुलकर बहस हुई परिणामस्वरूप आज का चिंतनशील लेखक अपने लेखन के प्रति कल के लेखक से जागरूक है।

उपन्यास साहित्य पता नहीं क्यों बहुत पीछे छूट गया है। इस पर बहुत काम होने की गुंजायश है। जो उपन्यास रचे गए हैं, उनमें से एक आधे को छोड़कर राष्ट्रीय स्तर पर लिखे गए हिन्दी उपन्यासों के सामने कहीं नहीं ठहरते। चद्रंकांता को यदि इसी प्रदेश का समझा जाए तो यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि उनके कुछ उपन्यासों की चर्चा अवश्य हुई है। ऐसा क्यों है, शायद इसलिए कि इन्हें बहुत हल्के फुल्के अंदाज से लिखा गया है। इस विधा पर ज्यादा काम क्यों नहीं हुआ शायद यह कार्य ज्यादा बैठक मांगता है।

संस्मरण, डायरी लेखन और जीवनी साहित्य नदारद है। यात्राओं के माध्यम से कुछ संस्मरण उभरे अवश्य हैं पर बकायदा संस्मरण साहित्य पर कार्य नहीं हुआ है। डायरी लेखन और जीवनी साहित्य पर एक भी प्रयास अभी तक नहीं हुआ लगता। इसके कोई ब्योरे उपलब्ध नहीं हैं। इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। बहरहाल इन विधाओं पर कार्य करने की बहुत गुंजायश है।

अनुसंधान के क्षेत्र में यद्‌यपि वैयक्तिक तौर पर और विश्वविद्यालयों के विभिन्न संकायों द्वारा यथेष्ट कार्य किया गया है लेकिन एक बात बड़ी शिद्‌दत से महसूस की गई है कि विश्वविद्यालयों में हो रहे कार्य में कहीं पर भी स्थानीय साहित्य नहीं उभरा है। हालांकि कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की ओर से कुछ छुटपुट प्रयास

अवश्य हुए हैं पर ये नाकाफी हैं। किसी प्रोजेक्ट को लेकर इस ओर कार्य किए जाने का सुझाव है। जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की ओर से एक लघुशोध प्रबन्ध इस क्षेत्र में किए गए आंशिक कार्य की ओर संकेत करता है। कारण कई हो सकते हैं कि किसे लें और किसे छोड़ें। फिर यह भी कहा जा सकता है कि अभी उस स्तर का कार्य लेखन में हुआ ही कहां है कि उस पर अनुसंधान किया जा सके पर मैं, इस सारे अध ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि जब राष्ट्रीय स्तर पर यहां के कुछेक रचनाकारों की रचनाओं को उद्धृत किया जाता है तो उन पर यहां कार्य क्यों नहीं हो सकता। कविता के क्षेत्र में प्रो0 सुभाष भारद्वाज, शशि शेखर, डा0 ओम गुप्त, शान्त, रमेश मेहता आदि कवि इस संदर्भ में लिए जा सकते हैं और कहानी के क्षेत्र में प्रो0 हरिकृष्ण कौल, वेद राही, ओम गोस्वामी, छत्रपाल, अशोक जेरथ आदि की रचनाओं पर कार्य करने की काफी गुंजायश है। यद्यपि इस ओर छुटपुट लेखों द्वारा कार्य हुआ है पर इनके समग्र साहित्य पर कार्य किया जा सकता है। और इसकी हमें अपेक्षा भी है।

डोगरी, पंजाबी, कश्मीरी आदि स्थानीय भाषाओं के साहित्य का अनुवाद प्रचुर मात्रा में देखने को मिल जाता है पर हिन्दी की रचनाओं का इन भाषाओं के साथ साथ भारत की अन्य भाषाओं में अनुवाद की अभी बहुत आवश्यकता है ताकि हिन्दी में रचा गया इस प्रदेश का श्रेष्ठ साहित्य अन्य भाषी रचनाकारों और पाठकों द्वारा भी पढ़ा जाए। और देश के श्रेष्ठ साहित्य के साथ हम तादात्म्य बैठा सकें।

साक्षात्कारों और भेंटवार्ताओं का शायद यहां रिवाज नहीं है। आकाशवाणी के कार्यक्रमों में यह एक मुख्य विधा है। इस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। साहित्य में जिस तरह इसका प्रयोग होना चाहिए था नहीं हुआ है। मात्र दो एक कृतियां ही पढ़ने को मिलीं हैं। विभिन्न साहित्यकारों और मनीषियों के साथ किए गए साक्षात्कारों के आधार पर इस प्रदेश की सामूहिक साहित्य संपदा और संस्कृति के नए आयामों को तलाशा जा सकता था। इस ओर अभी यथेष्ठ कार्य करने की आवश्यकता है।

इसी प्रकार हिन्दी नाटकों पर बहुत कम कार्य हुआ है। यहां के नाट्यकर्मियों को नाटक के आलेखों के लिए या तो दूसरी भाषाओं की कृतियों को रूपान्तरित करना पड़ता है या बाहर के लेखकों की ओर ताकना पड़ता है। यद्यपि सुतीक्षण कुमार आनन्दम् और महेश शर्मा द्वारा आंशिक प्रयास हुए हैं पर ये नाकाफी हैं।

यह एक सुखद आश्चर्य है कि कविता संग्रह और संकलनों का यथेष्ठ कार्य हुआ है। पचास से ज्यादा कविता संग्रह और संकलनों का प्रकाश में आना और विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कविता का ही साम्राज्य इस विधा की लोकप्रियता की ओर संकेत करता है। और कुछ रचनाएं तो राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में भी देखने को मिलती रहीं हैं। कुल भारतीय हिन्दी रचनाओं के साथ साथ। यही स्थिति कहानी की है। न केवल राष्ट्रीय

स्तर की पत्रिकाओं में यहां के कहानीकार छप रहे हैं अपितु उनकी रचनाओं को उद्धृत भी किया जाता है।

आलोचना में भी यहां के साहित्यकार पीछे नहीं । राष्ट्रीय स्तर की समीक्षाएं और आलोचनात्मक लेख पढ़ने को मिल जाते हैं।

यद्यपि हिन्दी साहित्य में यहां के रचनाकारों का दखल है तथापि एक बात बहुत अद्भुत है कि अस्सी के दशक में जो हलचल संस्थागत और मंचो के माध्यम से इस ओर रही है नौवें दशक और इसके बाद चुक सी गई है। वे रचनाकार जो अस्सी के दशक में उभरे थे अब स्थापित होते दिखतें हैं पर आगे क्या होगा, कोई आशावान स्थितियां नज़र नहीं आतीं। कारण शायद इलेक्ट्रानिक मिडिया का प्रभाव है पर है यह चिंताजनक स्थिति।

परिशिष्ट—1

जम्मू कश्मीर के हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते हुए अनेक रचनाकार ऐसी भी सामने आए जो इस प्रदेश के नहीं हैं पर शिक्षा अथवा अपने कार्यक्षेत्र में कार्य करने हुए इस प्रदेश में रह रहे हैं। इनमें से दो नाम ऐसे हैं जिनकी रचनाएं अपनी कहानी कहती है।

डॉ0 राजकुमारः जम्मू विश्वविद्यालय में डॉ0 राजकुमार हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के तौर पर कार्यरत हैं। मूलतः कवि हैं, नई कविता की पहचान है अतः नई कविता और उसकी प्रवृत्तियों पर कुछेक लेख भी शीराज़ा आदि में प्रकाशित हुए हैं। शीराज़ा के पूर्णांक 70 में काव्य संमीक्षा और पुरोवाकीय विश्वसनीयता,' शीराज़ा पूर्णांक 52 में 'मिथक 'एक परिचय', शीराज़ा पूर्णांक 88 में 'अज्ञेय की काव्यदृष्टि,' आदि लेख इनकी विद्वता का परिचय देते हैं। इनकी काव्य रचनाएं शीराज़ा, हिमप्रस्थ, हमारा साहित्य और जम्मू कश्मीर कलचरल अकादमी के अन्य प्रकाशनों में छपती रहती हैं दो कविता संग्रह और एक कहानी संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनकी रचनाओं में सांस्कृतिक भाषा के माध्यम से अपने परिवेश के साथ जुड़ने की बात शिद्दत के साथ उभरती हैं और पाठकों को बांध लेती है। 'सांप मेरे साथी' इनकी एक सशक्त रचना है जिसके माध्यम से बदलते मूल्यों और कल्पना लोक से नीचे उतर कर ठोस धरातल पर पांव रखने की मजबूरी की ओर संकेत किए गए हैं।

'एक सहज कविता' में कवि का स्वर पैना हो आया है

जब गरीब था/गोरे अफसरों की कुर्सियां पौंछता रहा
बुद्धिजीवी हुआ तो/ सत्ता के चंदोवे ढांकता रहा
घायल तलुवों की पीड़ से मुक्त/ धूल फांकता रहा

............शीराज़ा, पूर्णांकः 104 पृ0 33

भाषा में रवानी और सोच में एक निश्चित दिशा राजकुमार की रचनाओं में देखने को मिलती है:

हो गए हैं एक जुट/लगता है वे विस्फोटक करिश्मों
जैसे बटेंगे/ खुरदरे पर/रपटीली दीवार पर चढेंगे।

..............हिमप्रस्थ , जुलाई 1993 पृ0 25

'इक्कीस्वीं शताब्दी के नाम कविता' कवि की उपलब्धि कही जा सकती है। बीसवीं सदी के करवट लेते ही क्या अपेक्षाएं व्यक्ति की हैं और वस्तुतः होगा क्या इसके बारे में कवि ने यथार्थ का खाका प्रस्तुत किया है।

भर्राकर टूट रहें हैं/ पेड़ वृक्ष वृहदाकार
घुमड़ रहा है मृत्युगंध का गुब्बार

शब्द संकेतों, प्रतीकों, मिथकों आदि के माध्यम से कवि अपनी बात कहने में समर्थ है। भाषा में बहाव है और सटीक बात कहने के लिए सही शब्दों के चयन की सामर्थ्य भी है।

मनोज शर्मा: प्रतिवद्ध लेखन से जुड़े मनोज शर्मा नेबार्ड में कार्यरत है। मनोज की रचनाएं दैनिक कश्मीर टाईम्स, शीराज़ा, हंस, जनसत्ता आदि पत्र—पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं हैं। मनोज के पास अपनी एक भाषा है, शब्द चयन है और इससे भी ऊपर अभिव्यक्ति है।

मनोज की कविता में अपने परिवेश से जुड़े होने का दर्द, व्याप्त विसंगतियों और उनसे जुड़तीं, टूटती मान्यताओं की अभिव्यक्ति हुई है। 'पिंजरा' नामक एक कविता में उपर्युक्त तीनो भावों को पकड़ा जा सकता है।

मेरी मुझ से सूरज तक की यात्रा में
एक अंधी सुरंग पड़ाव बन गई है
जिसमें मुझे रहना होगा/ कुछ भी कहे बिना
अंधेरा सहना होगा/ मैं, टटोलने का अर्थ पहचान में लाता हूं
सुरंग को पड़ाव बनाता हूं।

......शीराज़ा , पूर्णांक, 97

इस कविता का यदि विश्लेषण करें तो आसानी से रचनाकार की सोच और शिल्प तक पहुंचा जा सकता है। 'सूरज तक की यात्रा' वह चरम है जो आकांक्षित सत्य के करीब है और जो अपेक्षित है परन्तु अपेक्षित को पा लेना इतना सहज नहीं। एक अंधी सुरंग में से होकर गुजरना पड़ेगा। अंधी सुंरग मानो व्यवस्था है, सामाजिक दीर्धाएं हैं जो पड़ाव का काम करती हैं। और इस पड़ाव पर रहते हुए 'अंधेरा सहना होगा' अर्थात उन सभी दिक्कतों, असंगत नियमों और सामाजिक वर्जनाओं के प्रति झुकना होगा। उनसे समझौता करना । अगली पंक्तियां भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं—

"मैं टटोलने का अर्थ पहचान में लाता हूँ/ पहचान समझौते की पहली

कढ़ी है।"

टटोलने का भाव उस समझौते की शर्तें हैं जो रचनाकार और व्यवस्था अथवा सामाजिक दीर्घाओं के बीच में होने जा रहा है।

रचनाकार की सोच के दो पक्ष उजागर होते हैं– एक आक्रमणात्मक, आक्रोश से भरा तो दूसरा समझौतावादी। वह सबकुछ छोड़ कर अपने लक्ष्य की ओर जाने को उद्यत है पर अंधेरी सुंरग उसका रास्ता रोक लेती है परिणामस्वरूप एक पहचान स्थापित करनी जरूरी है। सूरज की यात्रा, अंधी सुंरग के माध्यम से सटीक बिम्बों का प्रयोग कवि की प्रतिभा की ओर संकेत करता है।

रचानाकार की एक कृति प्रकाशित होकर सामने आ चुकी है और अनेक रचनाएं स्थानीय ओर राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। आकाशवाणी से भी अनेक रचनाओं का प्रसारण हो चुका है। कवि प्रतिभा सम्पन्न है और सम्भावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता।

परिशिष्ट–2

इस सारे कार्य में मुझे अनेक विद्वानों, मित्रों एवं सहयोगियों का सहयोग मिला है इनका मैं हृदय से आभारी हूं।

1. श्री धर्मचंद प्रशांत, वरिष्ठ पत्रकार तथा सेवा निवृत्त संसद सदस्य
2. श्री बलदेव प्रसाद शर्मा, वरिष्ठ पत्रकार
3. सुश्री शंकुतला सेठ, कवियित्री, वरिष्ठ पत्रकार
4. श्री मनसाराम शर्मा 'चंचल', सेवा निवृत्त सूचनाधिकारी एवं योजना, डुग्गर समाचार के सम्पादक।
5. श्री सुतीक्षण कुमार 'आनन्द्म', कवि, नाटककार, शिल्पि।
6. श्री निर्मल विनोद, कवि
7. श्री रमेश मेहता, कवि, उपसचिव, कल्चरल अकादमी
8. श्री ओम गोस्वामी, कहानीकार, मुख्य सम्पादक डिक्शनरी प्रोजेक्ट कल्चरल अकादमी।
9. श्री शिवरैना, व्यंग्यकार, सम्पादक योजना।
10. डा0 उषा व्यास कथाकार, कवियित्री, सम्पादक शीराज़ा हिन्दी
11. श्री पृथ्वी नाथ मधुप, कवि, प्राचार्य केन्द्रीय विद्यालय, जम्मू।
12. श्री मोती लाल क्यमू, सेवा निवृत्त अतिरिक्त सचिव कल्चरल अकादमी।
13. श्री रतनलाल शांत, कवि, प्राध्यापक कालेज, उच्चशिक्षा , जम्मू कश्मीर
14. सुश्री रमा शर्मा , कवियित्री, अनुसंधित्सु।
15. श्री संजीव खजूरिया, श्रोता तथा विश्लेषक
16. श्री चमन लाल चमन, सम्पादक शीराज़ा कश्मीरी
17. सुश्री शान्ता भारती, लेखिका, पूर्व सम्पादिका भारती
18. श्री बलनील देवम् कवि, लेखक
19. श्री अनिल कुमार आज़ाद कवि, लेखक

20. श्री गणेश भार्गव, लेखक
21. श्री मती वीणा, सहयोग।
22. श्री तिलक राज डोगरा, टाईपिस्ट।
23. श्री मोहन निराश, कवि, प्रसारक, सेवा निवृत्त सहायक निदेशक आकाशवाणी।

उपर्युक्त नामों के इलावा अनेक संस्थाओं और दूसरे अदारों से भी समय समय पर सहयोग मुझे मिलता रहा है उनके प्रति भी मेरा आभार

संदर्भित पत्रिकाए

शीराज़ा (हिन्दी) कल्चरल अकादमी, जम्मू परिसर, जम्मू।

1.	अप्रैल 1965 अंक	सम्पादन नरेन्द्र खजूरिया।
2.	अक्तूबर 1965 अंक	– वही–
3.	1967 अंक दो	– वही–
4.	सितम्बर 1971 अंक	श्यामलाल शर्मा
5.	जून 1974 अंक	रमेश मेहता
6.	दिस0 1974 अंक	– वही–
7.	जून 1976 अंक	– वही–
8.	पूर्णांक 34 से 37 तक	– वही–
9.	पूर्णांक 39–40	– वही–
10.	पूर्णांक 41 से 44,45,46,48,49	– वही–
11.	पूर्णांक 52 से 55,58, से 63	– वही–
12.	पूर्णांक 65 से 69, 73,74,76	– वही–
13.	पूर्णांक 77,80,81,83,84	– वही–
14.	पूर्णांक 85, 87,88,91,94,96	–ओम गोस्वामी
15.	पूर्णांक 97,98,100,102	–उषा व्यास
16	पूर्णांक 103 से 106, 112	–उषा व्यास

हमारा साहित्य (हिन्दी), कल्चरल अकादमी, जम्मू परिसर, जम्मू।

1.	1965–1966, 67 अंक	सम्पादकः नरेन्द्र खजूरिया
2.	1975 से 1983 अंक	" रमेश मेहता
3.	1986–87 अंक	" ओम गोस्वामी

नीलजा वार्षिकी, जम्मू कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

1.	नीलजा अंक 4	सम्पादकः प्रो0 चमन लाल सप्रू
2.	नीलजा अंक 10 से 12	—वही—

मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

1.	जनवरी 1981 अंक	सम्पादकः डॉ0 प्रेमचंद विजय वर्गीय
2.	जुलाई 1983 अंक	सम्पादकः डॉ0 प्रकाश आतुर
3.	मार्च 1985 अंक	—वही—
4.	अगस्त 1986 अंक	—वही—
5.	नवम्बर 1987 अंक	—वही—
6.	फरवरी 1989 अंक	—वही—

योजना, जम्मू कश्मीर सूचना विभाग, जम्मू परिसर

1.	जून 1980 अंक	सम्पादकः मनसाराम शर्मा 'चंचल'
2.	सितम्बर 1984 अंक	सम्पादकः शिव रैना
3.	दिसम्बर 1989 अंक	—वही—
4.	जनवरी 1990 अंक	—वही—
5.	फरवरी 1991 अंक	—वही—

हिमप्रस्थ, लोकसम्पर्क विभाग, शिमला

1.	अप्रैल 1979 अंक	सम्पादकः केशव
2.	मार्च 1993 अंक	सम्पादकः ठाकुरदत्त शर्मा 'आलोक'
3.	जुलाई 1993 अंक	सम्पादक :वही—
4.	अगस्त 1993 अंक	सम्पादक :वही—

जागृति, लोक सम्पर्क विभाग, पंजाब

1.	अगस्त 1980 अंक	सम्पादकः ब्रम्हदेव भल्ला
2.	नवम्बर 1980 अंक	सम्पादकः —वही—

सोमसी, भाषा एवं साहित्य अकादमी हिमाचल प्रदेश

1. जनवरी 1985 अंक — सम्पादकः मौलूराम ठाकुर

विपाशा, भाषा विभाग, हिमाचल सम्पादकः प्रदेश, शिमला

1. सितम्बर 1988 अंक — सम्पादकः तुलसी रमण

आजकल, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार

1. दिसम्बर, 1986 अंक

भारती, भारती प्रकाशन जम्मू

1. मई 1941 अंक — सम्पादिकाः शान्ता भारती
2. अक्तूबर 1945 अंक — –वही–

उषा, सम्पादिका : शकुन्तला सेठ

1. दिसम्बर 1943 अंक — –वही–
2. फरवरी 1944 अंक — –वही–
3. जुलाई 1944 अंक — –वही–
4. अक्तूबर 1944 अंक — –वही–
5. फरवरी 1946 अंक — –वही–
6. मई 1946 अंक — –वही–

मधुरिमा, हिन्दी साहित्य मण्डल प्रकाशन, जम्मू

1. प्रतिभापुष्प 2 अंक 71 — सम्पादकः रमेश मेहता
2. प्रतिभापुष्प 3 अंक 73 — सम्पादकः मनसाराम 'चंचल' तथा सहयोगी
3. प्रतिभापुष्प 4 अंक 74 — सम्पादकः गणेशभार्गव तथा सहयोगी
4. प्रतिभापुष्प 13 अंक — सम्पादकः गणेश भार्गव तथा सहयोगी
5. प्रतिभापुष्प 6 अंक 75 — सम्पादकः अशोक जेरथ तथा सहयोगी

घोषवती, युवा हिन्दी लेखक संघ प्रकाशन, जम्मू

1. दिसम्बर 1974 अंक	
2. जुलाई 1987 अंक	
3. युहिले पत्रिका जन0 मार्च 1993	बंसी लाल सूरी अंक

अन्य पत्रिकाएं

1. वसुधा, प्रवेशांक, नवम्बर 1932	सं0 बंसीलाल सूरी
2. दीपक, 25 जनवरी 1939	सम्पादकः भागमल्ल
3. गुलाब 7 मार्च 1947	सम्पादकः विजय सुमन
4. चांद 15.8.1960	सम्पादकः नरसिंह दास नर्गिस
5. साक्षर प्रवेशांक, 1969	सम्पादकः एस0 शर्मा
6. युगसाक्षी, अक्तूबर 1987	सम्पादकः डॉ0 देवराज
7. निस्तन्द्र, जम्मू अंक (जन0 1975 तथा मार्च 1975)	सम्पादकः बलनील देवम्
8. प्रकर, नंव दिस0 84 तथा जून 79अंक	सं0ः विद्यालंकार
9. सतीसर, सित0 91 तथा जन व्यार्थ 92	सं0ः प्रो. चमन लाल सप्रू
10. डुग्गर समाचार, 15.8.1972	सम्पादक मनसाराम शर्मा चंचल
11. वितस्ता के नए चरण, 1979	सं0ः डॉ0 रमेश कुमार शर्मा
12. वितस्ता के कथा चरण, 1980	–वही–
13. वितस्ता 82, 83, अंक	–वही–
14. मंतव्य 77–78 अंक	प्रबन्ध सम्पादकः डॉ0 ओम प्रकाश गुप्त
15. मंतव्य–2, 1983 अंक	–वही–
16. धर्ममार्ग, अक्तूबर 80 अंक	सं0ः केहरि सिंह मधुकर
17. आकार, मार्च 1982 अंक	सं0ः बसंत कुमार परिहार
18. योजना, अगस्त 1987 अंक	सं0ः शिव कुमार शर्मा
19. साप्ताहिक हिन्दुस्तान फरवरी 1989	स0ः मृणाल पाण्डे
20. सारिका, अप्रैल 1976	सं0ः कमलेश्वर
21. तवी प्रवेशांक मई 1984	सं0ः नरेन्द्र सहगल
22. –वही– जुलाई 1987	–वही–
23. –वही– जून 1989	–वही–

24. साक्षर अक्तूवर 1969
25. मंथन , 1966 — सं0: कु0 सुनीता शर्मा
26. नीलकंठ — सं0: चरण सिंह तथा सहयोगी
27. दशमसेतु — सं0: निर्मल विनोद

इनके इलावा द'तवी, त्रिकूटा, रावी, द' टीचर आदि कालेज पत्रिकाओं को भी लिया जा सकता है।

समाचार पत्र

1. दैनिक कश्मीर टाईम्स
2. हमजोली — सं0: वेद भसीन
3. जम्मू पत्रिका — सं0: योगराज
4. सवेरा, समर्थन, नव जम्मू आदि। — सं0: प्रो0 सुभाष भारद्वाज

संदर्भित पुस्तकें

1. अधूरी कहानी का हीरो
2. आठवां दशक सृजन के संदर्भ — सं0: अनिल सहगल
3. आहत चीड़ें, 1979, — सं0: रमेश मेहता
4. एक अपरिचित आकाश 71 — अशोक जेरथ
5. खुले कमरे बंद द्वार 1972 — सं0: रमेशकुमार तथा अन्य
6. चीडों में ठहरी बयार 1978 — रमेश मेहता
7. चौराहे पर खड़े बारह चेहरे — सं0: रमेश मेहता
8. डुग्गर के देवस्थान 1988 — सं0: जवाहर रैणा, 1974
9. डुग्गर का लोकगाथाएं 1982 — शिव निर्मोही
10. डाइंग रूम में कैक्टस 1987 — –वही–
11. तवी के आर पार 1976 — ज्योतीश्वर पथिक
12. तिनका तिनका घौंसला 1987 — सं0: निर्मल विनोद
13. दायित्व 1987 — रमेश मेहता
14. निवार्सित 1974 — ओम गोस्वामी
15. निबन्धावली 1968–69 — –वही–
16. पीछा करते सफर, 1992 — सं0: प्रो0 शक्ति शर्मा तथा अन्य
17. प्रिज्मों में बटी किरणें 1974 — शामा
18. बबूल के साये में मोगरा 1992 — सं0: जवाहर लाल रैणा, अन्य
19. बर्फ 1987 — प्रिथ्वी नाथ मधुप
20. बराहा कहानियां 1981 — प्रो0 मदन मोहन

ओम गोस्वामी

21. मरुस्थल, 1982	ओ0 पी0 शर्मा सारथी
22. मीठे बोल तीखे स्वर 1988	डॉ0 सत्यपाल श्वेताम्बर
23. शब्द जो तुमने दिए 1979	सं0: रमेश मेहता
24. इस बार शायद	महाराज कृष्ण संतोषी
25. अनजाने क्षितिज	अशोक जेरथ
26. चेरी के फूल, 1980	—वही—
27. सर्द आग, 1983	ओम गोस्वामी
28. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी विकास और मूल्यांकण 1989	डॉ0 सोमनाथ कौल
29. चेतनाप्रवाह धारा का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव	डॉ0 अशोक जेरथ
30 फूल उदास हैं 1984	जितेन्द्र उधमपुरी
31. रजत शिखरों के रूपहले स्वर 93	अशोक जेरथ
32. शंकर शर्मा पिपासु व्यक्तित्व और कृतित्व1986	प्रो0 सुभाष भारद्वाज
33. सहस्रमुखी, 1975	सं0: रमेश मेहता
34. पद्यांजलि, 1961	सं0:प्रो0 सुभाष भारद्वाज तथा अन्य
35. गद्यांजलि, 1961	डॉ0 बी0डी0 शास्त्री तथा अन्य
36. तमाशा पुतली का 1991	महेश शर्मा
37. सुषमा (कविता संग्रह)	मनसाराम शर्मा 'चंचल'
38. रेत का सागर	प्रो0 सुभाष भारद्वाज
39. बिन मोती की सीप	—वही—
40. थोड़ा सा आकाश	शशि शेखर तोषखानी
41. खोटी किरणें, 1965	रतन लाल शांत
42. सेतुओं की खोज	डॉ0 ओमगुप्त
43. सुनो मार्कण्डेय	—वही—
44. कृष्ण मेरा पर्याय	मोहन निराश
45. शून्यकाल 1991	—वही—
46. वे मुखर क्षण, 1962	पृथ्वी नाथ मधुप
47. खोया चेहरा, 1971	—वही—
48. बबूल के साए में मोंगरा 1992	—वही—
49. देखती आकाश आंखें 1968	सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम'
50. कमल पत्र पर डोलता	

जलकण 1984	—वही—
51. बयार के पंखों में 1978	निर्मल विनोद
52. साक्षी सन्ध्याओं के	—वही—
53. धूप की तरह खिला	
वर्तमान, 1980	वलनीलदेवम्
54. अंतिम युद्ध की चाह	—वही—
55. आग जल रही है	—वही—
56. बर्फपर नंगे पांच 1992	महाराज कृष्ण संतोषी
57. चीख की एक भाषा	उपेन्द्र रैणा
58. प्रश्न तुमसे	आदर्श रैणा
59. एक आभास अनायास 1974	सहयोगी प्रकाशन
60. डूबे हुए सूरज की तलाश 1980	अशोक कुमार
61. बादलों में कैद सूर्य 1979	अनिल कुमार 'आज़ाद'
62. स्वप्नमाला 1982	सरिता शर्मा
63. उसपार 1984	इन्दुभूषण
64. भीम (खण्डकाव्य)	बी0डी0हंस
65. एक अपरिचित आकाश, 1971	रमेश कुमार शर्मा तथा अन्य
66. आज की कविताएं, दिस0 93	सं0: पृथ्वीनाथ मधुप
67. केसर के फूल, 1973	डॉ0 अर्जुण रैणा
68. धुंधलके (कहानियां)	दीदार सिंह
69. अनकही (कहानियां)	—वही—
70. इस हमाम में	हरिकृष्ण कौल
71. टोकरी भर धूप	—वही—
72. अरथी	—वही—
73. सौगात	अवतार कृष्ण राज़दान
74. श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां	सं0 अशोक जेरथ
75. देवदार की छाया तले 1976	—वही—
76. अभिव्यक्त होने दो, 1984	डॉ0 राज कुमार
77. काच और कमल	
(नीलजा अंक 14)	
78. अभिव्यक्ति, 1988	प्रो0 चमन लाल सप्रु
79. कविता जो साक्षी है	प्रो0 देवरत्न शास्त्री
80. न टूटनेवाले पंख 1978	डॉ0 ओम गुप्त
	अशोक जेरथ

81. नंगा रुक्ख 1980	अनु0 अशोक जेरथ
82. धरती अपनी अपनी, 1990	—वही—
83. प्रतिदिन, 1968	उषा व्यास छवि
84. उज्जवल अतीत, 1954	बंसी लाल गुप्ता
85. उपासना 1985	प्रेम भारती
86. शिकायत, 1974	विजय शर्मा
87. प्यार का सपना, 1984	सुरेश दूबे शास्त्री
88. धरती बोलती है	सुदर्श त्रिलोचन
89. परतें, 1984	दीदार सिंह
90. तड़पते पंछी	क्षेमलता बाखलू
91. उल्टा आदमी	ओ0पी0शर्मा सारथी
92. युद्ध और शांति 1967	डॉ0 ओम प्रकाश गुप्त
93. किसी से न कहना 1969	चंचल शर्मा
94. सागर के तीर 1967	ओम प्रकाश गुप्त
95. पत्थरों का दरिया 1986	निर्मल विनोद
96. अरूणिमा, 1959	सम्पादनः तारा स्मैलपूरी
97. मधुकन, 1959	सं0: दीनू भाई पंत
98. मगधूलि 1959	सं0: पं0 शम्भू नाथ
99. सबद मिलावा	पद्मा सचदेव
100. दीवान खाना, 1987	—वही—
101. मितवा घर	—वही—
102 डोगरी काव्य सुषमा 1972	अनु0 राम लाल शर्मा
103. प्रतिनिधि कश्मीरी कविता1975	अनु0 डॉ0 अयूब प्रेमी
104. वाणी वितस्ता की 1975	अनु0 पृथ्वी नाथ मधूप
105. प्रतिनिधि कहानियां	सं0: रमेश मेहता
106. कोहरा और धूप	सं0: —वही—
107. उल्कापात, 1968	बलनील देवम्
108. रौशनी से दूर, 1982	छत्रपाल
109. समय धारा, 1992	शकुन्तला सेठ
110. कश्मीर में हिन्दी, 1969	पी0 एन0 राज़दान
111. दो चांद, 1965	शंकर शर्मा 'पिपासु'
112. किसी भी समय, 1992	अग्निशेखर
113. जेहलम के मोड़, 1987	शामा



Published by the Secretary on behalf of the Jammu and Kashmir Academy of Art, Culture and Languages JAMMU, and printed at M/s J.K Offset Printers 315 Matia Mahal Jama Masjid Delhi -110 006